UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186787

UNIVERSAL
LIBRARY

"केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, शिक्षा और समाज कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार की ओर से भेंट"

# जातक

[पञ्चम खण्ड]

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

# प्राक्कथन

सन् ५१ में जातक का प्राक्कथन लिखते समय आशा थी कि जातक का पंचम खण्ड अपेक्षाकृत शीघ्र ही प्रकाशित हो सकेगा। किन्तु 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि' के नियमानुसार इस खण्ड के अनुवाद और प्रकाशन-कार्य में भी पर्य्याप्त समय लग ही गया।

इस खण्ड का अधिकांश अनुवाद-कार्य धर्मोदय विहार, कालिम्पोङ में रहते समय ही हुआ और छपने के समय प्रूफादि देखने में एकाधिक सहायकों ने मुझे अपना कृतज्ञ बनाया।

अपने अन्तेवासिक श्री० दीनदयाल 'दिनेश' का मैं विशेषरूप से कृतज्ञ हूँ।

जातक के अन्तिम-खण्ड के अधिकाश का भी अनुवाद हो चुका है। विश्वास है कि वह भी शीघ्र ही प्रकाशित हो जायगा।

इन दोनों खण्डों के यथासम्भव शीघ्र प्रकाशित करने की व्यवस्था कर देने के लिये मैं सम्मेलन के आदाता श्री जगदीशस्वरूप जी का विशेष कृतज्ञ हूँ।

धर्मोदय विहार
कालिम्पोङ
२३-७-५४

आनन्द कौसल्यायन

# विषय-सूची


| | विषय | पृष्ठ |
|---|---|---|
| ५०१. | **रोहन्तमिग जातक**<br>(चित्तमृग ने विपत्ति मे भी अपने बड़े भाई स्वर्ण-मृग का साथ दिया।) | १ |
| ५०२ | **हंस जातक**<br>(सुमुख हस-सेनापति ने स्वर्ण-हंस को मुक्त कराया।) | ११ |
| ५०३. | **सत्तिगुम्ब जातक**<br>(शक्ति-गुम्ब नामक तोते ने चोरो की संगति से वैसी बाते सीखी और पुप्फक नामक तोते ने ऋषियो की संगति से वैसी बातें।) | १७ |
| ५०४. | **भल्लाटिय जातक**<br>(किन्नर और किन्नरी की वियोग-व्यथा।) | २४ |
| ५०५ | **सोमनस्स जातक**<br>(राजकुमार ने ढोगी तपस्वी को 'गृहस्थ' कहा। उसने सोमनस्स राजकुमार को मरवाने का यत्न किया।) | ३१ |
| ५०६. | **चम्पेय्य जातक**<br>(नाग-राज ने नाग-भवन मे रहते समय मनुष्य-लोक में उत्पन्न होने की इच्छा से घोर तपस्या की।) | ४२ |
| ५०७. | **महापलोभन जातक**<br>(स्त्री की गन्ध से भी दूर भागने वाले राजकुमार को तथा ऋषि को स्त्री ने लुभा लिया।) | ५८ |
| ५०८. | **पंचपण्डित जातक**<br>(देखो महाउम्मग्ग जातक (५४६)।) | ६३ |

५०९. **हत्थिपाल जातक** ६४

(हस्तिपाल, अश्वपाल, गोपाल तथा अजपाल राजकुमारों की प्रव्रज्या।)

५१०. **अयोधर जातक** ८०

(सोलह वर्ष तक लौह-गृह में रहने वाले राजकुमार ने राज्याभिषिक्त न हो प्रव्रज्या ग्रहण की।)

५११. **किंछन्द जातक** ८८

(आधे उपोसथ-व्रत का सुफल, तथा न्यायाधीश होकर रिश्वत लेने का कुफल।)

५१२. **कुम्भ जातक** ९७

(सुरा तथा वारुणी का आविष्कार और उस के पीने से होने वाली हानियाँ।)

५१३. **जयद्दिस जातक** १०९

(जय-दिस्स कुमार ने अपनी बलि देकर अपने पिता को आदमखोर यक्ष से बचाना चाहा। यक्ष ने उसकी पितृ-भक्ति से प्रभावित होकर दोनों को छोड़ दिया।)

५१४. **छद्दन्त जातक** १२५

(छद्दन्त हस्ति-राज की दो रानियाँ थी—छोटी-सुभद्रा और बड़ी-सुभद्रा। छोटी-सुभद्रा के मन में ईर्ष्या-जनित वैर पैदा हो गया। वह मर कर मद्र-राज-कन्या होकर उत्पन्न हुई। उस समय भी उसका नाम सुभद्रा था। उसने छद्दन्त नाग-राज के सुन्दर दाँत कटवा मगाये।)

५१५. **सम्भव जातक** १४४

(यशस्वी कौरव्य राजा युधिष्ठिर के जिस प्रश्न का उत्तर बड़े बड़े न दे सके, बालक 'सम्भव' ने उस प्रश्न का उत्तर दे, धर्म-यज्ञ की व्याख्या की।)

५१६. **महाकपि जातक** १५५
(जिस ब्राह्मण ने पत्थर से मार कर बन्दर का सिर फोड़ दिया था, उसे भी महाकपि ने जंगल मे भटक कर मरने से बचाया।)

५१७. **दकरक्खस जातक** १६२
(देखो महाउम्मग जातक (५४६)।)

५१८. **पण्डर जातक** १६३
(तपस्वी ने नाग-राज से साँपों के पकड़ने की विधि पूछ गरुड-राज को बता दी। दारुण विश्वासघात किया।)

५१९. **सम्बुल जातक** १७५
(सम्बुला स्त्री ने अपने शील के तेज से पति का कोढ़ दूर किया।)

५२०. **गण्डतिन्द्र जातक** १८५
(पंचाल नरेश के राज्य मे प्रजा बहुत दुखी थी—दिन मे राज-पुरुष लूटते, रात मे चोर।)

**चालीसवाँ परिच्छेद**

५२१. **तेसकुण जातक** १९५
(राजा ने उल्लू, मैना तथा तोते के अण्डो से उत्पन्न पक्षियो का पुत्र-पुत्रीवत् पालन कराया।)

५२२. **सरभंग जातक** २०६
(जय-पाल की अद्‌भुत धनुर्विद्या तथा सरभग शास्ता द्वारा शक्र और अन्य राजाओं की जिज्ञासा का शमन।)

५२३. **अलम्बुस जातक** २३२
(देवेन्द्र शक्र की आज्ञा से अलम्बुसा अप्सरा ने ऋषि-शृग का तप भ्रष्ट किया।)

५२४. **संखपाल जातक** २४२
(संखपाल नाग-राज• की सहनशीलता।)

५२५. **चुल्लसुतसोम जातक** २६०
(सुतसोम ने किसी एक की भी नही सुनी। पुत्र, पत्नि, माता—सब की ओर से उपेक्षावान हो प्रव्रजित हो गया।)

**अठारहवाँ परिच्छेद**

५२६. **नलिनिका जातक** २७५
('राष्ट्र-कल्याण' के लिये राजा ने अपनी कन्या नलिनिका को भेजकर ऋषी-श्रृंग का तप नष्ट कराया।)

५२७. **उम्मदन्ती जातक** २९१
(सिवि-नरेश उम्मदन्ती पर बुरी तरह आसक्त हो गया था। सेनापति अहिपारक ने मैत्री-पूर्ण चतुराई से राजा की आसक्ति दूर की।)

५२८. **महाबोधी जातक** ३१२
(अमात्यों द्वारा महाबोधी-परिव्राजक की हत्या कराने के षडयन्त्र।)

५२९ **सोनक जातक** ३३१
(अरिन्दम नरेश ने अपने लँगोटिये यार सोनक का पता लगाया।)

५३० **संकिच्च जातक** ३४६
(शीघ्र राज्य पाने के लोभ से पिता की हत्या कर डालने वाले राजकुमार को बोधिसत्व का उपदेश।)

५३१. **कुस जातक** ३६०
(राजा को सन्तान नही होती थी। उस ने 'नियोग' द्वारा पुत्र लाभ के प्रयत्न किये।)

५३२. **सोन-नन्द जातक** ३९४
(जंगल में सोन तथा उसके अनुज द्वारा माता-पिता की सेवा।)

**इक्कीसवाँ परिच्छेद**

**अस्सीवां वर्ग**

५३३. **चुल्लहंस जातक** ४१५
(सुमुख नामक हंस-सेनापति ने विपत्ति के समय भी राजा का साथ नही छोड़ा और बाद मे अपने बुद्धिबल से शिकारी को भी बहुत सा धन दिलवाया।)

५३४. **महाहंस जातक** ४३७

(रानी ने स्वर्ण-हंस से धर्मोपदेश सुनने की इच्छा से उसे पकड़वा मंगाया। सुमुख-सेनापति ने अन्त तक स्वर्ण-हंस-राज का साथ देते हुए अपनी मैत्री तथा बुद्धि-बल से उसे राजा की कैद से मुक्त कराया।)

५३५ **सुधा भोजन जातक** ४६५

(मात्सर्य-कोष नामक सेठ बेहिसाब कंजूस था। शक्रादि देवताओ ने मिलकर उसका कंजूस-पन दूर किया।)

५३६. **कुणाल जातक** ४९५

(स्त्री-जाति को अपने वश में रखने वाले कोकिल-स्वामी तथा स्त्री-जाति के वशी-भूत हो जाने वाले कोकिल-स्वामी की कथा। स्त्रियों के दोषों का वर्णन।)

५३७. **महासुतसोम जातक** ५३१

(महासुत सोम राजा को आदमी का मास खाने की चाट लग गई। वह उस से छूटती ही न थी। काल-हत्थी सेनापति के लाख यत्न करने पर भी सुतसोम ने आदमी-मांस भक्षण करना नही छोड़ा। 'बोधिसत्व' ने उसकी यह आदत छुड़ाई।)

# ५०१ रोहन्त मिग जातक

"एते यूथा पतीयन्ति....." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय आयुष्मान् आनन्द के जीवन-परित्याग के बारे में कही।

## क. वर्तमान कथा

उसके जीवन-परित्याग (की कथा) अस्सीवें परिच्छेद मे **चुल्लहंस जातक**[1] में धनपाल के दमन में आयेगी। इस प्रकार उस आयुष्मान् के शास्ता के लिए जीवन-परित्याग करने पर धर्मसभा में बातचीत चली—"आयुष्मानो! आयुष्मान आनन्द ने शैक्ष-ज्ञान प्राप्त कर तथागत के लिए जीवन-परित्याग किया।" शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" "अमुक बातचीत" कहने पर "भिक्षुओ, न केवल अभी, इसने पूर्व-जन्म मे भी मेरे लिए जीवन-परित्याग किया है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

## ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय उसकी खेमा नाम की पटरानी थी। उस समय बोधिसत्व हिमालय मे मृग हो कर पैदा हुए—स्वर्ण-वर्ण, सुन्दर। उसका छोटा भाई चित्त-मृग भी स्वर्ण-वर्ण ही था। छोटी बहिन भी, जिसका नाम सुतना था स्वर्ण-वर्ण ही थी। बोधिसत्व रोहन्त नाम का मृग-राज हुआ। वह हिमालय की दो पर्वत-पंक्तियाँ लांघ कर, तीसरी पंक्ती में रोहन्त सर के पास अस्सी हजार मृगो का नेता बन रहता था और अन्धे-बूढे माता-पिता की सेवा करता था।

वाराणसी से कुछ ही दूर स्थित एक निषाद-ग्रामवासी निषाद-पुत्र ने हिमालय मे बोधिसत्व को देखा। उसने अपने गाँव वापिस आ, आगे चल कर मृत्यु के समय अपने पुत्र से कहा—"तात! हमारी कर्म-भूमि में अमुक जगह स्वर्ण-वर्ण मृग रहता है। यदि राजा पूछे तो कहना।"

एक दिन खेमा नाम की देवी ने बड़े प्रातः स्वप्न देखा। स्वप्न ऐसा था, स्वर्ण-वर्ण

---

[1] **चुल्ल हंस जातक (५३३)**

मृग सोने के आसन पर बैठ सुनहरी घँटियाँ बजाने के शब्द के समान मधुर-स्वर से देवी को धर्मोपदेश देता था। वह 'साधु, साधु' कहती हुई धर्मोपदेश सुन रही थी। मृग धर्म-कथा को बिना समाप्त किये ही उठ कर चल दिया। वह "मृग को पकडो" कहती हुई ही जाग पड़ी। परिचारिकाये उसका शब्द सुन हंस पडी—"घर के दरवाजे तथा खिडकियाँ अच्छी तरह बन्द है। हवा तक के लिए जगह नही है। आर्या इस समय मृग पकडवाती है।" उसे जब यह पता लगा कि "यह स्वप्न है" तो सोचा—"स्वप्न" कहने पर राजा अनादर करेगा। 'दोहद' कहने पर आदर से खोजेगा। तब मै स्वर्ण-वर्ण मृग से धर्म-कथा सुनूंगी।" वह रोग का ढग कर के पड रही। राजा ने आ कर पूछा—"भद्रे! तुझे क्या कष्ट है?"

"देव! और कुछ नही है, किन्तु मुझे 'दोहद' उत्पन्न हुआ है।

"क्या चाहती है?"

"देव! स्वर्ण-वर्ण धार्मिक-मृग का उपदेश सुनना चाहती हू।"

"भद्रे! जो है ही नही उसके बारे मे तुझे 'दोहद' उत्पन्न हुआ है। स्वर्ण-वर्ण नाम का मृग ही नही है।"

वह राजा की ओर पीठ करके पड रही—यदि नही मिलता है, तो मेरा यही मरण है। राजा बोला—यदि होगा तो तुझे मिलेगा। उसने परिषद मे बैठ **मोर-जातक**[1] में कहे अनुसार ही अमात्यो और ब्राह्मणो को पूछा। यह सुन कि स्वर्ण-वर्ण मृग होता है, उसने शिकारियो को बुलवा कर पूछा—किसी ने ऐसा मृग देखा या सुना? जब उस निषाद-पुत्र ने जैसा पिता से सुना था वैसा कहा तो राजा ने उसे 'मित्र! जब तू वह मृग लेकर आयेगा तो मै तेरा बडा सत्कार करूँगा। जा उसे ला' कहा और खर्चा देकर बिदा किया। वह बोला —"देव! यदि मै उसे न ला सकूंगा तो उसका चमड़ा लाऊगा, उसे भी न ला सकूगा तो उसके बाल लाऊग तुम चिन्ता न करो।" फिर वह घर गया और स्त्री-पुत्र को खर्चा दे वहाँ पहुचा उस मृग को देखा तो वह सोचने लगा कि किस जगह जाल बाधने से मै उ फँसा सकूंगा? उसने विचार करते हुए पानी पीने की जगह को इस योग्य समझा। तब चमड़े की मजबूत रस्सी बाट बोधिसत्व के पानी पीने की जगह पर खूटियों पर जाल ताना। अगले दिन अस्सी हजार मृगों के साथ बोधिसत्व चुगने

---

[1] मोर जातक (१५९)

आये। 'नित्य पानी पीने के तट पर ही पानी पीऊंगा' सोच वहां उतरते ही बन्धन मे बंध गये। तब सोचा—यदि मै अभी "बंध जाने की आवाज" लगाऊंगा, तो जाति-मण्डली बिना पानी पिये ही डर कर भाग जायगी। वह खूंटी से लगे रहने पर (भी) अपने को वश में रख पानी पीता हुआ सा बना रहा। जब अस्सी हजार मृग पानी पीकर ऊपर पहुच गये तो उसने बधन को तोडने के लिए तीन बार प्रयत्न किया। पहली बार चर्म छिल गया, दूसरी बार मास, तीसरे बार नसे छिलकर जाल हड्डी से जा लगा। जब जाल नही तुड़ा सका तो उसने 'पकड़े जाने की आवाज' की। मृग तीन समूहों में विभक्त होकर भागे। चित्त मृग ने जब तीनों समूहो मे बोधिसत्व को न देखा तो सोचा—यह भय जो पैदा हुआ है, यह मेरे भाई के लिए ही पैदा हुआ होगा। यह सोच, उसने वहां पहुंच, उसे बंधा देखा। बोधिसत्व ने भाई को देखा तो उसे 'भाई! यहां मत ठहर। यह खतरे की जगह है' कह उसे जाने की प्रेरणा करते हुए पहली गाथा कही—

**एते युथा पतोयन्ति भीता मरण चित्तक,**
**गच्छ तुवं पि, मा कंखि, जीविस्सन्ति तया सह ॥१॥**

[हे चित्तक! ये मृगो के झुण्ड मरने के भय से भागे जा रहे है। तू भी जा। शंका मत कर। ये तेरे साथ जीते रहेंगे ॥१॥]

इसके आगे की तीनों गाथायें एक दूसरे के बाद कही गई है—

**नाहं रोहन्त गच्छामि, हृदयं मे अवकड्ढति**
**न तं अहं जहिस्सामि, इध देस्सामि जीवितं ॥२॥**

[हे रोहन्त! मै नही जाता हूं। मेरा हृदय खिचता है। मैं तुझे नही छोडूंगा। मै अपने प्राण छोड़ दूंगा ॥२॥]

**ते हि नून मरिस्सन्ति अन्धा अपरिनायिका,**
**गच्छ तुवं पि मा कंखि, जीविस्सन्ति तया सह ॥३॥**

[वे हमारे अन्धे माता-पिता सेवक के अभाव में निश्चय से मर जायेंगे। तू जा। शंका मत कर। वे तेरे साथ जीयेंगे ॥३॥]

**नाहं रोहन्त गच्छामि, हृदयं मे अवकड्ढति**
**न तं बद्धं जहिस्सामि, इध हेस्सामि जीवितं ॥४॥**

वह बोधिसत्व की दाईं-ओर उसे सहारा देते हुए, खड़ा हुआ। सुतना नाम की

मुगी ने भी भागकर जब मृगों में अपने दोनों भाइयों को नही देखा तो सोचा— यह भय मेरे भाइयों के लिए ही उत्पन्न हुआ होगा। वह रुककर उनके पास गई। उसे आते देख बोधिसत्व ने पाँचवी गाथा कही—

**गच्छ भोरु पलायस्सु, कूटे बद्धोस्मि आयसे,**
**गच्छ तुवं पि, मा कंखि, जीवस्सन्ति तया सह ॥५॥**

[ हे भीरु! जा भाग। मै लोहे के बँधन में बँधा हूं। तू भी जा। शंका मत कर। वे तेरे साथ जीयेगें ॥५॥ ]

इसके बारे मे पूर्व प्रकार से ही तीन गाथायें हैं—

**नाहं रोहन्त गच्छामि, हदयं मे अवकड्ठति,**
**न तं अहं जहिस्सामि, इध हेस्सामि जीवितं ॥६॥**
**ते हि नून मरिस्सन्ति अन्धा अपरिनायिका,**
**गच्छ तुवं पि, मा कंखि, जीविस्सन्ति तया सह ॥७॥**
**नाहं रोहन्त गच्छामि, हदयं मे अवकड्ठति,**
**न तं बद्धं जहिस्सामि, इध हेस्सामि जीवितं ॥८॥**

उसने भी वैसे ही (भागना ) अस्वीकार किया और उसके बाई-ओर उसे सान्त्वना देती हुई खडी हुई। शिकारी ने भी जब मृगो को भागते देखा और बंध जाने की आवाज सुनी तो समझ गया कि मृगराज बंध गया होगा। उस ने काछ कसी ओर मृग को मारने का शस्त्र लेकर शीघ्रता से आन पहुंचा। बोधिसत्व ने उसे आता देख नौवीं गाथा कही—

**अयं सो लुद्दको एति रुद्दरूपो सहावुधो,**
**सो नो वधिस्सति अज्ज उसुना सत्तियामपि ॥९॥**

[ यह आयुध-सहित रुद्ररूप शिकारी चला आता है। वह आज हमें तीर से भी, शक्ति से भी मारेगा ॥९॥ ]

उसे देखकर भी चित्त-मृग नही भागा। किन्तु सुतना अपने को संभाल न सकने के कारण, मृत्यु से डरकर थोड़ी भागी। फिर यह सोच कि मैं दो भाइयों को छोड़ कहाँ जाऊंगी, अपने प्राणों का मोह छोड़, मृत्यु को सिर पर ले, आकर भाई के बाईं-ओर खडी हो गई। इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिए शास्ता ने दसवीं गाथा कही—

**सा मुहुत्तं पलायित्वा भयट्ठा भयतज्जिता**
**सुदुक्करं अकरा भीरु मरणाय उपनिवत्तथ ॥१०॥**

[भय के कारण, भय से डर कर थोड़ा भागी, किन्तु फिर उस भीरु ने बडी दुष्कर बात की। वह मरने के लिए रुक गई ॥१०॥]

शिकारी ने आने पर जब उन तीनों को एक साथ खडे देखा तो मैत्री-भाव से उन्हें एक कोख से उत्पन्न भाइयों के समान मान, सोचा—मृगराज [तो बन्धन में बंधा है, किन्तु ये दोनो (पाप-कर्म करने में) लज्जा भय-बन्धन से बंधे है। ये इसके क्या लगते है ?—

उसने उन्हे पूछा—

**किं नु ते मे मिगा होन्ति, मुत्ता बद्धं उपासरे,**
**न तं चजितुं इच्छन्ति जीवितस्सपि कारणा ॥११॥**

[ये मृग तेरे क्या लगते है जो मुक्त होने पर भी बंधे हुए के पास खडे है, जो जीवन-रक्षा के निमित्त भी तुझे छोडना नहीं चाहते ? ॥११॥]

बोधिसत्व ने उत्तर दिया—

**भातरो होन्ति मे लुद्द सोदरिया एकमातुका,**
**न मं चजितुं इच्छन्ति जीवितस्स पि कारणा ॥१२॥**

[हे शिकारी ! ये मेरे सहोदर सगे-भाई है। ये मुझे अपनी जान बचाने के लिए भी नही छोडना चाहते ॥१२॥]

उसने बोधिसत्व की बात सुनी तो सौमनस्य के कारण और भी अधिक मृदु-चित्त हो गया। चित्त-मृगराज ने उसके चित्त की कोमलता देख कहा—"मित्र शिकारी ! तू इस मृग-राज को 'मृग' मात्र ही मत समझ। ये अस्सी हजार मृगों का राजा है, सदाचारी है, सब प्राणियों के प्रति मृदु-चित्त है, महान् प्रज्ञावान् है, अन्धे, बूढे माता-पिता को पालता है। यदि तू इस प्रकार के धार्मिक को मारेगा, तो तू इसे मारने के साथ माता-पिता, मुझे तथा बहिन—इस प्रकार पाँच जनों को मारने वाला होगा। मेरे भाई को जीवन-दान दे, हम पांचों को जीवन-दान देने वाला हो।" यह गाथा भी कही—

**ते हि नून मरिस्सन्ति अन्धा अपरिनायिका,**
**पञ्चन्नं जीवितं देहि, भातरं मुञ्च लुद्दक ॥१३॥**

[हे शिकारी ! वे अन्धे बिना सेवक के निश्चय से मर जायेंगे (हे शिकारी!) भाई को छोड कर पाँचों को जीवन-दान दे ॥१३॥]

उसने उसका धार्मिक-कथन सुन प्रसन्न हो, "स्वामी ! मत डरें" कह बाद की यह गाथा कही—

**सो वो अहं पमोक्खामि मातापेत्तिभरं मिगं,**
**नन्दन्तु मातापितरो मुत्तं दिस्वा महामिगं ॥१४॥**

[ मैं माता-पिता का पोषण करने वाले मृग को छोडता हू। महा-मृग को मुक्त देख कर माता-पिता आनन्दित हो ॥१४॥]

यह कह उसने सोचा—राजा का दिया ऐश्वर्य्य मेरा क्या करेगा ? यदि मै इस मृगराज को मारूँगा तो या तो यह पृथ्वी ही फट जायगी या मुझ पर बिजली गिर पडेगी। मै इसे छोडता हूँ। वह बोधिसत्व के पास पहुंचा और खूटी उखाड, चमडे की रस्सी काट दी। उसने मृगराज को उठा, पानी के पास ले जा कर लिटाया। फिर कोमल-चित्त से धीरे धीरे बंधन खोला, नसों से नसें, मांस से मास तथा चर्म से चर्म मिलाया। फिर पानी से रक्त धो, मैत्री-चित्त से बार बार हाथ फेरा। उसकी मैत्री तथा बोधिसत्व की पारमिताओं के प्रताप से सभी नसे, मांस तथा चर्म मिल गये। पाँव छबि तथा लोम से ढक गया। यह भी नहीं मालूम देता था कि अमुक जगह बंधन बधा था। यह देख चित्त-मृग ने प्रसन्न हो शिकारी का अनुमोदन करते हुए गाथा कही—

**एवं लुद्दक नन्दस्सु सह सब्बेहि ञातिभि,**
**यथाहं अज्ज नन्दामि मुत्तं दिस्वा महामिगं ॥१५॥**

[हे शिकारी ! जैसे मै आज महामृग को मुक्त देख कर आनन्दित हूँ, उसी प्रकार सभी रिश्तेदारो के साथ तू भी आनन्दित हो ॥१५॥]

तब बोधिसत्व को विचार हुआ कि इस शिकारी ने मुझे किसी दूसरे की आज्ञा से पकडा अथवा अपना काम होने से पकडा ? उसने पकडने का कारण पूछा। शिकारी बोला—"स्वामी ! मुझे तुमसे प्रयोजन नहीं है। राजा की पटरानी खेमा तुम्हारा धर्म सुनना चाहती है। उसके लिए राजाज्ञा से मैने तुम्हें पकड़ा।"

"मित्र ! ऐसा है तो मुझे छोड़ कर तूने भारी बात की है। आ मुझे राजा के पास ले चल। मै देवी को धर्मोपदेश दगा।"

"स्वामी ! राजागण कठोर-स्वभाव होते है। कौन जानता है, क्या हो ? मुझे राजा के दिये ऐश्वर्य्य से काम नही है। तू यथासुख जा।"

बोधिसत्व को फिर विचार हुआ—यह मुझे छोड़ कर बड़ी बात कर रहा है। इसे ऐश्वर्य्य मिलने का उपाय करूँगा। उसने कहा—मित्र ! मेरी पीठ पर हाथ फेर। उसने हाथ फेरा तो हाथ सुनहरी बालो से भर गया। "स्वामी ! इन बालों का क्या करूँ ?" "स्वामी ! इन बालों को ले जा कर 'ये उस स्वर्ण-मृग के बाल हैं' कह कर राजा और देवी को दिखा तथा मेरी जगह खडा हो, इन गाथाओं से देवी को धर्मोपदेश दे। इन्हे सुनते ही उसका दोहद शान्त हो जायगा।" उसने 'धस्मं चर महाराज' आदि दस धर्माचरण-गाथायें सिखा, पांच-शील दे, अप्रमादी रहने का उपदेश दे, बिदा किया। शिकारी-पुत्र ने बोधिसत्व को आचार्य्य स्वीकार कर, तीन बार प्रदक्षिणा की और चार जगहों पर नमस्कार कर बालों को कमल-पत्र मे ले प्रस्थान किया। वे भी तीनों जने थोडी दूर पीछे जा कर, मुँह में आहार तथा पानी ले कर माता-पिता के पास गये। माता-पिता ने 'तात रोहन्त ! तू तो फँस गया था, कैसे मुक्त हुआ ?' पूछते हुए गाथा कही—

**कथं पमोक्खो आसि उपनीतस्मिं जीविते,**
**कथं पुत्त अमोचेसि कूटपासग्हा लुद्दको ॥१६॥**

[जीवन मृत्यु के समीप पहुंच जाने पर कैसे मुक्त हुआ ? हे पुत्र ! तुझे शिकारी ने कूट-बंधन से कैसे मुक्त किया ?॥१६॥]

ये सुन बोधिसत्व ने तीन गाथायें कही—

**भणं कण्णसुखं वाचं हृदयंगं हृदयनिस्सितं**
**सुभासिताहि वाचाहि चित्तको मं अमोचयि ॥१७॥**
**भणं कण्णसुखं वाचं हृदयंगं हृदय-निस्सितं**
**सुभासिताहि वाचाहि सुतना मं अमोचयि ॥१८॥**
**सुत्वा कण्णसुखं वाचं हृदयंगं हृदयनिस्सितं**
**सुभासितानि सुत्वान लुद्दको मं अमोचयि ॥१९॥**

[कर्ण-सुख तथा हृदय से निकली हुई और हृदय को स्पर्श करने वाली सुभाषित वाणी से चित्तक ने मुझे छुड़ाया ॥१७॥ कर्ण सुख.....सुतना ने मुझे छुड़ाया ॥१८॥ कर्ण सुख...वाणी को सुनकर शिकारी ने मुझे छोड़ दिया ॥१९॥]

उसके माता-पिता ने अनुमोदन करते हुए कहा—

**एवं आनन्दितो होतु सह दारेहि लुद्दको**
**यथा मयाज्ज नन्दाम दिस्वा रोहंतं आगतं ॥२०॥**

[इसी प्रकार शिकारी भी अपनी भार्य्या सहित आनन्दित हो, जैसे हम रोहन्त को आया हुआ देख कर प्रसन्न होते है ॥२०॥]

शिकारी भी जंगल से निकल, राजकुल पहुंच, राजा को प्रणाम कर के एक ओर खड़ा हुआ। उसे देख राजा बोला—

**ननु त्वं अवच लुद्दः मिगचम्मानि आहरिं,**
**अथ केन तु वण्णेन मिगचम्मानि नाहरि ॥२१॥**

[ हे शिकारी ! क्या तूने मृग-चर्म लाने को नही कहा था ? तू किस कारण से मृग-चर्म नही लाया ॥२१॥ ]

यह सुन शिकारी बोला—

**आगमा चेव हत्थत्थं कूटपासं च सो मिगो,**
**अबज्झि तं च मिगराजं तञ्च मुत्ता उपासरे ॥२२॥**
**तस्स मे आहु संवेगो अब्भुतो लोमहंसनो,**
**इमञ्चाहं मिगं हञ्ञो अज्ज हस्सामि जीवितं ॥२३॥**

[ वह मृग मेरे हाथ में आ गया था। वह मेरे कूट-बंधन में फंस गया था। उस बंधे हुए मृगराज के पास (दूसरे) मुक्त मृग खडे थे ॥२२॥ यह देख मुझे अद्‌भुत, लोमहर्षक संवेग उत्पन्न हुआ—यदि मै इस मृग को मारूंगा तो आज मेरी जान जायगी ॥२३॥ ]

राजा आश्चर्य से बार बार पूछने लगा—

**कीदिसा ते मिगा लुद्द, कीदिसा धम्मिका मिगा,**
**कथं वण्णा कथं सीला, बाळहं खो ते, पसंससि ॥२४॥**

[हे शिकारी ! तू उन मृगों की बहुत प्रशंसा करता है, वे मृग कैसे हैं ? वे कैसे धार्मिक हैं ? उनका वर्ण कैसा है ? उनका शील कैसा है ? ॥२४॥ ]

यह सुन शिकारी बोला—

**ओदातसिंगा सुचिवाला जातरूपतचूपमा,**
**पाढा लोहितका तेसं, अञ्जितक्खा मनोरमा ॥२५॥**

[ श्वेत-सीग, शुद्ध-बाल, चांदी सी चमडी, लाल पाँव तथा मनोरम रंजित आँखो वाले है ॥२५॥ ]

इस प्रकार उसने, कहते ही कहते, बोधिसत्व के सुनहरी बाल राजा के हाथ मे रख, उन मृगो का शरीर-वर्ण प्रकट करते हुए कहा—

**एतादिसा ते मिगा देव, एदिसा धम्मिका मिगा,**
**मातापेत्तिभरा देव, न ते सो अभिहारयं ॥२६॥**

[ हे देव ! वे ऐसे मृग है। वे ऐसे धार्मिक मृग है। हे देव ! वे माता पिता का पोषण करने वाले है। इसलिए (मै) उसे नही लाया ॥२६॥]

इस प्रकार उसने बोधिसत्व, चित्तमृग तथा सुतना मृगी के गुण कह कर 'महाराज ! मुझे उस मृगराज ने अपने बाल दे कर 'मेरे स्थान पर खडे हो कर देवी को दस धर्माचरण गाथाओ से उपदेश देना' 'आज्ञा दी' कहा और स्वर्ण-आसन पर बैठ उन गाथाओं से[1] धर्मोपदेश दिया। देवी का दोहद शान्त हो गया। राजा ने प्रसन्न हो शिकारी-पुत्र को बहुत ऐश्वर्य्य देते हुए ये गाथाये कही—

---

१ **धम्मं चर महाराज मातापितुसु खत्तिय,**
**इध धम्मं चरित्वान राजा सग्गं गमिस्ससि ॥१॥**
**धम्मं चर महाराज पुत्तदारेसु खत्तिय,**
**इध धम्मं..... .....॥२॥**
**धम्मं चर महाराज मित्तामच्चेसु खत्तिय,**
**इध धम्मं.....॥३॥**
**धम्मं चर महाराज वाहनेसु बलेसुच,**
**इध धम्मं चरित्वान.....॥४॥**
**धम्मं चर महाराज गामेसु निगमेसु च,**
**इध धम्मं चरित्वान.....॥५॥**
**धम्मं चर महाराज रट्ठेसु च जनपदेसु च,**
**इध धम्मं चरित्वान.....॥६॥**
**धम्मं चर महाराज समण-ब्राह्मणेसु च**
**इध धम्मं.....॥७॥**

**दम्मि निक्खसतं लुद्द थुल्लं च मणिकुण्डलं**
**चतुस्सदञ्च पल्लंकं उम्मापुप्फसिरिन्निभं ॥२७॥**
**द्वे च सदिसियो भरिया उसभं च गवं सतं,**
**धम्मेन रज्जं कारेस्सं बहुकारो मे सि लुद्दक ॥२८॥**
**कसी वणिज्जा इणानं उञ्छाचरियाय लुद्दक**
**एतेहि दारं पोसेहि, मा पापं अकरा पुनं ॥२९॥**

[हे शिकारी ! मैं तुझे सौ निकष देता हूं, अति-मूल्यवान् मणि-कुण्डल (देता हूं), उम्मा (?) पुष्प की शोभा वाला चौकोर पलंग (देता हूं) ॥२७॥ दो एक-जैसी भार्य्या (देता हूं), सौ गौयें और वृषभ (देता हू)। हे शिकारी ! तूने मेरा बहुत उपकार किया है। अब मैं धर्मानुसार राज्य करूंगा ॥२८॥ हे शिकारी ! अब तू भी फिर पाप कर्म न कर कृषी, वाणिज्य, ऋण-दान तथा उञ्छा-चर्य्या से परिवार का पोषण कर ॥२९॥]

उसने राजा का कहा सुना तो बोला—"देव ! मुझे गृहस्थी से काम नहीं। प्रव्रज्या की आज्ञा दें।" वह आज्ञा प्राप्त कर, राजा का दिया हुआ धन, पुत्र-स्त्री को सौंप, हिमालय जा, ऋषी-प्रव्रज्या ले, आठ समापत्तियाँ प्राप्त कर, ब्रह्मलोकगामी हुआ। राजा ने भी बोधिसत्व के उपदेशानुसार चल स्वर्ग प्राप्त किया। वह उपदेश हजार वर्ष चला।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला 'भिक्षुओ, इस प्रकार आनन्द ने पहले भी मेरे लिए जीवन-परित्याग किया ही है' कह जातक का मेल बैठाया। उस समय शिकारी छन्न था, राजा सारिपुत्र, देवी खेमा भिक्षुणी, माता-पिता महाराज-कुल, सुतना उप्पल-वण्णा, चित्त-मृग आनन्द, अस्सी हजार मृग-समूह शाक्य-गण और रोहन्त मृगराज तो मैं ही था।"

---

**धम्मं चर महाराज मिगपक्खीसु खत्तिय,**
**इध धम्मं.....॥८॥**
**धम्मं चर महाराज धम्मं सुचिण्णो सुखमावहाति**
**इध धम्मं.....॥९॥**
**धम्मं चर, महाराज, इन्दो देवा सब्रह्मणा**
**सुचिण्णेन दिवं पत्ता, मा धम्मं राज पमादो ॥१०॥**

# ५०२ हंस जातक

"एते हंसा पक्कमन्ति...." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय आनन्द स्थविर के जीवन-परित्याग के ही बारे मे कही।

## क वर्तमान कथा

उस समय भी धर्म-सभा मे स्थविर के गुणों की चर्चा करते हुए भिक्षुओं से शास्ता ने आ कर पूछा और "भिक्षुओ, न केवल अभी, आनन्द ने पहले भी मेरे लिए जीवन-त्याग किया है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

## ख· अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे बहुपुत्तक नाम राजा राज्य करता था। उसकी खेमा नाम की पटरानी थी। उस समय बोधिसत्व स्वर्ण-हंस की योनि में उत्पन्न हो, नौवे हजार हंसों का नेतृत्व करते हुए चित्रकूट मे रहते थे। तब देवी ने उक्त प्रकार से ही स्वप्न देख, राजा से स्वर्ण-हंस का धर्मोपदेश सुनने के दोहद की बात कही। राजा ने पूछा तो पता लगा कि स्वर्ण-हंस चित्रकूट पर्वत पर रहते है। उसने खेमा नाम का तालाब बनवाया और नाना प्रकार के खाने के धान रोपे। चारों ओर प्रति-दिन अभय-घोषणा कराई। तब एक शिकारी को हंसों को पकडने के लिए कहा। उसे किस प्रकार नियुक्त किया गया, उसने वहां कैसे पक्षियों की खोज-खबर रखी, स्वर्ण-हंसों के आ जाने पर राजा से कह कर जाल कैसे बंधवाया गया, बोधिसत्व जाल मे कैसे बंध गये तथा सुमुख हंस सेनापति का तीनों हंस-समूहों में बोधिसत्व को न देख लौट पडना—ये सब बातें **महाहंस जातक**[१] में आयेंगी। इस जातक में भी बोधिसत्व ने खूंटी से बंधे जाल में फंस, खूंटी से लटकते हुए ही गरदन बढा जिधर हंस गये थे उधर देखा। जब सुमुख आता दिखाई दिया तो आते ही उसकी परीक्षा लेने के लिए उसके आने पर तीन गाथायें कहीं—

---

[१] **महाहंस जातक (५३४)**

**एते हंसा पक्कमन्ति वक्कंगा भयमेरिता,**
**हरित्तच हेमवण्णा कामं सुमुख पक्कम ॥१॥**
**ओहाय मं ञातिगणा, एकं पासवसं गतं**
**अनपेक्खमाना गच्छन्ति, किं एको अवहीयसि ॥२॥**
**पत एव पततं सेट्ठ, नत्थि बद्धे सहायता,**
**मा अनोधाय हापेसि, कामं सुखुम पक्कम ॥३॥**

[ ये वक्रअग हस भय के मारे भागे जा रहे है। हे हरित-त्वच् ! हे हेम वर्ण ! हे सुमुख ! चाहे तो तू भी जा ॥१॥ मेरे रिश्तेदार मुझ अकेले को जाल में बधा छोड कर, अपेक्षा-रहित हो भागे जा रहे हैं, तू अकेला क्यो रहता है ? ॥२॥ उछल, उछल कर भागना ही श्रेष्ठ है। जाल मे फसे की कुछ सहायता नहीं की जा सकती। हे सुमुख ! सुखी होने का प्रयत्न मत छोड। भाग जा ॥३॥ ]

तब सुमुख ने कीचड पर बैठ गाथा कही—

**नाहं दुक्खपरेतो ति धतरट्ठ तुवं जहे,**
**जीवितं मरणं वा मे तया सद्धिं भविस्सति ॥४॥**

[ हे धृतराष्ट्र ! मै तुम्हें दु:ख में पडे हुए को नही छोड सकता। मेरा जीना अथवा मरना तुम्हारे साथ ही होगा ॥४॥ ]

सुमुख के इस प्रकार सिह-नाद करने पर धृतराष्ट्र ने गाथा कही—

**एतद अरियस्स कल्याणं यं त्वं सुमुख भाससि,**
**तं च वीमंसमानोहं पत ते तं अवस्सजिं ॥५॥**

[ हे सुमुख ! जो तू कहता है यही आर्य्य के लिए कल्याणकारी है। मैने जो तुझे भागने के लिए कहा, वह तेरी परीक्षा लेने के लिए ही कहा ॥५॥ ]

इस प्रकार जब वे यह बातचीत कर ही रहे थे तो डण्डा लिए शिकारी-पुत्र शीघ्रता से आया। सुमुख ने धृतराष्ट्र को आश्वासन दे, उसके सामने जा, आदर प्रकट कर, हंसराज के गुण कहे। उसी समय शिकारी मृदु-चित्त हो गया। जब उसने देखा कि वह मृदु-चित्त हो गया तो वह फिर जा कर हंस-राज के ही पास खडा हो गया। शिकारी ने भी हस-राज के पास आ छठी गाथा कही—

**अपदेन पदं याति अन्तलिक्खे चरो विजो,**
**आरा पासं न बुज्झि त्वं हंसानं पवरुत्तमो ॥६॥**

[ अन्तरिक्ष में उडने वाले पक्षी बिना पैरो के आकाश में पैरों से चलने की तरह जाते है। तू हसो मे श्रेष्ठ है। तूने दूर से जाल को नहीं देखा ? ॥६॥ ]

बोधिसत्व ने कहा—

**यदा पराभवो होत्ति दोसो जीवितसंखये,**
**अथ जालञ्च पासञ्च आसज्जापि न बुज्झति ॥७॥**

[ जब अवनति होती है तो आदमी जीवन पर आई हुई विपत्ति जाल और बधन को पास होने पर भी नही देखता ॥७॥ ]

शिकारी ने हस-राज की कथा का अभिनन्दन कर सुमुख से बातचीत करते हुए तीन गाथाये कही—

**एते हंसा पक्कमन्ति वक्कंगा भयमेरिता,**
**हरित्तच हेमवण्ण त्वं च नं अवहीयसि ॥८॥**
**एते भुत्वा पिवित्वा च पक्कमन्ति विहंगमा**
**अनपेक्खमाना वक्कंगा, त्वं एव एको उपाससि ॥९॥**
**किं नु तोयं दिजो होति, मुत्तो बद्धं उपाससि,**
**ओहाय सकुणा यन्ति, किं एको अवहीयसि ॥१९॥**

[ ये वक्रग हस भय के मारे भागे जा रहे है। हे हरित्-त्वच् ! हे हेमवर्ण ! तू इसके साथ पीछे रहता है ॥८॥ ये पक्षी खाकर पीकर जाते है। हे वक्रंग ! तू ही एक अपेक्षा रहित होकर पास खड़ा है ॥९॥ यह पक्षी तेरा क्या लगता है, जो तू मुक्त हुआ बंधे हुए का साथ देता है। और पक्षी छोड़कर जाते है। तू ही एक पीछे रहता है ॥१०॥ ]

सुमुख बोला—

**राजा मे सो दिजो मित्तो सखा पाणसमो च मे,**
**नेव नं विजहिस्सामि याव कालस्स परियायं ॥११॥**

[ वह पक्षी हमारा राजा है, प्राण के समान (प्रिय-) मित्र है, सखा है, जब तक जीवन है, तब तक मैं इसे नहीं छोड़ूंगा ॥११॥ ]

यह सुन शिकारी ने प्रसन्न-चित्त हो सोचा—'यदि मैं इस प्रकार के शीलवानों के प्रति पाप करूंगा, तो पृथ्वी भी मुझे निगल जा सकती है। मुझे राजा के पास से मिले धन से क्या ? इन्हें छोड़ता हूं।' उसने यह गाथा कही—

**योव त्वं सखिनो होतु पाणं चजितुं इच्छसि,**
**सो ते सहायं मुञ्चामि, होतु राजा तवानुगो ॥१२॥**

[ जो तू सखा होने के कारण प्राणों का त्याग करना चाहता है। मैं तेरे सखा को छोड़ता हूं। राजा तेरा अनुयाई हो ॥१२॥ ]

इतना कह धृतराष्ट्र को फंदे की खूटी से उतार (पानी के) किनारे ले जा, फंदा छुड़ाया और कोमल-चित्त से उसका लहू धो, नसे आदि ठीक की। उसके चित्त की मृदुता के कारण और पारमिताओ के प्रताप से उसी समय पांवो की चमड़ी ठीक हो गई। बधन-स्थान भी नही दिखाई देता था। सुमुख ने बोधिसत्व को देख, प्रसन्न चित्त हो, अनुमोदन करते हुए गाथा कही—

**एवं लुद्दक नन्दस्सु सह सब्बेहि ञातिभि**
**यथाहं अज्ज नन्दामि मुत्तं दिस्वा विजाधिपतं ॥१३॥**

[ इस प्रकार हे शिकारी ! तू सभी रिश्तेदारो सहित आनन्दित हो, जैसे आज मै पक्षी-राज को मुक्त देखकर आनन्दित होता हूं ॥१३॥ ]

यह सुन शिकारी ने कहा—"स्वामी ! जाओ।" बोधिसत्व ने उसे पूछा—"मित्र ! क्या तूने मुझे अपने लिए फासा था अथवा अन्य किसी की आज्ञा से ?" उसने जब वह बात बताई तब विचार किया—क्या मुझे यही से चित्रकूट जाना उचित है अथवा नगर ? उसने सोचा—"यदि मै नगर जाऊगा तो शिकारी-पुत्र को धन मिलेगा, देवी का दोहद शान्त हो जायगा, सुमुख का मित्र-धर्म प्रकट होगा और मै अपने ज्ञान-बल से खेम नामक तालाब को भय-मुक्त करा सकूगा। इसलिए नगर जाना ही उचित है।" नगर जाने का निर्णय कर कहा—"हे शिकारी ! तू हमे बहगी से राजा के पास ले चल। यदि राजा हमें छोडना चाहेगा तो छोड देगा।"

"स्वामी ! राजागण कठोर-स्वभाव के होते है। तुम जाओ।"

"मित्र ! हमने तेरे जैसे शिकारी को भी नर्म बना लिया, राजा को प्रसन्न करने में हमें क्या कठिनाई होगी। मित्र ! हमें ले ही चल।"

उसने वैसा ही किया। राजा ने हंसों को देख, प्रसन्न हो, दोनों हंसों को सुनहरी पीढे पर बिठा, मधुर-खील खिलाई और मधु-जल पिलाया। फिर हाथ जोड धर्मोपदेश की प्रार्थना की। हंस-राजा ने उसकी सुनने की इच्छा जान पहले कुशल-क्षेम पूछा। ये गाथायें हंस और राजा का उत्तर-प्रत्युत्तर हैं—

**कच्चि नु भोतो कुसलं,**
**कच्चि भोतो अनामयं,**
**कच्चि रट्ठं इदं फीतं**
**धम्मेन-म-अनुसासति ॥१४॥**

[क्या आप कुशल से तो हैं? क्या आप सुखपूर्वक तो है? क्या यह स्मृद्ध राष्ट्र धर्मानुसार अनुशासित है? ॥१४॥ ]

**कुसलं चेव मे हंस, अथो हंस अनामयं,**
**अथो रट्ठं इदं फीतं, धम्मेन अनुसासति ॥१५॥**

[हे हस! मै सकुशल हूं। मै सुख से हू। और इस स्मृद्ध राज्य का धर्मानुसार शासन होता है ॥१५॥ ]

**कच्चि भोतो अमच्चेसु दोसो कोचि न विज्जति,**
**कच्चि आरा अमित्ता ते छाया दक्खिणतोरिव ॥१६॥**

[क्या तेरे अमात्यो मे कोई दोषी नही है? क्या तेरे शत्रु दूर है और दक्षिण-छाया की तरह बढते नही है? ॥१६॥ ]

**अथो पि मे अमच्चेसु दोसो कोचि न विज्जति,**
**अथो आरा अमित्ता मे छाया दक्खिणतोरिव ॥१६॥**

[मेरे अमात्यो म कोई दोषी नही है। मेरे शत्रु दूर दूर रहते है और दक्षिण-छाया की तरह नही बढते है ॥१७॥ ]

**कच्चिते सादिसी भरिया अस्सवा पियभाणिनी,**
**पुत्तरूपयसूपेता तवछन्दवसानुगा ॥१८॥**

[क्या तेरी भार्य्या तेरे समान है, आज्ञाकारिणी, प्रियवादिनी, पुत्र, रूप तथा ऐश्वर्य्य से युक्त और तेरी इच्छा के अनुसार चलने वाली ? ॥१८॥ ]

**अथो मे सादिसी भरिया अस्सवा पियभाणिनी,**
**पुत्तरूपयसूपेता मम छन्दवसानुगा ॥१८॥**

[मेरी भार्य्या मेरे समान है, आज्ञाकारिणी, प्रियवादिनी, पुत्र, रूप तथा ऐश्वर्य्य से युक्त और मेरी इच्छा के अनुसार चलने वाली ॥१८॥]

**कच्चिते बहवो पुत्ता सुजाता रट्ठवड्ढन**
**पञ्ञाजवेन सम्पन्ना, सम्मोदन्ति ततो ततो ॥२०॥**

[हे राष्ट्रवर्धन! क्या तेरे बहुत से पुत्र उत्पन्न हुए हैं, जो प्रज्ञावान है और जहाँ तहाँ प्रसन्न रहते हैं ॥२०॥]

**सतं एकोच मे पुत्ता धतरट्ठ मया सुता,**
**तेसं त्वं किच्चमक्खाहि, नावरज्झन्ति ते वचो ॥२१॥**

[हे धृतराष्ट्र! मेरे एक सौ एक पुत्र है। तू उनका कर्तव्य कह। वे तेरे कथन के विरुद्ध नही जायेगे ॥२१॥]

यह सुन बोधिसत्व ने उन्हे उपदेश देते हुए पाँच गाथायें कही—

**उपपन्नो पि चे होति जातिया विनयेन वा,**
**अथ पच्छा कुरुते योगं किच्चे आपासु सीदति ॥२२॥**
**तस्स संहीरपञ्ञास्स विवरो जायते महा,**
**नत्तमन्धो व रूपानि फुल्लानि-म-नुपस्सति ॥२३॥**
**असारे सारयोगञ्ञू मंति न त्वे व विन्दति,**
**सरभो व गिरि दुग्गस्मिं अन्तरा येव सीदति ॥२४॥**
**हीनजच्चोपि चे होति उट्ठाता धितिमा नरो,**
**आचारसीलसम्पन्नो निसेव अग्गीव भासति ॥२५॥**
**एतं वे उपमं कत्वा पुत्ते विज्जासु वाचय,**
**संविरूहेथ मेधावी खेत्तबीजं व वुट्ठिया ॥२६॥**

[यदि कोई 'जाति' तथा 'विनय' से युक्त भी हो, किन्तु पीछे (बुढापे मे) ही प्रयत्नशील हो, तो वह आपत्ति मे डूब जाता है ॥२२॥ उस अस्थिर-चित्त की महान् हानि होती है। जैसे रतौन्धे की बीमारी वाला स्थूल स्थूल रूपो को ही देख सकता है, उसी प्रकार वह भी सूक्ष्म बातों का विचार नहीं कर सकता ॥२३॥ असार वस्तु को सार मानने वाला बुद्धि को नहीं प्राप्त होता है, जैसे दुर्गम-पर्वत में चलने वाला हिरन बीच में ही रह जाता है ॥२४॥ हीन-जन्मा होने पर भी यदि आदमी उत्साही और धृतिमान् होता है तो आचार-शीली होने पर वह रात्रि में आग की तरह प्रकाशित होता है ॥२५॥ इन्हें उपमायें समझ पुत्रों को विद्या पढ़ायें। जिस प्रकार वर्षा से बीज वृद्धि को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार उन्हे मेधावी बनायें ॥२६॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने सारी रात धर्मोपदेश दिया। देवी का दौहद शान्त हो गया। बोधिसत्व अरुणोदय के समय ही राजा को शीलों में प्रतिष्ठित कर, अप्रमाद का उपदेश दे, सुमुख के साथ उतर, खिड़की से निकल, चित्रकूट गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला 'भिक्षुओ, पूर्व-जन्म मे भी इसने मेरे लिए जीवन-परित्याग किया' कह जातक का मेल बैठाया। उस समय शिकारी छन्न था। राजा सारिपुत्र। देवी खेमा भिक्षुणी। हंस-परिषद शाक्य-गण। सुमुख आनन्द। हंसराज तो मैं ही था।

# ५०३ सत्तिगुम्ब जातक

"मिगलुद्दो महाराज ...." यह शास्ता ने मद्दकुच्छि में, मृगप्रदाय में, देवदत्त के बारे में कही।

## क. वर्तमान कथा

देवदत्त के शिला लुढकवाने पर भगवान् के पाव में ठीकरी लग जाने से बड़ी वेदना हुई। उसे देखने के लिए बहुत से भिक्षु इकट्ठे हुए। भगवान् ने भीड़ इकट्ठी हुई देख कर कहा—"भिक्षुओ, यह शयनासन बहुत गडबड़ है, यहां भीड लग जायगी। मुझे पालकी में मद्दकुच्छि ले जाओ।" भिक्षुओं ने वैसा ही किया। जीवक ने तथागत के पाँव को अच्छा किया। भिक्षुओं ने शास्ता के पास बैठे ही बैठे बातचीत चलाई—"आयुष्मानो! स्वयं देवदत्त भी पापी है, उसकी परिषद भी पापी है, इस प्रकार वह पापी पापी-साथियों के साथ विचरता है।" शास्ता ने पूछा—भिक्षुओ, क्या कर रहे हो?, "अमुक बातचीत" कहने पर "भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त पापी है, और उसकी परिषद् भी पापी है, पहले भी देवदत्त पापी और उसकी परिषद भी पापी ही रही है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

## ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे उत्तर-पाञ्चाल नगर मे पाञ्चाल नाम का राजा राज्य करता था। बोधिसत्व जंगल में एक जंगली-पर्वत पर सेमर के वृक्ष के ऊपर शुकराज पुत्र हो कर पैदा हुए। वे दो भाई थे। उस पर्वत के ऊपर की ओर पाँच सौ चोरो का निवासस्थान चोर-ग्राम था, नीचे पाँच सौ ऋषियो का निवासस्थान आश्रम था। उन तोते के बच्चो के पर निकलने के समय बवण्डर उठा। उसकी चपेट मे आकर उनमें से एक तोते का बच्चा चोर-ग्राम मे चोरो के शस्त्रो के बीच गिरा। उसके वहाँ गिरने से शक्ति-गुम्ब नाम हुआ। दूसरा आश्रम मे बालु में पुष्पो के बीच आ कर गिरा। उसके वहाँ गिरने से पुष्फक नाम हुआ। शक्ति-गुम्ब चोरों के बीच बडा हुआ। पुष्फक ऋषियों के।

एक दिन राजा सब अलकारों से सज, श्रेष्ठ रथ पर चढ, बहुत से अनुयाइयो के साथ शिकार के लिए नगर से थोडी ही दूर पर अच्छी तरह फूले-फले रमणीय वन में जा कर बोला—"जिस की ओर से मृग भाग जायेगा, उसी की गरदन।" वह रथ से उतर, छिप कर, जो जगह उसके लिए नियत की गई थी वहाँ धनुष ले कर खडा हुआ। जब आदमी मृगों को उठाने के लिए जगल के झुण्डो को पीट रहे थे तो एक मृग को जब भागने का रास्ता न दिखाई दिया तो जहाँ राजा खडा था, वहीं से भागने की जगह देख वह कूद कर भाग गया। अमात्यो ने पूछा—"किसकी ओर से मृग भागा?" जब उन्हें पता लगा कि राजा की ओर से तो वे राजा की हँसी उड़ाने लगे। राजा अभिमान के कारण उनकी हँसी न सह सका। "अभी उस मृग को पकडता हूँ" कह, रथ पर चढ सारथी को "शीघ्र हांकने" की आज्ञा दे कर मृग के पीछे दौड़ा। रथ तेजी से जा रहा था। आदमी पीछे पीछे न जा सके।

अकेले सारथी के साथ ही राजा मध्यान्ह तक चलता गया। जब मृग न दिखाई दिया तो रुक कर उस चोरग्राम के पास जो रमणीय कन्दरा दिखाई दी वहाँ उतर पड़ा। रथ से उतर कर उसने स्नान किया, पानी पिया और फिर ऊपर आया। सारथी ने रथ का कपड़ा उतार कर वृक्ष की छाया मे बिछा दिया। वह उस पर लेट रहा। सारथी भी बैठ कर उसके पाँव दबाने लगा। राजा बीच बीच में सो जाता और जाग उठता। चोरग्रामवासी चोर भी राजा की सुरक्षा के लिए जंगल में ही चले गये। चोरग्राम मे सत्तिगुम्ब तथा पटिकोलम्ब नाम का एक और भात

पकाने वाला आदमी —दो ही जने रह गये। उस समय सत्तिगुम्ब ने गाँव से निकलने पर राजा को सोता हुआ देखा तो सोचा इसके सोते सोते ही इसे मार कर उसके आभरण लूगा। उसने यह बात पीटकोलम्ब से कही—

इस बात को प्रकाशित करने के लिए शास्ता ने पांच गाथाये कही—

**मिगलुद्दो महाराज पञ्चालानं रथेसभो,**
**निक्खन्तो सह सेनाय ओगणो वनं आगमा ॥१॥**
**तत्थ अद्दसा अरञ्ञस्मिं तक्करान कुटिं कतं,**
**तस्सा कुटिया निक्खम्म सुवो लुद्दानि भासति ॥२॥**
**सम्पन्नवाहनो पोसो युवा सम्मट्ठकुण्डलो,**
**सोभति लोहितुण्हीसो दिवा सुरियो व भासति ॥३॥**
**मञ्झन्तिके सम्पटिके सुत्तो राजा ससारथि**
**हन्दस्साभरणं सब्बं गण्हाम सहसा मयं ॥४॥**
**निसीथेपि रहो दानि सुत्तो राजा ससारथि,**
**आदाय वत्थं मणिकुण्डलञ्च**
**हन्त्वान साखाहि अवत्थराम ॥५॥**

[शिकार-लोभी पञ्चाल-नरेश सेना के साथ निकला और वन मे अकेला रह गया ॥१॥ उसने वहाँ जंगल मे चोरों के रहने के लिए बनाई गई कुटी देखी। उस कुटी मे से एक तोता निकला जिसने ये कठोर वचन कहे—कुण्डल-धारी, लाल उष्णीष वाला तरुण सवार दिन मे सूर्य्य की भान्ति प्रकाशित होता है ॥२-३॥ इस मध्यान्ह के समय मे राजा और उसका सारथी दोनों सो रहे है। हम हमला कर के उसके सब आभूषण छीन लें ॥४॥ रात्रि के समान ही अब सुनसान है। सारथी-सहित राजा सो रहा है। उसके वस्त्र और मणि-कुण्डल छीन ले और इसे मार कर शाखाओ से ढंक दें ॥५॥]

उसने निकल कर देखा। जब पता लगा कि राजा है तो डर कर कहा—

**किं नु उम्मत्तरूपो व सत्तिगुम्ब पभाससि,**
**दुरासदा हि राजानो अग्गि पज्जलितो यथा ॥६॥**

[हे सत्तिगुम्ब ! तू क्या पगले आदमी की सी बात करता है। जैसे प्रज्वलित अग्नि के समीप नही जाया जा सकता, उसी प्रकार राजाओं के समीप नहीं जाया जा सकता ॥६॥]

तोते ने उसे गाथा कही—

**अथ त्वं पटिकोलम्ब मत्तो थुल्लानि गज्जसि**
**मातरि मटह नग्गाय किं नु त्वं विजिगुच्छसे ॥७॥**

[हे पटिकोलम्ब ! पहले तो तू मत्त हो कर बडी गर्जना करता था। अब मेरी मां नग्न है, और क्या तू (चौर-कर्म से) घृणा करता है ? ॥७॥]

राजा की आँख खुली तो उसने उसे उसके साथ मनुष्य-भाषा में बातचीत करते सुना। उसने सोचा—यह जगह खतरनाक है। सारथी को उठा कर उसने गाथा कही—

**उट्ठेहि सम्म तरमानो, रथं योजेहि सारथि**
**मकुणो मे न रुच्चति, अञ्ञं गच्छाम अस्समं ॥८॥**

[मित्र ! शीघ्र उठ। सारथी ! रथ जोत। यह पक्षी मुझे अच्छा नही लगता। हम दूसरी जगह चलें ॥८॥]

वह शीघ्रता से उठा और रथ जोत कर बोला—

**युत्तो रथो महाराज, युत्तो च बलवाहनो**
**अधितिट्ठ महाराज, अञ्ञं गच्छाम अस्समं ॥९॥**

[महाराज ! रथ जुत गया है, बैल जुत गये है। महाराज ! रथ पर चढ़ें। हम अन्यत्र चलेंगे ॥९॥]

उसके चढते ही सैंधव घोडे हवा की तेजी से भागे। सत्तिगुम्ब ने रथ को जाता देखा तो भ्रान्त हो दो गाथायें कही—

**को नु मेव गता सब्बे ये अस्मिं परिचारका**
**एस गच्छति पञ्चालो मुत्तो तेसं अदस्सना ॥१०॥**
**को दण्डकानि गण्हथ सत्तियो तोमरानिच,**
**एस गच्छति पञ्चालो, मा वो मुञ्चित्थ जीवितं ॥११॥**

[इस आश्रम में रहने वाले मेरे सारे सेवक कहाँ चले गये ? यह पांचाल उनकी दृष्टि से ओझल हुआ चला जा रहा है। धनुष लो, शक्ति लो, तोमर लो। यह पांचाल चला जा रहा है। इसे जीता मत छोडो ॥११॥]

इस प्रकार जब वह इधर उधर दौड़ रहा था और चिल्ला रहा था, राजा ऋषियों के आश्रम में पहुंच गया। उस समय ऋषी-गण फलमूल के लिए गये

थे। एक 'पुष्प' तोता आश्रम मे था। उसने राजा को देख आगे बढ स्वागत किया।

इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिए शास्ता ने चार गाथाये कही—

**अथापरो पटिनन्दित्थ सुवो लोहित तुण्डको**
**स्वागतं ते महाराज, अथो ते अदुरागतं,**
**इस्सरोसि अनप्पत्तो, यं इध अत्थि पवेदय ॥१२॥**
**तिण्डुकानि पियालानि मधुके कासुमारियो**
**फलानि खुद्दकप्पानि, भुञ्ज राज वरं वरं ॥१३॥**
**इदं पि पानीयं सीतं आभतं गिरिगब्भरा**
**ततो पिव महाराज सचे त्वं अभिकंखसि ॥१४॥**
**अरञ्ञे उञ्छाय गता ये अस्मिं परिचारका**
**सयं उट्ठाय गण्हस्सो, हत्था मे नत्थि दातवे ॥१५॥**

[तब लाल चोच वाले तोते ने सतुष्ट हो कर कहा—"महाराज ! आपका स्वागत है। आपका यहाँ आना ठीक हुआ। तुम 'ईश्वर' हो। यहाँ आये हो। यहाँ जो हो आज्ञा करो ॥१२॥ तिदुक और पियाल के पत्ते, मधुर कासुमारी, फल छोटे और थोडे, हे राजन् ! अच्छे अच्छे चुन कर खाये ॥१३॥ हे महाराज ! यदि इच्छा हो तो पर्वत-कन्दरा से लाया हुआ यह शीत पानी है। इसे पिये ॥१४॥ जो इस आश्रम मे रहने वाले सेवक है, वे जंगल मे फल-मूल चुगने के लिए गये है। इसलिए आप स्वय उठ कर ले ले, क्योकि मेरे हाथ नही है जिनसे मै दे सकू ॥१५॥]

राजा ने उसके स्वागत से प्रसन्न हो दो गाथाये कही—

**भद्रको वतायं पक्खी द्विजो परमधम्मिको,**
**अथ एसो इतरो पक्खी सुवो लुद्दानि भासति ॥१६॥**
**एतं हनथ बन्धथ, मा वो मुञ्चित्थ जीवितं,**
**इच्चेवं विलपन्तस्स सोत्थिं पत्तोसि अस्समं ॥१७॥**

[यह पक्षी अच्छा है। परं धार्मिक है। दूसरा पक्षी तो बडी कठोर वाणी बोलता था—इसे मारो, बाधो। जीता मत छोडो। इस प्रकार उसे बोलता देख मैं वहाँ से इस आश्रम मे सकुशल आन पहुंचा ॥१७॥]

राजा की बात सुन पुष्फक ने दो गाथायें कही—

**भातरो'स्म महाराज सोदरिया एकमातुका**
**एकरुक्खस्मिं संवद्धा नाना खेत्तगता उभो ॥१८॥**
**सत्तिगुम्बो च चोरानं अहञ्च इसिनं इध,**
**असतं सो सतं अहं तेन धम्मेन नो विना॥१९॥**

[महाराज ! हम दोनों एक माँ की कोख से पैदा हुए सहोदर भाई हैं। हम दोनों एक वृक्ष पर पले है। दोनो ने नाना क्षेत्रों में चुगा है। सत्तिगुम्ब चोरों के पास (चला गया) और मै यहाँ ऋषियों के पास। वह असत्पुरुषों के पास, मैं यहाँ सत्पुरुषो के पास। वह भी (चोरों के) धर्म बिना नही है॥१८-१९॥]

अब उस 'धर्म' की व्याख्या करते हुए दो गाथाये कही—

**तत्थ वधो च बन्धो च निकती वञ्चनानि च**
**आलोपा, सहसाकारा, तानि सो तत्थ सिक्खति ॥२०॥**
**इध सच्चं च धम्मो च अहिंसा सञ्ञमो दमो,**
**आसनूदकदायीनं अङ्के वद्धोस्मि भारत ॥२१॥**

[वह वहाँ मारना, बाधना, ठगी, वञ्चा, ग्राम-घात तथा डाका डालना सीखता है॥२०॥ हे भारत ! यहाँ मै अतिथियों को आसन तथा जल देने वालोंकी गोद में पला हू। यहाँ सत्य है, धर्म है, अहिसा है तथा संयम है॥२१॥]

अब राजा को धर्मोपदेश देते हुए ये गाथाये कही—

**यं यं हि राजा भजति सतं वा यदि वा असं**
**सीलवन्तं विसीलं वा वसं तस्सेव गच्छति ॥२२॥**
**यादिसं कुरुते मित्तं यादिसं चूपसेवति**
**सोपि तादिसको होति सहवासो हि तादिसो॥२३॥**
**सेवमानो सेवमानं सम्फुट्ठो सम्फुसं परं**
**सरो विद्धो कलापं व अलित्तं उपलिम्पति॥२४॥**
**उपलेपभया धीरो नेव पापसखा सिया,**
**पूतिमच्छं कुसग्गेन यो नरो उपनय्हति**
**कुसापि पूतो वायन्ति, एवं बालूपसेवना॥२५॥**
**तगरञ्च पलासेन यो नरो उपनय्हति**
**पत्तापि सुरभी वायन्ति, एवं धीरूपसेवना॥२६॥**

**तस्मा फलपुट्टस्सेव ञत्वा सम्पाकं अत्तनो**
**असन्ते नूपसेवेय्य सन्ते सेवेय्य पण्डितो**
**असन्ता निरयं नेन्ति सन्ता पापेन्ति सुग्गतिं ॥२७॥**

[राजा ! जैसी जो संगति करता है सत्पुरुष की अथवा असत्पुरुष की, सदाचारी की अथवा दुराचारी की—वह वैसा ही हो जाता है ॥२२॥ जैसे आदमी से मित्रता करता है, जैसे आदमी की सगति करता है, वह भी वैसा ही हो जाता है (क्योकि) उसकी सगति ही वैसी है ॥२३॥ संगति किया जाने वाला संगति करने वाले को, स्पर्श किया जाने वाला स्पर्श करने वाले को उसी प्रकार लबेड देता है जैसे विष से दग्ध तीर शेष सारे तीर-समूह को ॥२४॥ धीर पुरुष को चाहिए कि वह कलुषित हो जाने के डर से पापी की सगत न करे। जिस प्रकार यदि कोई आदमी कुशाओं के साथ सडी हुई मछली ले जाता है तो उन कुशाओ से भी दुर्गन्ध आने लग जाती है—यही हाल मूर्ख की संगति का है ॥२५॥ यदि कोई आदमी पलाश के पत्तों में तगर को ले जाता है, तो उन पत्तो से भी सुगन्धी आने लग जाती है—यही हाल धीर-पुरुष की सगति का है ॥२६॥ इस प्रकार अपने आप को उस दोने के ही समान समझ, पण्डित आदमी को चाहिये कि वह असत्पुरुषो की संगति न करे, सत्पुरुषों की ही सगति करे। असत्पुरुष नरक ले जाते है, सत्पुरुष स्वर्ग प्राप्त करा देते हैं ॥२७॥]

राजा उसके धर्मोपदेश से प्रसन्न हुआ। ऋषी-गण भी आ गये। राजा ने ऋषियों को प्रणाम कर उनसे प्रार्थना की—भन्ते ! मुझ पर कृपा कर मेरे रहने की जगह आ कर रहें। इस प्रकार ऋषियों से वचन ले राजा अपने नगर लौटा और तोतों को मुक्त कर दिया। ऋषी भी वहां गये। राजा ने ऋषियो को उद्यान में बसाया और जन्म भर उनकी सेवा करता रह कर स्वर्ग-गामी हुआ। उसके पुत्र ने भी छत्रधारी हो ऋषियों की सेवा की। उस वंश-परम्परा में सात राजाओं ने दान दिये। बोधिसत्व जंगल में रहते हुए ही कर्मानुसार परलोक सिधारे।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला 'भिक्षुओ, इस प्रकार पहले भी देवदत्त की मण्डली पाप-मण्डली ही रही' कह जातक का मेल बैठाया। उस समय सत्तिगुम्ब देवदत्त था, चोर देवदत्त-मण्डली, राजा आनन्द, ऋषी-गण बुद्ध-परिषद और पुष्फक तोता तो मै ही था।

# ५०४ भल्लाटिय जातक

"भल्लाटियो नाम अहोसि राजा....." यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय मल्लिका देवी के बारे मे कही।

## क. वर्तमान कथा

उसका एक दिन शयन के बारे मे राजा से झगडा हो गया। राजा ने गुस्से हो उसकी ओर से मुँह फेर लिया। उसने सोचा—निश्चय से शास्ता नही जानते है कि राजा मुझसे क्रुद्ध हो गया है। शास्ता को जब इसका पता लगा तो वे अगले दिन भिक्षु संघ सहित भिक्षाटन करने के अनन्तर राज-द्वार पर पहुंचे। राजा ने अगवानी कर भिक्षापात्र लिया और शास्ता को प्रासाद पर ले गया। वहाँ भिक्षुओं को क्रमशः बिठाया, दक्षिणा-जल दिया और श्रेष्ठ आहार परोसा। फिर भोजन समाप्त हो जाने पर वह एक ओर बैठा। "महाराज क्या बात है, मल्लिका नही दिखाई देती?" "अपने सुख मे भूली होने के कारण।" "महाराज! क्या पूर्व-जन्म में जब तू किन्नर की जून मे पैदा हुआ था, तब एक रात किन्नरी से पृथक रह जाने के कारण सात वर्ष तक रोता पीटता नही रहा था?" उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

## ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में भल्लाटिय नाम का राजा राज्य करता था। उसकी इच्छा हुई कि अंगार पर पका हुआ मृग-माँस खाये। उसने राज्य अमात्यों को सौपा और पाचों आयुधों से सुसज्जित हो, सुशिक्षित, अच्छी नसल के कुत्तों को साथ लिया। नगर से निकल वह हिमालय पहुंचा। वहाँ गंगा के साथ साथ चलना आरम्भ किया। जब और ऊपर न जा सका तो गंगा में गिरने वाली एक नदी देख उसी के साथ साथ चल, मृग-सूअर आदि मार, उनका अंगार-पका मास खाता हुआ ऊंची जगह पर

चढ़ा। जिस समय वह रमणीय नदी भरी रहती थी तब छाती तक पहुंचती थी अन्यथा घुटनो तक ही रहती। उसमे नाना प्रकार के मच्छ-कच्छुवे विचरते थे, पानी के सिरे पर रजत-वस्त्र जैसा बालू, और दोनों किनारों पर नाना प्रकार के फूल-फल के भार से झुके हुए वृक्ष थे जिनकी छाया मे पुष्प-फल के रस से मस्त नाना प्रकार के पक्षी तथा नाना प्रकार के मृग इकट्ठे हो कर बैठे थे। इस प्रकार रमणीय हेमवती नदी के किनारे दो किन्नर परस्पर आलिगन कर, चुम्बन कर, नाना प्रकार से विलाप कर रहे थे। राजा ने उस नदी के किनारे गन्धमादन-पर्वत पर चढते हुए उन किन्नरो को देख सोचा—यह किन्नर इस प्रकार क्यो रोते है, इन्हें पूछूगा। तब उसने कुत्तो की ओर देख चुटकी बजाई। सुशिक्षित, अच्छी नसल के कुत्ते, उस इशारे को समझ, झाडी मे घुस कर पेट के बल लेट रहे। उसने उन्हे ध्यान-मग्न देख, धनुष तथा शेष आयुधो को खडे हुए वृक्ष के सहारे रखा और बिना पाँवकी आवाज किये धीरे धीरे उनके पास पहुंच, पूछा—

"तुम किस कारण रोते हो?"

इस बात को प्रकट करने के लिए शास्ता ने तीन गाथाये कही—

**मल्लाटियो नाम अहोसि राजा**
**रज्जं पहाय मिगवं अचारि सो**
**अगमा गिरिवरं गन्धमादनं**
**सम्पुप्फितं किम्पुरिसानुचिण्णं ॥१॥**
**सालूरसङ्घञ्च निसेधयित्वा**
**धनुकलापञ्च सो निक्खिपित्वा**
**उपागमी वचनं वत्तुकामो**
**यत्थट्ठिता किम्पुरिसा अहेसुं ॥२॥**
**हिमच्चये हेमवताय तीरे**
**किं इधट्ठिता मन्तयथो अभिण्हं**
**पुच्छामि वो मानुसदेहवण्णे,**
**कथं वो जानन्ति मनुस्सलोके ॥३॥**

[मल्लाटिय नाम का राजा था। उसने राज्य छोडा और शिकार के लिए गया। वह गन्धमादन पर्वत पहुंचा, जो फल-फूल से लदा था और जहाँ किन्नर

रहते थे ॥१॥ उसने कुत्तों के दल को पीछे छोड़ा और धनुष तथा (तीर) समूह को रख जहाँ वे किन्नर थे, वहाँ उनसे बातचीत करने के लिए पहुंचा। चारों हेमन्त-मासो की समाप्ति पर, यहाँ हेमवती नदी के किनारे खड़े हो कर परस्पर क्या मन्त्रणा कर रहे हो? हे मानुषी-देहधारियो तुम्हे मनुष्य-लोक में क्या कहा जाता है? ॥३॥]

राजा की बात सुन किन्नर चुप हो गया। किन्नरी ने राजा से बातचीत की—

**मल्लङ्गिरिं पंडरकं तिकूटं**
**सीतोदिया अनुविचराम नज्जो,**
**मिगा मनुस्सा व निभास वण्णा**
**जानन्ति नो किंपुरिसा च लुद्दा ॥४॥**

[हम मल्लगिरि, पण्डरक, त्रिकूट नामक शीतोदक नदियों के तट पर घूमते हैं। हमे मृग मनुष्य-वत समझते है, किन्तु शिकारी किन्नर कहते है ॥४॥]

तब राजा ने तीन गाथाये कही—

**सुकिच्छरूपं परिदेव यव्हो**
**आलिंगतो चासि पियो पियाय,**
**पुच्छामि वो मातुसदेहवण्णे**
**किं इध वने रोदथ अप्पतीता ॥५॥**
**सुकिच्छरूपं परिदेवयव्हो**
**आलिंगतो चासि पियो पियाय**
**पुच्छामि वो मातुसदेहवण्णे**
**किं इध वने विलपथ अप्पतीता ॥६॥**
**सुकिच्छरूपं परिदेवयव्हो,**
**आलिंगितो चासि पियो पियाय,**
**पुच्छामि वो मानुसदेहवण्णे**
**किं इध वने सोचथ अप्पतीता ॥७॥**

[प्रेमी और प्रेमिका का आलिंगन हो रहा है तथा अति-दुखित हो कर रो-पीट रहे हो। हे मनुष्य-देहधारियो! मै तुमसे पूछता हूं कि तुम यहाँ जंगल में असन्तुष्ट हो कर क्यों रो रहे हो?॥५॥ प्रेमी और प्रेमिका....क्यों विलाप कर रहे हो?॥६॥ प्रेमी और प्रेमिका.....क्यों सोच कर रहे हो?॥७॥]

इसके आगे की गाथायें दोनों का परस्पर वार्तालाप है—

**मयेकरित्ति (वि) प्पवसिम्ह लुद्द**
**अकामका अञ्ञमञ्ञं सरन्ता**
**तं एकरित्ति अनुतप्पमाना**
**सोचाम, सा रत्ति पुनं न हेस्सति ॥८॥**

[हे शिकारी ! हम एक रात अनिच्छापूर्वक एक दूसरे को याद करते हुए पृथक रहे। उस एक रात के अनुताप को याद करते हुए सोचते है कि वह एक रात फिर न आये ॥८॥]

**यमेकरित्ति अनुतप्पथेतं**
**धनं व नट्ठं पितरं व पेतं**
**पुच्छामि वो मानुसदेहवण्णे**
**कयं विनावासं अकप्पयित्थ ॥९॥**

[हे मनुष्यदेहधारियो ! मैं तुमसे पूछता हू कि यह जो तुम अकेले चिन्ता कर रहे हो तो क्या तुम्हारा धन नष्ट हो गया अथवा माता पिता मर गये ? ॥९॥]

**यं इमं नदिं पस्ससि सीघसोतं**
**नाना दुमच्छदनं सेलकूटं**
**तं मे पियो उत्तरि वस्सकाले**
**ममं च मञ्ञं अनुबन्धति ॥१०॥**

[यह जो नाना प्रकार के वृक्षो से ढकी. दो पर्वत-शिखरों के बीच, शीर्घगामी नदी देखते हो, मेरा प्रिय (स्वामी) यह समझ कि मेरे पीछे पीछे आती होगी वर्षाकाल मे बाढ आने पर (इससे) पार हो गया ॥१०॥]

**अहञ्च अंकोलकं ओचिनामि**
**अतिमुत्तकं सत्तलियोथिकञ्च,**
**पियो च मे होहिति [मालभारी**
**अहञ्च नं मालिनी अज्झुपेस्सं ॥११॥**
**अहञ्च इदं कुरवकं ओचिनामि**
**उद्दालका पाटलि सिन्दुवारित**

**पियो च मे होहिति मालभारी**
**अहञ्च नं मालिनी अज्झुपेस्सं ॥१२॥**
**अहञ्च सालिस्स सुपुप्फितस्स**
**ओचेय्य पुप्फानि करोमि मालं**
**पियो च मे होहिति मालभारी**
**अहञ्च नं मालिनी अज्झुपेस्सं ॥१३॥**
**अहञ्च सालस्स सुपुप्फितस्स**
**ओचेय्य पुप्फानि करोमि भारं**
**इदं च नो होहिति सन्थरत्थं**
**यत्थ अज्ज मं विहरिस्सामु रत्तिं ॥१४॥**

[मैं (इसी तीर पर) अकोलक, अतिमुक्तक, सत्तालिय तथा ओथिक फूल चुनती रही, यही सोचकर कि मेरा स्वामी मालाधारी होगा और मैं उसकी मालिनी बन कर उसे प्राप्त होऊँगी ॥११॥ और मैं यह कुरबक, उद्दालक तथा पाटलि सिन्दुवारित चुनती रही, यही सोच कर कि मेरा स्वामी मालाधारी होगा और मैं उसकी मालिनी हो कर उसे प्राप्त होऊगी ॥१२॥ मैं सुपुष्पित शाली के फूल चुन कर माला बनाती रही, यही सोच कर कि मेरा स्वामी मालाधारी होगा औरमैं उसकी मालिनी होकर उसे प्राप्त होऊगी ॥१३॥ मैंने शाल के सुपुष्पित फूल चुन कर ढेर लगाये कि ये हमारा बिछौने होंगे जिस पर आज रात को हम विहार करेंगे ॥१४॥]

**अहञ्च खो अकलुं चन्दनञ्च**
**सिलाय पिंसामि पमत्तरूपा**
**पियो च मे होहिति रोसितांगो**
**अहञ्च नं रोसिता अज्झुपेस्सं ॥१५॥**

[मैं प्रमादवश श्वेत-चन्दन तथा लाल-चन्दन शिला पर पीसती रही कि मेरा स्वामी अंग-लेप करेगा और मैं अंगलिप्त हो कर उसे प्राप्त होऊंगी ॥१५॥]

**अथागमा सलिलं सीघसोतं**
**नुदं साले सलले कण्णिकारे,**
**अपूरथ तेन मुहुत्तकेन**
**सायं नदी आसि मया सुदुत्तरा ॥१६॥**

[तब तेज बहने वाली धार आई और मेरे शाल, सलल तथा कर्णिका के फूल बहा कर ले गई। उसी समय नदी भर गई और मैं उसे पार नही कर सकी ॥१६॥]

**उभोसु तीरेसु मयं तदा ठिता**
**सम्पस्सन्ता उभयो अञ्ञमञ्ञं,**
**सकिं पि रोदाम सकिं हसाम**
**किच्छेन नो अगमा संवरी सा ॥१७॥**

[उस समय हम दोनो एक दूसरे को देखते हुए दोनो किनारो पर खडे थे। एक बार रोते थे, एक बार हँसते थे। हमारी वह रात कठिनाई से बीती ॥१७॥]

**पातो च खो उग्गते सूरियम्हि**
**चतुक्कं नदिं उत्तरियान लुद्द**
**आलिंगिया अञ्जमञ्ञं उभो**
**सकिं पि रोदाम सकिं हसाम ॥१८॥**

[प्रात.काल सूर्य्य के उदय होने पर जब नदी उतर कर खाली हो गई तब हम दोनों एक दूसरे का आलिंगन कर एक बार रोते थे और एक बार हँसते थे ॥१८॥]

**तोह ऊनकं सत्त सतानि लुद्द**
**यं इध मयं विप्पवसिम्ह पुब्बे**
**वासेक इमं जीवितं भूमिपाल**
**को नोध कन्ताय बिना वसेय्य ॥१९॥**

[हम जब पृथक हुए थे, उसे हे शिकारी ! तीन कम सात सौ वर्ष हुए। हे भूमिपाल ! यहाँ एक वास ( = एक दिन रहना) जीवन भर लगता है। बिना प्यारे के यहाँ कौन रहे ? ॥१९॥]

**आयुञ्च वो कीवतको नु सम्म,**
**सचे पि जानाथ वदेथ आयुं,**
**अनुस्सवा वद्धतो आगमा वा**
**अक्खाथ मे तं अविकम्पमाना ॥२०॥**

[मित्र यदि परम्परा से या बडे बूढ़ों से सुन कर जानते हो तो बिना घबराये अपनी आयु कहो—तुम्हारी आयु कितनी है ? ॥२०॥]

**आयुञ्च नो वस्स सहस्स लुद्द**
**न चन्तरा पापको अत्थि रोगो,**
**अप्पं च दुक्खं सुखं एव भिय्यो**
**अवीतरागा विजहाम जीवितं ॥२१॥**

[ हे शिकारी ! हमारी आयु सहस्र वर्ष की है और बीच मे कोई पापी-रोग भी नही है। दुःख थोडा है, सुख ही अधिक है। हम मृत्यु पर्य्यन्त प्रेमी रहेंगे ॥२१॥]

यह सुन राजा ने सोचा—"ये पशु योनी मे उत्पन्न होकर भी एक रात के वियोग-परिणामस्वरूप सात सौ वर्ष तक रोते घूमते रहे, किन्तु मै तीन सौयोजन का राजा होकर भी राज्य की महान सम्पत्ति छोडकर जगल में भटक रहा हूँ। ओह ! मेरा जीवन निष्फल है।" वह रुका और वाराणसी पहुंचा। जब अमात्यो ने पूछा कि महाराज आपने हिमालय मे क्या आश्चर्य देखा तो उसने सब हाल कह सुनाया और उसके बाद दानादि देता हुआ, भोग भोगने लगा।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुअे शास्ता ने यह गाथा कही—

**इदञ्च सुत्वान अमानुसानं**
**भल्लाटियो इत्तरं जीवितंति**
**निवत्तथ न मिगवं अचारि**
**अवासि दानानि अभुञ्जि भोगे ॥२२॥**

[अर्थ ऊपर आ गया है। ]

इसके आगे कहते हुए दो और गाथाये कही—

**इदञ्च सुत्वान अमानुसानं**
**सम्मोदथ मा कलहं अकत्थ**
**मा वो तपी अत्तकम्मापराधो**
**यथापि ते किमपुरिसेकरंति॥२३॥**
**इदञ्च सुत्वान अमानुसानं**
**सम्मोदथ मा विवादं अकत्थ**
**मा वो तपी अत्तकम्मापराधो**
**यथापि ते किम्पुरिसेकरंति ॥२४॥**

[यह अमनुष्यो की बात सुनकर प्रसन्न होवो, कलह मत करो। आत्मकर्म–दोष से अनुतप्त मत हो। जिस प्रकार वे किन्नर अपने एक रात के दोष के कारण ॥२३॥

यह मनुष्यों की बात..... .....विवाद..... दोष के कारण ॥२४॥]

मल्लिका देवी ने तथागत की धर्मदेशना सुनी तो आसन से उठकर अञ्जली जोड तथागत की स्तुनि करते हुए अन्तिम गाथा कही—

**विविधं अधिमना सुणोमहं**
**वचनपथं तवमत्थसंहितं**
**मुञ्च गिरं नुदसेव मे दरं**
**समण सुखावह जीव मे चिरं ॥२५॥**

[मैं आपके नाना प्रकार के अर्थ-कर प्रवचनो को प्रसन्न चित्त से सुनती हू। आप उपदेश दें, उससे मेरी पीडा दूर होगी ही । हे मेरे सुखदायक श्रमण ! आप चिरकाल तक जीवित रहे ॥२५॥]

इसके बाद से कोशल-राज उसके साथ मेल मिलाप पूर्वक रहने लगा।

शास्ता ने यह धर्म–देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय किन्नर कोशल राजा था, किन्नरी मल्लिका देवी थी, भल्लाटिय राजा तो मै ही था।

# ५०५. सोमनस्स जातक

"को तं हिसति हेठेति....." यह शास्ता ने जेतवन मे बिहार करते समय देवदत्त के बध करने के प्रयत्न के बारे मे कही।

## क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता ने —"भिक्षुओ ! न केवल अभी किन्तु पहले भी इसने मेरे बध के लिये प्रयत्न किया है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

## ख. अतीत कथा

पूर्व समय में कुरु देश मे उत्तर-पचाल नगर मे रेणु नाम का राजा राज्य करता था। उस समय महा-रक्षित नामक तपस्वी पांच सौ तपस्वियों को साथ ले हिमालय में रहता था। वह निमक-खटाई खाने के लिये विचरता–विचरता उत्तर पंचाल नगर में आन पहुँचा। वहा राजा के उद्यान मे रहते हुअे अनुयायियों सहित भिक्षाटन के लिये निकल, राज–द्वार पर पहुचा। राजा ने ऋषियों की मंडली को देखा तो उनकी चर्या से प्रसन्न हो उन्हें ले जाकर अलंकृत ऊँचे तल्ले पर बिठाया। फिर बढिया भोजन परोस प्रार्थना की कि भन्ते इस वर्षा-ऋतु मे मेरे ही उद्यान में रहे। वह उनके साथ उद्यान गया और निवास-स्थान तैयार करवा, प्रव्रजितो की उपयोगी वस्तुएं दे, प्रणाम करके चला आया। तब से वे सभी राज-भवन मे ही भोजन करते थे।

राजा को कोई सन्तान नथी। वह पुत्र की कामना करता था। पुत्र न होता था। वर्षा-ऋतु की समाप्ति पर महारक्षित ने "अब हिमालय रमणीय हो गया हे, वही जागेगे" कह राजा से विदा मागी। राजा ने सन्मान पूर्वक विदा किया। महा-रक्षित रास्ते मे मध्याह्न होने पर रास्ते से हटकर एक घनी छाया वाले वृक्ष के नीचे नई घास पर, अपने अनुयाअियों सहित बैठे। तपस्वीयो ने बात-चीत चलाई—राजगृह के वंश की रक्षा करने वाला पुत्र नही है, अच्छा हो यदि राजा को पुत्र हो जाय तो उसकी परम्परा चले। महा-रक्षित ने भी उनकी बात चीत सुन ध्यान लगा कर सोचा कि राजा को पुत्र होगा अथवा नही? यह मालूम होने पर कि "होगा" उसने कहा—"आप लोग चिन्ता न करें। आज तड़के एक देव-पुत्र (देवलोक से) च्युत होकर राजा की पटरानी की कोख में प्रवेश करेगा।" यह सुनकर कुटिल जटाधारी तपस्वी ने सोचा अब मै राजपरिवार का विश्वासी बनूगा। जब तपस्वी चलने लगे, वह रोग का बहाना बनाकर पडा रहा। उसे कहा गया 'आओ चले'। वह बोला—"असमर्थ हूँ"। महा-रक्षित ने उसके लेटे रहने का कारण जान कहा—"जब आ सके तब आना।" वह ऋषी–गण को लेकर.....हिमालय ही चले गये।

वह ढोंगी भी रुका और जल्दी से राज–द्वार पर पहुंच राजा को कहलाया कि महारक्षित का सेवक तपस्वी आया है। राजा ने उसे जल्दी से प्रासाद के

ऊपर बुलवाया । वहां वह बिछे आसन पर बैठा । राजाने उस ढोंगी को प्रणाम कर एक ओर बैठ, ऋषियो का कुशल-क्षेम पूछ कर कहा—"भन्ते ! बड़ी जल्दी वापिस लौटे। किस कारण से जल्दी आये ?"

"हां महाराज ! ऋषियों ने सुख पूर्वक बैठे हुये बातचीत चलाई कि अच्छा हो यदि इस राजा की वंश-परम्परा की रक्षा करने वाला कोई पुत्र पैदा हो। यह बात-चीत सुन मैने—"क्या राजा को पुत्र होगा ?" विचार करते हुए दिव्य-चक्षुसे देखा कि महा-प्रतापी देव-पुत्र (देवलोक से) च्युत होकर सुधर्मा पटरानी की कोख में प्रवेश करेगा। कही अनजान में गर्भ नष्ट न कर दें इसलिये तुम्हें सूचना देने के लिये आया। अब मैने सूचना दे दी है। महाराज ! मै जाता हूँ।" राजा ने "भन्ते ! नही जा सकते" कहा और प्रसन्न-चित्त हो ढोंगी तपस्वी को उद्यान ले जा, निवासस्थान की व्यवस्था की। तब से वह राजकुल में ही भोजन करने लगा। उसका नाम भी हो गया 'दिव्यचक्षु'।

उस समय बोधीसत्व ने त्रयोत्रिश-भवन से च्युत होकर वहीं जन्म ग्रहण किया। पैदा होने पर नाम-करण के दिन नाम रक्खा गया 'सोमनस्स-कुमार'। उसका राजकुमार की तरह ही पालन पोषण होने लगा। ढोंगी तपस्वी ने उद्यान में ही एक ओर सब्जी-तरकारी लगा कर, व्यापारियों के हाथ बेच धन इकट्ठा किया। जब बोधी-सत्व सात वर्ष का हुआ तब राजा के इलाके में विद्रोह हो गया। राजाने कुमार को दिव्यचक्षु तपस्वी की ओर से उदासीन न रहने के लिये कहा, ओर स्वयं प्रत्यन्त-देश को शान्त करने के लिये गया।

एक दिन राजकुमार जटिल तपस्वी को देखने के लिये उद्यान गया। उसने देखा कि वह एक कपडे की गांठ लगाकर उसे पहने है और दूसरे को ओढे है, तथा दोनों हाथों मे पानी के घडे लेकर शाक-तरकारी में सींच रहा है। उसने यह जान कि यह दुष्ट तपस्वी अपने श्रमण-धर्म का पालन न कर माली का काम कर रहा है, उसे "हे गृहस्थ ! माली क्या कर रहा है ?" कह लज्जित किया और बिना प्रणाम किये चला गया। दुष्ट तपस्वी ने सोचा—"यह अभी इतना विरोधी है, कौन जाने (आगे) क्या करेगा ? इसे अभी मरवा डालना उचित है।" राजा के आगमन के समय वह पत्थर की शिला को एक ओर फेंक, पानी के घड़ों को फोड़, पर्णकुटी में घास को इधर उधर बिखेर, शरीर पर तेल पोत, पर्णशाला में जाकर सिर-मुह ढक कर, चारपाई पर ऐसे लेट रहा मानों अत्यन्त

पीडा-ग्रस्त हों। राजा लौटा तो नगर की प्रदक्षिणा करने के बाद बिना राज-भवन गये ही अपने स्वामी दिव्य-चक्षुधारी को देखने के लिए पर्ण-कुटी के द्वार पर पहुँचा। वहाँ ऐसी अस्त-व्यस्तता देख 'यह क्या बात है?' सोचते हुए उसने अन्दर जा, उसे लेटा देख, उसके पाँव दबाते हुए पहली गाथा कही—

**को तं हिंसति हेठेति**
**किं नु दुम्मनो सोचसि**
**कस्स अज्ज मातापितरो रुदन्तु**
**क्वज्ज सेतु निहतो पठव्या॥१॥**

[कौन (तुझे) कष्ट देता है? कौन गाली देता है? क्या कारण है कि तू अप्रसन्न हो चिन्ता कर रहा है? आज किसके माता पिता को रोना होगा? आज कौन मारा जाकर पृथ्वी पर सोयेगा? ॥१॥]

यह सुन दुष्ट तपस्वी ने बड़बड़ाते हुए उठकर दूसरी गाथा कही—

**तुट्ठोस्मि देव तव दस्सनेन,**
**चिरस्सं पस्सामि तं भूमिपाल,**
**अहिंसको रेनुमनुप्पविस्स**
**पुत्तेन ते हेठयितोस्मि देव॥२॥**

[हे देव! मैं आपको देख कर प्रसन्न हुआ। हे भूमिपाल, चिरकाल के बाद दिखाई दिये, हे रेणु! तेरे पुत्र ने ही मुझे निर्दोष पीटा है॥ २॥]

इसके आगे की गाथाओं का क्रम स्पष्ट है—

**आयंतु दोवारिका खग्गबद्धा**
**कासाविया यंतु अंतेपुरं तं,**
**हन्त्वान तं सोमनस्सं कुमारं**
**छेत्वान सीसं वरं आहरन्तु॥३॥**

[खड्गधारी द्वारपाल आवें और जो चोर-घातक है वे अन्तःपुर मे जाकर उस सोमनस्स कुमार को मारकर उसका सिर काट लायें॥३॥]

**पेसिता राजिनो दूता कुमारं एतद्ब्रुवं**
**इस्सरेन वितिण्णोसि, वधप्पत्तो सि खत्तिय॥४॥**

[राजा द्वारा भेजे गये दूतों ने कुमार को इस प्रकार कहा—हे राजकुमार! तेरा राजा ने त्याग कर दिया है, तू मार दिया जायगा ॥४॥]

**स राजपुत्तो परिदेवयन्तो**
**दस अंगुलि अञ्जलिं पग्गहेत्वा**
**अहंपि इच्छामि जनिन्द दट्ठुं,**
**जीवं पनेत्वा पटिदस्सयेथ ॥५॥**

[उस राजकुमार ने रो पीट कर दोनों हाथ जोड़ कर प्रार्थना की—मैं राजा को देखना चाहता हूँ। मुझे जीते जी ले जाकर दिखाओ ॥५॥]

**तस्स तं वचनं सुत्वा रञ्ञो पुत्तं अदस्सयुं,**
**पुत्तो च पितरं दिस्वा दूरतोव अञ्जभासथः॥६॥**
**आगच्छु दोवारिका खग्गबद्धा**
**कासाविया हन्तु ममं जनिंद,**
**अक्खाहि मे पुच्छितो एतमत्थं**
**अपराधो कोनीध ममज्ज अत्थि ॥७॥**

[उसकी यह बात सुन कर वे राजकुमार को राजा के पास ले गये। राजकुमार ने पिता को देखा तो दूर से ही बोला—खड्गधारी द्वारपाल आवे और हे राजन! चोर-घातक मुझे मार डाले। लेकिन मेरे पूछने पर आप मुझे यह तो बताये कि आज यहाँ मैंने क्या अपराध किया है? ॥६-७॥]

राजा ने "भवाग्र बहुत नीचा है, तेरा दोष उससे भी महान है" कह उसका अपराध बताते हुए यह गाथा कही—

**सायं च पातो उदकं सजाति**
**अग्गिं सदा परिचरणप्पमत्तो,**
**तं तादिसं संयतं ब्रह्मचारिं**
**कस्मा तुवं ब्रूसि गहपति ॥८॥**

[यह सायं प्रातः जलारोहण करता है और नित्य अप्रमादि हो अग्निपूजा करता है। तू इस तरह के संयमी ब्रह्मचारी को 'गृहस्थ' क्यों कहता है? ॥८॥]

तब राजकुमार ने "देव! मैंने गृहस्थ को ही गृहस्थ कहा है, इसमें मेरा क्या अपराध है" कह यह गाथा कही—

**ताला च मूला च फला च देव**
**परिग्गहा विविधा सन्तिमस्स,**
**ते रक्खति गोपयत अप्पमत्तो**
**ब्राह्मणो गहपति तेन होति॥९॥**

[हे देव! इसके पास ताड हैं, जड़ें हैं और फल हैं—इस प्रकार यह नाना परिग्रह वाला है। यह उनकी संभाल रखता है, उन्हें छिपा कर रखता है। इसी तरह ही ब्राह्मण 'गृहस्थ' होता है॥९॥]

"मैंने भी इसे 'गृहस्थ' कहा, यदि विश्वास न हो तो चारों दरवाजों पर के मालियों से पुछवा लें।" राजा ने पुछवाया। वे बोले—"हां, हम इसके हाथ से पत्ते और फल-मूल खरीदते है।" उन्होंने बिक्री की सामग्री भी मंगा कर राजा के सामने रख दी। लोग उसकी पर्णशाला में भी घुस गये और साग-सब्जी की बिक्री से जो कार्षापण तथा मासक कमाये थे, उनकी ढेरी निकाल कर राजा को दिखायी। राजा ने बोधिसत्व की निर्दोषता जान कर यह गाथा कही—

**सच्चं खो एतं वदसि कुमार**
**परिग्गहा विविधा सन्तिमस्स,**
**ते रक्खति गोपयतप्पमत्तो**
**ब्राह्मणो गहपति तेन होति॥१०॥**

[कुमार! तू यह सत्य कहता है। इसने बहुत संग्रह किया है और उसे अप्रमादी हो कर छिपाता है, रक्षा करता है। इसी से ब्राह्मण 'गृहस्थ' होता है॥१०॥]

तब बोधिसत्व ने सोचा—"इस प्रकार के मूर्ख राजा के पास रहने से हिमालय मे जा कर प्रव्रजित होना अच्छा है। लोगों की उपस्थिति में ही इसका दोष प्रकट कर, आज्ञा ले, आज ही निकल कर प्रव्रजित होऊंगा।" उसने लोगों को नमस्कार कर निवेदन किया—

**सुणन्तु मय्हं परिसा समागता**
**सनेगमा जानपदा च सब्बे**
**बालायं बालस्स वचो निसम्म**
**अहेतुना घातयते जनिन्द॥११॥**

[निगम तथा जनपद के सभी समागत लोग मेरी बात सुनें—यह मूर्ख राजा मूर्ख की बात सुन कर अकारण ही (मेरी) हत्या करवाता है।।]

यह कह अनुज्ञा मांगते हुए यह गाथा कही—

**वळहस्मि मूले विसते विरूळहे**
**दुन्निक्खयो वेळु पसाखजातो**
**वन्दामि पादानि तवं जनिन्द**
**अनुजान मं पब्बजिस्सामि देव ॥१२॥**

[(मैं) दृढ, विशाल, खोदे न जा सकने वाले बांस में एक शाखा पैदा हुआ हूं। हे राजन्! मैं तेरे चरणों में प्रणाम करता हूं, मुझे प्रव्रजित होनेकी आज्ञा दे दें।।१२।।]

आगे की गाथायें राजा और पुत्र का प्रश्नोत्तर है—

**भुञ्जस्सु भोगे विपुले कुमार**
**सब्बं च ते इस्सरियं ददामि,**
**अज्जेव त्वं कुरुनं होहि राजा,**
**मा पब्बजि पब्बज्जा हि दुक्खा ॥१३॥**

[हे कुमार! तू विपुल भोगों को भोग। मै तुझे सब ऐश्वर्य देता हूँ। आज ही तू कुरु (जनपद)का राजा हो जा। प्रव्रजित मत हो, प्रव्रजित होना दुखकर है।।१३।।]

**किं नूध देव तवं अत्थि भोगा**
**पुब्बेवहं देवलोके रमिस्सं**
**रुपेहि सद्देहि अथो रसेहि**
**गन्धेहि फस्सेहि मनोरमेहि॥१४॥**

[हे देव! यहां तेरे पास कौन से भोग है? मै पहले ही देव-लोक में दिव्य रूप, शब्द, रस, गन्ध तथा स्पर्श का आनन्द ले चुका हूं।।१४।।]

**भुत्ता मे भोगा तिदिवस्मि देव**
**परिवारिता अच्छरासं गणेन,**
**तवं च बालं परनेय्यं विदित्वा**
**न तादिसे राजकुळे वसेय्यं ॥१५॥**

[हे देव! मैने देव-लोक में (बहुत) भोग भोगे है। मै अप्सराओं से घिरा रहा हूं। अब तुझे मूर्ख तथा दूसरों द्वारा (अन्धे की तरह) जिधर कोई चाहे उधर

ले जाया जा सकने वाला जान लिया है। इस लिए मैं अब ऐसे राजकुल में नहीं रहूंगा ॥१५॥]

**सचाहं बालो परनेय्योहंस्मि**
**एकापराधं खम पुत्त मय्हं,**
**पुन पि चे एदिसकं भवेय्य**
**यथामतिं सोमनस्सं करोहि ॥१६॥**

[हे पुत्र ! यदि मै दूसरों का अन्धानुकरण करने वाला हूं तो तू मेरे एक अपराध को क्षमा कर। यदि फिर मुझसे ऐसी गलती हो, तो हे सोमनस्स ! जो तेरे मन में आये सो करना ॥१६॥]

बोधिसत्व ने राजा को उपदेश देते हुए आठ गाथायें कहीं—

**अनिसम्म कतं कम्मं अनवत्थाय चिन्तितं**
**भेसज्जस्सेव वेभंगो, विपाको होति पापको ॥१७॥**
**निसम्म च कतं कम्मं सम्मावत्थाय चिन्तितं**
**भेसज्जस्सेव सम्पत्ति विपाको होति भद्रको ॥१८॥**
**अलसो गिही कामभोगी न साधु**
**असञ्ञतो पब्बजितो न साधु**
**राजा न साधु अनिसम्मकारी**
**यो पण्डितो कोधनो तं न साधु ॥१९॥**
**निसम्म खत्तियो कयिरा नानिसम्म दिसम्पति,**
**निसम्मकारिनो राजा यसो कित्ति च वड्ठति ॥२०॥**
**निसम्म दण्डं पणयेय्य इस्सरो,**
**वेगा कतं तपते भूमिपाल,**
**सम्मापणिधि च नरस्स अत्था**
**अनानुतप्पा ते भवन्ति पच्छा ॥२१॥**
**अनानुतप्पानि हि ये करोन्ति**
**विभज्ज कम्मायतनानि लोके**
**विञ्ञूपसत्थानि सुखुद्रयानि**
**भवन्ति वद्धानुमतानि तानि ॥२२॥**

**आगच्छु दोवारिका खग्गबद्धा**
**कासाविया हन्तु ममं जनिन्द**
**मातुच्च अंकस्मि अहं निसिन्नो**
**आकड्ढितो साहसा तेहि देव ॥२३॥**
**कटुकं हि सम्बाधं सुकिच्छ पत्तो,**
**मधुरं पियं जीवितं लद्ध राज**
**किच्छेन अहं अज्ज वधा पमुत्तो**
**पब्बज्जं एवाभिमनोहं अस्मि ॥२४॥**

[बिना विचारे किया गया काम और अस्थिर-चिन्तित ऐसे ही दुष्परिणामकारी होता है जैसे अनुचित औषधी ॥१७॥ विचार कर किया गया काम और स्थिर चिन्तन ऐसे ही अच्छा फल देता है जैसे उचित औषधी ॥१८॥ आलसी तथा काम-भोगी गृहस्थ अच्छा नही, असंयमी प्रव्रजित अच्छा नहीं, बिना विचारे काम करने वाला राजा अच्छा नही, और जो पण्डित क्रोध करता है वह पण्डित अच्छा नही ॥१९॥ क्षत्रिय( = राजा) को चाहिये कि विचार कर करे। दिशाओं के पति ( = राजा) को चाहिए कि बिना विचारे न करे। विचार कर काम करने वाले राजा का यश और कीर्ति बढती है ॥२०॥ राजा को चाहिए कि सोच विचार कर किसी को दण्ड दे, हे भूमिपाल ! जो जल्दबाजी करता है उसे पीछे अनुताप होता है। सम्यक् प्रकार सोच विचार कर काम करना आदमी के लिए कल्याण कारी है। उसे पीछे अनुताप नही होता ॥२१॥ जो सोच विचार कर ऐसे काम करते है जिनके लिए उन्हें पछताना नही पडता उनके वे काम विज्ञ पुरुषों द्वारा प्रशंसित होते है, सुख-दायक होते है और वृद्धों द्वारा अनुमोदित होते हैं॥२२॥ हे देव ! तुम्हारी यह आज्ञा पाकर कि काषाय–वस्त्र धारी द्वारपाल खड्ग लेकर आयें और मुझे मारें, उन्होंने मुझे माता की गोद में से जबर्दस्ती खीचं लिया ॥२३॥ हे राजन् ! मै मृत्यु भय को प्राप्त हो गया था। मुझे मधुर प्रिय जीवन प्राप्त हुआ है। मै बड़ी कठिनाई से आज बध होने से बचा हूं। अब मैं प्रव्रज्या ही चाहता हूं ॥२४॥]

इस प्रकार बोधिसत्व के धर्मोपदेश देने पर राजा ने देवी को बुलाकर यह गाथा कही—

**पुत्तो वतायं तरुणो सुधम्मे**
**अनुकम्पको सोमनस्सो कुमारो**
**तं याचमानो न लभामि सज्ज,**
**अरहासि नं याचितवे तुवं पि ॥२५॥**

[हे सुधर्मे! मेरा यह सोमनस्स पुत्र कुमार है, तरुण है, करुणा-युक्त है। मैं आज इस से प्रार्थना करके इसे प्राप्त नही कर सकता हू। तेरे लिये भी यह उचित है कि तू इससे प्रार्थना करे ॥२५॥]

उसने प्रव्रज्या की प्रेरणा करते हुए गाथा कही—

**रमस्सु भिक्खाचर्य्याय पुत्त**
**निसम्म धम्मेसु परिब्बजस्सु**
**सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डं**
**अनिन्दितो ब्रह्मं उपेति ठानं ॥२६॥**

[हे पुत्र! तू भिक्षाटन करता हुआ रमण कर और धर्मो मे भली प्रकार सोच विचार कर प्रव्रजित हो। आदमी सभी प्राणियों के प्रति दण्ड-त्यागी होने से, अनिन्दित हो, ब्रह्म-पद को प्राप्त करता है ॥२६॥]

तब राजा ने गाथा कही—

**अच्छरिय रूपं वत यादिसं च**
**दुक्खितं मं दुक्खापयसे सुधम्मे**
**याचस्सु पुत्तं इति वुच्चमाना**
**भिय्यो व उस्साहयसे कुमारं ॥२७॥**

[हे सुधर्मे! यह आश्चर्य्य की बात है कि मुझ दुखी को और दुखी कर रही है! मैंने तुझे पुत्र से प्रव्रज्या से विरत रहने की प्रार्थना करने के लिये कहा और तू कुमार को और भी उत्साहित कर रही है ॥२७॥]

देवी ने फिर गाथा कही—

**ये विप्पमुत्ता अनवज्जभोजिनो**
**परिनिब्बुता लोकं इमं चरन्ति**
**तं अरियमग्गं पटिपज्जमानं**
**न उस्सहे वारयितुं कुमारं ॥२८॥**

[जो मुक्त है, जो निर्दोष भोजन करने वाले हैं, जो निर्वाण–प्राप्त अर्थात जीवन–मुक्त हो इस लोक में विचरते है, मेरी उनके आर्य-मार्ग पर चलने वाले कुमार को रोकने की इच्छा नही होती ॥२८॥]

उसकी बात सुन राजा ने अंतिम गाथा कही––

**अद्धा हवे सेवितब्बा सपञ्ञा**
**बहुस्सुता ये बहुठानचिन्तिनो**
**येसायं सुत्वान सुभासितानि**
**अप्पोसुक्का वीतसोका सुधम्मा ॥२९॥**

[हे सुधर्मे ! निश्चय से उन प्रज्ञावान, बहुश्रुत, बहुत बाते विचार करने वालों की संगति करनी चाहिये जिनके सुभाषित सुनकर ही यह कुमार अल्प-उत्सुक्ता वाला तथा शोकरहित हो गया ॥२९॥]

बोधिसत्व ने माता-पिता को प्रणाम कर 'यदि मेरा (कोई) अपराध हो तो क्षमा करे' कहा। फिर जनता को हाथ जोड कर हिमालयाभिमुख हुआ। जब लोग लौट गये तो मनुष्यरूप धारी देवता आये और उसे सात पर्वत-श्रेणियो के उस पार हिमालय ले गये। वहाँ उसने विश्वकर्मा द्वारा बनवाई पर्णशाला मे ऋषि-प्रव्रज्या ग्रहण की। वहाँ सोलह वर्षीय राजकुल-परिचारिकाओ का रूप धारण कर देव-मण्डली ही उसकी सेवा में रत रही। उस दृष्ट तपस्वी को जनता ने पीट कर मार डाला। बोधिसत्व ध्यान प्राप्त हो ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला 'भिक्षुओ, इस प्रकार इसने पूर्वजन्म मे भी मेरे बध के लिये प्रयत्न किया ही है' कह जातक का मेल बैठाया। उस समय का ढोंगी (तपस्वी) देवदत्त था, माता महामाया थी, रक्षित सारिपुत्र था और सोमनस्स-कुमार तो मै ही था।

# ५०६ चम्पेय्य जातक

"का नु विज्जुरिवाभासि....."यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय उपोसथकर्म के बारे में कही।

## क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता ने 'उपासको! उपोसथ-वास करके अच्छा किया, पुराने पण्डितों ने नाग-सम्पत्ति छोड कर भी उपोसथ-वास किया' कह उन के प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

## ख. अतीत कथा

पूर्व समय में जब अंग (राष्ट्र) में अग-राज राज्य करते थे और मगध (राष्ट्र) में मगध-राज राज्य करते थे, अंग तथा मगध राष्ट्रों के बीच चम्पा नामक नदी थी। वहाँ एक नाग-भवन था, जिस में चम्पेय्य नामक नागराजा राज्य करता था। कभी मगध राज अंगराज्य को जीत लेता, कभी अंग राजा मगध-राज्य को।

एक दिन जब मगधराज का अंगराज के साथ युद्ध हुआ और वह युद्ध में हार गया तो उसने घोड़े पर चढ़कर भागते समय, अंगराज के योद्धाओं के द्वारा पीछा किये जाने के कारण पूर्ण-चम्पा नदी को देखकर सोचा—"शत्रु के हाथ में पडकर मरने से नदी में डूबकर मरना अच्छा है।" वह घोडे सहित नदी में उतर पडा। उस समय चम्पेय्य नागराज पानी के अन्दर रत्न-मण्डप बनवा बड़ी भारी मण्डली के बीच में बैठा खूब पी रहा था। घोड़ा राजा के सहित पानी में डूब कर नागराजा के सामने निकला। नागराजा ने सजे सजाये राजा को देखा तो उसने स्नेह पूर्वक आसन से उठ 'राजन्! डरें नही' कह उसे अपने आसन पर

विठाया और पानी में डूबने का कारण पूछा। राजा ने यथार्थ बात कह सुनाई। तब नागराज ने उसे आश्वासन दिया—"राजा, डर मत। मैं तुझे दोनों राष्ट्रो का स्वामी बनाऊंगा।" फिर एक सप्ताह तक उस बडे ऐश्वर्य्य का अनुभव कर, सातवें दिन मगध-राज को साथ ले, वह नागभवन से निकला। नागराज के प्रताप से मगध राज ने अङ्गराज को पकड़ कर मार डाला और दोनों राष्ट्रों पर राज्य करने लगा। उस समय से (मगध) राज और नागराज की मैत्री दृढ़ हो गई। राजा प्रतिवर्ष चम्पानदी के किनारे रतनमण्डप बनवाकर, बहुत खर्चा कर, नागराज को बलि देता। वह अनेक अनुयाइयों के साथ नागभवन से निकलकर बलि स्वीकार करता। जनता नागराजा के ऐश्वर्य्य को देखती।

तब बोधिसत्व ने दरिद्र-कुल मे जन्म लेकर, राज्यपरिषद के साथ नदी तट पर जा, नागराज के ऐश्वर्य्य को देख, लोभग्रस्त हो, उसकी कामना की। वह दान दे, शील की रक्षाकर, चम्पेय्य नागराजा के मरने के सातवें दिन, (अपनी जून मे) च्युत होकर उसके रहने के प्रासाद मे शैय्या-स्थान पर पैदा हुआ। उसका शरीर फूलों की माला की तरह फूला हुआ था। इसे देख उसे पश्चाताप हुआ और वह मरने की इच्छा करने लगा—"मेरे द्वारा किये गये कुशल कर्म के प्रताप से छ कामलोकों मे, कोठे मे इकट्ठे किये गये धान्य की तरह, ऐश्वर्य्य रखा है। मैने इस कीडे की योनि मे जन्म ग्रहण किया, मुझे जीते रहने से क्या लाभ!" सुमना नामक नाग-कन्या ने उसे देखा तो सोचा कि महाप्रतापी शक्र ने जन्म ग्रहण किया होगा। उसने शेष नागकन्याओं को इशारा किया। सभी नाना प्रकार के वाद्यों सहित उसके सामने भेट लेकर उपस्थित हुईं। उसके लिये वह नागभवन शक्रभवन हो गया। मृत्यु-विचार जाता रहा। उसने सर्प-शरीर त्याग दिया और सब अलंकारों से अलकृत हो शैय्या पर बैठा। तब से वह महान् ऐश्वर्य्यशाली हो गया। वहाँ नाग-लोक मे राज्य करते करते आगे चलकर उसे पश्चा-ताप हुआ—"मुझे इस कीडे की योनि मे रहने से क्या लाभ! उपोसथ-व्रत करके यहाँ से मुक्त हो, मनुष्य-लोक मे जा (आर्य-) सत्यों का ज्ञान प्राप्त कर दुःख का अन्त करूं।" तब से वह उसी प्रासाद में रहकर उपोसथ-व्रत करने लगा। अलंकृत नागकन्यायें उस के पास जातीं। प्राय: शील टूट जाता। तब वह प्रासाद से निकल उद्यान में जाने लगा। वे वहाँ भी पहुँच जाती। उपोसथ-व्रत टूट ही जाता। वह सोचने लगा—"इस नागभवन से निकल मनुष्य-लोक में जाकर मुझे उपोसथ-

व्रत करना चाहिये।" उस दिन से वह उपोसथ-व्रत के दिनों में नागभवन से निकल कर एक प्रत्यन्त-ग्राम के पास के महामार्ग पर एक वाम्बी के पास लेट कर उपोसथ-व्रत करता—"यदि किसी को मेरा चर्म आदि चाहिए तो वह चर्म ले आदि, यदि कोई मुझे क्रीडा-सर्प बनाना चाहे तो वह क्रीडा-सर्प बना ले।" इस प्रकार वह शरीर-दान दे, अपने फन को समेट कर पड रहता। महामार्ग से आने जाने वाले उसे देखते तो गन्ध आदि से उसकी पूजा कर जाते। प्रत्यन्त-ग्रामवासी यह समझ कि यह महाप्रतापी नागराज है, उसके ऊपर मण्डप बनवा, चारो ओर बालू आदि बिखेर गन्धादि से पूजने लगे। तब मनुष्य उस बोधि-सत्व के प्रति श्रद्धावान हो उस की पूजा करने तथा पुत्रादि मागने लगे। बोधिसत्व भी उपोसथ-व्रत करता हुआ चतुर्दशी तथा पूर्णिमा के दिन बाम्बी के मुँह पर पडा रहकर क्रमशः नागभवन जाता। उसके इस प्रकार उपोसथ करते करने, समय बीत गया। एक दिन सुमना पटरानी बोली—"देव ! आप मनुष्य-लोक में जाकर उपोसथ-व्रत करते है। मनुष्य-लोक आशङ्का और भय का स्थान है। यदि आप को कोई खतरा हो जाय तो हमें बतायें कि हम कैसे जान सकेगी।" बोधिसत्व ने उसे मगल पुष्करिणी के किनारे ले जाकर कहा—"भद्रे ! यदि कोई मुझे चोट मार कर कष्ट देगा तो इस पुष्करिणी का पानी गंदला हो जायगा, यदि गरुड पकड लेंगे तो पानी चला जायगा (?) यदि सपेरा पकड लेगा तो पानी रक्त-वर्ण हो जायगा।" इस प्रकार उसने उसे तीन चिह्न बताये और चातुर्दशी उपोसथ-व्रत ग्रहण कर, नाग भवन से निकल, वहाँ पहुंच, बाम्बी के मुँह पर जा पडा। उसकी शरीर-शोभा से बाम्बी सुशोभित हो गई—शरीर चान्दी की माला की तरह श्वेत था, मस्तक लाल कम्बल की गेण्डुल की तरह। हा, इस जातक में बोधिसत्व का शरीर हल के सिरे जितना था, **भूरिदत्त जातक**[1] में जांघ के जितना, **सङ्खपाल जातक**[2] में एक द्रोणी नौका जितना था।

तब एक वाराणसी वासी विद्यार्थी तक्षशिला जाकर लोक प्रसिद्ध आचार्य के पास मंत्र-विद्या-सीख कर उसी रास्ते अपने घर लौट रहा था। उसने बोधिसत्व को देखकर सोचा—इस सांप को पकड ग्राम, निगम, तथा राजधानी आदि में तमाशा

---

१. **भूरिदत्त जातक (५४३),**
२. **संखपाल जातक (५२४)**

दिखाकर धन कमाऊंगा। यह सोच दिव्य औषधि ले और दिव्यमंत्र का जाप कर वह उसके पास गया। दिव्य-मंत्र कान में पड़ने के समय से ही बोधिसत्व को ऐसा हो गया मानो उसके कान में तप्त शलाका डाल दी गई हो। उसका सिर ऐसा हो गया, मानो उस्तरे से रगड़ दिया गया हो। उसने फन के भीतर से सीस निकाल कर देखा कि कौन है? जब उसे एक सपेरा दिखाई दिया तो वह सोचने लगा—"मेरा विष भयानक है। यदि मैं क्रुध होकर फुकार मारूंगा तो इसका शरीर भूसे की मुट्ठी की तरह बिखर जायगा। ऐसा होने पर मेरा शील खण्डित हो जायगा। इस लिये मैं इसकी ओर नही देखूगा।" उसने आँखेबद कर ली और सिर को फन के अन्दर समेट कर पड़ रहा। सपेरे ब्राह्मण ने औषधि खाई और मत्र जाप कर बोधिसत्व के शरीर पर थूक दिया। औषधि और मत्र के प्रभाव से जहा जहा थूक गिरा वहा वहा फफोले से उठ आये। तब उसने उसे पूछ से पकड, घसीट, लम्बा करके लिटाया, और बकरी के पैर जैसे डडे से पीट कर दुर्बल बना दिया। फिर उसके सिर को जोर से पकड कर दबा दिया। बोधिसत्व ने मुह खोला। तब उसके मुह में थूक दिया। और औषधि तथा मत्र का जाप कर उसके दात तोड दिये। उसका मुह लहू से भर गया। बोधिसत्व ने इस प्रकार का कष्ट सहन करते हुए भी शील टूट जाने के डर से, आंख खोल उसकी ओर देखा तक नही। उसने भी नागराज को दुर्बल करने के उद्देश्य से उसकी पूछ से लेकर उसकी हड्डियों को चूर चूर कर देने के लिये सारा शरीर गूध डालकर एक पट्टी की तरह लपेटा, तांत की तरह भाजा, पूछ पकड कर पकड़ा, पछाडने की तरह पछाडा। बोधिसत्व का सारा शरीर खून से लथपथ हो गया। उसे बडी पीडा होने लगी। जब उसने देखा कि नागराज एक दम दुर्बल हो गया तो उसने लताओं की पिटारी बना उसे उसमें डाला। फिर सीमा पार के गाव मे ले जा, लोगों के बीच मे तमाशा दिखाया। नील आदि वर्णों, घेरा, चौकोर आदि आकारो, तथा अणु, स्थूल आदि प्रमाणों में जैसे जैसे ब्राह्मण चाहता वैसे वैसे करके बोधिसत्व नाचता। वह सौ फन तथा हजार फन भी बनाता ही। जनता ने प्रसन्न होकर बहुत धन दिया। एक ही दिन में हजार कार्षापण और हजार के मूल्य की अन्य चीजें मिली। ब्राह्मण ने पहले तो सोचा था कि हजार मिल जाने पर उसे छोड़ दूंगा, लेकिन धन मिलने पर उसने सोचा कि सीमा पर के गांव में ही इतना मिला है, राजाओं तथा राजाओं के, महा अमात्यों

के पास बहुत मिलेगा। तब यह सोच उसने गाडी और रथ जुतवाया। गाड़ी मे सामान लदवा और स्वयं रथ में बैठ, बडे ठाट-बाट के साथ ग्राम-निगम आदि मे बोधिसत्व का तमाशा दिखाते हुए, वाराणसी की ओर चला। उसने सोचा कि वाराणसी के उग्रसेन राजा को तमाशा दिखाकर, इसे छोडूगा। ब्राह्मण मेढको को मार मार कर नाग-राजा को देता। "यह निश्चय से मेरे लिये ही मारता है", सोच नागराज उन्हें न खाता। तब उसे मधु और खील दी गई। बोधिसत्व ने सोचा—"यदि मैंने यह भोजन खाया तो इस पिटारी के अदर ही मेरा मरना होगा।" उसने वह भी न खाया। ब्राह्मण एक महीने में वाराणसी पहुंचा। वहाँ उसने द्वार ग्रामों मे तमाशा दिखाकर बहुत धन प्राप्त किया। राजा ने भी उसे बुलाकर कहा—"हमे भी तमाशा दिखाओ।"

"अच्छा देव! कल पूर्णिमा के दिन आपको तमाशा दिखाऊँगा।" राजा ने मुनादि करा दी—"कल नागराज राजांगन मे नाचेगा। जनता इकट्ठी हो कर देखे।" अगले दिन उसने राजाँगन को सजवा कर ब्राह्मण को बुलवाया। वह रत्न-पिटारी में बोधिसत्व को ले, चित्रित बिछावन पर पिटारी रख, बैठा। राजा भी प्रासाद से उतर राजासन पर बैठा। उसे चारो ओर से लोगों ने घेर रखा था। ब्राह्मण ने बोधिसत्व को निकाल कर नचाया। जनता अपने को रोक न सकी। हजारो कपडे ऊपर उछले। बोधिसत्व पर सातो रत्नों की वर्षा हुई। उसे पकड़े एक महीना बीत गया था। इतने समय तक वह निराहार ही रहा।

(उधर) सुमना ने सोचा—"मेरे प्यारे स्वामी को बहुत देर हो गई है, अब उसे यहाँ आये, एक महीना हो गया, क्या कारण है?" उसने जाकर पुष्करणी देखी। उसका रंग रक्त-वर्ण था। यह सोच कि सपेरे ने पकडा होगा, वह नाग-भवन से निकल बाम्बी के पास गई और जिस जगह बोधिसत्व को पकड़ा गया था और कष्ट दिया गया था, उस स्थान को देख कर रोई पीटी। फिर सीमा पर के गाँव में जा, पूछ कर वह समाचार जाना। फिर वाराणसी पहुंच परिषद के बीच मे आकाश में रोती हुई खडी हुई। बोधिसत्व ने नाचते नाचते आकाश में उसे देखा। वह लज्जा के मारे पिटारी में घुस, जा लेटा। राजा ने उसे पिटारी में घुसते देखा तो सोचा कि क्या कारण है? इधर उधर देखते हुए, उसे आकाश में खडी देख, राजा ने पहली गाथा कही—

**का नु विज्जुरिवाभासि ओसधी विय तारका,**
**देवता नु सि गन्धब्बी, न तं मञ्ञामि मानुसिं ॥१॥**

[तू बिजली की तरह अथवा ओषधि तारे की तरह प्रकाशित होने वाली कौन है ? हे गन्धर्वी । तू देवी है, तू मानुषी नही लगती ॥१॥]

आगे की गाथाएं उत्तर-प्रतिउत्तर है—

**नम्हि देवी न गन्धब्बी न महाराज मानुसी,**
**नागकञ्ञम्हि भदन्ते, अत्थेनम्हि इधागता ॥२॥**

[न मै देवी हूँ, न गन्धर्वी हूँ और हे महाराज ! न मै मानुषी हूँ । हे भदन्त ! मै नाग-कन्या हूँ । मै मतलब से यहाँ आई हूँ ॥२॥]

**विब्भन्तचित्ता कुपितिन्द्रियासि,**
**नेत्तेहि ते वारिगणा सवन्ति,**
**किं ते नट्ठं, किं पन पत्थयाना**
**इधागता नारि, तद इङ्घ ब्रूहि ॥३॥**

[तू भ्रान्त-चित्त है, तेरी इन्द्रियाँ कुपित है, तेरी आँखो से पानी की धार बहती है । तेरा क्या नष्ट हुआ है ? हे नारी ! तू किस चीज की प्रार्थना करती हुई यहाँ आई है ? ॥३॥]

**यं उग्गतेजो उरगो ति चाह**
**नागो ति तं आहु जनो जनिन्द**
**तं अग्गही पुरिसो जीविकत्थो,**
**तं बन्धना मुञ्च, पती ममेसो ॥४॥**

[जिस उग्रतेज को 'उरग' कहते है, जिसे हे जनेन्द्र ! लोग 'नाग' भी कहते है, उसे (इस) आदमी ने जीविका के लिए पकड लिया, यह मेरा पति है, इसे बन्धन-मुक्त करा दें ॥४॥]

**कथं नवयं बलविरियूपपन्नो**
**हत्थत्थं आगञ्छि वनिब्बकस्स,**
**अक्खाहि मे नागकञ्ञे तं अत्थं,**
**कथं विजानेमु गहीतनागं ॥५॥**

[यह बल और वीर्य्य से युक्त नाग इस दरिद्र के हाथ कैसे आ गया ? हे नाग-कन्ये ! मुझे यह बात बतला कि मैं नाग के पकडे जाने की बात पर कैसे विश्वास करूँ ? ॥५॥]

**नगरंपि नागो भस्मं करेय्य**
**तथा हि सो बलविरियूपपन्नो,**
**धम्मं च नागो अपचायमानो**
**तस्मा परक्कम्म तपो करोति ॥६॥**

[उसमे इतना बल और वीर्य्य है कि वह चाहे तो सारे नगर को भस्म कर दे सकता है। किन्तु वह धर्म की पूजा करने के लिए, पराक्रम कर के, तपस्या करता है ॥६॥]

राजा ने पूछा—इसे इसने कहाँ पकड़ा ? उसने उसे बताते हुए कहा—

**चातुद्दसिं पन्नरसिं च राजा**
**चतुप्पथे सम्मति नागराजा,**
**तं अग्गहो पुरिसो जीविकत्थो**
**तं बन्धना मुञ्च, पती ममेसो ॥७॥**

[चतुर्दशी तथा पूर्णिमा का उपोसथ (-व्रत) करता हुआ यह चौरस्ते (के ाास) की बाम्बी में पड रहा। उसे जीविका के लिए इस आदमी ने पकड लिया। ;से बन्धन से छोड दें, यह मेरा पति है ॥७॥]

यह कह फिर भी याचना करते हुए दो गाथायें कही—

**सोळस इत्थिसहस्सानि आभुत्त मणिकुण्डला**
**वारिगेहासया नारियो तापि तं सरणं गता ॥८॥**
**धम्मेन मोचेहि असाहसेन**
**गामेन निक्खेन गवं सतेन,**
**ओसट्ठकायो उरगो चरातु,**
**पुञ्ञत्थिको मुञ्चतु बन्धनस्मा ॥९॥**

[मोती तथा मणिकुंडल वाली, सोलह हजार स्त्रियाँ—जो पानी में गृहवास करती है—वे भी नागराज की शरण गई है ॥८॥ बिना जबर्दस्ती किए, धर्मानुसार

उसे मुक्त कर दें—गाँव देकर, निकष देकर, अथवा सौ गौवे दे कर। मुक्त-शरीर होकर सर्प घूमे। पुण्यार्थी बन्धन से मुक्त हो ॥९॥]

राजा ने उसे तीन गाथायें कही—

**धम्मेन मोचेमि असाहसेन**
**गामेन निक्खेन गवं सतेन**
**ओसट्ठकायो उरगो चरातु**
**पुञ्ञत्थिको मुञ्चतु बन्धनस्मा ॥१०॥**

[मैं बिना जबर्दस्ती किये, धर्मानुसार मुक्त करता हूं—गाँव देकर, निकष देकर अथवा सौ गौवे दे कर। मुक्त-शरीर हो कर सर्प घूमे। पुण्यार्थी बन्धन से मुक्त हो ॥१०॥]

**दम्मी निक्खसतं लुद्द थुल्लं च मणिकुण्डलं**
**चतुस्सदञ्च पल्लंकं उम्मापुप्फसिरिन्निभं ॥११॥**

[हे शिकारी ! मैं तुझे सौ निकष देता हूं, स्थूल मणिकुण्डल और उम्मा(?) पुष्प की श्री वाला चौकोर पलग ॥११॥]

**द्वे च सादिसियो भरिया उसभं च गवं सतं,**
**ओसट्ठकायो उरगो चरातु**
**पुञ्ञत्थिको मुञ्चतु बन्धनस्मा ॥१२॥**

[दो समान रूप वाली भार्य्या, वृषभ तथा सौ गौवें। सर्प मुक्त-शरीर होकर घूमे। पुण्यार्थी बन्धन से मुक्त हो ॥१२॥]

शिकारी ने उसे उत्तर दिया—

**विनापि दाना तव वचनं जनिन्द**
**मुञ्चेमु नं उरगं बन्धनस्मा,**
**ओसट्ठकायो उरगो चरातु**
**पुञ्ञत्थिको मुञ्चतु बन्धनस्मा ॥१३॥**

[बिना कुछ लिये ही, हे जनिन्द ! तेरे कहने से ही हम सर्प को छोड़ देते हैं। मुक्त-शरीर होकर सर्प विचरे। पुण्यार्थी बन्धन से मुक्त हो ॥१३॥]

इतना कह कर उसने बोधिसत्व को पिटारी से निकाल दिया। नागराज

निकला और फूलों में घुस, उस शरीर को छोड़, किसी ब्राह्मण-कुमार के रूप में सज-धज कर, पृथ्वी फाड़ कर निकल आये की तरह बाहर आया। सुमना भी आकाश से उतर, उसके पास आकर खड़ी हुई। नाग-राज हाथ जोड़कर राजा को नमस्कार करता हुआ खड़ा हुआ।

इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिए शास्ता ने दो गाथायें कहीं—

**मुत्तो चम्पेय्यको नागो राजानं एतद्ब्रवि,**
**नमोते कासिराज अत्थु नमो ते कासिवड्ढन,**
**अञ्जलिं ते पगण्हामि, पस्सेय्यं मे निवेसनं॥१४॥**

[चम्पेय्यक नाग ने मुक्त होने पर राजा को यह कहा—हे काशीराज! हें काशी-वर्धन! तुझे नमस्कार है। मैं तुम्हें हाथ जोड़ता हूं। मेरे घर को देखें॥१४॥]

**अद्धा हि दुब्बिस्ससं एतमाहु**
**यं मानुसो विस्ससे अमानुसम्हि,**
**सचे च मं याचसि एतमत्थं**
**दक्खेसु ते नाग निवेसनानि॥१५॥**

[निश्चय से, यदि मनुष्य अमनुष्य का विश्वास करे तो इसे दुर्विश्वास कहते हैं। तो भी यदि तू याचना करता है तो हम तेरा घर देखें॥१५॥]

उसे विश्वास दिलाने के लिए शपथ ग्रहण करते हुए बोधिसत्व ने दो गाथायें कहीं—

**सचे हि वातो गिरिं आवहेय्य**
**चन्दो च सुरियो च छमा पतेय्युं**
**सब्बा च नज्जो पब्बिसोतं वजेय्युं**
**न त्वेव अहं राज मुसा भणेय्यं॥१६॥**
**नभं फलेय्य उदधी पि सुस्से**
**संवट्टयं भूतधरा वसुन्धरा**
**सिलुच्चयो मेरु समूलं उब्बहे**
**न त्वेवाहं राज मुसा भणेय्यं॥१७॥**

[यदि वायु पर्वत को उड़ा ले जाय, यदि चन्द्रमा और सूर्य पृथ्वी पर गिर पड़ें, यदि सभी नदियाँ स्रोत के प्रतिकूल बहने लग जायें, तो भी हे राजन ! मैं झूठ नहीं बोल सकता ॥१६॥ आकाश फट जाय, समुद्र सूख जाय, यह पृथवी सुकड़ जाय तथा मेरु पर्वत समूल उखड़ जाय, तो भी हे राजन् ! मै झूठ नहीं बोल सकता ॥१७॥]

बोधिसत्व के ऐसा कहने पर भी वह अविश्वासी बना रहा:—

**अद्धा हि बुब्बिस्ससं एतमाहु**
**यं मानुसो विस्ससे अमानुसम्हि,**
**सचे च मं याचसि एतमत्थं**
**दक्खेमु ते नाग निवेसनानि ॥१८॥**

फिर वही गाथा कहकर "तुझे मेरा उपकार ज्ञात होना चाहिये, विश्वास करना उचित है या नही, यह मै देखूंगा" प्रकट करने के लिए शेष दो गाथायें कहीं—

**तुम्हे खोत्थ घोरविसा उळारा,**
**महातेजा खिप्पकोपी च होथ,**
**मम कारणा बन्धनस्मा पमुत्तो**
**अरहसि नो जानितये कतानि ॥१९॥**

[तुम विपुल घोर-विष वाले हो, महा-तेजस्वी, शीघ्र ही क्रुद्ध हो जाने वाले। तुम मेरे कारण बन्धन से मुक्त हुए। हमारे (उप-) कृत को जानना उचित है ॥१९॥]

उसमें विश्वास पैदा करने के लिए बोधिसत्व ने फिर कहा—

**सो पच्चतं निरये घोररूपे**
**मा कायिकं सातं अलत्थ किञ्चि,**
**पेळाय बद्धो मरणं उपेतु,**
**यो तादिसं कम्मं कतं न जाने ॥२०॥**

[जो ऐसे (उप-) कृत को न जाने, वह घोर-रूप नरक में पडे, उसे किसी प्रकार का शारीरिक-सुख न मिले और वह पिटारी में बन्द होकर मरण को प्राप्त होवे ॥२०॥]

राजा ने उसका विश्वास कर उसकी स्तुति की—

**सच्चपटिञ्ञा तवं एस होतु**
**अक्कोधनो होहि अनूपनाहि,**
**सब्बं च ते नागकुलं सुपण्णा**
**अग्गिं व गिम्हासु विवज्जयन्तु ॥२१॥**

[तेरी यह प्रतिज्ञा सत्य हो। तू अक्रोधी तथा द्वेष-रहित हो। तेरे सारे नाग-कुल को गरुड दूर से वैसे ही छोड दे जैसे आदमी ग्रीष्म-ऋतु में आग को ॥२१॥]

बोधिसत्व ने भी राजा की स्तुति करते हुए यह गाथा कही—

**अनुकम्पसि नागकुलं जनिन्द**
**माता यथा सुप्पियं एकपुत्तं,**
**अहं च ते नागकुलेन सद्धिं**
**काहामि वेय्यावटिकं उळारं॥२२॥**

[हे जनेन्द्र ! माता अपने इकलौते प्रिय पुत्र पर जैसी कृपा रखती है, तेरी नाग-कुल पर वैसी ही अनुकम्पा है। नाग-कुल के साथ मै तेरी खूब सेवा करूगा ॥२२॥]

यह सुन राजा ने नागभवन जाने की इच्छा से सेना को तैयार होने के लिए कहा—

**योजेन्तु वे राजरथे सुचित्ते,**
**कम्बोजके अस्सतरे सुदन्ते,**
**नागे च योजेन्तु सुवण्णकप्पने**
**दक्खेमु नागस्स निवेसनानि ॥२३॥**

[चित्रित राज-रथों मे कम्बोज के सुशिक्षित घोड़े जोतें और सुनहरी हाथी जोतें—हम चल कर नाग के भवन देखे ॥२३॥]

यह अभिसम्बुद्ध गाथा है—

**भेरिमुतंगा पणवा च संखा**
**आवज्जयिंसु उग्गसेनस्स रञ्ञो,**

**पायासि राजा बहु सोभमानो**
**पुरक्खतो नारिगणस्स मज्झे ॥२४॥**

[उग्रसेन राजा के भेरी, मृदंग, ढोल तथा शख बजने लगे। नारियों से घिरा हुआ राजा बडे सौन्दर्य के साथ गया ॥२४॥]

उसके नगर से निकलने के समय ही बोधिसत्व ने अपने प्रताप से नागभवन मे सर्वरत्नमय प्राकार तथा द्वार-कोष्ठ प्रकट कर नागभवन को जाने वाले मार्ग को सजाया। अपने अनुयाइयो सहित उस मार्ग से जाते हुये राजा ने उस रमणीय प्रदेश तथा प्रासादों को देखा।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

**सुवण्णचितकं भूमिं अद्दक्खि कासिवद्धनो**
**सोवण्णये च पासादे वेळुरियफलकत्थते ॥२५॥**
**सा राजा पाविसी व्यम्हं चम्पेय्यस्स निवेसनं**
**आदिच्चवण्णुपनिभं कंसविज्जुपभस्सरं ॥२६॥**
**नाना रुक्खेहि संछन्नं नानागन्धसमेरितं**
**सो पावेक्खि कासिराजा चम्पेय्यस्स निवेसनं ॥२७॥**
**पविट्ठम्हि कासिरञ्ञे चम्पेय्यस्स निवेसने**
**दिब्बा तुरिया वज्जिंसु नागकञ्ञा च नच्चयुं ॥२८॥**
**तं नागकञ्ञा चरितं गणेन**
**अन्वारुहि कासिराजा पसन्नो**
**निसीदि सोवण्णमयम्हि पीठे**
**सापस्सये चंदनसारलित्ते ॥२९॥**

[काशी-वधन राजा ने सुवर्ण खचित भूमि देखी तथा बिल्लौर के फर्श वाले स्वर्णमय प्रासाद देखे। वह राजा सूर्य-वर्ण तथा बिजली की तरह चमकने वाले चम्पेय्य नागभवन में दाखिल हुआ। उस काशीराज ने नाना प्रकार के वृक्षों से घिरे हुए तथा नाना प्रकार की सुगन्धियों से युक्त चम्पेय्य के नाग-भवन को देखा। जिस समय काशीराज चम्पेय्य के नागभवन मे प्रविष्ट हुआ उस समय दिव्य-वाद्य

बजे और नाग कन्याओं ने नाच किया। नाग कन्याओं से घिरे हुए उस नागभवन में प्रसन्न-चित्त काशीराजा चन्दन-लिप्त, सपार्श्व स्वर्णमय आसन पर चढ़ कर विराजमान हुआ ॥२५-२९॥]

उसके वहाँ बैठते ही उसके लिए, सोलह हजार स्त्रियों के लिए तथा शेष परिषद के लिए श्रेष्ठ भोजन ले आये। परिषद सहित उसने सप्ताह भर दिव्य अन्न-पान का परिभोग कर, दिव्य काम-गुणों में रमण कर, सुखासन से बैठे बैठे महासत्व का गुणगान कर पूछा—"नागराज! तू इस प्रकार की सम्पत्ति छोड़ कर मनुष्य लोक में एक बाम्बी के सिरे पर पड़ा पड़ा किस लिए उपोसथ-व्रत रखता है?" उसने उत्तर दिया—

उस अर्थ को प्रकाशित करने के लिए शास्ता ने कहा—

**सो तत्थ भुत्वा च अथो रमित्वा**
**चम्पेय्यकं कासिराजा अवोच**
**विमानसेट्ठानि इमानि तुय्हं**
**आदिच्च वण्णानि पभस्सरानि**
**नेतादिसं अत्थि मनुस्सलोके**
**किमत्थियं नाग तपो करोसि ॥३०॥**

**ता कम्बुकायूरधरा सुवत्था**
**वट्टंगुली तम्बतलूपपन्ना**
**पग्गय्ह पायेन्ति अनोमवण्णा**
**नेतादिसं अत्थि मनुस्स लोके**
**किमत्थियं नाग तपो करोसि ॥३१॥**

**नज्जो च खेमा पुथुलोममच्छा**
**आदासकुन्ताभिरुदा सुतित्था,**
**नेतादिसं..... ॥३२॥**

**कोञ्चा मयूरा दिविया च हंसा**
**वग्गुसरा कोकिला सम्पतन्ति....॥३३॥**

अम्बा च साला तिलका च जम्बुयो
उद्दालका पाटलियो च फुल्ला . . . ॥३४॥

इमा च ते पोक्खरञ्ञो समन्ततो
दिविया च गन्धा सततं सम्पतन्ति
नेतादिसं अत्थि मनुस्स लोके
किमत्थियं नाग तपो करोसि ॥३५॥

न पुत्तहेतु न धनस्सहेतु
न आयुनो वापि जनन्दि हेतु
मनुस्सयोनिं अभिपत्थयानो
तस्मा परक्कम्म तपो करोमि ॥३६॥

[वहाँ भोजन कर तथा अभिरमण कर काशीराजा नागराज से बोला—इन तेरे आदित्य-वर्ण चमकदार श्रेष्ठ भवनों के सदृश भवन मनुष्य लोक में नही है। हे नाग ! तू तप किसलिए करता है ? ॥३०॥ स्वर्णाभरणों से युक्त, सुन्दर वस्त्र धारण किये, गोल मोल अंगुलियों तथा रक्त-वर्ण हाथ-पैर वाली अनूपम वर्णा (नाग-कन्यायें) हाथ में ले ले कर (सुरा) पिलाती है। मनुष्य लोक में ऐसी नहीं है। हे नाग ! तू तप किसलिये करता है ? ॥३१॥ ऐसी कल्याणी-नदियाँ जिन में बडे बडे परों वाली मछलियाँ है और जिनके किनारों पर आदर्श नामक पक्षी गूंज करते है, मनुष्य-लोक में नहीं है। हे नाग ! तू तप किस लिए करता है ? ॥३२॥ क्रौच, मयूर, दिव्य हंस तथा मधुर-स्वर वाले कोकिल एकत्र होते है। ऐसे (दृश्य) मनुष्य-लोक में नही है। हे नाग ! तू तप किस लिये करता है ?॥३३॥ आम्र, शाला, तिलक, जम्बु, उद्दालक और सपुष्पित पाटली (वृक्ष) है। ऐसे मनुष्य लोक में नहीं है। हे नाग ! तू तप किस लिये करता है ? ॥३४॥ इन पुष्पकरिणियों में चारों ओर से दिव्य सुगन्धियाँ आती है। ऐसी (सुगन्धियाँ) मनुष्य लोक में नही हैं। हे नाग ! तू तप किस लिये करता है ? ॥३५॥ न पुत्र के लिये, न धन के लिये और हे राजन् न आयु के लिए ही मै तपस्या करता हूँ। मै तो मनुष्य-योनि की प्राप्ति की इच्छा से पराक्रम-पूर्वक तपस्या करता हूँ ॥३६॥]

ऐसा कहने पर राजा—

त्वं लोहितक्खो विहतन्तरंसो
अलंकतो कप्पितकेसमस्सु
सुरोसितो लोहितचन्दनेन
गन्धब्बराजाव दिसा पभाससि ॥३७॥
देविद्धिपत्तोसि महानुभावो
सब्बेहि कामेहि समंगीभूतो
पुच्छामि तं नागराजे तं अत्थं
सेय्यो इतो केन मनुस्सलोको ॥३८॥

[हे नागराज ! तेरी आखें रक्त-वर्ण है, तेरे कन्धे विशाल है, तू अलंकृत है, तेरे बाल और मूछे कटी है, तू रक्त-चन्दन से लिप्त है, तू गन्धर्व-राज की तरह चारों दिशाओं को प्रकाशित करता है ॥३७॥ हे नागराज ! तू देवऋद्धि प्राप्त है, तू महाप्रतापवान् है, तू सभी काम-भोग के साधनो से युक्त है, मैं तुझे पूछता हू कि इस लोक से मनुष्य-लोक किस प्रकार श्रेष्ठतर है ? ॥३८॥]

उसे नागराज ने उत्तर दिया—

जनिन्द नाञ्ञत्र मनुस्सलोका
सुद्धीच संविज्जति संयमो च
अहञ्च लद्धान मनुस्सयोनिं
काहामि जातिमरणस्स अंतंति ॥३९॥

[ हे राजन् ! मनुष्य लोक के अतिरिक्त और कही भी शुद्धि और संयम के लिये गुंजाइश नहीं है। मैं मनुष्य-योनि प्राप्त कर जाति और मरण का अन्त करूंगा ॥३९॥]

यह सुन राजा बोला—

अद्धा हवे सेवितब्बा सपञ्ञा
बहुस्सुता ये बहुठानचिन्तिनो
नरियो च दिस्वान तवं च नाग
काहामि पुञ्ञानि अनप्पकानि ॥४०॥

[निश्चय से बहुश्रुत, अनेक बातो का विचार करने वाले, प्रज्ञावान् आदमी की सगत करनी चाहिये। हे नाग ! मैं तुम्हारी नाग-कन्याओ की ओर तथा तुम्हारी ओर देखकर अनेक पुण्य करूंगा ॥४०॥]

तब नागराजा बोला—

**अद्धा हवे सेवितब्बा सपञ्ञा**
**बहुस्सुता ये बहुअनचिन्तिनो**
**नरियो च दिस्वान ममं च राज**
**करोहि पुञ्ञानि अन्नप्पकानि ॥४१॥**

[निश्चय से बहुश्रुत, अनेक बातो का विचार करने वाले, प्रज्ञावान् आदमी की संगत करनी ही चाहिये। हे राजन् ! आप मेरी नाग-कन्याओ की ओर तथा मेरी ओर देखकर अनेक पुण्य करे ॥४१॥]

ऐसा कहे जाने पर उग्रसेन ने जाने की इच्छा से "नागराज ! हम यहा चिर काल तक रहे, अब जायेगे" पूछा। "तो महाराज ! जितना चाहे उतना धन ग्रहण करे" कहते हुए धन देने की इच्छा से नागराजा बोला—

**इदं च मे जातरूपं पहूतं**
**रासी सुवण्णस्स च तालमत्ता,**
**इतो हरित्वा सोवण्णघरानि**
**[कारय] रूपियस्स च पाकारं करोन्तु ॥४२॥**
**मुत्ता च वाहसहस्सानि पञ्च**
**वेळुरियमिस्सानि इतो हरित्वा**
**अन्तेपुरे भूमियं सन्थरन्तु,**
**निक्कद्दमा होहिति नीरजा च ॥४३॥**
**एतादिसं आवस राजसेट्ठ**
**विमानसेट्ठं बहु सोभमानं**
**वाराणसिं नगरं इद्धफीतं**
**रज्जं च कारेहि अनोमपञ्ञ ॥४४॥**

[यह बहुत सा सोना है और ताळ वृक्ष जितनी ऊंची सोने की ढेरियाँ लगी हैं। यहाँ से उसे ले जाकर सोने के घर और चान्दी के प्राकार बनवा लो।।४२।। मोतियों के बिल्लौर मिश्रित पाञ्च सहस्र भार यहाँ से ले जाकर अपने अन्तःपुर की भूमि पर बिछा दो, जिससे वहाँ न कीचड रहे और न पानी रहे।।४३।। हे प्रज्ञावान् राजन्! वाराणसी नगर को इस प्रकार का श्रेष्ठ, सुन्दर निवासस्थान बनवा दो।।४४।।]

राजा ने उसका कहना सुन स्वीकार किया। तब बोधिसत्व ने नाग-भवन मे मुनादी करा दी—"सभी राजपुरुष जितना चाहे सोना आदि धन ग्रहण करें।" उसने अनेक सौ गाड़ियों पर लदवा कर राजा के यहा धन भेजा। तब राजा बडी भारी शान-शौकत के साथ नागभवन से निकल वाराणसी पहुंचा। तब से जम्बुद्वीप स्वर्ण-भूमि हो गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला कर यह कहा कि इस प्रकार पुराने पंडितो ने नाग-सम्पत्ति की उपेक्षा कर उपोसथ-वास किया। उस समय सपेरा देवदत्त था। सुमना राहुल-माता। उग्रसेन सारिपुत्र। चम्पेय्य नागराजा तो मै ही था।

## ५०७ महापलोभन जातक

"ब्रह्मलोका चवित्वान...." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय विशुद्ध प्राणियों के भी मलिन कर देने के बारे मे कही। कथा पहले आ ही चुकी है। यहां शास्ता ने "भिक्षुओ, स्त्रियाँ शुद्ध प्राणियों को भी मलिन कर देती हैं" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

### ख. अतीत-कथा

'पूर्व समय में वाराणसी मे....' चूळपलोभन जातक[1] में कहे गये क्रम से कथा कही जानी चाहिए। उस समय बोधिसत्व ने ब्रह्म-लोक से च्युत होकर काशी-नरेश

---

१. चुल्लपलोभन जातक (२६३)

का पुत्र हो कर जन्म-ग्रहण किया। उसे स्त्री की गन्ध से घृणा थी। स्त्रियों के हाथ में नहीं रहता था। उसे पुरुष-वेश में ही स्तन-पान कराना होता था। ध्यान-भवन में रहता था। स्त्रियों को नही देखता था। इसी अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने चार गाथायें कही—

**ब्रह्मलोका चवित्वान देवपुत्तो महिद्धिको,**
**रञ्ञो पुत्तो उदपादि सब्बकामसमिद्धिसु ॥१॥**
**कामा वा कामसञ्ञा वा ब्रह्मलोके न विज्जति,**
**यवास्स तायेव सञ्ञाय कामेहि विजिगुच्छथ ॥२॥**
**तस्स चन्तेपुरे आसि झानागारं सुमापितं,**
**सो तत्थ पतिसल्लीनो एको रहसि झायथ ॥३॥**
**स राजा परिदेवेसि पुत्तसोकेन अट्टितो,**
**एकपुत्तो चायं मय्हं न च कामानि भुञ्जति ॥४॥**

[एक महा ऋद्धिवान् देवपुत्र ब्रह्म-लोक से च्युत होकर सभी ऐश्वर्य्यों से युक्त राजा का पुत्र होकर उत्पन्न हुआ ॥१॥ ब्रह्मलोक मे काम-भोग अथवा कामभोग-सम्बन्धी संकल्प-विकल्प नहीं होते। उस ब्रह्मलोक मे उत्पन्न हुए रहने के कारण ही उसे काम-भोग से घृणा थी। उसके अन्तःपुर मे एक सुनिर्मित ध्यानागार था। वह वहाँ एकान्त मे ध्यान करता था। पुत्र-शोक से दुखी होकर वह राजा रोता-पीटता था—मेरा एक ही पुत्र है और उसकी काम-भोगो मे रुचि नहीं है।॥२–४॥]

पाँचवी राजा की शोक-गाथा है—

**कोनु खेत्थ उपायो सो को वा जानाति किञ्चनं,**
**को मे पुत्तं पलोभेय्य यथा कामानि पत्थये ॥५॥**

[इसका क्या उपाय है? कौन क्या जानता है? कौन मेरे पुत्र को लुभा कर काम-भोग में प्रवृत्त कर सकता है? ॥५॥]

इससे आगे यह डेढ अभिसम्बुद्ध गाथा है—

**अहू कुमारी तत्थेव रूपवण्णा समाहिता**
**कुसला नच्चगीतस्स वादिते च पदक्खिणा,**
**सा तत्थ उपसंकम्म राजानं एतदब्रवी ॥**

[वहीं एक नाच, गान तथा बजाने मे कुशल रूप-वर्ण-युक्त कुमारी थी। वह राजा के पास पहुच कर बोली ॥]

**अहं खोतं पलोभेय्यं सचे भत्ता भविस्सति।**

[मै उसे लुभा सकती हूँ, यदि उसका बाद मे मेरा स्वामी बनना स्वीकृत हो ॥६-७॥ ]

**तं तथा वादिनिं राजा कुमारिं एतदब्रवी,**
**त्वञ्ञेव नं पलोभेहि तव भत्ता भविस्सति ॥८॥**

[इस प्रकार कहने वाली उस कुमारी को राजा ने कहा—जा तू ही उसे लुभा। वह तेरा पति होगा अर्थात् तू ही पटरानी होगी ॥८॥]

यह कह राजा ने 'इसे जगह दो' कह कर उसे कुमार की सेवा मे भेजा। वह प्रातःकाल ही वीणा ले, जाकर, कुमार के शयन-गृह के पास खडी हो, नाखूनो के अगले सिरे से वीणा बजा, मधुर स्वर से गा उसे लुभाने लगी।

इसी अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

**सा च अन्तेपुरं गन्त्वा बहुं कामूपसंहितं,**
**हदयंगमा पेमनीया चित्रगाथा अभासथ ॥९॥**
**तस्सा च गायमानाय सद्दं सुत्वान नारिया,**
**कामच्छन्दस्स उप्पज्जि जनं सो परिपुच्छथ ॥१०॥**
**कस्सेसो सद्दो को वा सो भणति उच्चावचं बहु**
**हदयंगमं पेमणीयं अथो कण्णसुखं मम ॥११॥**
**एसा खो पमदा देव खिड्डा एसा अनप्पिका**
**सचे त्वं कामे भुञ्जेय्य भीय्यो भीय्यो छादेय्यु तं ॥१२॥**
**इंघ आगच्छतोरेन अविदूरम्हि गायतु,**
**अस्समस्स समीपम्हि सन्तिके मय्ह गायतु ॥१३॥**
**तिरोकुड्डम्हि गायित्वा झानागारम्हि पाविसि,**
**बन्धि नं अनुपुब्बेन आरञ्ञमिव कुञ्जरं ॥१४॥**
**तस्सं कामरसं ञत्वा इस्साधम्मो अजायथ,**
**अहमेव कामे भुञ्जेय्यं मा अञ्ञो पुरिसो अहु ॥१५॥**

ततो असिं गहेत्वान पुरिसे हन्तुं उपक्कमि,
अहमेव एको भुञ्जिस्सं मा अञ्ञो पुरिसो सिया ॥१६॥
ततो जानपदा सब्बे विक्कन्दिंसु समागता,
पुत्तो त्यायं महाराज जनं हेठेत्यदूसकं ॥१७॥
तञ्च राजा विहाहेसि तम्हा रट्ठातो खत्तियो,
यावता विजितं मय्हं न ते वत्तब्ब तावदे ॥१८॥
ततो सो भरियं आदाय समुद्दं उपसंकमि,
पण्णसालं करित्वान वनं उञ्छाय पाविसि ॥१९॥
अथेत्थ इसिमागञ्छि समुद्दं उपरूपरि,
सो तस्स गेहं पावेक्खि भत्तकाले उपट्ठिते ॥२०॥
तञ्च भरिया पलोभेसि पस्स याव सुदारुणं
चुतो सो ब्रह्मचरियम्हा इद्धिया परिहायथ ॥२१॥
राजपुत्तो च उञ्छातो वनमूलफलं बहुं,
सायं कालेन आदाय अस्समं उपसंकमि ॥२२॥
इसी च खत्तियं दिस्वा समुद्दं उपसंकमि,
वेहासयं गमिस्सन्ति सीदते सो महण्णवे ॥२३॥
खत्तियो च इसिं दिस्वा सीदमानं महण्णवे,
तस्सेव अनुकम्पाय इमा गाथा अभासथ ॥२४॥
अभिज्जमाने वारिस्मिं सयं आगम्म इद्धिया,
मिस्सीभावित्थिया गन्त्वा संसीदसि महण्णवे ॥२५॥
आवट्टनी महामाया ब्रह्मचरियविकोपना,
सीदन्ति, नं विदित्वान आरका परिवज्जये ॥२६॥
अनला मुदुसम्भासा दुप्पूरा ता नदीसमा,
सीदन्ति, नं विदित्वान आरका परिवज्जये ॥२७॥
यं एता उपसेवन्ति छन्दसा वा नेन वा,
जातवेदोव सण्ठानं खिप्पं अनुदहन्ति नं ॥२८॥

**खत्तियस्स वचो सुत्वा इसिस्स निब्बिदा अहु,**
**लद्धा पोराणकं मग्गं गच्छतेसो विहायसं ॥२९॥**
**खत्तियो च इसिं दिस्वा गच्छमानं विहायसं,**
**संवेगं अलभी धीरो पब्बज्जं समरोचयि ॥३०॥**
**ततो सो पब्बजित्वान कामरागं विराजयि,**
**कामरागं विराजेत्वा ब्रह्मलोकूपगो अहू ॥३०॥**

[उसने अन्तःपुर मे जाकर अनेक प्रकार के कामभोगो के संकल्प-विकल्पो से युक्त, हृदयहारी, प्रेम-भरी, सुन्दर कथा कही। उस गाती हुई नारी के स्वर को सुनकर उसके मन मे काम-राग उत्पन्न हो गया। तब उसने आदमियो से प्रश्न किया—यह किसका शब्द है? यह कौन है जो मुझे मनोहारी, प्रेम-भरी, कर्ण-सुखकर वाणी सुना रहा है? "हे देव! यह स्त्री है, अत्यन्त क्रीडा करने योग्य। यदि तुम काम-भोगो का सेवन करोगे तो तुम्हे यह अधिकाधिक प्रिय लगेगी।" ॥८-११॥ "अच्छा, तो समीप आकर गाये, आश्रम के समीप, मेरे पास आ कर गाये" ॥१२॥ वह निवास-गृह की दीवार के पास जाकर शयन-गृह मे जा पहुची। जिस प्रकार जगल मे हाथी पीछा करता है, उसी प्रकार वह क्रमशः उसका पीछा करने लगा ॥१३॥ काम-रस से परिचित हो जाने पर उसके मन मे इर्षा का भाव पैदा हो गया—मै ही कामोपभोग करूं, कोई दूसरा पुरुष नही ॥१४॥ तब तलवार ले कर वह लोगो को मारने के लिये दौड़ा—मै ही अकेला उपभोग करूं, कोई दूसरा आदमी नही ॥१५॥ तब सभी जनपद-निवासी राजा के पास आकर शिकायत करने लगे—हे राजा, तेरा पुत्र निर्दोष प्रजा को कष्ट देता है ॥१६॥ उस क्षत्रिय राजा ने उसे अपने राज्य से निकाल दिया और आज्ञा दी कि जहाँ तक मेरे राज्य की सीमा है, वहाँ तक न रहे ॥१७॥ तब वह उस भार्य्या को लेकर समुद्र-तट पर पहुचा और पर्णशाला बना, फलाफल के लिये वन मे प्रवेश किया ॥१८॥ वहाँ समुद्र के ऊपर ही ऊपर ऋषि आया। वह भोजन के समय उसके घर मे प्रविष्ट हुआ ॥१९॥ उसे उस भार्य्या ने लुभा लिया। ज़रा उसके दारुण-कर्म को देखो! ब्रह्मचर्य्य से च्युत होने के कारण उसका ऋद्धि-बल जाता रहा ॥२०॥ राजपुत्र वन से वैहगी पर बहुत से फूल-मूल लाद कर शाम को आश्रम आन पहुचा ॥२१॥ क्षत्रिय-कुमार

को देख कर ऋषि समुद्र की ओर बढा। वह चाहता था कि आकाश में उड़ जाय किन्तु वह समुद्र में गिर पडा ॥२२॥ जब क्षत्रिय-कुमार ने ऋषि को समुद्र में डूबता देखा तो उस पर दया करके ये गाथाये कही—॥२३॥ बिना पानी मे भीगे, आकाश-मार्ग से ऋद्धि-बल से आकर, स्त्री के साथ रमण करने के कारण अब महार्णव मे डूब रहा है। ये (स्त्रियाँ) जादूगरनी है, मायाविनी है, ब्रह्मचर्य्य को कुपित करने वाली है, डुबा देने वाली है—यह जान कर उन्हे दूर ही दूर रखे ॥२४-२५॥ ये सन्तुष्ट न होने वाली, मधुर-संभाषिणी, नदियो के समान भरी न जाने वाली, और डुबा देने वाली होती है—यह जान कर इन्हे दूर ही दूर रखे ॥२६–२७॥ उत्तेजना अथवा धन के वशीभूत होकर यह जिस किसी का भी सेवन करती है, अग्नि की भान्ति उसके आकार-प्रकार को शीघ्र-ही भस्मी-भूत कर देती है ॥२८॥ क्षत्रिय कुमार की बात सुनकर ऋषि को वैराग्य प्राप्त हो गया। वह अपने पहले रास्ते पर चल पडा और आकाश-गामी हो गया ॥२९॥ जब क्षत्रिय कुमार ने ऋषि को आकाश-मार्ग से जाते देखा, तो उस धीर-पुरुष के मन में संवेग पैदा हुआ और उसकी प्रव्रजित होने की इच्छा हुई। तब उसने प्रव्रजित हो कर कामभोग की इच्छा का त्याग कर दिया और काम-राग से मुक्त हो कर वह ब्रह्म लोकगामी हुआ ॥३०-३१॥]

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला और "भिक्षुओ, इस प्रकार स्त्रियो के कारण विशुद्ध प्राणी भी मलिन हो जाते है," कह, सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो के अन्त मे उद्विग्न-चित्त भिक्षु अर्हत्व को प्राप्त हुआ। उस समय स्त्री की गन्ध से भी दूर भागने वाला कुमार मै ही था।

## ५०८ पञ्च पण्डित जातक

पञ्च पण्डित जातक महाउम्मग्ग जातक[1] मे आयेगी।

---

१. महाउम्मग्ग जातक (५४६)।

# ५०९ हत्थिपाल जातक

"चिरस्स वत पस्सामि....." यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय नैष्क्रम्य के बारे मे कही। उस समय शास्ता ने "भिक्षुओ, न केवल अभी, तथागत ने पहले भी निष्क्रमण किया ही है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

## क. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे एसुकारी नाम का राजा था। उसका पुरोहित बचपन से उसका प्रिय सहायक था। वे दोनो अपुत्रक थे। एक दिन उन्होने सुखपूर्वक बैठे हुए विचार किया", हमारे पास ऐश्वर्य्य बहुत है, पुत्र अथवा पुत्री नही है, क्या किया जाय?" तब राजा ने पुरोहित से कहा—"यदि तुम्हारे घर मे पुत्र उत्पन्न होगा, तो मेरे राज्य का स्वामी होगा, यदि मेरे घर मे पुत्र पैदा होगा तो तुम्हारे घर की सम्पत्ति का मालिक होगा।" इस प्रकार वे दोनो परस्पर वचन-बद्ध हुए। एक दिन पुरोहित अपनी जमीदारी के गाव मे गया। वापिस लौटने पर जब वह दक्षिण-द्वार से नगर मे प्रवेश कर रहा था तो उसने नगर के बाहर अनेक पुत्रो वाली एक दरिद्र स्त्री को देखा। उसके सात पुत्र थे। सभी निरोग। एक के हाथ मे पकाने की हाँडी थी। एक के हाथ मे चटाई। एक आगे आगे चल रहा था। एक पीछे पीछे। एक ने अँगुली पकड रखी थी। एक गोद मे था। एक कन्धे पर बैठा था।

उससे पुरोहित ने पूछा—"भद्रे, इन बच्चो का पिता कहा है?" "स्वामी! इनका कोई एक ही निश्चित पिता नही है।" "इस प्रकार के सात पुत्र क्या करने से मिले?" उसे जब कोई अन्य आधार न दिखाई दिया तो उसने नगर-द्वार-स्थित निग्रोध वृक्ष की ओर संकेत कर के कहा—"स्वामी! इस निग्रोध-वृक्ष देवता पर रहने वाले देवता से प्रार्थना करने से मिले, इसी ने मुझे पुत्र दिये।" पुरोहित ने

उसे "तो तू जा, "कह कर बिदा किया। तब वह स्वयं रथ से उतर निग्रोध-वृक्ष के नीचे पहुचा। उसकी शाखा पकड कर हिलाई और बोला—"हे देवपुत्र ! तुझे राजा से क्या नही मिलता ? राजा प्रति वर्ष हजार (मुद्राओ) का त्याग कर बलि देता है। तू उसे पुत्र नही देता। इस दरिद्र स्त्री ने तेरा क्या उपकार किया है कि उसे सात पुत्र दिये है। यदि हमारे राजा को पुत्र नही देगा, तो आज से सातवें दिन तुझे जड़ से उखडवा कर टुकडे टुकडे कर दूगा।" इस प्रकार वह वृक्ष-देवता को धमका कर चला गया। उसने इसी प्रकार अगले दिन और फिर अगले दिन लगातार छः दिनों तक धमकी दी। छठे दिन शाखा को पकड कर बोला—"हे वृक्ष-देवता ! अब आज केवल एक रात शेष रह गई है। यदि मेरे राजा को पुत्र नही देगा तो कल तुझे समाप्त कर दूँगा।" वृक्ष-देवता ने विचार कर इस बात की गहराई को समझा। "इस ब्राह्मण को यदि पुत्र नही मिला, तो यह मेरा विमान नष्ट कर देगा, इसे किस प्रकार पुत्र दिया जाय ?" उसने चारो महाराजाओ के पास पहुंच वह बात कही। वे बोले—"हम उसे पुत्र नही दे सकते।" अट्ठाइस यक्ष-सेनापतियों के पास गया। उन्होने भी वैसा ही उत्तर दिया। देवराज शक्र के पास जा कर कहा। उसने भी 'इसे योग्य पुत्र मिलेगा अथवा नही ?' का विचार करते हुए चार देव-पुत्रो को देखा। वे पूर्व-जन्म मे बनारस मे जुलाहे हुए थे। उन्होने जो कुछ कमाया, उसके पाँच हिस्से कर के चार हिस्से खाये और एक एक हिस्सा इकट्ठा कर के दान दिया। वहाँ से च्युत हो कर त्रयोत्रिश भवन में पैदा हुए। वहाँ से याम-भवन में। इस प्रकार ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर छ देव लोको मे सम्पत्ति का उपभोग करते हुए विचरते रहे। उस समय उनकी त्रयोत्रिश भवन से च्युत होकर याम भवन जाने की बारी थी। शक्र ने उनके पास पहुंच, उन्हे बुलाकर कहा—'मित्रो, तुम्हे मनुष्य-लोक जाना चाहिये, वहाँ एसुकारी राजा की पटरानी के गर्भ से जन्म-ग्रहण करो।" वे उसका कहना सुन कर बोले—"देव, अच्छा जायेगे। लेकिन हमें राज-कुल से प्रयोजन नही है। हम पुरोहित के घर मे जन्म ग्रहण, कुमार अवस्था में ही काम-भोगो को छोड कर प्रव्रजित होगे।" शक्र ने 'अच्छा' कहा और उनसे प्रतिज्ञा करा ली। फिर आकर वृक्ष-देवता से वह बात कही। उसने सन्तुष्ट हो शक्र को नमस्कार किया और अपने विमान के प्रति गमन किया।

अगले दिन पुरोहित ने भी कुछ मजबूत आदमियो को लिया और कुल्हाडी आदि ले वृक्ष के नीचे पहुँचा। वहाँ जा वृक्ष की शाखा पकड बोला—"हे देवता, आज मुझे याचना करते करते सातवाँ दिन हो गया। अब तेरा अन्त समय आन पहुँचा।" तब वृक्ष-देवता ने बडे ठाट-बाट के साथ पेड के तने की खोह मे से निकल कर, उसे मधुर-स्वर से बुलाया और कहा—"ब्राह्मण, एक पुत्र की बात जाने दो, मै तुम्हे चार पुत्र दूँगा।" "मुझे पुत्र नही चाहिये, हमारे राजा को पुत्र दे।" "तुम्ही को मिलेंगे।" "तो दो मुझे, और दो राजा को दो।" "राजा को नही, चारो तुम्ही को मिलेंगे और तुमको भी वे केवल मिलेंगे ही, क्योकि वे घर में न रह कर कुमार अवस्था मे ही प्रव्रजित हो जायेंगे।" "तुम पुत्र दो, उन्हे प्रव्रजित न होने देने की हमारी जिम्मेवारी है।"

वृक्ष-देवता ने उसे वर दे अपने भवन मे प्रवेश किया। उसके बाद से देवता का आदर-सत्कार बढ़ गया। ज्येष्ठ देव-पुत्र च्युत हो कर पुरोहित की ब्राह्मणी की कोख मे आया। नामकरण के दिन उसका नाम हस्ति-पाल रखा गया और प्रव्रजित होने से रोके रखने के लिये उसे हाथीवानो को सौंपा गया। वह उनके पास पलने लगा। उसके पदचिन्हो पर आ पडने के समान दूसरा च्युत होकर रानी के गर्भ मे आया। उसका भी जन्म ग्रहण करने पर अश्वपाल नाम रखा गया। वह साइसो के पास पलने लगा। तीसरे का नाम जन्म होने पर गो-पाल रखा गया। वह ग्वालो के साथ बढने लगा। चौथे के पैदा होने पर अज-पाल नाम। वह बकरियाँ चराने वालो के साथ बढने लगा। वे बडे होने के साथ साथ सौभाग्यशाली हुए।

उनके प्रव्रजित होने के डर से राज्य-सीमा से सभी प्रव्रजितो को निकाल दिया गया। सारे काशी-राष्ट्र में एक प्रव्रजित भी नही रहने दिया गया। वे कुमार कठोर-स्वभाव के थे, जिस दिशा में जाते, उस दिशा मे ले जाई जाने वाली भेट लूट लेते। सोलह वर्ष की आयु होने पर हस्ति-पाल के शरीर बल का ख्याल कर राजा और पुरोहित दोनो ने मिलकर सोचा—"कुमार बडे हो गये। उनके राज्याभिषेक का समय हो गया। अब क्या करना चाहिये?" फिर सोचा, "अभिषिक्त होने पर ये और भी उद्दण्ड हो जायेंगे। तब प्रव्रजित आयेंगे। उन्हें देखकर ये भी

प्रव्रजित हो जायेंगे। इनके प्रव्रजित होने पर जनता उबल खड़ी होगी। अभी विचार कर लें। बाद में अभिषिक्त करेंगे।"

यह सोच, दोनों ने ऋषि-वेश बनाया और भिक्षाटन करते हुए हस्तिपाल कुमार के निवास-स्थान पर पहुचे। कुमार उन्हें देख कर सन्तुष्ट हुआ, प्रसन्न हुआ। उसने पास आकर प्रणाम किया और तीन गाथाये कही—

**चिरस्सं वत पस्साम**
**ब्राह्मणं देववण्णिनं**
**महाजटं भारधरं**
**पंकदंतं रजस्सिरं ॥१॥**
**चिरस्सं वत पस्साम इसिं धम्मगुणे रतं**
**कासायवत्थवसनं वाकचीरं पटिच्छदं ॥२॥**
**आसनं उदकं पज्जं पटिगण्हातु नो भवं,**
**अग्घे भवन्तं पुच्छाम, अग्घं कुरुतु नो भवं॥३॥**

[मैं चिर-काल के बाद मलिन-दन्त, भस्मयुक्त, जटाधारी, भारवाही, देव-तुल्य ब्राह्मणों का दर्शन कर रहा हूँ ॥१॥ मैं चिरकाल के बाद, धर्म-रत, काषाय-वर्ण, वल्कल चीरधारी ब्राह्मणो को देख रहा हूँ ॥२॥ आप हमारा आसन, तथा पादोदक ग्रहण करें। हम आपसे यह पूज्य-वस्तु ग्रहण करने की प्रार्थना कर रहे है। आप यह पूज्य वस्तु ग्रहण करे॥३॥]

इस प्रकार उसने उनसे एक एक कर के बारी बारी पूछा। तब पुरोहित बोला—"तात, तू हमे क्या समझ कर ऐसा कह रहा है?"

"हिमालयवासी ऋषिगण।"

"तात, हम ऋषि नही है, यह राजा एसुकारी है और मैं तुम्हारा पिता पुरोहित।"

"तो, तुमने ऋषि-भेस क्यों बनाया?"

"तेरी परीक्षा लेने के लिए।"

"मेरी क्या परीक्षा लेते हो?"

"यदि हमे देख कर प्रव्रजित न हो, तो हम राज्याभिषिक्त करने के लिये आये हैं।"

"तात ! मुझे राज्य नहीं चाहिये, मैं प्रव्रजित होऊंगा।"

तब उसके पिता ने "तात हस्तिपाल, यह प्रव्रज्या का समय नहीं है", कह अपने आशय के अनुसार उसे उपदेश देते हुए चार गाथायें कहीं—

**अधिच्च वेदे परियेस वित्तं,**
**पुत्ते गेहे तात पतिट्ठपेत्वा**
**गन्धे रसे पच्चनुभुत्व सब्बं**
**अरञ्ञं साधु, मुनि सो पसत्थो ॥४॥**

[वेदाध्ययन कर, धनार्जन कर, हे तात ! जो पुत्रों को राज्यादि पर स्थापित कर तथा सभी कामभोगो को भोग कर आरण्य में प्रविष्ट होता है, उसका ऐसा करना साधु है और उस मुनि की प्रशंसा होती है ॥५॥]

तब हस्तिपाल बोला—

**वेदा न सच्चा न च वित्तलाभो,**
**न पुत्तलाभेन जरं विहन्ति**
**गन्धे रसे मुच्चनं आहु सन्तो**
**सकम्मुना होति फलूपपत्ति ॥६॥**

[न वेद सत्य है और न धन-लाभ सत्य है, और न पुत्र-लाभ से ही जरा का नाश होता है। सन्त पुरुषों का कहना है कि गन्ध-रस आदि काम-भोग मूर्छा है। अपने किये कर्म से ही फल की प्राप्ति होती है ॥६॥]

कुमार का कथन सुन कर राजा बोला—

**अद्धा हि सच्चं वचनं तवेतं**
**सकम्मना होति फलूपपत्ति**
**जिण्णा च माता पितरो च तवयिमे**
**पस्सेय्यु तं वस्स सतं अरोगं ॥६॥**

[निश्चय से तेरा यह कथन सत्य है कि स्वकर्म से ही फल की प्राप्ति होती है। तेरे माता-पिता वृद्ध हो गये है। वे तुझे सौ वर्ष तक निरोग देखें ॥६॥]

यह सुन कुमार ने "देव ! आप यह क्या कहते है ?" कह दो गाथायें कहीं—

**यस्स अस्स सक्खी मरणेन राज**
**जराय मेत्ती नरविरियसेट्ठ**
**यो चापि जञ्ञा न मरिस्सं कदाचि**
**पस्सेय्युं तं वस्ससतं अरोगं ॥७॥**
**यथापि नावं पुरिसोदकम्हि**
**एरेति चे नं उपनेति तीरं**
**एवम्पि व्याधी सततं जरा च**
**उपनेन्ति मच्चं वसं अन्तकस्स ॥८॥**

[राजन् ! जिसकी मृत्यु से मैत्री हो, हे नरवीर्य्य श्रेष्ठ ! जिसका जरा के साथ सखा-भाव हो और जो यह जानता हो कि मै कभी नही मरूंगा उसी के सौ वर्ष तक निरोग देखने की बात कही जा सकती है ॥७॥ जिस प्रकार आदमी यदि नौका को पानी में चलाता है, तो वह उसे किनारे पर ले ही जाती है, उसी प्रकार जरा और व्याधी आदमी को मृत्यु के पास ले जाते है ॥८]

इस प्रकार इन प्राणियों के जीवन-संस्कार की तुच्छता प्रकट कर, "महाराज, आप रहें, आपके साथ बातचीत करते ही करते व्याधी-जरा तथा मरण मेरे समीप चले आ रहे है, अप्रमादी बन कर रहे, " कह, राजा तथा पिता को नमस्कार कर, अपने सेवकों को साथ ले, वाराणसी राज्य को त्याग कर प्रव्रजित होने के उद्देश्य से निकल पड़ा। 'यह प्रव्रज्या सुन्दर होगी' सोच हस्तिपाल कुमार के साथ जनता निकल पडी। योजन भर का जलूस हो गया। उसने उस जन-समूह के साथ गंगा-तट पर पहुंच, गंगा के जल को देख, योगाभ्यास कर ध्यान लाभ किया और तब सोचने लगा—"यहाँ बहुत जनता एकत्र हो जायगी। मेरे तीनों छोटे भाई, माता-पिता, राजा तथा देवी, सभी अनुयाइयो सहित प्रव्रजित हो जायेंगे, वाराणसी खाली हो जायगी; इनके आने तक मै यही रहूं।" वह जनता को उपदेश देता हुआ वही रहा।

फिर एक दिन राजा और पुरोहित ने सोचा, 'हस्तिपाल कुमार तो राज्य छोड कर, लोगों को साथ ले, प्रव्रजित होने के उद्देश्य से जाकर गंगा-तट पर बैठ गया,

हम अश्वपाल की परीक्षा कर, उसे ही अभिषिक्त करेंगे।' वे ऋषि-वेश धारण कर उसके भी गृह-द्वार पर पहुंचे। उसने भी उन्हे देख, प्रसन्न हो, पास जाकर 'चिरस्सं वत' आदि गाथायें कह वैसा ही व्यवहार किया। उन्होने भी उसे वैसा ही उत्तर दे अपने आने का कारण बताया। उसने पूछा—"मेरे भाई हस्तिपाल कुमार के रहते उससे पहले मै ही कैसे श्वेत-छत्र का अधिकारी होता हूं?" उत्तर मिला—"तात! तेरा भाई, 'मुझे राज्य की अपेक्षा नही, मै प्रव्रजित होऊंगा' कह चला गया।" पूछा—"वह इस समय कहाँ है?" "गंगा-तट पर।" "तात! मेरे भाई ने जिसे थूक दिया, उसकी मुझे जरूरत नही है। मूर्ख, तुच्छ-प्रज्ञ प्राणी ही इस क्लेश का त्याग नही कर सकते; किन्तु मै त्याग करूंगा।" इतना कह, राजा तथा पुरोहित को उपदेश देते हूए उसने दो गाथाये कही—

**पंको च कामा पलिपो च कामा**
**मनोहरा दुत्तरा मच्चुधेय्या**
**एतस्मिं पंके पलिपे ब्यसञ्ञा**
**हीनत्तरूपा न तरन्ति पारं॥९॥**
**अयं पुरे लुद्दं अकासि कम्मं**
**स्वायं गहीतो, न हि मोक्ख इतो मे,**
**ओरुंधिया नं परिरक्खिस्सामि**
**मायं पुन लुद्दं अकासि कम्मं॥१०॥**

[काम-भोग कीचड है, काम-भोग दलदल है, मनोहर है, दुस्तर हैं, मरण-मुख हैं। इस कीचड मे, इस दलदल में फसे हुए हीनात्म लोग तैर कर पार नही हो सकते॥९॥ मैने पूर्व-जन्म में रौद्र-कर्म किया। उसका फल अब भोग रहा हूँ। उससे मोक्ष नही है। अब मै वाणी और कर्मेन्द्रियों की रक्षा करूंगा, ताकि फिर मुझसे रौद्र-कर्म न हो॥१०॥]

"आप रहे, आपके साथ बात करते ही करते व्याधि, जरा, मरण आदि आ पहुंचते हैं" कह, उपदेश दे, योजन-भर जनता को साथ ले, निकल कर हस्तिपाल कुमार के पास ही पहुंचा। उसने अकाश में बैठ, उसे धर्मोपदेश देते हुए कहा—"भाई!

यहाँ बडा जन-समूह एकत्र होगा। अभी हम यही रहे।" दूसरे ने भी 'अच्छा' कह स्वीकार किया।

फिर एक दिन राजा और पुरोहित उसी प्रकार गोपाल-कुमार के घर पहुचे। उसके द्वारा भी उसी प्रकार स्वागत किये जाने पर उन्होने अपने आने का कारण कहा। उसने भी अश्वपाल-कुमार की ही तरह अस्वीकार किया। बोला—"मै चिरकाल से खोये बैल को ढूढने वाले की तरह 'प्रव्रज्या' को ढूढता फिर रहा हू। बैल के पद-चिन्हों की तरह मुझे वह मार्ग दिखाई दे गया है, जिस पर भाई चला है। अब मै उसी मार्ग से चलूगा।"

इतना कह, यह गाथा कही—

**गवं व नट्ठं पुरिसो यथा वने**
**परियेसति राज अपस्समानो**
**एवं नट्ठो एसुकारी मं अत्थो**
**सो'हं कथं न गवेसेय्य राज ॥११॥**

[हे राजन्! जिस प्रकार वह आदमी जिसका बैल खो गया है और दिखाई नही देता, वह जंगल में अपने बैल को खोजता है, इसी प्रकार हे एसुकारी! मेरा जो प्रव्रज्या रूपी अर्थ नष्ट हो गया, उसे मै आज कैसे न खोजू? ॥११॥]

वे बोले—"तात गोपाल, एक दो दिन प्रतीक्षा कर। हमारे आशवस्त होने पर पीछे प्रव्रजित होना।" उसने, "महाराज, यह नही कहना चाहिये कि आज करने योग्य कार्य्य कल करूगा। शुभ-कर्म आज और आज ही करना चाहिये" कह, शेष दो गाथाये कही—

**हिय्यो ति हिय्यो ति पोसो परेति (परिहायति),**
**अनागतं नेतं अत्थीति ञत्वा**
**उप्पन्नछन्दं को 'पनुदेय्य धीरो ॥१२॥**

[जो पुरुष कल और परसों करता रहता है, उसका पतन होता है। यह जानकर कि भविष्य-काल है ही नही, कौन धीर-पुरुष किसी (कुशल) संकल्प को टालेगा? ॥१२॥]

इस प्रकार गोपाल-कुमार ने दो गाथाओं से धर्मोपदेश दिया। फिर "आप रहें, आपके साथ बातचीत करते ही करते व्याधि, जरा, मरण आदि आ पहुचते है" कह. योजन-भर जनता को साथ ले, निकलकर, दोनो भाइयो के पास ही चला गया। हस्तिपाल ने उसे भी आकाश मे बैठकर धर्मोपदेश दिया।

फिर अगले दिन राजा और पुरोहित उसी प्रकार अजपाल कुमार के घर पहुचे। उसके भी उसी प्रकार आनन्द प्रकट करने पर उन्होने अपने आने का कारण कह, छत्र धारण करने की बात कही। कुमार ने पूछा—"मेरे भाई कहाँ है?" "वे 'हमें राज्य की अपेक्षा नही है' कह, श्वेत-छत्र छोड, तीन-योजन अनुयाइयों को साथ ले, निकल, जाकर गंगा-तट पर बैठे है।" "मै अपने भाइयो के थूक को, सिर पर लिये लिये नही घूमूगा। मै भी प्रव्रजित होऊंगा।" "तात! तू अभी छोटा है। हमारे हाथ का सहारा है। आयु होने पर प्रव्रजित होना।" कुमार ने उत्तर दिया —"आप क्या कहते है? क्या ये प्राणी बचपन मे भी और बूढे होने पर भी नहीं मरते है? यह बचपन मे मरेगा और यह बूढे होने पर मरेगा—इसका किसी के भी हाथ अथवा पॉव में कोई प्रमाण नही। मै अपना मृत्यु-काल नहीं जानता। इस लिए अभी प्रव्रजित होऊंगा।" इतना कह दो गाथाये कही—

**पस्सामि वोहं वहरिं कुमारिं**
**मत्तूपमं केतकपुप्फनेत्तं**
**अभुत्व भोगे पठमे वयस्मिं**
**आदाय मच्चु वजते कुमारिं॥१३॥**
**युवा सुजातो सुमुखो सुदस्सनो**
**सामो कुसुम्भपदिकिण्णमस्सु—**
**हित्वान कामे पटिगच्छ गेहं**
**अनुजान मं, पब्बजिस्सामि देव॥१४॥**

[मैं देखता हूँ कि हास-विलास-युक्त, मस्त, केतक पुष्प के समान विशाल नेत्रों वाली कुमारी को, जिसने काम-भोगो को नही भोगा है, प्रथम-आयु में ही मृत्यु ले कर चल देती है॥१३॥ उसी प्रकार कुलीन, सुन्दर, सुदर्शन, स्वर्ण-वर्ण, तरुण को जिसकी दाढ़ी केसर की तरह बिखरी है, लेकर चल देती है। इसलिए मै काम-

भोगो तथा घर को छोड़कर प्रव्रजित होना चाहता हूँ। आप मुझे अनुज्ञा दे ॥१४॥]

इस प्रकार कह, और "आप रहे, आपके साथ बातचीत करते ही करते व्याधि, जरा, मरण आदि आ पहुंचते है," कह कर उसने दोनो को प्रणाम किया। फिर योजन भर जनता को अनुयाई बना, निकल कर, गंगा-तट पर ही जा पहुंचा। हस्तिपाल ने उसे भी आकाश में बैठ कर धर्मोपदेश दिया। 'बड़ा जन-समूह एकत्र होगा' सुन वह भी वही बैठ गया।

फिर अगले दिन पालथी मारे बैठे पुरोहित ने सोचा—"मेरे पुत्र प्रव्रजित हो गये। अब मै अकेला ही मनुष्य रूपी ठूठ हो कर रह गया हूं। मै भी प्रव्रजित होऊंगा।" यह सोच उसने ब्राह्मणी के साथ विचार-विमर्श करते हुए यह गाथा कही—

**साखाहि रुक्खो लभते समञ्ञं,**
**पहीनसाखं पन खानुं आहु,**
**पहीनपुत्तस्स ममज्ज होति**
**वासेट्ठि भिक्खाचरियाय कालो ॥१५॥**

[शाखा सहित होने से ही पेड को वृक्ष कहते है। शाखा-रहित पेड ठूँठ कहलाता है। हे वासेट्ठि ! इस समय मै पुत्र-विहीन हू। इसलिए यह मेरा प्रव्रजित होने का समय है ॥१५॥]

यह कहकर उसने ब्राह्मणो को बुलवाया। साठ हज़ार ब्राह्मण इकट्ठे हो गये। उसने उन्हे पूछा—"तुम क्या करोगे ?" "और आचार्य्य तुम ?" "मैं तो पुत्र के पास प्रव्रजित होऊगा।" "केवल तुम्हारा ही नरक गर्म नही हुआ है, हम भी प्रव्रजित होगे।" उसने अस्सी-करोड धन ब्राह्मणी को सौपा, योजन-भर ब्राह्मण-जनता साथ ले, निकलकर पुत्र के ही पास पहुंचा। हस्तिपाल ने उस जन-समूह को भी आकाश मे खडे होकर धर्मोपदेश दिया।

फिर अगले दिन ब्राह्मणी सोचने लगी—"मेरे चारो पुत्र श्वेत-छत्र छोड़कर प्रव्रजित होने के लिये चले गये। ब्राह्मण भी पुरोहित-पद और अस्सी करोड़ धन छोड़कर पुत्रों के पास ही गया। मै यहाँ क्या करूंगी। मै भी पुत्रों का ही अनुगमन करूंगी।" उसने पूर्वकालीन उदाहरण को लाते हुए उल्लास गाथा कही—

**अथस्मि कोञ्चा व यथा हिमच्चये**
**तन्तानि जालानि पदालिय हँसा**
**गच्छन्ति पुत्ता च पती च मय्हं,**
**साहं कथं नानुवजे पजानं ॥१६॥**

[जिस प्रकार आकाश मे क्रौच (पक्षी) जाते है, अथवा जिस प्रकार हिमपात के समय हँस जाल को काटकर चले गये, उसी प्रकार मेरे पुत्र और पति मुझे छोड़ कर चले गये। अब मै अपने पुत्रो का अनुकरण कैसे न करूं ? ॥१६॥]

इस प्रकार उसने "मै ऐसे सोचती हुई भी, क्यो न प्रव्रजित होऊं ?" सोच, निश्चय करके, ब्राह्मणियो को बुलवाया और पूछा—"तुम क्या करोगी ?" "और आर्ये ! तुम ?" "मै प्रव्रजित होऊगी।" "हम भी प्रव्रजित होगी।" उसने वह वैभव छोड दिया और योजन-भर अनुयाइयो को साथ ले, पुत्रो के पास ही गई। हस्तिपाल ने उस परिषद को भी, आकाश मे बैठ धर्मोपदेश दिया।

फिर अगले दिन राजा ने पूछा—"पुरोहित कहाँ है ?" "देव ! पुरोहित और उसकी ब्राह्मणी, सारा धन छोड, दो तीन योजन अनुयाइयों को साथ ले, पुत्रों के पास ही चले गये।" "जिस का स्वामी नही, ऐसा सारा धन राजा का होता है", सोच राजा ने उसके घर से धन मँगवा लिया।

तब राजा की पटरानी ने पूछा, "राजा, क्या करता है ?" उत्तर मिला—"पुरोहित के घर से धन मंगवा रहा है।" तब प्रश्न किया—"पुरोहित कहाँ है ?" उत्तर मिला—"सपत्नीक प्रव्रज्या के लिए निकल पडा है।" यह बात सुनी, तो पटरानी ने सोचा—"यह राजा ब्राह्मण, ब्राह्मणी तथा चार पुत्रों द्वारा परित्यक्त मल और थूके गये थूक को, मोह से मूढ होने के कारण, अपने घर उठवा कर मंगवा रहा है। इसे उपमा द्वारा समझाऊगी।" उसने कसाई-घर से माँस मगवाया, राजागन में ढेर लगवा दिया, और सीधा-रास्ता छोड जाल तनवा दिया। गीध दूर से ही देख कर माँस के लिये उतरे। उनमें जो बुद्धिमान थे, उन्होने जाल फैला देख सोचा कि भारी हो जाने पर हम सीधे न उड सकेंगे। वे खाया हुआ मास भी छोड, जाल में न फँस, सीधे उडकर ही चले गये। किन्तु जो अन्धे-मूर्ख थे,

उन्होंने उनका परित्यक्त, वमित माँस खाया और भारी हो जाने के कारण सीधे न उड़ सके। वे जाकर जाल में फँस गये।

तब एक गीध लाकर रानी को दिखाया गया। उसने उसे लिया और राजा के समीप जाकर बोली, "महाराज आये, राजागन मे एक तमाशा देखें।" उसने झरोखा खोला और "महाराज, इन गीधो को देखे," कह दो गाथायें कही—

**एते भुत्वा वमित्वा च पक्कमन्ति विहंगमा**
**ये च भुत्वा न वमिंसु ते मे हत्थत्थं आगता ॥१७॥**
**अवमी ब्राह्मणो कामे, ते त्वं पच्चावमिस्ससि**
**वन्तादो पुरिसो राज न सो होति पसंसियो ॥१८॥**

[इनमे जो खाकर वमन कर दे रहे है, वे पक्षी उड जा रहे है, और जो खाकर वमन नही कर सकते, वे मेरे हाथ मे आ फसे ॥१७॥ ब्राह्मण ने जिन काम-भोगों का तिरस्कार किया, उन्हे तू उपभोग करने जा रहा है। हे राजन्! वमन किये हुए को खाने वाले की प्रशसा नही होती ॥१८॥]

यह सुन राजा को पश्चाताप हुआ। उसे तीनो भव जलते हुए प्रतीत हुए। उसने सोचा कि मुझे आज ही राज्य छोड कर प्रव्रजित हो जाना चाहिए। उसके मन में वैराग्य पैदा हो गया। तब उसने देवी की प्रशंसा करते हुए यह गाथा कही—

**पंके व पोसं पलिपे व्यसन्नं**
**बली यथा दुब्बलं उद्धरेय्य**
**एवं पि मं त्वं उदतारि भोति**
**पञ्चालि गाथाहि सुभासिताहि ॥१९॥**

[जैसे कोई बलवान् आदमी कीचड अथवा दलदल मे फँसे किसी दुर्बल मनुष्य का उद्धार कर दे, उसी प्रकार हे पञ्चाली! तूने सुभाषित गाथाओं द्वारा मेरा उद्धार कर दिया है ॥१९॥]

यह कह और उसी क्षण प्रव्रजित होने की इच्छा से उसने अमात्यो को बुलाकर पूछा—"तुम क्या करोगे?" "और देव! आप?" "मै हस्तिपाल के समीप प्रव्रजित होऊँगा।" "देव! हम भी प्रव्रजित होगे।" राजा ने बारह योजन के

वाराणसी नगर का राज्य छोड दिया और घोषणा कर दी कि जिन्हें जरूरत हो वे श्वेत-छत्र धारण करें। वह तीन-योजन अनुयाइयों के साथ कुमार के ही पास पहुंचा। कुमार ने उसकी परिषद् को भी आकाश मे बैठ धर्मोपदेश दिया।

शास्ता ने राजा के प्रव्रजित होने की बात को प्रकाशित करते हुए यह गाथा कही—

**इदं वत्वा महाराज एसुकारी दिसम्पति**
**रट्ठं हित्वान पब्बजि नागो छेत्वा व बधनं ॥२०॥**

[यह कहकर दिशा-पति महाराज एसुकारी उसी प्रकार राष्ट्र छोडकर प्रव्रजित हो गया, जैसे हाथी बंधन को काट डालता है ॥२०॥]

फिर एक दिन नगर में अवशिष्ट जनों ने इकट्ठे हो, राजद्वार पहुच, देवी को सूचना करा, राज-भवन में प्रवेश कर, देवी की वन्दना की और एक ओर खडे हो यह गाथा कही—

**राजा च पब्बज्जं अरोचयित्थ**
**रट्ठं पहाय नरविरियसेट्ठो,**
**तुवम्पि नो होहि यथेव राजा**
**अम्हेहि गुत्ता अनुसास रज्जं ॥२१॥**

[राजा को प्रव्रज्या अच्छी लगी। वह नरवीर्यश्रेष्ठ राज छोडकर चला गया। अब तुम हमारी वैसी ही 'राजा' बन जाओ। हमारे द्वारा सुरक्षित रहकर राज्यानुशासन करो ॥२१॥]

उसने जनता का कहना सुन शेष गाथायें कही—

**राजा च पब्बज्जं आरोचयित्थ**
**रट्ठं पहाय नरविरियसेट्ठो**
**अहं पि एका चरिस्सामि लोके**
**हित्वान कामानि मनोरमानि ॥२२॥**
**राजा च.....**
**हित्वान कामानि यथोधिकानि ॥२३॥**

**अच्चेन्ति काला तरयन्ति रत्तियो,**
**वयोगुणा अनुपुब्बं जहन्ति,**
**अहं पि एका चरिस्सामि लोके**
**हित्वान कामानि मनोरमानि ॥२४॥**
**अच्चेन्ति .....**
**हित्वान कामानि यथोधिकानि ॥२५॥**
**अच्चेन्ति .....**
**सीतिभूता सब्बं अतिच्च संगं ॥२६॥**

[राजा को प्रव्रज्या अच्छी लगी। वह नरवीर्य्य श्रेष्ठ राज्य छोडकर चला गया। मै भी मनोरम काम-भोगों को छोडकर लोक में अकेली विचरूंगी ॥२२॥ राजा को.....। मै भी नाना प्रकार के काम-भोगो को छोडकर लोक मे अकेली विचरूगी ॥२३॥ काल चला जाता है, राते गुजर जाती है, आयु क्रमानुसार व्यतीत हो जाती है। मै भी मनोरम काम-भोगों को छोडकर लोक मे अकेली विचरूंगी ॥२४॥ काल चला जाता है.....। मै भी नाना प्रकार के काम-भोगो को छोडकर लोक में अकेली विचरूगी ॥२५॥ काल चला जाता है.....। मै भी सारी आसक्तिओं को छोड शान्त-चित्त हो लोक मे अकेली विचरूगी ॥२६॥]

इस प्रकार उसने इन गाथाओं से जनता को धर्मोपदेश दे अमात्य भार्य्याओं को बुलवाकर पूछा—"तुम क्या करोगी?" "और आर्ये तुम?" "मै प्रव्रजित होऊंगी।" "हम भी प्रव्रजित होगी।" उसने 'अच्छा' कह राजभवन के स्वर्णागार आदि खुलवाये और फिर "अमुक स्थान पर बडा खजाना गडा है," सोने की पाटी पर लिखवा कर घोषणा की कि "यह दिया ही है, (लेने वाले) ले जायँ।" फिर उस सोने की पट्टी को ऊँचे पर खम्भे मे बंधवाकर नगर में मुनादी करवा, महान सम्पत्ति छोड, नगर से निकल पडी। उस समय सारे नगर में खलबली मच गई। लोग सोचने लगे—"राजा और देवी राज्य छोडकर प्रव्रजित होने के लिये चले गये, अब हम क्या करें?" तब लोग भरे-भराये घर छोड, पुत्रो को हाथ में ले निकल पडे। तमाम दुकाने खुली की खुली रह गई। लौटकर कोई देखने वाला न था। सारा नगर खाली हो गया। देवी भी तीन-योजन अनुयाइयो को लेकर वही पहुंची।

स्तिपाल कुमार ने उसके अनुयाइयो को भी आकाश मे बैठ धर्मोपदेश दिया। फिर ारह योजन अनुयाइयों को साथ ले हिमवन्त की ओर चल दिया। "जब हस्तिपाल मार बारह योजन की वाराणसी को खाली करके, प्रव्रजित होने के लिए, नता को लेकर हिमाचल चला जा रहा है, तो हमारी क्या गिनती है," सोच ारे काशी राष्ट्र मे खलबली मच गई। आगे चल कर तीस योजन अनुयायी हो ये। वह उन अनुयाइयो को ले हिमालय मे प्रविष्ट हुआ।

शक्र ने ध्यान लगाकर देखा तो उसे पता लगा कि हस्तिपाल कुमार अभि- ष्क्रमण कर निकल पडा। उसने सोचा, बडी भीड़ होगी। निवासस्थान की ावस्था होनी चाहिये। शक्र ने विश्वकर्मा को बुलाकर आज्ञा दी, "जा, छत्तिस योजन म्बा और पन्द्रह योजन चौडा आश्रम बनाकर उसमे प्रव्रजितों की आवश्यकतायें ाकर रख।" उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और गगा-तट पर रमणीय देश मे उक्त लम्बाई-चौडाई का आश्रम बना दिया। फिर पर्णशालाओ मे पीढे, ासन आदि बिछा कर प्रव्रजितो की सभी आवश्यकताओ की व्यवस्था की। एक क पर्णशाला के द्वार पर एक एक चन्क्रमण-भूमि, रात्रि और दिन के लिये, चूना ा सहारे का पटडा, उन उन जगहो पर नाना प्रकार के सुगन्धित पुष्पो से लदे ए पुष्प-वृक्ष, एक एक चन्क्रमण-भूमि के सिरे पर एक एक पानी भरा कुआँ, उनके स एक एक फल-वृक्ष। वह (वृक्ष) अकेला ही सभी प्रकार के फल देता था। यह सब श-प्रताप से हुआ। विश्वकर्मा ने आश्रम का निर्माणकर, पर्णशालाओ मे प्रव्रजितो ा आवश्यकताये रख, दीवार पर अक्षर लिखे, "जो कोई भी प्रव्रजित होना चाहे, ा प्रव्रजितों की आवश्यकताओ को ले ले।" फिर अपने प्रताप से भयानक शब्द, ा, पक्षी, दुर्दर्शनीय अमनुष्यो को दूर करके अपने स्थान को ही चला गया।

हस्तिपाल कुमार ने डण्डी डण्डी जाकर शक्र के दिये हुए आश्रम मे प्रवेश किया ार लिखे अक्षरों को देख, सोचा "शक्र ने मेरे महान् अभिनिष्क्रमण की बात ान ली होगी।" उसने द्वार खोल, पर्णशाला मे प्रवेश किया और ऋषियो के ढग ा प्रव्रज्या के चिह्नो को लेकर निकल पडा। फिर चन्क्रमण-भूमि मे उतर, कई र इधर उधर जा, सारी जनता को प्रव्रजित कर, आश्रम का विचार किया। ब तरुण पुत्रों और स्त्रियो को बीच की जगह में पर्णशाला दी, उसके बाद बूढ़ी

स्त्रियों को, उसके बाद बाँझ स्त्रियो को, और अत मे चारो ओर घेर कर पुरुषो को स्थान दिया।

तब एक राजा यह सुन कि वाराणसी मे राजा नही है, आया। उसने सजे-सजाये नगर को देख, राज-भवन में चढ, वहाँ जहाँ-तहाँ रतनो के ढेर देख सोचा, "इस प्रकार के नगर को छोड प्रव्रजित होने के समय से यह प्रव्रज्या महान होगी"। उसने एक पियक्कड से मार्ग पूछा और हस्तिपाल के पास ही चला गया। हस्तिपाल को जब पता लगा कि वह वन के सिरे पर आ पहुचा है, तो अगवानी कर, आकाश में बैठ धर्मोपदेश दे, आश्रम ला, सभी लोगो को प्रव्रजित किया। इसी प्रकार और भी छ. राजा प्रव्रजित हुए। सात राजाओ ने सम्पत्ति छोडी। छत्तिस-योजन का आश्रम सारा का सारा भर गया। जो काम-वितर्क आदि वितर्को मे से किसी सकल्प को मन में जगह देता, महापुरुष उसे धर्मोपदेश दे ब्रह्म-विहार और योग-विधि बताते। उनमे से अधिकाश ध्यान तथा अभिञ्ञा प्राप्त कर तीन हिस्सो मे से दो हिस्से ब्रह्मलोक मे उत्पन्न हुए। फिर तीसरे हिस्से के तीन हिस्से करके, एक हिस्सा ब्रह्म लोक मे पैदा हुआ, एक छ काम-लोको मे, एक ऋषियो की सेवाकर मनुष्य लोक मे तीनो कुशल सम्पत्तियो मे पैदा हुए। इस प्रकार हस्तिपाल के शासन मे न कोई नरक म पैदा हुआ, न कोई पशु होकर पैदा हुआ, न कोई प्रेत होकर पैदा हुआ और न कोई असुर हो कर पैदा हुआ।

इस ताम्रपर्णी द्वीप मे पृथ्वी-चालक धर्मगुप्त स्थविर, कटकन्धकार वासी पुष्यदेव स्थीवर, उपरिमण्डलकमलयवासी महासंघ-रक्षित स्थविर, मलिमहा-देव स्थविर, भग्गिरिवासी महादेव स्थविर, वामन्तपब्भारवासी महासीव स्थविर, काळवल्लि मण्डपवासी महानाग स्थविर, कुद्दाल समागम मे, मूग-पक्ष समागम मे, चूळसुतसोम समागम मे, अयोघरपण्डित समागम मे और हस्तिपाल समागम मे सब से पीछे निकले हुए पुरुष हुए। इसी लिये भगवान ने कहा है—

**अभित्थरेथ कल्याणे—(धम्मपद ११६)**

[शुभ कर्म मे प्रवृत्त हो] अर्थात् शुभ-कर्म शीघ्र शीघ्र करना चाहिये।] शास्ताने यह धर्म-देशना ला, "भिक्षुओ, न केवल अभी, किन्तु पहले भी

तथागत ने अभिनिष्क्रमण किया ही है" कह जातक का मेल बैठाया। उस समय एसुकारी सुद्धोधन महाराजा था, देवी महामाया, पुरोहित काश्यप, ब्राह्मणी भद्रकापिलानी, अजपाल अनुरुद्धो, गोपाल मौद्गल्यायन, अश्वपाल सारिपुत्र, शेष परिषद् बुद्ध-परिषद् और हस्ति-पाल तो मै ही था।

# ५१० अयोघर जातक

"यमेकरत्ति पठम....."यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय महा-निष्क्रमण के ही बारे मे कही। उस समय भी "भिक्षुओ न केवल अभी किन्तु पहले भी तथागत ने महा-निष्क्रमण किया ही है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

## वर्तमान कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, राजा की पटरानी ने गर्भ धारण कर, गर्भ-काल की आवश्यकतायें प्राप्त कर, गर्भ-परिपाक हो जाने पर, प्रातः काल के समय पुत्र को जन्म दिया। उसके पूर्व-जन्म की एक सपत्नी ने "तेरे पुत्रों को खाऊँगी" प्रार्थना कर रखी थी। वह स्वय बाँझ थी। इस लिये उसने पुत्र वाली माता के प्रति क्रोध होने के कारण वह प्रार्थना की थी। वह यक्षिणी होकर पैदा हुई। दूसरी ने राजा की पटरानी होकर पुत्र को जन्म दिया। उस यक्षिणी को जब अवसर मिला तो वह देवी के देखते ही देखते वीभत्स रूप धारण करके वहाँ पहुँची और उस बच्चे को लेकर भाग गयी। देवी बड़े जोर से चिल्लायी—"यक्षिणी मेरे पुत्र को लेकर भागी जा रही है।" दूसरी ने भी बच्चे को मूली की तरह खा डाला और देवी को हाथो के तर्जन से डरा धमका कर चली गई। राजा ने सुना तो चुप हो गया कि यक्षिणी का क्या किया जा सकता है? दूसरी बार देवी के प्रसव का समय होने पर कडा पहरा बिठाया।

देवी ने दुबारा पुत्र को जन्म दिया। यक्षिणी आकर उसे भी खा गई। तीसरी बार उसकी कोख में महासत्व ने जन्म ग्रहण किया। राजा ने लोगों को बुला कर पूछा—"देवी की हर सतान को एक यक्षिणी खा जाती है। क्या करना चाहिये ?" एक बोला—"यक्ष ताड-पत्र से डरते है। देवी के हाथ पाँव मे ताड-पत्र बाँध देना चाहिये।" एक दूसरा बोला—"लोह के घर से डरते है। लोहे का घर बनवाना चाहिये।" राजा ने 'अच्छा' कह अपनी राज्य-सीमा के कारीगरो को बुला कर आज्ञा दी कि "लोहे का घर" बनाओ और उन पर निरीक्षक नियुक्त किये। नगर के भीतर ही रमणीय प्रदेश मे घर की स्थापना की। खम्भो से लेकर घर की सभी चीजे लोहे की ही थी। नौ महीनो मे बडा भारी चौकोर भवन बनकर समाप्त हुआ। वह नित्य-प्रज्वलित प्रदीप के समान था।

राजा को जब पता लगा कि देवी का गर्भ परिपक्व हो गया, तो उसने लोह के घर को सजवाया और देवी को लेकर लोहे के घर मे प्रवेश किया। उसने वहा धन तथा पुण्य के लक्षण वाले पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम लोह-गृह कुमार ही रखा गया। उसे दाइयो को सौप, कडा पहरा बिठा, राजा ने देवी को साथ ले, नगर की प्रदक्षिणा की और अलकृत प्रासाद मे जा चढा। यक्षिणी की भी पानी लाने की बारी आई और वह कुबर के लिये पानी लाते समय मृत्यु को प्राप्त हो गई।

बोधिसत्व लोह-गृह मे ही बढ़े हुए, होश सभाली और वहीं तमाम शिल्प सीखे। राजा ने अमात्यो से पूछा—"मेरा पुत्र कब आयु-प्राप्त (बालिग) हो जायगा ?" देव! सोलह वर्ष का होने पर शूर, शक्तिशाली हो जायगा। हजार यक्षो को भी रोक सकेगा।" यह सुन राजा ने निश्चय किया कि अब इसे राज्य दूगा। उसने सारे नगर को अलकृत करा, आज्ञा दी कि उसे लोह-गृह से निकाल कर ले आओ। अमात्यो ने "देव, अच्छा" कहा और बारह योजन की वाराणसी को अलकृत करा, सभी अलकारो से विभूषित मगल-हाथी को लेकर वहाँ पहुचे और कुमार को अलकृत करा, हाथी के कन्धे पर बिठा कर बोले—"देव! कुल-प्राप्त अलकृत नगर की प्रदक्षिणा कर, काशीराज पिता की वन्दना करे। आज ही श्वेत-छत्र प्राप्त होगा।" बोधिसत्व ने नगर की प्रदक्षिणा करते समय रमणीय आराम,

रमणीय वर्ण रमणीय पुष्करिणी, रमणीय भूमि, तथा रमणीय प्रासाद आदि देखकर सोचा और अमात्यो से पूछा—"मेरे पिता ने मुझे इतना समय कारागार मे रखा। इस प्रकार का अलकृत नगर देखने नही दिया। मेरा क्या अपराध है?" "देव! तुम्हारा अपराध नही है। तुम्हारे दो भाइयो को एक यक्षिणी खा गई। इसी से तुम्हे पिता ने लोह-गृह मे रक्खा। लोह-गृह से ही तुम्हारे प्राण की रक्षा हुई।" उसने उनकी बात सुन विचार किया—"मै दस महीने तक लोह-कुम्भी नरक मे रहने की तरह अथवा गूह-नरक मे रहने की तरह माता की कोख मे रहा। माता की कोख से निकलने के समय से सोलह वर्ष तक इस कारागार मे रहा। बाहर देखना तक नही मिला। यक्षिणी से बचकर भी मै न अजर हूं और न अमर हूं। मै राज्य लेकर क्या करूंगा? राज्य पर प्रतिष्ठित होने के बाद उसे छोडना कठिन होता है। आज ही मै पिता से आज्ञा ले, हिमालय मे प्रवेश कर, प्रव्रजित होऊंगा।' उसने नगर की प्रदक्षिणा की और राजभवन मे प्रविष्ट हो राजा को नमस्कार करके खडा हुआ। राजा ने उसका शरीर-सौन्दर्य्य देख, अत्यन्त स्नेह से अमात्यो की ओर देखा। वे बोले—"देव! क्या आज्ञा है?" "मेरे पुत्र को रत्नो के ढेरपर प्रतिष्ठित कर, तीन शङ्खो से अभिषेक कर, स्वर्णमाला तथा श्वेत-छत्र धारण कराओ।" बोधिसत्व ने पिता को नमस्कार करके निवेदन किया—"मुझे राज्य नही चाहिये। मै प्रव्रजित होऊंगा। मुझे प्रव्रजित होने की आज्ञा दे।" "तात! राज्य छोडकर प्रव्रजित क्यो होते हो?" "देव! मै माता की कोख मे दस महीने तक गूह-नरक मे रहने की तरह रहकर, कोख से निकलने पर यक्षिणी के भय से सोलह वर्ष तक कारागार मे रहा। उस समय बाहर झाकना तक नही मिला। ऐसा हुआ मानो उस्सद-नरक मे डाल दिया गया होऊ। यक्षिणी से मुक्त हो जाने पर भी मै अजर-अमर नही हो गया। मृत्यु को कोई नही जीत सकता। मै (तीनो) भवो से विरक्त हू। जब तक बुढापा और मृत्यु नही आते, तभी तक मै प्रव्रजित होकर धर्माचरण करूगा। मुझे राज्य नही चाहिये। देव! मुझे अनुज्ञा दे।" इतना कह उसने पिता को धर्मोपदेश देते हुए यह गाथाये कही—

**यं एकरत्तिं पठमं गब्भे वसति मानवो**
**अब्भ' उट्ठितो व सयति स गच्छं न निवत्तति ॥१॥**

[जो भी मानव माता के गर्भ मे एक रात रहता है, वह उठे हुए बादल की तरह रहता है, आगे जाकर, पीछे नही लौटता ॥१॥]

**न युज्झमाना न बलेन वस्सिता**
**नरा न जीरन्ति न चापि मीयरे,**
**सब्बं हि तं जाति जरायुपट्टतं,**
**तं मे मती होति चरामि धम्मं ॥२॥**

[न योधा और न बलवान ही जरा तथा मृत्यु से बचते है। मेरी मति है कि सभी जाति तथा जरा के आधीन है, इसलिये मै धर्माचरण करूगा ॥२॥]

**चतुरंगिनिं सेनं सुभिसरूपं**
**जयन्ति रट्ठाधिपती पसय्ह**
**न मच्चुनो जयितुं उस्सहन्ति,**
**तं मे..... ॥३॥**

[कोई कोई राजा बल से रुद्र चतुरगिनी सेना तक को भी जीत लेते है, किन्तु वे मृत्यु को जीतने की बात नही सोच सकते। मेरी . . . ॥३॥]

**हत्थीहि अस्सेहि रथेहि पत्तिहि**
**परिवारिता मुच्चरे एकचेय्थे,**
**न मच्चुनो मुच्चितुं उस्सहन्ति, इत्यादि ॥४॥**

[कोई कोई हाथी, घोडो, रथो और पैदल-सेना से घिरे होने पर बच जाते है। किन्तु कोई भी मृत्यु से बचने का साहस नही कर सकता ॥४॥]

**हत्थीहि अस्सेहि रथेहि पत्तिहि**
**सूरा पभञ्जन्ति पधंसयन्ति**
**न मच्चुनो भञ्जितुं उस्सहन्ति ॥५॥**

[वीर-पुरुष हाथी, घोडो, रथो और पैदल-सेना की सहायता से शत्रु

पक्ष को तोड डालते है, नष्ट कर डालते है। किन्तु, वे मृत्यु को तोड़ने का साहस नहीं कर सकते ॥५॥]

**मत्ता गजा भिन्नगळा पभिन्ना**
**नगरानि मद्दन्ति जनं हनन्ति**
**न मच्चुनो मद्दितुं उस्सहन्ति ॥६॥**

[गडस्थल से मद बहाने वाले मस्त हाथी नगरों का मर्दन कर डालते है और लोगो की हत्या कर डालते है। किन्तु, वे भी मृत्यु का मर्दन करने का साहस नही कर सकते ॥६॥]

**इस्सासिनो कतहत्थापि धीरा**
**दूरेपाती अक्खणवेधिनोपि**
**न मच्चुनो विज्झितुं उस्सहन्ति ॥७॥**

[धैर्यवान, कुशाल, दूर तक मार सकने वाले तथा निशाना न चूकने वाले धनुर्धारी भी मृत्यु को बीधने का साहस नही कर सकते ॥७॥]

**सरानि खीयन्ति ससेलकानना**
**सब्बं हि तं खीयति दीघं अन्तरं**
**सब्बं हि तं भञ्जरे कालपरियायं, इत्यादि ॥८॥**

[सरोवर क्षय को प्राप्त हो जाते है, शैल भी और कानन भी। सभी कुछ दीर्घ समय पाकर क्षय को प्राप्त हो जाता है। सभी कुछ काल के आधीन होने से टूट-फूट जाता है ..... ॥८॥]

**सब्बेसं एवं हि नरानारोनं**
**चलाचलं पाणभुनोध जीवितं**
**पटोवं धुतस्स दुमो व कूलजो, इत्यादि ॥९॥**

[सभी स्त्री-पुरुषो तथा प्राणियो का जीवन चचल है, जैसे सुरापान करने वाले के शरीर का वस्त्र और नदी-तट का वृक्ष .... ॥९॥]

**दुमप्फलानेव पतन्ति मानवा**
**दहरा च वुद्धा च सरीरभेदा**
**नरियो नरा मज्झिमपोरिसा च, इत्यादि ॥१०॥**

[छोटे, बड़े, तथा मध्यम आकार के नर और नारी—सभी वृक्षों से फलों के गिरने की भाति (मृत्यु के मुह मे) गिरते है ॥१०॥]

**नायं वयो तारकराजसन्निभो,**
**यदब्भतीतं गतं एव दानि तं**
**जिण्णस्स ही नत्थि रती कुतो सुखं, इत्यादि ॥११॥**

[यह आयु चन्द्रमा के समान घटकर फिर बढने वाली नही है। जो गुजर गई, वह अब गुजर ही गई। बृद्धावस्था मे रति ही नही रहती, और सुख तो कहाँ रहेगा . ॥११॥]

**यक्खा पिसाचा अथवापि पेता**
**कुपिता पि ते अस्ससन्ती मनुस्से**
**न मच्चुनो अस्ससितुस्सहन्ति, इत्यादि ॥१२॥**

[यक्ष, पिशाच और प्रेत क्रोधित होने पर, मनुष्यो को फूक से मार डालते है। वे भी मृत्यु को फूक से मार डालने के लिये उत्साहित नही होते.. ॥१२॥]

**यक्खे पिसाचे अथवापि पेते**
**कुपिते पिते निज्झपनं करोन्ति**
**न मच्चुनो निज्झपनं करोन्ति इत्यादि ॥१३॥**

[यक्ष, पिशाच और प्रेत कुपित होने पर भी बलिकर्म आदि द्वारा शात हो हो जाते है। किन्तु मृत्यु की शाति नही होती ॥१३॥]

**अपराधके दूसके हेठके च**
**राजानो दण्डेन्ति विदित्व दोसं,**
**न मच्चुनो दण्डयितुस्सहन्ति, इत्यादि ॥१४॥**

[राजागण अपराधियों, दोषियो तथो दूसरो को पीडा पहुंचाने वालो के दोष जान उन्हे दण्ड देते है। किन्तु, वे मृत्यु को दण्ड देने को उत्साहित नही होते ॥१४॥]

**अपराधका दूसका हेठका च**
**लभन्ति ते राजिनो निज्झवेतुं**
**न मच्चुनो निज्झपनं करोन्ति, इत्यादि ॥५५॥**

[अपराधियों, दोषियों तथा दूसरों को कष्ट देने वालों को राजाओं से क्षम मिल जाती है। किन्तु मृत्यु से क्षमा नही मिलती ॥१५॥]

**न खत्तियो ति न पि ब्राह्मणो ति,**
**न अड्ढका बलवा तेजवापि—**
**न मच्चुराजस्स अपेक्खमत्थि, इत्यादि ॥१६॥**

[न क्षत्रिय, न ब्राह्मण, न धनी, न बलवान् और न किसी तेजवान् की ही मृत्यु-राज को परवाह है ॥१६॥]

**सीहा च व्यग्घा च अथोपि दीपियो**
**पसय्ह खादन्ति विप्फन्दमानं**
**न मच्चुनो खादितुं उस्सहन्ति, इत्यादि ॥१७॥**

[सिह, व्याघ्र और चीते भागने वाले को जबर्दस्ती खा जाते है। किन्तु वे भी मृत्यु को खाने का साहस नही रखते ॥१७॥]

**मायाकारा रंगमज्झे करोन्ता**
**मोहेन्ति चक्खूनि जनस्स तावदे,**
**न मच्चुनो मोहयितुस्सहन्ति, इत्यादि ॥१८॥**

[जादूगर रगभूमि मे मायावी-पन दिखाकर उसी क्षण जनता को मुग्ध कर लेते है। किन्तु वे भी मृत्यु को मुग्ध नही कर सकते ॥१८॥]

**आसिविसा कुपिता उग्गतेजा**
**डसन्ति मारेन्ति पि ते मनुस्से**
**न मच्चुनो डसितुं उस्सहन्ति, इत्यादि ॥१९॥**

[क्रुद्ध, तेजस्वी सर्प आदमियों को डसते है और उन्हें मार भी डालते है किन्तु, वे मृत्यु को डसने का साहस नही रखते ॥१९॥]

**आसीविसा कुपिता यं डसन्ति**
**तिकिच्छका तेसं विसं हनन्ति**
**न मच्चुनो दट्ठविसं हनन्ति ॥२०॥**

[क्रुद्ध, तेजस्वी सर्प जिसे डस लेते है चिकित्सक उसका विष नष्ट कर देते है। किन्तु मृत्यु रूपी डक के विष को कोई नष्ट नही करता . ॥२०॥]

**धम्मन्तरी वेतरणी च भोजो**
**विसानि हन्त्वान भुजंगमानं**
**सूयन्ति ते कालकता तथेव, इत्यादि ॥२१॥**

[सुना जाता है कि धन्वन्तरी, वेतरणी और भोज नामक वैद्यो ने सर्पो के विष को नष्ट किया, किन्तु उनका मरना भी वैसे ही (सर्पो के काटने से ही) हुआ ॥२१॥]

**विज्जाधरा घोरं अधीयमाना**
**अदस्सनं ओसधेहि वजन्ति,**
**न मच्चुराजस्स वजन्तदस्सनं, इत्यादि ॥२२॥**

[घोर-विद्या के अभ्यासी जादूगर, औषधि ले कर शत्रु से अदृश्य हो जाते थे। वे मृत्यु-राज से अदृश्य नही होते ॥२२॥]

**धम्मो हवे रक्खति धम्मचारिं**
**धम्मो सुचिण्णो सुखं आवहाति,**
**एसानिसंसो धम्मे सुचिण्णे**
**न दुग्गतिं गच्छति धम्मचारी ॥२३॥**

[धर्म धर्मचारी की रक्षा करता है। आचरण किया हुआ धर्म सुख-दायक होता है। भलि प्रकार आचरण किये गये धर्म का येह फल है कि धर्मचारी कभी दुर्गति को प्राप्त नही होता ॥२३॥]

**न हि धम्मो अधम्मो च उभो समविपाकिनो,**
**अधम्मो निरयं नेति, धम्मो पापेति सुग्गतिं ॥२४॥**

[धर्म और धर्म दोनो का समान फल नही होता। अधर्म नरक ले जाता है, धर्म सुगति प्राप्त कराता है ॥२४॥]

इस प्रकार बोधिसत्व चौबीस गाथाओ से पिता को उपदेश देकर बोला "महाराज, आपका राज्य आपका ही रहे। मुझे इसकी अपेक्षा नही है। आपके

साथ बात करते ही करते व्याधी, जरा, मरण पास चले आते है। आप रहे।" इतना कह लोहे की जजीर तोड डालने वाले मस्त हाथी की तरह, सुनहरी पिञ्जरा तोड डालने वाले सिह के बच्चे की तरह, काम-भोगो को छोड, माता पिता को प्रणाम कर चल दिया।

उसका पिता भी 'मुझे भी राज्य नही चाहिये' कह राज्य छोड उसके साथ ही निकल पडा। उसके निकलने पर देवी, अमात्य, ब्राह्मण, गृहपति आदि और समस्त नगरवासी घर छोड छोड कर निकल पडे। बडा सम्मेलन हुआ। अनुयाई बारह-योजन तक थे। उन्हे ले बोधिसत्व ने हिमालय मे प्रवेश किया। शक्र ने उसके अभिनिष्क्रमण की बात जान, विश्वकर्मा को बुला भेजकर आज्ञा दी—"बारह योजन लम्बा और सात योजन चौडा आश्रम बनाओ।" प्रव्रजितो की सभी आवश्यकताओ लाकर दी। उसके आगे बोधिसत्व की प्रव्रज्या, प्रवचन, ब्रह्मलोकगामी होना तथा परिषद् का नरक-गामिता से बचे रहना, सभी कुछ ऊपर लिखे अनुसार ही।

शास्ता ने इस प्रकार यह धर्म-देशना ला, "भिक्षुओ, तथागत ने पहले भी महाभिनिष्क्रमण किया ही है, कह "जातक का मेल बैठाया। उस समय के माता-पिता राजकुल वाले ही थे। परिषद् बुद्ध-परिषद् ही थी। अयोघर पण्डित तो मै ही था।

## ५११. किंछन्द जातक

"किं छन्दो किं अधिप्पायो..... "यह शास्ता ने जेतवन मे उपोसथ-कर्म के बारे मे कही।

## क. वर्तमान कथा

एक दिन जब बहुत से उपासक, उपासिकाएं, उपोसथ-व्रती, धर्म सुनने के लिये आकर बैठे थे, शास्ता ने पूछा—उपासको, क्या उपोसथ-व्रत रखा है?" "भन्ते! हां!" "अच्छा किया, जो उपोसथ-व्रत किया। पुराने लोगों को आधे उपोसथ-व्रत के प्रताप से बहुत यश प्राप्त हुआ।' इतना कह उनके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

## ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय एक श्रद्धावान दान, शील तथा उपोसथ-कर्म में अप्रमादी था। उसने दूसरे अमात्य आदियों से भी दान का अनुमोदन कराया। किन्तु उसका पुरोहित था कि चुगलखोर, रिश्वत-खोर और मुकद्दमे का गलत निर्णय करने वाला। उपोसथ-व्रत के दिन राजा ने अमात्य आदि को बुलाकर उपोसथ-व्रत रखने के लिये कहा। पुरोहित ने उपोसथ-व्रत नहीं रखा। उसने दिन में रिश्वत ले, गलत निर्णय किया था। जब वह राजा के दर्शनार्थ आया तो राजा ने अमात्यों से "तुमने उपोसथ-व्रत रखा है?" पूछते हुए उससे भी पूछा—आचार्य! क्या तुमने भी उपोसथ-व्रत रखा है? उसने झूठ-मूठ "हां" कहा और प्रासाद से उतरा।

तब उस पर एक अमात्य ने दोषारोपण किया—'क्या तुम उपोसथ के अव्रती नहीं हो?" उसने उत्तर दिया—"मैंने समय से ही भोजन कर लिया है। अब घर जाकर मुंह धोकर उपोसथ-व्रत ग्रहण करूंगा और शाम को खाना नहीं खाऊंगा। रात को शील का पालन करूंगा। इस प्रकार मेरा आधा-व्रत होगा।" "आचार्य! अच्छा।" उसने घर जाकर वैसा किया।

फिर एक दिन उसके न्यायाधीश के आसन पर बैठे रहने के समय एक सदाचारी स्त्री मुकद्दमे में बझी रहने के कारण घर न जा सकी। उसने सोचा 'मैं उपोसथ-कर्म का अतिक्रमण नहीं करूंगी।' समय समीप होने पर उसने मुख-प्रक्षालन आरम्भ किया। उस समय उस ब्राह्मण के पास पके हुए आमों में से एक आम लाया गया।

उसने उस के व्रत की बात जान कर कहा—'इसे खाकर व्रती बनो।" उसने वैसा ही किया। बस इतना ही इस ब्राह्मण का (शुभ-) कर्म था।

वह आगे चलकर, मरने पर, हिमालय प्रदेश मे, कोसिकी नदी के किनारे, तीन योजन के आम्रवन मे, रमणीय भूमि मे, सौभाग्यवान जगह मे, स्वर्णवर्ण विमान मे, अलकृत शयनागार मे, सोकर उठने की तरह पैदा हुआ। वह सजा-सजाया था, उत्तम रूपधारी था, सोलह हजार देवकन्याओं से घिरा हुआ था। वह केवल रात को ही उस शरीर—सम्पति का आनन्द लेता था। वैमानिक प्रेत-भाव के अनुरूप ही उसके कर्म का उसे वह प्रतिफल मिला था। इसलिए अरूणोदय होते ही आम्रवन मे प्रवेश करता। प्रविष्ट होते ही उसका दिव्य—जन्म अन्तर्धान हो जाता। अस्सी ताड लम्बा शरीर प्रादुर्भूत होता। सारा शरीर जलने लगता। ऐसा होता मानो किसुक फूल खिला हो। दोनों हाथों मे केवल एक एक अगुली। उन मे बडी कुदाल जैसे नाखून। उन नाखूनों से अपनी ही पीठ का माँस चीर कर, निकाल कर खाता हुआ, वह वेदना से पीडित होकर जोर जोर से चिल्लाता हुआ, बहुत दुख अनुभव करता। सूर्य्यास्त होने पर वह शरीर अन्तर्धान हो जाता। और उसकी जगह दिव्य—शरीर प्रकट होता। सजी सजाई दिव्य नर्तकियाँ नाना प्रकार के वाद्य लेकर घेर लेती। वह महान सम्पति को भोगता हुआ दिव्य आम्रवन मे दिव्य प्रासाद पर चढता।

इस प्रकार उस उपोसथ-व्रती स्त्री को आम देने के परिणाम स्वरूप उसे तीन योजन का आम्रवन मिला, रिश्वत लेकर गलत निर्णय देने के फलस्वरूप वह अपना माँस चीर कर खाता था, और आधे-व्रत के फल स्वरूप वह सोलह हजार नर्तकियो से घिरा हुआ केवल रात को ही ऐश्वर्य्य भोगता था। उस समय बाराणसी नरेश काम भोगो मे दोष देख, ऋषियो के प्रव्रज्या-क्रम के अनुसार प्रव्रजित हो, गगा के निचली और रमणीय भूमि-प्रदेश म पर्णशाला बनवा, दाने चुग चुग कर जीवन-यापन करता हुआ रहता था।

एक दिन उस आम्रवृक्ष से घडे छडे जितना पका आम नदी मे गिरकर धारा मे बहता हुआ उस तपस्वी के उपयोग मे आने वाले किनारे के सामने आ पहुचा। उसने मुह धोते समय उसे नदी के बीच जाते देखा। उसने पानी मे तैरकर, जाकर-

उसे पकड़ा। और आश्रम मे लाकर अग्नि-घर मे रक्खा। फिर शस्त्र से फाड कर यथा आवश्यकता खाकर शेष केले के पत्तो से ढक दिया। इस प्रकार वह समाप्त होने तक रोज रोज खाता रहा। उसके समाप्त होने पर वह कोई दूसरा फल न खा सका। रस तृष्णा के वशीभूत हो वह "उसी आम्रफल को खाने की इच्छा मे"नदी के तट पर जा नदी की ओर देखता हुआ यह निश्चय करके बैठा कि आम नही मिलेगा तो यहा से नही उठूगा। वह वहाँ निराहार एक, दो, तीन, चार, पाच, छ, दिन तक वायु और धूप मे सूखता हुआ नदी की ओर देखता बैठा रहा। तब सातवे दिन नदी देवी ने विचार करने पर इस बात को जाना, सोचा "यह तपस्वी तृष्णा के वशी भूत हो एक सप्ताह से निराहार नदी की ओर देखता हुआ बैठा है। इसे पका आम न देना अनुचित है। नही मिलेगा तो मर जायगा। मै इसे दूंगी।" उसने आकर नदी के ऊपर आकाश मे ठहर उससे बात-चीत करते हुए पहली गाथा कही—

**किं छन्दो किमधिप्पायो एको सम्मसि घम्मनि,**
**किं पत्थयानो किं एसं केन अत्थेन ब्राह्मण ॥१॥**

[हे ब्राह्मण तुम्हारा क्या विचार है, तुम किस उद्देश्य से अकेले धाम मे पडे हो। तुम क्या चाहते हो ? क्या खोजते हो ? तुम्हारा मनलब है ? ॥१॥]

यह सुन तपस्वी ने नौ गाथाए कही—

**यथा महावारिधरो कुम्भो सुपरिणामवा**
**तथूपमं अम्बपक्कं वण्णगन्धरसुत्तमं ॥२॥**

**तं वुह्यमानं सोतेन दिस्वानमलमज्झमे**
**पाणीहि नं गहेत्वान अग्यायतनं आहरिं ॥३॥**

**ततो कदलिपत्तेसु निक्खिपित्वा सयं अहं**
**सत्थेन नं विकप्पेत्वा खुप्पिपासं अहासि मे ॥४॥**

**सोहं अपेयद्दरथो व्यन्तिभूतो दक्खखमो**
**अस्सादं नाधिगच्छामि फलेस्वञ्ञेसु केसुचि ॥५॥**

सोसेत्वा नून मरणं तं मयं आवहिस्सति
अम्बं यस्स फलं सादुं मधुरग्गं मनोरमं
यमुद्धरिं वुय्हमानं उद्दिस्वा महण्णवे ॥६॥
अक्खातं ते मया सब्बं यस्मा उपवसामहं
रम्मं पतिनिस्सिन्नोस्मि पुथुलोभायुता पुथु ॥७॥
त्वञ्च खो मे अक्खासि अत्तानमपलायिनी,
का वा त्वमसि कल्याणि किस्स वा त्वं सुमज्झिमे ॥८॥
रुप्पपट्टपळिमट्ठीव व्यग्घीव गिरिसानुजा
या सन्ति नारियो देवेसु देवानं परिचारिका ॥९॥
या व मनुस्सलोकस्मिं रूपेनान्वागतित्थियो
रूपे ते सदिसी नत्थि देवेसु गन्धब्बमनुस्सलोके ॥१०॥
पुट्ठासि मे चारुपुब्बङ्गि ब्रूहि
अक्खाहि मे नामञ्च बन्धवे च ॥११॥

(जिस प्रकार सुनिर्मित; पानी मे भरा हुआ घडा हो, उसी प्रकार के वर्ण, गन्ध और रस से युक्त पका आम था। उसे निर्मल धारा के स्रोत मे बहता देख मै हाथ से ले आया और अग्नि-शाला मे रखा ॥२-३॥ तब मैने उसे केले के पत्तो मे रखा और शस्त्र से काट कर अपनी भूख तथा प्यास निवृत्त की ॥४॥ मै पीडा रहित हो गया। आम समाप्त हो जाने से मुझे वह दु.ख सहन करना पडा। तब से मुझे कोई भी दूसरा फल अच्छा नही लगता ॥५॥ जिस स्वादिष्ट, मधुर, श्रेष्ठ, मनोरम फल को मै समुद्र में से बहते जाते पकड कर लाया, वही फल अब मुझे सुखा कर, निश्चय से मेरी मृत्यु समीप लायगा ॥६॥ मैने वह सारा कारण बता दिया, जिससे मै इस अनेक मच्छो वाली, विशाल, रमणीय नदी के तट पर बैठा हू ॥७॥ हे उपस्थित देवी अब तुम मुझे बताओ कि तुम कौन हो और हे कल्याणी ! यहाँ तुम्हारा आगमन कैसे हुआ ? ॥८॥ सोने की मूर्ति के समान, व्याघ्री के समान, हे गिरि-वन-कुमारी ! देव-लोक में जो देवताओं की परिचारिकायें है और जो मनुष्य-लोक में रूपवान् स्त्रियां है उनमे से कोई भी—न देव-लोक मे, न गन्धर्व-लोक में और न मनुष्य-लोक मे तेरे समान रूपवान् नही है ॥९-१०॥ तू मेरे द्वारा

पूछी गई है, इसलिए हे सुन्दर अगों वाली ! तू अपना नाम-गोत्र मुझे बता ॥१०॥]

तब देवी ने आठ गाथाये कही—

यं त्वं पतिनिसिन्नोसि रम्यं ब्राह्मण कोसिकं,
नाहं भुसालया वुत्था वर वारि वहोघसा ॥११॥
नाना दुमगणाकिण्णा अटुका गिरिकन्दरा,
ममेव पमुखा होन्ति अभिसन्दन्ति पावुसो ॥१२॥
अथो बहुवनातोदा नील वारि वहिन्धरा,
बहुका नागवित्तोदा अभिसन्दन्ति वारिना ॥१३॥
तं अम्बजम्बुलबुजा नीपा ताला चुदुम्बरा,
बहूनि फलजातानि आवहन्ति अभिण्हसो ॥१४॥
यञ्किञ्च उभतो तीरे फलं पतति अम्बुनि,
असंसयं तं मोतस्स फलं होति वसानुगं ॥१५॥
एतदञ्ञाय मेधावी पुथुपञ्ञा सुणोहि मे,
मा रोचयमभिसंगं पटिसेध जनाधिप ॥१६॥
न चाहं वद्धवं मञ्ञे यं त्वं रट्ठाभिवद्धन,
आवेय्यमानो राजिसि मरणं अभिकंखसि ॥१७॥
तस्स जानन्ति पितरो गन्धब्बाव सदेवका,
ये चापि इसयो लोके सञ्ञातत्ता यस्ससस्सिनो
असंसयं ते जानन्ति वद्धभूता यससिनो ॥१८॥

[हे ब्राह्मण ! तू रमणीय कोसी नदी के किनारे बैठा है। मेरा निवासस्थान बाढ वाली नदी मे है ॥११॥ नाना प्रकार के वृक्षो से घिरे हुए अनेक गिरि-कन्दर मुझे ही प्रमुख मानते है, और मेरे ही पास आते है ॥ १२॥ न केवल गिरि कन्दरा, किन्तु बनो से आने वाली, नील वर्ण जल लाने वाली, नागो को प्रसन्न बनाने वाली नदियाँ भी आकर मुझे भरती है ॥१३॥ वे आम, जामुन, कटहल, निप (?), ताड और गूलर (आदि) बहुत से फलो को निरन्तर बहाकर लाती है ॥१४॥ दोनो किनारो पर जो भी फल पानी मे गिरता है, वह निस्सदेह धारा के वशीभूत हो जाता है ॥१५॥ हे मेधावी ! हे बहुप्रज्ञ ! मेरी बात सुनो। इसे जानकर हे राजन् !

आसक्ति करना योग्य नही, उसका निषेध करना चाहिए ॥१६॥ हे राजर्षी ! हे राज्य की अभिवृद्धि करने वाले ! तू जो तरुण हो कर आम के लोभ के वशीभूत हो मरने की इच्छा करता है, इससे मैं तुझे विचारवान् नही मानता हूँ। उसके पितर, देवताओ सहित गन्धर्व और सयातात्मा तथा विचारवान् ऋषिगण निश्चयपूर्वक जान लेते है ॥१८॥]

तब तपस्वी ने चार गाथाये कही—

**एवं विदित्वा विदू सब्ब धम्मं**
**विद्धंसनं चवनं जीवितस्स**
**न चीयति तस्स नरस्स पापं**
**सचे न चेतेति वधाय तस्स ॥१९॥**
**इसि पूग समञ्ञाते एवं लोक्या विदिता सति**
**अनरियपरिसंभासे पापकम्मं जिगिंससि ॥२०॥**
**सचे अहं मरिस्सामि तीरे ते पुथुस्सोणि**
**असंसयं असिलोको मयि पेते आगमिस्सति ॥२१॥**
**तस्मा हि पापकं कम्मं रक्खस्सेव सुमज्झिमे**
**मा तं सब्बो जनो पच्छा पकत्थासि मयि मते ॥२२॥**

[इस प्रकार सभी धर्मो का ज्ञाता सभी धर्मो को जान कर और प्राणी का विनाश जानकर अपने पाप की वृद्धि का कारण नही होता, यदि वह प्राणी-वध की बात नही सोचता ॥१९॥ ऋषि-गण मे प्रसिद्धि प्राप्त होने पर और उस प्रकार लोक द्वारा ज्ञात होने पर, अशोभन भाषा द्वारा मुझ पर पाप का दोषारोपण करता है ॥२०॥ हे पृथुसुश्रोणी ! यदि मै तेरे तट पर मरूगा, तो निश्चय से मुझे असि-लोक नामक नरक प्राप्त होगा ॥२१॥ इसलिए हे सुमध्यमे ! मै पापकर्म से बचता हू ताकि मेरे मरने पर सभी लोग मेरी निन्दा न करे ॥२२॥]

यह सुन देव-कन्या ने पाँच गाथाये कही—

**अञ्ञातं एतं अविसह्यसाहि,**
**अत्तानं अम्बं च ददामि ते तं**

**यो दुच्चजे कामगुणे पहाय**
**सन्तिञ्च धम्मं च अधिट्ठितो सि ॥२३॥**
**यो हित्वा पुब्बसंयोगं पच्छा संयोजने ठितो**
**अधम्मं चेव चरति पापञ्चस्स पवड्ढति ॥२४॥**
**एहि, तं पापयिस्सामि, कामं अप्पोस्सुको भव,**
**उपनयामि सीतस्मि, विहराहि अनुस्सुको ॥२५॥**
**तं पुरफरसमत्तेहि वक्कंगेहि अरिंदम,**
**कोञ्चा मयूरा दिविया कोयट्ठिमधुसालिया**
**कूजिता हंसपूगेहि कोकिलेत्थ पबोधरे ॥२६॥**
**अम्बेत्थ विप्पसु नग्गा पलालखलसन्निभा**
**कोसुम्भसलळानीया पक्कतालबिलम्बिनो ॥२७॥**

[हे असहनीय को सहन करने वाले राजा ! मुझे यह बात ज्ञात हो गई। मैं तुझे आम के साथ अपने आपको भी देती हूँ। तू त्यागने में दुष्कर काम-भोगो को छोड कर शान्ति और धर्म मे प्रतिष्ठित है। जो पूर्व-बन्धन से मुक्त हो फिर किसी तृष्णा-बन्धन में बध जाता है, वह अधर्म आचरण करता है और उसका पाप बढ़ता है ॥२३-२४॥ आ, तुझे (वहाँ) पहुँचा दूँगी। तू उत्सुकता रहित हो। मैं तुझे शीतल-स्थल पर पहुँचा दूगी, तू उत्सुकता रहित हो कर विहार कर ॥२५॥ हे नरेन्द्र ! वह पुष्पो के रस मे मदमस्त हुए पक्षियो का निवासस्थान है—क्रौञ्चो का, मयूरो का, कोयट्ठि तथा मधुसालीय दिव्य-पक्षियो का, और वहाँ हसो के समूह कुञ्जन करते है तथा वहाँ कोयल-गान होता है ॥२६॥ यहाँ आम ऐसे है कि जिनकी डाले फलो के भार से झुकी है, जो मौर की अधिकता से शाली की पराल के समान है, ज पके ताड-फलो के समान लटके हुए है ॥२७॥]

इस प्रकार आम्रवन की प्रशसा कर, और उस तपस्वी को वहाँ उतारा। फिर "इस आम्रवन मे आम खा कर अपनी तृष्णा की पूर्ति कर" कह चली गई। तपस्वी आम खा, तृष्णा को पूर्ति कर (आम्रवन मे) विश्राम किया। वहाँ आम्रवन मे विचरते समय उस प्रेत को दु ख भोगते देख कर वह कुछ न कह सका। किन्तु सूर्य्यास्त

होने पर नटियो द्वारा घिरे हुए उसे दिव्य-सम्पत्ति भोगते देखकर उसने ये गाथायें कही—

**माली तिरीटी कायूरी अंगदी चन्दनुस्सदो**
**रत्तिं त्वं परिचारेसि दिवा वेदेसि वेदनं ॥२८॥**
**सोळस इत्थिसहस्सानि या ते मा परिचारिका,**
**एवं महानुभावोसि अब्भुतो लोमहंसनो ॥२९॥**
**किं कम्मं अकरी पुब्बे पापं अत्तदुखावहं**
**यं करित्वा मनुस्सेसु पिट्ठिमंसानि खादसि ॥३०॥**

[तू रात को दिव्य मालाधारी होकर, दिव्य वेषधारी होकर, दिव्य आभूषणधारी होकर, दिव्य अंगों से युक्त होकर तथा चन्दन-लिप्त हो कर नाना प्रकार विषयों में रमण करता है; किन्तु दिन में वेदना को भोगता है। ये तेरी सोलह हजार स्त्रियां परिचारिकायें हैं, तू ऐसा महाप्रतापी है। किन्तु तू साथ ही ऐसा रोमांचक दुःख भी भोगता है। तूने पूर्व-जन्म में ऐसा अपने आपको कष्ट देने वाला कौन पाप-कर्म किया है, जिसके करने से तू अपनी ही पीठ का मांस खाता है ॥३०॥]

प्रेत ने उसे पहचान उत्तर दिया—"तुम मुझे नहीं पहचानते, मैं तुम्हारा पुरोहित था, यह मेरी रात की सुखानुभूति तुम्हारे आश्रय से किये गए आधे उपोसथ-व्रत का परिणाम है, और यह दिन की दुःखानुभूति मेरे द्वारा किए गए पाप का ही परिणाम है—मैंने तुम्हारे द्वारा न्यायाधीश के पद पर नियुक्त होने पर, रिश्वत ले, भ्रम निर्णय दिया। उस दिन में किए गए पाप-कर्म के फलस्वरूप यह दुःख भोगता हूँ" इतना कह दो गाथायें कही—

**अज्झेनानि पटिग्गहं कामेसु गधितो अहं,**
**अचिरं दीघं अद्धानं परेसं अहिताय अहं ॥३१॥**
**यो पि पिट्ठमंसियो होति एवं उक्कच्च खादति**
**यथाहं अज्ज खादामि पिट्ठिमंसानि अत्तनो ॥३२॥**

(वेदादि का) अध्ययन करके, कामभोगों में फंसे रहने के कारण मैं चिरकाल तक दूसरों का अहित किया। जो चुगल-खोर होता है, उसे इसी प्रका

अपनी पीठ का माँस नोच-नोच कर खाना पड़ता है, जिस प्रकार इस समय खाता हूँ ॥३६-३७॥]

यह कह कर उसने तपस्वी से प्रश्न किया—

"तुम यहाँ कैसे आये ?"

तपस्वी ने विस्तारपूर्वक सारी कथा कह सुनाई।

"भन्ते ! अब यहीं रहे, (न) जाये।"

"नहीं रहूँगा। आश्रम को ही जाऊँगा।"

प्रेत ने "भन्ते ! अच्छा मैं निरन्तर पका आम सेवा में पहुँचाता रहूँगा", कह अपने प्रताप से आश्रम में ले जा कर उतारा। फिर उत्कण्ठा-रहित हो कर यहीं रहे, ऐसी प्रतिज्ञा लेकर चला गया। उसके बाद से प्रेत नियमपूर्वक पका आम सेवा में पहुँचाता रहा।

तपस्वी उसे खाते रहकर, योग-विधि की सहायता से ध्यान-लाभी हो ब्रह्म-लोक गामी हुआ।

शास्ता ने उपासकों को यह धर्म-देशना सुना, (आर्य) सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के प्रकाशन के अन्त में कोई श्रोतापन्न हुए, कोई सकृदागामी, कोई अनागामी। उस समय देवता उत्पल-वर्णा थी, तपस्वी तो मैं ही था।

## ५१२ कुम्भ जातक

"को पातुरासि" यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय विशाखा की सुरा पीने वाली पाँच सौ सखियों के सम्बन्ध में कही।

## क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती मे सुरा-उत्सव की घोषणा पर उन पाच सौ स्त्रियो ने स्वामियो के क्रीडा-उत्सव की समाप्ति पर तेज सुरा तैयार कर उत्सव मनाने का सकल्प किया। वे सभी विशाखा के पास पहुँच कर बोली—"सखी! हम उत्सव मनायेगी।" विशाखा बोली—"यह सुरा-उत्सव है। मैं सुरा न पीऊँगी।" सखियो का उत्तर था—"आप सम्यक् सम्बुद्ध को दान दे, हम उत्सव मनायेगी।" विशाखा ने 'अच्छा' कह उनकी बात स्वीकार की, और उन्हे उत्साहित कर, शास्ता को निमन्त्रित करा, महा-दान दे, बहुत सी गन्ध-मालाये ले, शाम के समय धर्म-कथा सुनने के लिये सखियो सहित जेतवन पहुँची। वे स्त्रिया सुरा पीती हुई ही, उसके साथ गई। उन्होने द्वार-कोष्ठ पर खडे हो कर भी सुरा पी और तब उसके साथ शास्ता के पास पहुँची। विशाखा शास्ता को नमस्कार कर एक ओर बैठी। उसकी सखियो मे से कुछ शास्ता के पास ही नाचने लग गई, कुछ गाने लग गई, कुछ हाथो तथा पावो को नचाने लगी और कुछ कलह करने लगी। शास्ता ने उनके मन मे त्रास पैदा करने के लिए भौं के रोमो मे से एक किरण फेकी, घोर अन्धकार छा गया। वे डर गई, मृत्यु-भय से भीत। उनका सुरा का नशा उतर गया। शास्ता ने बैठे आसन पर से अन्तर्धान हो, सुमेरु पर्वत पर खडे हो, ऊर्ण-लोम से किरण फेकी, हजार चन्द्रमा के प्रकाश सा हो गया। शास्ता ने वही खडे ही खडे उनके मन मे त्रास पैदा करने के लिए यह गाथा कही—

**को नु हासो किं आनन्दो निच्चं पज्जलिते सति,**
**अन्धकारेन ओनद्धा पदीपं न गवेस्सथ ॥ धम्मपद १४६॥**

[नित्य आग जल रही है। क्या हास! और क्या आनन्द! अन्धकार से घिरे होने पर भी प्रदीप नही खोजते (ती) "ध० प० १४६॥]

गाथा की समाप्ति पर वे पाँच सो की पाँच सो स्त्रियाँ स्रोतापत्ति-फल मे प्रतिष्ठित हुई। शास्ता आकर गन्धकुटी की छाया मे बुद्धासन पर बैठे। विशाखा ने प्रश्न किया—"भन्ते! यह लज्जा-भय को नष्ट करने वाला सुरा-पान कब से आरम्भ हुआ?" शास्ता ने उसके प्रश्न का उत्तर देते हुए पूर्व (जन्म) की बात कही।

## ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय सुर नामका एक जँगली मनुष्य सामान लेने के लिए हिमालय की ओर गया। वहाँ एक वृक्ष पुरसा भर उग कर तीन तनो मे विभक्त हो गया था। वहाँ तीनो तनो के बीच मे सुरा की हाण्डी जितना गढा बन गया था। यह दैव के बरसने पर पानी से भर गया। उस गढे के चारों ओर हरड, आँवला तथा मिर्च के पेड थे। उनके पके फल टूट टूट कर उस गढे मे गिरते थे। उससे थोडी ही दूर पर स्वय उत्पन्न धान के पौदे थे। वहाँ से तोते धान की बाले ला कर, उस पेड़ पर बैठ कर खाते थे। उनके खाते समय गिरने वाले धान और चावल भी उसमे पडते थे। इस प्रकार सूर्य्य की धूप से पकते रहने के कारण वह पानी रक्त-वर्ण हो गया। धूप के समय प्यास के मारे पक्षीगण उसे पीते, तो वे बेहोश हो कर गिर पडते और थोडी देर सोते रह कर फिर चहचहाते हुए उड जाते। वृक्ष-कुत्तो (?) और बन्दर आदि का भी यही हाल था। जगली मनुष्य ने इसे देख सोचा—"यदि यह विष होता, तो ये मर जाते। किन्तु ये तो थोडी देर सो कर सुख-पूर्वक चले जाते है। यह विष नही है।" यह सोच उसने स्वय पिया और मद-मस्त होने पर उसकी इच्छा मास खाने की हुई। तब उसने आग जलाई, और वृक्ष के नीचे गिरे तीतर, मुर्गे आदि मार कर, उनका मास अगारो पर पकाया। इस प्रकार वह एक हाथ से नाचता हुआ और दूसरे हाथ से मास खाता हुआ एक-दो दिन वही रहा।

उससे कुछ ही दूर पर वरुण नाम का तपस्वी रहता था। जगली आदमी अन्य दिनो मे भी उसके पास जाता था। उसके मन मे आया कि यह पेय पदार्थ तपस्वी के साथ पिऊँगा। उसने एक बास की नलिका भरी और पके मास के साथ पर्णशाला मे जा कर बोला, "भन्ते! यह पेय पदार्थ पिये।" दोनो ने मास खाते हुए उसका पान किया। सुर तथा वरुण के द्वारा देखा गया होने से वह पेय पदार्थ सुरा तथा वारुणी कहलाया। उन दोनो ने सोचा कि यह जीविका का एक साधन है। इन्होने बास की नलिकाए भरी और बहगी पर रख कर सीमा-प्रदेश के नगर में पहुचे। वहाँ उन्होने राजा को सूचना भिजवाई कि पेय पदार्थ वाले आये है। राजा ने बुला भेजा। वे राजा

के पास पेय पदार्थ ले गए। राजा ने दो-तीन बार पान किया, तो उसे नशा चढ़ गया। उसका वह नशा एक-दो दिन ही रहा। राजा ने उन्हे पूछा, "क्या और भी है ?"

"देव, है।"

"कहाँ ?"

"देव, हिमालय मे।"

"तो लाओ ?"

वे जाकर एक-दो बार ले आए। फिर लगातार न जा सकने के कारण उन्होने उसकी सामग्री का विचार किया। फिर उस वृक्ष की छाल से आरभ कर के सभी चीजे मिला नगर मे सुरा बनाई। नागरिक सुरा पी कर नशे मे आ दुर्गति को प्राप्त हुए। नगर शून्य सा हो गया।

वे पेय पदार्थ वाले वहा से भाग कर वाराणसी पहुचे, और राजा को सूचना भिजवाई कि पेय पदार्थ वाले आए है। राजा ने बुलवा कर खर्चा दिलवाया। वहा भी सुरा बनाई गई। वह नगर भी उसी प्रकार नष्ट हो गया।

वहाँ से भाग कर साकेत, और साकेत से श्रावस्ती पहुचे। उस समय श्रावस्ती मे सर्व-मित्र नाम का राजा राज्य करता था। उसने उनका सग्रह कर पूछा—"क्या चाहिए ?" उत्तर मिला—"सामग्री की कीमत, चावल का आटा और पाच सौ घडे।" राजा ने सब कुछ दिला दिया। उन्होने पाच सौ घडो मे सुरा भर, घडो की रक्षा के लिए एक एक घडे के पास एक एक बिल्ला बाध दिया। सुरा के उबल कर उफान आने के समय घडो पर से चूती हुई सुरा को पी कर वे बेहोश हो गए। चूहे आ कर उनके कान, नाक, मूछे और पुछ खा गए। पहरेदारोने जा कर राजा को सूचना दी कि बिल्ले सुरा पी कर मर गए। राजा ने दोनो जनो को विष देने वाले मान उनके सिर कटवा डाले। वे सुरा पी कर—"सुरा दे, मधुर दे" चिल्लाते हुए ही मरे।

राजा ने उन्हे मरवा कर आज्ञा दी कि घडो को फोड डालो। सुरा का नशा उतर जाने पर बिल्ले उठ कर खेलने दौडने लगे। उन्हे देख राजा को सूचना दी गई। राजा ने सोचा कि यदि विष होता तो ये मर जाते, यह मधुर पेय-पदार्थ ही होगा। इसे पिऊंगा। उसने नगर सजवाया, राजागण में मडप बनवाया और अलंकृत मंडप

के नीचे श्वेत-छत्र धारण किए हुए , अमात्य गणों के बीच राजसिंहासन पर बैठ सुरा पीनी आरंभ की।

उस समय देवेन्द्र शक्र यह देखता हुआ विचर रहा था कि लोक मे कौन कौन मातृ सेवा आदि तीन सुचरित्रो का पालन करता है। उसने उस राजा को सुरा पान करने के लिए बैठे देख सोचा—"यदि यह सुरा पिएगा तो तमाम जम्बुद्वीप नष्ट हो जायगा, मैं कुछ ऐसा करूगा जिससे यह सुरा न पिए।" उसने सुरासे भरा हुआ एक घडा हाथ की हथेली पर रखा और ब्राह्मण का भेष धारण कर, राजा के सामने आकाश मे खडे हो आवाज लगाने लगा—"यह घडा लो, यह घडा लो।" सर्व-मित्र राजा ने उसे आकाश मे खडे हो कर उस प्रकार आवाज लगाते सुन—"ब्राह्मण तू कहा से आया है ?" पूछते हुए तीन गाथाए कही—

**को पातुरासि तिदिवा नभम्हिन**
**ओभासयं संवरिं चंदिमा व**
**गत्तेहि ते रस्मियो निच्छरन्ति**
**सतेरता विज्जुरिव अन्तलिक्खे ॥३३॥**
**सो छिन्नवातं कमसी अघम्हि**
**वेहासयं गच्छसि तिट्ठसी च**
**इद्धीनु ते वत्थुकता सुभाविता**
**अनद्धगूनामपि देवतानं ॥३४॥**
**वेहासय संकम्मागम्म तिट्ठसि**
**कुम्भं किणाथा ति यं एतं अत्थं**
**को वा तुवं किस्स वताय कुम्भो**
**अक्खाहि मे ब्राह्मण एतमत्थं ति ॥३५॥**

[चन्द्रमा की तरह रात्रि को प्रकाशित करने वाला, त्रयोत्रिश लोक से आकाश मे आकर तू कौन प्रगट हुआ है ? अन्तरिक्ष मे बिजली की तरह तेरे शरीर से "सतेरता" नाम की बिजलिया निकलती है ॥३३॥ तू बिना वायु की सहायता के ही आकाश मे चलता, ठहरता है। क्या तूने देवताओं की ऋद्धि प्राप्त कर ली

है ?॥३४॥ जो तू यह "घडा ले लो" कहता हुआ आकाश में आ कर ठहरा है, सो तू कौन है ? यह किसका घडा है ? हे ब्राह्मण मुझे यह बात बता॥३५॥]

तब शक्र ने—"तो सुन" कह सुरा के दोष बताते हुए ये गाथाए कही—

**न सप्पिकुम्भो नपि तेलकुम्भो**
**न फाणितस्स न मधुस्स कुम्भो**
**कुम्भस्स वज्जानि अनप्पकानि**
**दोसे बहू कुम्भगते सुणाथ॥३६॥**

[न तो यह घी का घडा है, न तेल का घडा है, न शक्कर का घडा और न मधु का ही। इस घडे में अनेक दोष हैं। इस घडे के बहुत से दोषों को सुन॥३६॥]

**गलेय्य यं पीत्वा पते पपातं**
**सोब्भं गुहं चन्दनियोलिगल्लं**
**बहुंपि भुञ्जेय्य अभोजनेय्यं**
**तस्सा पुण्णं कुम्भमिमं किणाथ॥३७॥**

[जिसे पी कर लडखडाए; प्रपात, गढे, ग़ार, तालाब, अथवा जोहड में गिर पडे और जिसे पी कर 'आदमी' अनेक प्रकार के अखाद्य पदार्थ खाए, उस सुरा से भरा हुआ यह घडा ले लो॥३७॥]

**यं पीत्वा चित्तस्मिं अनेसमानो**
**आहिण्डती गोरिव भक्खसारी**
**अनाथमानो उपगाति नच्चति**
**तस्सा पुण्णं कुम्भमिमं किणाथ॥३८॥**

[जिसे पी कर चित्त पर काबू नहीं रहता और 'आदमी' बैल की तरह इधर उधर कुछ भी खाता हुआ घूमता है, बेकाबू हो कर गाता और नाचता है, उस सुरा से भरा हुआ यह घडा ले लो॥३८॥]

**यं वे पीत्वा अचेलकोव नग्गो**
**चरेय्य गामे बिसिखन्तरानि,**

**सम्मूळहचित्तो अतिवेलसायी**
**तस्सा पुण्णं कुम्भमिमं किणाथ ॥३९॥**

[जिसे पीकर (आदमी) निर्वस्त्र, नग्न हो, गाव की गलियों मे भटकने लगता है, जिसे पीकर (आदमी) मूढ-चित्त तथा देर तक सोते रहने वाला हो जाता है उस सुरा से भरा हुआ यह घडा ले लो ॥३९॥]

**यं पीत्वा उट्ठाय पवेधमानो**
**सीसं च बाहं च पचालयन्तो**
**सो नच्चति दारु कटल्लकोव**
**तस्सा पुण्णं कुम्भमिमं किणाथ ॥४०॥**

[जिसे पीकर (आदमी) उठ कर कापता हुआ, हाथ पाव घुमाता हुआ कठ-पुतली की तरह नाचता है, उस सुरा से भरा हुआ यह घडा ले लो ॥४०॥]

**यं वे पिवित्वा अग्गिदडढा सयन्ति**
**अथो सिगालेहि पि खादितासे**
**बंधं वधं भोगजानिं च उपेन्ति**
**तस्सा पुण्णं कुम्भमिमं किणाथ ॥४१॥**

(जिसे पीकर आग से भी जल मरते है और गीदडो द्वारा भी खाये जाते है तथा बध-बन्धन और सपत्ति की हानि को प्राप्त होते है उस सुरा से भरा हुआ यह घडा ले लो ॥४१॥]

**यं पीत्वा भासय्य अभासनेय्यं**
**सभायं आसीनो अपेतवत्थो**
**सम्मक्खितो वन्तगतो व्यसन्नो**
**तस्सा पुण्णं कुम्भमिमं किणाथ ॥४२॥**

[जिसे पीकर (आदमी) सभा मे बैठा हुआ निर्वस्त्र हो कर न बोलने योग्य बात बोलता है और जिसे पीकर वह अपनी ही उलटी से लिप्त हो दुःख को प्राप्त होता है, उस सुरा से भरा हुआ यह घडा ले लो ॥४२॥]

**यं वे पीत्वा उक्कट्ठो आविलक्खो**
**ममेव सब्बपठवीति मञ्ञति,**
**न मे समो चातुरन्तोपि राजा**
**तस्सा पुण्णं कुम्भिमं किणाथ ॥४३॥**

[जिसे पीकर अभिमान से लाल लाल आखे कर के (आदमी) यह समझने लगता है कि सारी पृथ्वी मेरी है और कोई चक्रवर्ती राजा भी मेरे समान नही है. उस सुरा से भरा हुआ यह घडा ले लो ॥४३॥]

**भानातिमाना कलहानि पेसुणानि**
**दुब्बण्णिनी नग्गयिनी पलायिनी**
**चोरान धुत्तानं गती निकेतो**
**तस्सा पुण्णं कुम्भिमं किणाथ ॥४४॥**

[जो अभिमान पैदा करने वाली है, जो कलह पैदा करने वाली है, जो चुगल-खोरी का कारण होती है, जो दुर्वर्ण करने वाली है, जो नग्न करने वाली है, जो धूर्त चोरों की गति है, उनका निकेतन है, उस सुरा से भरा हुआ यह घडा ले लो ॥४४॥]

**इट्ठानि फीतानि कुलानि अस्सु**
**अनेकसाहस्सधनानि लोके**
**उच्छिन्नदायज्जकतानिमाय**
**तस्सा पुण्णं कुंम्भिमं किणाथ ॥४५॥**

[जिसने लोक में हजारों की सम्पत्ति वाले समृद्धिशाली कुलो को नष्ट कर दिया, उस सुरा से भरा हुआ यह घडा ले लो ॥४५॥]

**धञ्ञं धनं रजतं जातरूप**
**खेत्तं गवं यत्थ विनासयन्ति**
**उच्छेदनि वित्तवतं कुलानं**
**तस्सा पुण्णं कुम्भिमं किणाथ ॥४६॥**

[जो धान्य, धन, चादी, सोना, खेत तथा पशुओ को नष्ट कर डालती है और

जो धनवान कुलों का विनाश कर देने वाली है उस सुरा से भरा हुआ यह घड़ा ले लो ॥४६॥]

**यं वे पीत्वा दुट्ठरूपो व पोसो**
**अक्कोसती पितरं मातरं च**
**सस्सुम्पि गण्हेय्य अथोपि सुण्हं**
**तस्सा पुण्णं कुम्भिमं किणाथ ॥४७॥**

[जिसे पीकर दुष्ट मनुष्य माता तथा पिता को गालिया देता है और सास तथा पुत्रवधु का भी हाथ पकड़ लेता है, उस सुरा से भरा हुआ यह घड़ा ले लो ॥४७॥]

**यं वे पीत्वा दुट्ठरूपोव नारी**
**अक्कोसती ससुरं सामिकं च**
**दासम्पि गण्हे परिचारकम्पि**
**तस्सा पुण्णं कुम्भिमं किणाथ ॥४८॥**

[जिसे पीकर दुष्ट नारी ससुर तथा स्वामी को गालिया देती है, और नौकर तथा दास का भी हाथ पकड़ लेती है, उस सुरा से भरा हुआ यह घड़ा ले लो ॥४८॥]

**यं वे पीत्वान हनेय्य पोसो**
**धम्मेठितं समणं ब्राह्मणं वा**
**गच्छे अपायम्पि ततो निदानं**
**तस्सा पुण्णं कुम्भिमं किणाथ ॥४९॥**

[जिसे पीकर पुरुष धर्माचारी श्रमण, अथवा ब्राह्मण की भी हत्याकर सकता है और उसके फलस्वरूप नरक जाता है, उस सुरा से भरा हुआ यह घड़ा ले लो ॥४९॥]

**यं वे पीत्वा दुच्चरितं चरन्ति**
**कायेन वाचाय च चेतसावा**
**निरयं वजन्ति दुच्चरितं चरित्वा**
**तस्सा पुण्णं कुम्भिमं किणाथ ॥५०॥**

(जिसे पीकर आदमी शरीर, वाणी अथवा मन से दुष्कर्म करता है और दुष्कर्म करके नरकगामी होता है, उस सुरा से भरा हुआ यह घड़ा ले लो ॥५०॥]

यं याचमाना न लभन्ति पुब्बे
बहुं हिरञ्ञम्पि परिच्चजन्ता
सो तं पिवित्वा अलिकं भणाति
तस्सा पुण्णं कुम्भिमं किणाथ ॥५१॥

[जिस आदमी को बहुत सोना द कर भी झूठ नही बुलाया जा सकता वही आदमी जिसे पीकर झूठ बोलता है उस सुरा से भरा हुआ यह घडा ले लो ॥५१॥]

यं वे पीत्वा पेसने पेसियन्तो
अच्चायिके करणीयम्हि जाते
अत्थमपि सो नप्पजानाति वुत्तो
तस्सा पुण्णं कुम्भिमं किणाथ ॥५२॥

[कोई आवश्यक काम होने पर यदि किसी को कही भेजा जाय तो जिसे पी कर वह आदमी कही हुई बात तक न समझे उस सुरा से भरा हुआ यह घडा ले लो ॥५२॥]

हिरीमनापि अहिरीकभावं
पातुं करोन्ति मदिराय मत्ता
धीरापि संता बहुकं भणन्ति
तस्सा पुण्णं कुम्भिमं किणाथ ॥५३॥

[जिसे पीकर लज्जावान आदमी भी निर्लज्ज हो जाते है और जिसके नशे मे धीर पुरुष भी बकवास करने लग जाते है, उस सुरा से भरा हुआ यह घडा ले लो ॥५३॥]

यं वे पीत्वा एकथूपा सयन्ति
अनासका थंडिलदुक्खसेय्यं
दुब्बण्णियं आयसक्यं च उपेन्ति
तस्सा पुण्णं कुम्भिमं किणाथ ॥५४॥

[जिसे पीकर आदमी बिना खाए पिए कठोर भूमि पर गठडी बनकर गिर

पड़ता है और दुर्वर्णता तथा निन्दा को प्राप्त होता है, उस सुरा से भरा हुआ यह घड़ा ले लो ॥५४॥]

**यं वे पीत्वा पत्तखंधा सयन्ति**
**गावो कूटहतारिव**
**न हि वारुणिया वेगो,**
**नरेन सुस्सहोरिव ॥५५॥**

[जिसे पीकर गले मे लोहा बन्धे पशुओं की तरह आदमी बिना खाये-पिये सिर गिराये पड़ा रहता है, और जिस वारूणी के वेग को आदमी सहन नहीं कर सकता उस सुरा ( = वारूणी ) से भरा हुआ यह घड़ा ले लो ॥५५॥]

**यं मनुस्सा विवज्जेन्ति**
**मप्पं घोरविसं इव**
**तं लोके विससमानं**
**को नरो पातुमरहति ॥५६॥**

[जिससे विषैले सर्प की तरह लोग दूर दूर भागते है, दुनिया में वह विष सदृश पेय-पदार्थ किसके पीने योग्य है ? ॥५६॥]

**यञ्चे पिवित्वा अन्धकवेण्हुपुत्ता**
**समुद्दतीरे परिचारयन्ता**
**उपक्कमुं मुसलेहि अञ्ञमञ्ञं**
**तस्सा पुण्णं कुम्भिमं किणाथ ॥५७॥**

[जिसे पीकर समुद्र तीर पर विचरण करने वाले अन्धक-वेण्हु पुत्रों ने एक दूसरे पर मूसलों से प्रहार किया उस सुरा से भराहुआ यह घड़ा ले लो ॥५७॥]

**यंचे पीत्वा पुब्बदेवा पमत्ता**
**तिदिवा चुता सस्सतिया समाया**
**तं तादिसं मज्जमिमं निरत्थकं**
**जानं महाराज कथं पिपेय्य ॥५८॥**

[जिसे पीकर शाश्वत मायावी पूर्व-देव त्रयोत्रिंश लोक से गिर गए उस प्रकार की इस निरर्थक शराब को कोई जान बूझ कर कैसे पियेगा ॥५८॥]

**न इमस्मि कुम्भस्मिं दधिवा मधुंवा**
**एवं अभिञ्ञाय किणाहि राज**
**एवं हिमं कुम्भगता मया ते**
**अक्खातरूपं तव सब्बमित्त ॥५९॥**

[देव ! यह जानकर कि इस घड़े मे न दही है और न मधु है, इसे खरीदे। हे सर्वमित्र ! इस प्रकार जो कुछ इस घड़े मे है वह सब मैंने आपको बता दिया ॥५९॥]

यह सुन राजा ने सुरा के दोष जान प्रसन्न चित्त हो शक्र की स्तुति करते हुए दो गाथाएं कही—

**न मे पिता वा अथवापि माता**
**एतादिसा यादिसको तुवं सि**
**हितानुकम्पी परमत्थकामो**
**सोहं करिस्सं वचनं तवज्ज ॥६०॥**
**ददामिते गामवरानि पंच**
**दासीसतं सत्त गवं सतानि**
**आजञ्ञयुत्ते च रथे दसा इमे**
**आचरियो होसी ममत्थकामो ॥६१॥**

[न मेरा पिता और न मेरी माता ही मेरा वैसा हितचिन्तन करने वाली है जैसा कि तू है, इसलिए आज तेरा कहना करूगा ॥६०॥ मै तुझे पाच श्रेष्ठ गाव, सौ दासिया, सात सौ गौओ तथा श्रेष्ठ घोडो वाले ये दस रथ देता हूँ। आप मेरा कल्याण सोचने वाले आचार्य बने ॥६१॥]

यह सुन शक्र ने अपना देवत्व प्रगट करते हुए आकाश मे स्थित हो दो गाथाए कही—

**तवेव दासीसतमत्थु राज**
**गामा च गावो च तवेव होन्तु**

आजञ्ञयुत्ता च रथा तवेव
सक्को' हमस्मि तिदसानमिको ॥६२॥
मसोदनं सप्पीपाञ्च भुञ्ज
खादस्सु चत्वं मधुना अपूपे
एवं तुवं धम्मरतो जनिन्द
अनिन्दितो सग्गमुपेहि ठानं ॥६३॥

[राजन ! यह सौ दासिया, गाव और गौओ तेरी ही रहे और श्रेष्ठ घोडों वाले रथ भी तेरे ही रहे, मै देवताओ का इन्द्र शक्र हूँ ॥६२॥ तुम मासोदन ( = पुलाव) खाओ, घी, खीर खाओ तथा मधु के साथ पुए खाओ। इस प्रकार धर्माचरण मे रत तुम आनन्दित रह कर स्वर्ग लोक को प्राप्त करोगे ॥६३॥]

इस प्रकार शक्र उसे उपदेश दे अपने निवासस्थान को ही चला गया। वह भी बिना सुरा पिए, सुरा के घडो को तुडवा कर, शील मे प्रतिष्ठित हो तथा दान दे कर स्वर्ग परायण हुआ। जम्बुद्वीप मे भी क्रमश. सुरापान बढ गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बिठाया। उस समय राजा, आनन्द था, शक्र तो मै ही था।

## ५१३—जयद्दिस जातक

"चिरस्स वत मे .. .. " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय एक मातृ-सेवक भिक्षु के बारे मे कही। वर्तमान कथा साम जातक[1] के समान ही है। उस समय शास्ता ने 'पुराने पडितो ने सुनहरी झालर वाले श्वेत छत्र को छोड कर भी माता पिता की सेवा की' कह, उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही।

---

१ सामजातक (५४०)

## ख. अतीत कथा

पूर्व समय में काम्पल्य राज्य मे उत्तर पचाल नाम का राजा था। उसकी पटरानी ने गर्भ धारण कर पुत्र को जन्म दिया। उसके पूर्व-जन्म मे उसकी एक सपत्नी ने क्रोध मे आकर प्रार्थना की थी कि तेरे बच्चों को खा सकू। उसी कामना के फलस्वरूप वह यक्षिणी हो कर पैदा हुई। उसे अवसर मिला तो पटरानी की नजर के सामने ही उसने गीले मास पिंड सदृश कुमार को लिया और मुर-मुर कर के खा कर चली गई। दूसरी बार भी वैसा ही हुआ। तीसरी बार उसके प्रसूतिका गृह मे प्रविष्ट होने के समय घर के चारो ओर कडा पहरा बिठा दिया गया। बच्चे के पैदा होने के दिन यक्षिणी ने आ कर फिर बच्चे को उठाया। पटरानी जोर से चिल्लायी—"यक्षिणी।" हथियारबन्द आदमियो ने पटरानी द्वारा बताए अनुसार यक्षिणी का पीछा किया। उसे खाने का मौका नही मिला। वह भाग कर पानी के चश्मे मे जा घुसी। बच्चे ने उसे माता समझ उसका स्तन मुह मे ले लिया। उसके मन मे पुत्र-स्नेह पैदा हो गया। वह वहा से भाग कर श्मशान पहुची और बच्चे को पत्थर की गुफा मे रख उसका पालन करने लगी।

बालक के क्रमश. बडा होने पर वह उसे मनुष्य का मास ला कर देने लगी। दोनो मनुष्य-मास खा कर वही रहने लगे। बालक यह नही जानता था कि वह मनुष्य की सतान है। वह अपने आपको यक्षिणी-पुत्र ही मानता था। वह अपना स्वरूप छोड कर अन्तर्धान नही हो सकता था। यक्षिणी ने उसे अन्तर्धान होने के लिए एक जडी दी। वह उस जडी के प्रताप से अन्तर्धान हो मनुष्य मास खाता हुआ विचरने लगा। यक्षिणी वैश्रवण महाराज की सेवा करने गई। वही उसका शरीरात हो गया।

महारानी ने भी चौथी बार एक और पुत्र को जन्म दिया। यक्षिणी से मुक्त होने के कारण वह निरोग रहा। शत्रु-यक्षिणी को जीत कर पैदा होने से उसे जयद्दिस नाम दिया गया। बडे होने पर सभी शिल्पो मे निष्णात हो उसने छत्र धारण किया और राज्य करने लगा।

उस समय बोधिसत्व ने जयद्दिस की पटरानी के गर्भ से जन्म ग्रहण किया। उसका नाम अलीनशत्रु कुमार रखा गया। बडे होने पर शिल्प सीख उपराजा बना।

उस यक्षिणी-पुत्र ने आगे चल कर लापरवाही से वह जडी गंवा दी और उसके न रहने से वह अन्तर्धान न हो सकने के कारण सब की नजर के सामने श्मशान में मनुष्य मास खाने लगा। मनुष्यों ने यह देख, डर और भय के मारे आकर राजा को सूचना दी।---देव ! एक यक्ष सब की नजर के सामने ही श्मशान में मनुष्य मास खाता है। वह क्रमश नगर में प्रवेश कर आदमियों को मार कर खाएगा। उसे पकडवाना चाहिए।

राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और आज्ञा दी कि उसे पकडो। सेना जा कर श्मशान को घेर कर खडी हो गई। यक्षिणी-पुत्र नगा था। वह घबरा गया और मृत्यु से डर कर चिल्लाता हुआ मनुष्यों के बीच आ कूदा। मनुष्य, यक्ष जान भयभीत हुए और दो हिस्सों में बट गए। वह भी वहा से भाग कर जगल मे जा घुसा। इसके बाद बस्ती की ओर नही आया। वह एक बडे रास्ते पर के जगल के पास से गुजरने वाले मनुष्यों मे से एक एक को पकड कर जगल ले जाता और वही मार कर खाता हुआ एक न्यग्रोध वृक्ष के नीचे रहने लगा।

एक सार्थवाह ब्राह्मण, जगल के रखवालों को हजार दे पाच सौ गाडियों के साथ उस मार्ग पर चला। मनुष्य-यक्ष चिघाडता हुआ वहा आ कूदा। भयभीत मनुष्य पेट के बल लेट गये। वह ब्राह्मण को ले कर भागा। पाव खूंटे से टकरा जाने से जख्मी हो गया। जगल के रखवाले पीछा कर रहे थे। वह ब्राह्मण को छोड जाकर अपने रहने के पेड के नीचे पड रहा। उसे वहा पडे जब सात दिन हो गए थे तब जयद्दिस राजा ने शिकार की आज्ञा दी और नगर से निकल पडा। उसके नगर से निकलते ही तक्षशिला-वासी, नन्द नामक मातृ-पोषक ब्राह्मण प्राणियो के लिए कल्याणकारी चार गाथाओं के साथ सामने उपस्थित हुआ। जयद्दिस राजा ने, लौट कर सुनूगा, कह उसे निवासस्थान दिलवाया और शिकार के लिए चल दिया। शिकार भूमि मे पहुच कर उसने आज्ञा दी कि जिसके पास से मृग भाग जायगा वह उसी की गर्दन पर रहेगा। एक चितकबरा मृग उठा और राजा के ही सामने से निकल कर भाग गया। अमात्यों ने हसी की। राजा ने तलवार ले उसका पीछा किया। और तीन योजन पर जा कर उसे तलवार से काट कर दो टुकडे कर डाले। वह उसे वहगी पर लिए आ रहा था, कि वह मनुष्य-यक्ष के बैठने की जगह आ पहुचा। वहा

उसने दूब-घास पर बैठ, थोडा विश्राम कर के फिर चलना आरभ किया। उस समय वह मनुष्य-यक्ष उठ कर बोला—"ठहर कहा जाता है ? तू मेरी खाद्य सामग्री है।' उसने उसे हाथ से पकड पहली गाथा कही—

**चिरस्सं वत मे उदपादि अज्ज**
**मक्खो महा सत्तमिभत्तकाले**
**कुतो सिको वासि तदिघ ब्रूही**
**आचिक्ख जातिं विदितो यथासि ॥६४॥**

[बहुत देर के बाद आज सातवे दिन मेरे लिए भोजन की महान सामग्री उपलब्ध हुई है। तू बता कि तू कहा से है, कौन है, और तेरी जाति क्या है ॥६४॥]

राजा यक्ष को देख कर डर गया। रोमाच हो जाने के कारण वह भाग न सका लेकिन अपना होश ठिकाने रखकर उसने दूसरी गाथा कही—

**पंचाल राजा मिगवं पविट्ठो**
**जयद्दिसो नाम यदिस्सुतो ते**
**परामि कच्छानि वनानि चाहं**
**पसदमिमं खाद ममज्ज मुञ्च ॥६५॥**

[शायद तूने मेरा नाम सुना हो मै जयद्दिस नामक पचाल राजा हूँ और शिकार के लिए पर्वत जगल घूमता हूँ। आज तू इस चितकबरे मृग को खाल और मुझे छोड दे ॥६५॥]

यह सुन यक्ष ने तीसरी गाथा कही—

**सेनेव त्वं पणसी सस्मानो**
**ममेस भक्खो पसदो यं वदेसी**
**तं खादियानं पसदं दिघञ्ञं**
**खादिस्सं पच्छा न विलापकालो ॥६६॥**

[यह जो तू कहता है कि मै इस चितकबरे मृग को खालू तो यह तू स्वय हिम्मत करता हुआ मुझसे सौदा कर रहा है। मै खाने की इच्छा होने पर इस चितकबरे मृग को पीछे खा लूगा। अब यह तेरे विलाप का समय नही है ॥६६॥]

यह सुन राजा ने नद ब्राह्मण की याद कर चौथी गाथा कही—

**न चत्थी मोक्खो मम निक्कयेन**
**गन्त्वान पच्चागमनाय पण्हे**
**तं संगरं ब्राह्मणस्सप्पदाय**
**सच्चानुरक्खी पुनरावाजिस्सं ॥६७॥**

[यदि अपना शरीर बेचने से भी मेरी मोक्ष नही हो सकती तो जा कर पुनः लौट आने की मुझसे प्रतिज्ञा ले ले। मै ब्राह्मण के प्रति अपना वचन पूरा कर फिर लौट आऊँगा ॥६७॥]

यह सुन यक्ष ने पाचवी गाथा कही—

**किं कम्मजातं अनुतप्पती तं**
**पत्तं समीपं मरणस्स राज**
**आचिक्ख मे तं अपि सक्कुणेमु**
**अनुजानितुं आगमनाय पण्हे ॥६८॥**

[देव ! मरने के समय यह कौन सा कर्म है जो तुम्हारे अनुताप का कारण है। मुझे बताये। सम्भव है कि मै लौट आने की प्रतिज्ञा ले तुम्हे जाने की अनुज्ञा दे दूँ ॥६९॥]

राजा ने इस प्रश्न का उत्तर देते हुए छठी गाथा कही—

**कता मया ब्राह्मणस्स धनासा**
**तं संगरं पटिमोक्खं नमुत्तं**
**ते संगरं ब्राह्मणस्सप्पदाय**
**सच्चानुरक्खी पुनरआवजिस्सं ॥६९॥**

(मैने ब्राह्मण को धन की आशा दी थी। मै उस दिये हुए वचन से मुक्त नही हूँ। मै अपने सत्य वचन की रक्षा कर ब्राह्मण से मुक्त हो फिर लौट आऊँगा ॥६९॥)

यह सुन यक्ष ने सातवी गाथा कही—

**या ते कता ब्राह्मणस्स धनासा**
**तं संगरं पटिमोक्खं न मुत्तं**

**तं संगरं ब्राह्मणस्सप्पदाय**
**सच्चानुरक्खी पुनरावजस्सू ॥७०॥**

[तूने ब्राह्मण को जो धन आशा दी थी और जिस दिए हुए वचन से मुक्त नहीं है, अपने उस सत्य वचन की रक्षा कर ब्राह्मण से मुक्त हो कर लौट आ ॥७०॥]

इतना कह उसने राजा को विदा किया। राजा ने भी उससे विदा ले उसे आश्वासन दिया कि चिन्ता न कर मै प्रातःकाल ही आ जाऊँगा। इतना कह रास्ते के चिन्हो को देखता हुआ वह अपनी सेनाके पास पहुचा। सेना से घिरे हुए राजा ने नगर मे प्रवेश किया, और नद ब्राह्मण को बुला, बड़े कीमती आसन पर बिठा, गाथाए सुन, चार हजार दिए। फिर गाडी मे चढा, मनुष्यो को आज्ञा दी कि इसे तक्षशिला ही ले जाओ और ब्राह्मण को विदा किया। दूसरे दिन चलने की इच्छा से पुत्र को बुला कर अनुशासित किया। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने दो गाथाए कही—

**मुत्तो च सो पुरिसादस्स हत्था**
**गन्त्वा सकं मन्दिरं कामकामी**
**तं संगरं ब्राह्मणस्सप्पदाय**
**आमन्तयी पुत्तं अलीनसत्तु ॥७१॥**

**अज्जेव रज्जं अभिसेचयस्सु**
**धम्मं चर सेसु परेसुचापि**
**अधम्मकारो ते माहु रट्ठे**
**गच्छं अहं पोरिसादस्स अत्तं ॥७२॥**

[उस पुरुष-यक्ष के हाथ से मुक्त हो कर वह इच्छा करने वाला अपने राजभवन मे गया और ब्राह्मण को दिया वचन पूरा कर उसने अलीनशत्रु नामक कुमार को बुलाया और कहा—"आज ही राज्याभिषिक्त हो। सभी नगरो मे धर्माचरण कर। राष्ट्र मे तू अधम्मचारी प्रसिद्ध न हो। मै तो आज पुरुष राक्षस के पास जाता हूँ ॥७१॥]

यह सुन कुमार ने दसवी गाथा कही—

**किं कम्म कुब्बं तव देव पादे**
**नाराधयिं, तद् इच्छामि सोतुं**
**यं अज्ज रज्जम्हि उदस्सये तुवं**
**रज्जं पि निच्छेय्यं तया विना अहं ॥७३॥**

[हे देव ! मैंने अपने किस कर्म से आप के चरणो को अप्रसन्न किया है, यह मै सुनना चाहता हूँ। जिसके कारण आज आप मुझे राज्य सौप रहे है। मै आपके बिना राज्य भी नही चाहता ॥७३॥]

यह सुन राजा ने अगली गाथा कही—

**न कम्मना वा वचसा व तात**
**अपराधितो हं तुय्हं सरामि**
**संधिं च कत्वा पुरिसादकेन**
**सच्चानुरक्खी पुन अहं गमिस्सं ॥७४॥**

[तात मुझे याद नही आता कि तूने कर्म अथवा वाणी से कोई अपराध किया हो। मैंने यक्ष से संधि की है और उसी सत्य की रक्षा करने के लिए मै फिर जाता हूं ॥७४॥]

यह सुन कुमार ने गाथा कही—

**अहं गमिस्सामि इधेव होही**
**नत्थि ततो जीवतो विप्पमोक्खो**
**रुचे तुवं गच्छसि येव राज**
**अहं पि गच्छामि उभो न होम ॥७५॥**

[मै जाता हूँ। आप यही रहे। वहा जाने पर प्राण नही बचेगे। राजन ! यदि आप वहा जाते ही है तो मै भी चलता हूँ। ऐसा होने से हम दोनो न रहेगे ॥७५॥]

यह सुन राजा ने गाथा कही—

**अद्धा हि तात सतानेस धम्मो**
**मरणा च मे दुक्खतरं तद अस्स**

**कम्मासपादो तं यदा पचित्वा**
**पसय्ह खादे हितरुक्खसूले ॥७६॥**

[निश्चय से हे तात ! जो तू कहता है यही सत पुरुषो का धर्म है। लेकिन मेरे लिए मरने से भी बढ कर यह कही कष्टकर होगा जब वह यक्ष तीक्ष्ण वृक्ष की शूलो से चीर कर पका कर तुझे खायगा ॥७६॥]

यह सुन कुमार ने गाथा कही—

**पाणेन ते पाणं अहं निमिस्सं**
**मा त्वं अगा पोरिसादस्स ञत्ते**
**एवञ्च ते पाणं अहं निमिस्सं**
**तस्मा मतं जीवितस्स वण्णेमीति ॥७७॥**

[मै तुम्हारे प्राण के साथ अपने प्राण को बदलता हूँ। तू यक्ष के पास मत जा। इसलिए क्योकि मै प्राणो का परिवर्तन करता हू, मै जीवन से मरण को श्रेष्ठतर मानता हूँ ॥७७॥]

यह सुन राजा ने पुत्र का बल जान 'अच्छा कह स्वीकार किया कि तात जा। वह माता पिता को नमस्कार कर नगर से निकला। इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने आधी गाथा कही—

**ततो हवे धितिमा राजपुत्तो**
**वंदित्थ मातुच्च पितुच्च पादे ॥**

[तब धृतिमान राजकुमार ने माता और पिता के चरणो मे नमस्कार किया।]

उसके माता, पिता, बहिन, भार्या, अमात्य और नौकर चाकर भी साथ निकल पडे। वह नगर से निकल, पिता से रास्ता पूछ, अच्छी प्रकार समझ, माता पिता को नमस्कार कर, शेष लोगों को उपदेश दे, अकम्पित केसर सिह की तरह मार्गारूढ़ हो, यक्ष के निवासस्थान पर पहुंचा। उसे जाता देख, माता अपने को सम्भाल न सकने के कारण पृथ्वी पर गिर पडी। पिता हाथों में सिर दे जोर जोर से चिल्लाने लगा।

इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिए शास्ता ने आधी गाथा कही—

**दुक्खिनिस्स माता निपती पथव्या**
**पितस्स पग्गहिय भुजानि कन्दतीति ।।**

[इसकी दुखिया माता पृथ्वी पर गिर पडी और इसका पिता बाहे पकड कर रोने लगा ।।]

आधी गाथा के बाद उसके पिता द्वारा दिया गया आशीर्वाद और माता, बहन, तथा भार्या द्वारा की गई सत्यक्रिया प्रकाशित करने के लिये और भी चार गाथाए कही—

**तं गच्छतं ताव पिता विदित्वा**
**परम्मुखो वन्दति पञ्जली सो**
**सोमो च राजा वरुणो च राजा**
**पजापती चन्दिमा सूरियो च**
**एतेहि गुत्तो पुरिसादकम्हा**
**अनुञ्ञातो सोत्थी पच्चेहि तात ।।७९।।**
**यं दण्डकारञ्ञागतस्स माता**
**रामस्स, का सोत्थानं सुगुत्ता**
**तन्ते अहं सोत्थानं करोमि**
**एतेन सच्चेन सरन्तु देवा**
**अनुञ्ञातो सोत्थि पच्चेहि पुत्त ।।८०।।**
**आवी रहोपि मनोपदोसं**
**नाहं सरे जातु आलीनसत्ते**
**एतेन सच्चेन सरन्तु देवा**
**अनुञ्ञातो,सोत्थी पच्चेहि भात ।।८१।।**
**यस्मा चमे अनधिमनोसि सामि**
**न चापि मे मनसा अप्पियोसि**
**एतेन सच्चेन सरन्तु देवा**
**अनुञ्ञातो सोत्थि पच्चेहि सामि ।।८२।।**

[पिता ने यह जान कि मेरा पुत्र दूसरे के मुह में जा रहा है अंजलि जोड देवताओं को नमस्कार किया—सोम राजा को, वरुण राजा को, प्रजापति को, चन्द्रमा को और सूर्य को और आशीर्वाद दिया कि हे तात ! इन देवताओ द्वारा रक्षित होकर तू कल्याण पूर्वक लोट आ ॥७९॥ जिस प्रकार दण्डकारण्य मे गये राम की माता ने उसका कल्याण किया उसी प्रकार मै तेरा कल्याण चाहती हूँ। देवता इस सत्य को याद करे और हे अनुमति से जाने वाले पुत्र ! तू कल्याणपूर्वक लौट आए ॥८०॥ मुझे निश्चय से यह याद नही है कि मैने प्रकट अथवा अप्रकट रूप मे कभी अलीनसत्य के प्रति क्रोध किया हो। देवता इस सत्य को याद करे और हे अनुमति से जाने वाले भाई ! तू कल्याणपूर्वक लौट आए ॥८१॥ हे स्वामी, तुम पत्नी व्रत-धर्म मे सच्चे रहे हो और मेरे भी मन से अप्रिय नही हो। देवता इस सत्य को याद करे और हे अनुमति से जाने वाले स्वामी ! तुम कल्याणपूर्वक लौट आओ ॥८२॥]

राजकुमार पिता के कहे अनुसार यक्ष के निवासस्थान के रास्ते पर चला। यक्ष ने भी सोचा कि क्षत्रिय बहुत मायावी होते है कौन जानता है क्या हो। वह वृक्ष पर चढ राजा के आगमन की प्रतीक्षा करता हुआ बैठ रहा। उसने कुमार को आते हुए देख सोचा पिता को रोक कर पुत्र आया होगा। मुझे किसी तरह का भय नही है। वह पेड से उतर कर कुमार की ओर पीठ कर बैठ रहा। कुमार आ कर उसके सामने खडा हुआ। तब यक्ष ने गाथा कही—

**ब्रहा उजू चारूमुखो कुतो सि**
**नमं पजानासि वने वसन्तं**
**लुद्दं मं ञत्वा पुरोसादको ति**
**को सोत्थिमा जानमिधावजेय्या ॥८३॥**

[ऊंचा, सीधा, तथा सुमुख तू कहा से आया है ? मुझे वन मे रहने वाले को नही पहचानता ? यह जान कर कि मै रौद्र हूँ और आदमियों को खाने वाला हूँ, अपना कल्याण चाहने वाला कौन जान-बूझ कर यहां आएगा ? ॥८३॥]

यह सुन कुमार ने गाथा कही—

**जानामि लुद्द पुरिसादको त्वं**
**न तं न जानामि वने वसन्तं**
**अहंपि पुत्तोस्मि जयद्दिसस्स**
**ममज्ज खाद पितुनो पमोक्ख ॥८४॥**

[हे रोद्र ! मैं जानता हूँ कि तू आदमखोर है, और तेरे इस बन मे रहने की बात से अपरिचित नही हूँ। मैं जयद्दिस का पुत्र हूं। आज तू मुझे खा ले। और पिता को छोड दे ॥८४॥]

तब यक्ष ने गाथा कही—

**जानामि पुत्तोति जयद्दिसस्स**
**तथा हि तो मुखवण्णो उभिन्नं**
**सुदुक्करञ्ञेव कतं तवेदं**
**यो मच्चुमिच्छे पितुनो पभोक्खा ॥८५॥**

[मैं जानता हूँ कि तू जयद्दिस का पुत्र है। तुम दोनो की शकल समान है। तूने यह बडा दुश्कर कार्य किया है कि पिता को बचा कर स्वय मरना चाहता है ॥८५॥]

तब कुमार ने गाथा कही—

**न दुक्करं किञ्चिमहेत्थ मञ्ञो**
**यो मत्तुमिच्छे पितुनो पमोक्खा**
**मातुच हेतू परलोक गम्या**
**सुखेन सग्गेन च सम्पयुत्तो ॥८६॥**

[पिता की मुक्ति के लिए मरने की इच्छा करने मे मुझे कुछ भी दुश्कर नहीं मालूम देता। माता (–पिता) के लिए परलोक जा कर आदमी सुखपूर्वक स्वर्गलाभ करता है ॥८६॥]

यह सुन यक्ष ने कुमार से पूछा—"कुमार ! ऐसा कोई प्राणी नही है जिसे मृत्यु से डर न लगता हो। तुझे डर क्यों नही लगता ? उसने यक्ष को उत्तर देते हुए दो गाथाएं कही—

**अहञ्च खो अत्तनो पापकिरियं**
**आवी रहो वापि सरे न जातु**
**संक्खातजगतीमरणो, हमस्मि**
**यथेव मे इध तथापरत्थ ॥८७॥**
**खादज्ज मं दानि महानुभाव**
**करस्सु किच्चानि इमं सरीरं**
**रुक्खस्सवा ते पपतामि अग्गा**
**छादयमानो मे यं त्वं अदेसि मंसं ॥८८॥**

[निश्चय से मुझे अपनी किसी भी प्रकट अथवा अप्रकट पाप-क्रिया का स्मरण नही है। मै जानता हूँ कि पैदा होने वाले का मरना अवश्यम्भावी है। मेरे लिये जैसा यहा है वैसा वहा है ॥८७॥ हे महानुभाव आज मुझे खाए। मेरे इस शरीर को काम में लगाएं, आप चाहें तो मै आपके सामने वृक्ष के ऊपर से गिरूँ जिससे आप इच्छानुसार मेरा मास खाए ॥८८॥]

यक्ष ने उसकी बात सुन सोचा कि भयभीत मन से मै इसका मास न खा सकूगा। मै इसे, उपाय-कौशल द्वारा भगा दूगा। यह सोच उसने यह गाथा कही—

**इदञ्चते रुच्चति राजपुत्त**
**चजासि पाणं पितुनो पमोक्खा**
**तस्माहिसो त्वं तरमानरूपो**
**सम्भञ्ज कट्ठानि जलेहि अग्गिं ॥८९॥**

[हे राजपुत्र यदि तुझे यह अच्छा लगता है कि तू पिता को बचाने के लिए अपने प्राण दे तो तू यथासम्भव शीघ्र लकडिया इकट्ठी कर आग जला ॥८९॥]

उसने वैसा किया और उसके पास आया। इस बात को प्रकाशित करने के लिए शास्ता ने दूसरी गाथा कही—

**ततो हवे धितिमा राजपुत्तो**
**दारू समाहत्वा महन्तं अग्गिं**

**सन्दीपयित्वा पटिवेदयित्थ**
**आदीपितो दानि महायं अग्गी ॥९०॥**

[तब धृतिमान राजपुत्र ने लकड़िया इकट्ठी कर महान अग्नि प्रज्वालेत की और सूचना दी कि मैंने आग जला दी है ॥९०॥]

यक्ष ने जब देखा कि कुमार आग जला कर आ पहुचा तो सोचने लगा कि यह पुरुष सिह के समान है इसे मृत्यु का भय नही है। मैंने इस समय तक इस प्रकार का निर्भय पुरुष नही देखा। उसे रोमाच हो आया और वह बैठा कुमार को बार बार देखने लगा। कुमार ने उसकी क्रिया देख यह गाथा कही—

**खादज्ज मं दानि पसह्य कारी**
**किमं मुहुं पेक्खसि हट्ठलोमो**
**तथा तथा तुह्यमहं करोमि**
**यथा यथा मं छादयमानो अदेसि ॥९१॥**

[हे दुस्साहसी आज मुझे खा। रोमाचित हो तू मुझे बार बार क्या देखता है ? मै आज जैसे जैसे तू कहेगा, वैसे वैसे करूगा। जिससे तू मुझे रुचिपूर्वक खा सकेगा ।९१॥]

उसकी बात सुन यक्ष ने गाथा कही—

**कोतादिसं अरहति खादिताए**
**धम्मेठितं सच्चवादिं वदञ्ञुं**
**मुद्धापि तस्स विप्फलेय्य सत्तधा**
**यो तादिसं सच्चवादिं अदेय्य ॥९२॥**

[इस प्रकार के धर्म-स्थित, सत्यवादी, उदार-पुरुष को कौन खा सकता है ? जो इस प्रकार के सत्य-वादी को खाए उसका सिर कट कर सात टुकडे हो जा सकता है ॥९२॥]

यह सुन कुमार ने पूछा—"यदि मुझे खाना नही चाहता तो लकड़िया तुड़वा आग क्यो जलवाई ?"

"यह देखने के लिए कि भागता है अथवा नही।"

"तू अब मेरी क्या परीक्षा लेगा, जब मैंने पशु योनि में भी देवेन्द्र शक्र को अपनी परीक्षा नहीं लेने दी।"

इतना कह यह गाथा कही—

**इन्दं हि सो ब्राह्मणं मञ्ञमानो**
**ससो अवासेसि सके सरीरे**
**तेनेव सो चन्दिमा देवपुत्तो**
**ससन्त्थुतो कामदुहज्ज यक्ख ॥९३॥**

[खरगोश ने उसे ब्राह्मण समझ अपना शरीर दान देने के लिए रखा। उसी से हे यक्ष देवपुत्र चन्द्रमा आज प्रिय रूप है, प्रशंसित है ॥९३॥[1]]

यह सुन यक्ष ने कुमार को मुक्त करते हुए गाथा कही—

**चन्दो यथा राहुमुखा पमुत्तो**
**विरोचते पन्नरसे व भानुमा**
**एवं तुवं पोरिसादा पमुत्तो**
**विरोच कम्पिल्लो महानुभाव**
**आमोदयं पितरं मातरञ्च**
**सब्बो चते नन्दतु ञातिपक्खो ॥९४॥**

[हे महानुभाव! जिस प्रकार पूर्णिमा के दिन राहु के मुह से मुक्त चन्द्रमा अथवा सूर्य प्रकाशित होता है उसी प्रकार तू भी मुझसे मुक्त होकर काम्पिल्य राष्ट्र को प्रकाशित कर। हे महावीर! तू अपने माता पिता तथा सभी रिश्तेदारों को प्रसन्न करता हुआ जा ॥९४॥]

उसने भी उसे विनम्र बना पचशील दिए। फिर सोचा—यह वास्तव मे यक्ष है अथवा नही? यक्षों की तो आखे लाल होती है। पलक नही झपकती, छाया नही पड़ती और रोमाच नही होता। यह यक्ष नही है। मनुष्य है। मेरे पिता के तीन भाई थे। तीन यक्षिणी द्वारा पकड़े गए, उनमें से दो खा लिये गए। एक पुत्र-स्नेह से पाला

---

१. देखें सस जातक (३१६)

गया होगा। यही वह होगा। इसे ले जाकर अपने पिता से कह कर राज्य पर प्रतिष्ठित कराऊंगा। यह सोच उसे कहा—

"आ तू यक्ष नही है। मेरे पिता का ज्येष्ठ भाई है। मेरे साथ चल कर कुलागत, राज्य का छत्र धारण कर।"

"मै मनुष्य नही हूँ।" यक्ष बोला।

"यदि तू मेरा विश्वास नही करता तो क्या कोई है जिसका तू विश्वास करता है?"

"अमुक स्थान पर दिव्य-चक्षु वाला तपस्वी है।"

वह उसे लेकर वहा गया। तपस्वी उन्हे देख बोला—

"पिता पुत्र क्या करते हुए जगल मे घूम रहे हो?" इस प्रकार उसने उनका सम्बन्ध प्रकट किया। यक्ष ने तपस्वी का विश्वास कर कहा—"तात! तू जा। एक ही जन्म मे मेरे दो जन्म हो गए, मुझे राज्य नही चाहिए। मै प्रव्रजित होऊँगा।" उसने तपस्वी के पास ऋषि-प्रव्रज्या ली। कुमार उसे प्रणाम कर नगर लौट आया। इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिए शास्ता ने कहा—

**ततो हवे धितिमा राजपुत्तो**
**कतञ्जली परियगा पोरीसादं**
**अनुञ्ञातो सोत्थी सुखी अरोगो**
**पच्चागमा कम्पिल्लं अलीनसत्तो ॥९५॥**

[तब धृतिमान राजपुत्र ने यक्ष को नमस्कार किया और उसकी अनुमति पा वह सकुशल, सुखी तथा निरोग अलीनसत्व काम्पिल्य लौट आया ॥९५॥]

यह गाथा कह नगर तथा निगम आदि के लोगो का कर्तृत्व प्रकट करने के लिए अंतिम गाथा कही—

**तं नेगम जानपदा च सब्बे**
**हत्थारोहा रथिका पत्तिका च**
**नमस्समाना पञ्जलिका उपागमुं**
**नमत्थु ते दुक्करकारकोसि ॥९६॥**

[सभी निगमवासी तथा जनपद वासी हाथियो पर चढ कर, रथों में बैठकर, तथा पैदल हाथ जोड नमस्कार करते हुए उसके पास आए और बोले—हे दुष्कर कृत्य करने वाले तुझे नमस्कार है ॥९६॥]

राजा ने कुमार आया, सुना तो उसका स्वागत किया। लोगो से घिरे हुए कुमार ने जा कर राजा को नमस्कार किया।

राजा ने पूछा—"तात! उस प्रकार के आदमखोर मे कैसे मुक्ति मिली?"

"तात! यह यक्ष नही है। तुम्हारा बडा भाई है। यह मेरा चाचा है।"

इस प्रकार सब समाचार सुना कर कहा—"तुम्हे मेरे चाचा से मिलना चाहिए।"

राजा ने उसी समय मुनादी करायी और बहुत से अनुयायी लेकर तपस्वी के पास गया। महातपस्वी ने यक्षिणी द्वारा उसके लाए जाने, न खाए जाने, पाले जाने, यक्ष न होने और सम्बन्धी होने की सारी बात विस्तारपूर्वक कही। राजा बोला—"भाई आ राज्य कर।"

"महाराज बस करे।"

"तो आ उद्यान मे रह, मै चारो आवश्यकताओ से सेवा करूँगा।"

"महाराज नही चलूगा।"

राजा ने उनके आश्रम से थोडी ही दूर पर एक पर्वत की ओट मे छावनी डलवा बहुत बडा तालाब बनवाया। और खेत तैयार करा बहुत सा धन तथा हजार परिवार लाकर बडा भारी गाव बसाया। इस प्रकार उसने तपस्वियो के लिए भिक्षा की व्यवस्था की। उस गाव का नाम हुआ 'चुल्लकम्मासदम्मनिगम'। सुतसोम बोधिसत्व द्वारा जहा यक्ष का दमन हुआ ऐसा प्रदेश होने से ही उसे महाकम्भा दम्भ निगम जानना चाहिए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो का प्रकाशित होने के अंत मे मातृ-पोषक स्थविर स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ। उस समय के माता-पिता महाराज कुल हुए। तपस्वी, सारिपुत्र; आदमखोर, अगुलिमाल, छोटी बहन, उत्पलवर्णा; पटरानी, राहुल माता, अलीनसत्व कुमार तो मै ही था।

# ५१४ छद्दन्त जातक

"किन्न् सोचसि .... .." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक तरुण भिक्षुणी के बारे में कही।

## क. वर्तमान कथा

उस श्रावस्तीवासिनी कुल कुमारी ने गृहस्थ जीवन को सदोष मान बुद्ध-शासन में प्रव्रज्या ग्रहण की। एक दिन भिक्षुणियों के साथ वह धर्म सुनने गई। उसने धर्मासान पर बैठकर धर्मोपदेश देते हुए दशबलधारी के अनत पुण्य प्रभाववान तथा उत्तम सौन्दर्य से मुक्त स्वरूप को देखा। उसने सोचा क्या इस ससार में समर्ण करते हुए मैं कभी पूर्व-जन्म में इस महापुरुष की पाद-सेविका रही हूँ अथवा नही ? उसी समय उसे पूर्व-जन्म सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त हो गया। उसे मालूम हुआ कि छद्दन्त हाथी के जन्म के समय वह इस महापुरुष की पाद सेविका रही है। इस बात का स्मरण आते ही उसे बडा आनद हुआ। इस आनद के प्रभाव में वह जोर से हसी और तब उसने सोचा कि बहुत कम स्त्रिया स्वामी की हितचिन्तक होती है। अधिकाश अहित-चिन्तक ही होती है। क्या मैं पुरुष की हितचिन्तक रही हू अथवा अहितचिन्तक ? उसे याद आया कि मैंने मन में थोडा सा क्रोध उत्पन्न हो जाने से एक सौ बीस रतन चौडे छद्दन्त महागजेश्वर को सोनत्तर नामक शिकारी को भेज, जहर बुझे हुए शल्य से बिधवा कर मरवा डाला। तब उसके मन में शोक उत्पन्न हुआ। हृदय गर्म हो उठा। शोक को न सह सकने के कारण लम्बी सास लेती हुई वह जोर से रो पडी। यह देख शास्ता मुस्कराए। भिक्षु-सघ ने पूछा भते शास्ता की मुस्कराहट का क्या कारण है ? शास्ता ने "भिक्षुओ यह तरुण भिक्षुणी पूर्व जन्म में मेरे प्रति किए गए अपराध की याद कर रोती है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

## ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे हिमालय प्रदेश मे छद्दन्त सरोवर के पास आठ हजार हाथी रहते थे, ऋद्धिमान, आकाशमार्ग से जाने वाले। उस समय बोधिसत्व ज्यष्ठ हाथी के पुत्र हो कर उत्पन्न हुए। वर्ण सर्व-श्वेत। मुह और पैर लाल। आगे चल कर वह बडे होने पर ८८ हाथ ऊचा हुआ। चौडाई १२० रतन। चादी की माला के समान ५८ हाथ लम्बी सूड से लिप्त। दातो की गोलाई १५ हाथ की थी। लम्बाई ३० हाथ की। उनमे से छ वर्ण की रश्मिया निकल रही थी। वह आठ हजार हाथियो मे ज्येष्ट था। वह पाच सौ प्रत्येक-बुद्धो को पूजता था। उसकी दो पटरानिया थी। छोटी सुभद्रा और बडी सुभद्रा। हस्तिराज आठ सहस्र हाथियो के साथ कचन गुफा मे रहता था।

उस छद्दन्त सरोवर की चौडाई और विस्तार पचास योजन का था। उसके बीच बारह योजन जगह मे काई अथवा कीचड नही था। मणी के वर्ण सदृश जल था। इसके बाद उस पानी के चारो ओर योजन भर का शुद्ध सुन्दर वन था। उसके बाद उसके चारो ओर योजन भर का ही नीलोत्पल-वन था। इसी प्रकार उसके आगे योजन योजन भर के रक्तोत्पल-वन, उसके आगे श्वेत-उत्पल वन, उसके आगे रक्त-पद्म, उसके आगे श्वेत-पद्म तथा उसके आगे कुमुद-वन अपने से पहलों को घेरे थे। इन सातो वनो के बाद, इन सभी को योजन योजन भर के मिश्रित-वन घेरे हुए थे। उसके बाद नागो के कटी तक के जल मे योजन भर का लाल शालीवन था। उसके बाद पानी की सीमा पर नीले, पीले, रक्त-वर्ण, श्वेत-वर्ण, सुगन्धित छोटे छोटे फूलो वाला छोटे पेड़ो का वन था। इस प्रकार यह दस वन योजन-योचन भर के थे। उसके बाद छोटे उडद-बड़े उड़द तथा मूग का वन। उसके बाद कद्दू, लौकी, पेठे की लताओ के वन। उसके बाद सुपारी के पेडो जितने ऊँचे ऊँचे ऊख के वन। उसके आगे हाथी-दात जैसे बड़े बड़े फलो वाला केले का वन। उसके आगे शाल-वन। उसके आगे चाटी जितने बड़े बड़े फल वाला कटहल का वन। उसके बाद मीठे फलो वाला इमली का वन। उसके बाद कपिट्ठ-वन। उसके बाद मिला-जुला महान् वन-खण्ड। उसके बाद बॉसो का वन। उस समय इतनी सम्पत्ति थी। सयुक्त (निकाय) की

अर्थ-कथा मे तो केवल वर्तमान सम्पत्ति का ही उल्लेख किया गया है। बाँस के वन के चारो ओर सात पर्वत थे। बाहर से आरम्भ कर के जो पहला पर्वत था उसका नाम था चुल्ल-काल, दूसरे का नाम था महाकाल, उसके बाद उदकपश्य पर्वत, उसके बाद चन्द्रपश्य पर्वत, उसके बाद सूर्यपश्य-पर्वत, उसके बाद मणिपश्य पर्वत, और सातवा था स्वर्ण-पश्य पर्वत। यह ऊचाई मे सात योजन का था और छद्दन्त-सरोवर के चारो ओर ऐसे खडा था माना किसी बर्तन के मुख को चारो ओर से घेरे हो। वह अन्दर की ओर मे स्वर्ण-वर्ण था। उसमे निकलने वाले प्रकाश के कारण छद्दन्त सरोवर उदित बाल-सूर्य्य की तरह था। बाहर के पर्वतो मे एक की ऊचाई छ योजन, एक की पाच योजन, एक की चार योजन, एक की तीन योजन, एक दो योजन और एक एक योजन। इस प्रकार सात पर्वतो से घिरे उस छद्दन्त सरोवर के पूर्वोत्तर कोने मे पानी हवा लगने की जगह पर एक बडा न्यग्रोध-वृक्ष था। उसके तने की गोलाई पाच योजन थी, ऊचाई सात योजन। चारो दिशाओ मे फैली हुई चार शाखाए छ. योजन की और ऊपर निकली हुई शाखा भी छ ही योजन की। इस प्रकार जड से आरम्भ करके उसकी ऊचाई तेरह योजन की थी और शाखाओ से ऊपर चारो ओर बारह योजन। आठ हजार टहनियो से युक्त वह पर्वत इस प्रकार सुशोभित खडा था जैसे उसके शिखर पर मणि सुशोभित हो। छद्दन्त सरोवर के पश्चिम की ओर स्वर्ण-पश्य पर्वत मे बारह योजन की कञ्चन-गुफा थी। वर्षा-काल मे आठ हजार नागो सहित छद्दन्त नाम का नागराजा वर्षा-काल मे उस कञ्चन-गुफा मे रहता था। ग्रीष्मकाल मे हवा-पानी का आनन्द लेता हुआ महान् न्यग्रोध वृक्ष की छाया मे शाखाओ के बीच रहता था।

एक दिन उस नागराज को सूचना दी गई कि शालवन पुष्पित हो गया। उसने सभी अनुयाइयों के साथ शाल-वन पहुँच क्रीडा करने की इच्छा से शाल-वन जाकर एक सुपुष्पित शाल-वन को सिर की टक्कर दी। चुल्ल सुभद्रा जिधर ऊपर की हवा थी, उधर खडी थी। उसके शरीर पर सूखी टहनियों से मिले हुए पुराने पत्ते और लाल चीटियाँ गिर पडी। महासुभद्रा नीचे की हवा की ओर थी। उसके शरीर पर फूलों की रेणु, केसर तथा पत्ते गिरे। चुल्ल सुभद्रा ने सोचा, यह नागराज अपनी प्रिय भार्य्या के सिर पर रेणु-केसर तथा पत्ते गिराता है और मेरे सिर पर सूखी

टहनियों वाले पुराने पत्ते तथा लाल चीटियाँ गिराता है। अच्छा, देखूँगी कि मैं क्य कर सकती हूँ? यह सोचते हुए उसने बोधिसत्व के प्रति मन मे बैर बाँध लिया।

दूसरे दिन भी मण्डली सहित नागराज नहाने के लिए छद्दन्त सरोवर मे उतरा। दो तरुण हाथियो ने सूण्ड मे वीण-धारा ले कैलास-शिखर को साफ करने की तरह स्नान कराया। उसके स्नान कर चुकने पर दो हथिनियो ने स्नान किया। वे भी वाहर आकर बोधिसत्व के पास खडी हुई। उसके बाद आठ हजार नागो ने जल-क्रीडा करके, सरोवर मे से नाना प्रकार के पुष्प ला, रजत-पुष्प को अलकृत करने की तरह, बोधिसत्व को अलकृत करने के बाद दोनो हथिनियो को अलकृत किया उस समय एक हाथी को तालाब मे घूमते हुए सत्वोदय नामक महा-पद्म मिला उसने वह ला कर बोधिसत्व को दे दिया। उसने उसे ले, केसर को सिर पर बिखरते हुए ज्येष्ठ महासुभद्रा को दे दिया। यह देख दूसरी ने सोचा कि यह सत्वोदय नाम का महापद्म भी अपनी प्रिय भार्य्या को ही देता है, मुझे नही देता, और उससे और भी बैर बाँध लिया।

एक दिन जब बोधिसत्व मधुर फल तथा भिस की जडे कॅवल के पत्तो पर रख कर पाँच सौ प्रत्येक-बुद्धो को परोस रहे थे, चुल्ल-सुभद्रा ने, जो फलाफल उसे मिल थे, प्रत्येक बुद्धो को दे प्रार्थना की कि अब यहा से मर कर मद्रराजकुल मे सुभद्रा नाम की राजकन्या हो कर जन्म ग्रहण करूँ। फिर बडी होने पर वाराणसी नरेश की पटरानी बनूँ और उसकी प्रिय तथा उसे अच्छी लगने वाली होऊ। जब वह मेरे मन की बात करने लग जाय, तब एक शिकारी भेज कर इस हाथी को विष बुझे तीर से बिधवाऊ और मरने पर इसके छः वर्ण रश्मिया छोडने वाले हाथी दात जोडे को मगवाऊं।

उसके बाद उसने चारा खाना छोड दिया और सूख कर अचिर काल मे ही मर गई। वह मद्रराष्ट्र मे पटरानी की कोख मे जन्मी। उसका नाम सुभद्रा रखा गया। बडे होने पर उसे बनारस-नरेश को दे दिया गया। वह उसकी प्रिया हुई, मन को अच्छी लगने वाली, सोलह हजार स्त्रियो मे ज्येष्ठ। उसे पूर्व-जन्म का ज्ञान हो आया। उसने सोचा—मेरा सकल्प पूरा हो गया है। अब मैं उस हाथी के दातों का

जोड़ा मगवाऊंगी। उसने शरीर पर तेल मला, मैले वस्त्र धारण किये, और रोगी-वेश बना कर पलग पर जा लेटी।

राजा ने पूछा—"सुभद्रा कहा है ?"

"रुग्ण है।"

वह शयनागार मे गया और उसके पलग पर बैठ पीठ मलते हुए पहली गाथा कही—

**किं नु सोचसि अनुज्जंगी, पण्डुसी वरवण्णिनी**
**मिलायसि विसालक्खि, माला व परिमद्दिता ॥१॥**

[हे स्वर्ण-वर्णे ! तू क्या सोचती है ? हे श्रेष्ठ वर्णे ! तू पाण्डु रोग की हो गई है। हे विशालाक्षी ! तू मर्दित माला की तरह म्लान हो गई है ? ॥१॥]

यह सुन उसने दूसरी गाथा कही—

**दोहळो मे महाराज सुमिनन्तेन उपच्चगा**
**न सो सुलभरूपो व यादिसो मम दोहळो ॥२॥**

[महाराज ! स्वप्न मे मेरे मन मे 'दोहद' उत्पन्न हुआ। जिस प्रकार का दोहद मेरे मन मे उत्पन्न हुआ, उसकी पूर्ति आसान नही है ॥२॥]

यह सुन राजा ने गाथा कही—

**ये केचि मानुसा कामा इध लोकस्मिं नन्दने**
**सब्बे ते पचुरा मह्यं, अहं ते दम्मि दोहळं ॥३॥**

[प्रिये ! लोक मे जितनी भी कामना की वस्तुए हैं, वे सभी मेरे पास प्रचुर मात्रा मे हैं। मैं तुझे 'दोहद' दूंगा ॥३॥]

यह सुन देवी बोली, "महाराज ! मेरा दोहद दुष्प्राप्य है। मैं इस समय उसे नही कहूगी। आपके राज्य मे जितने शिकारी है, उन सब को इकट्ठा कराये। मै उनके बीच मे कहूगी।" यह कहते हुए इसके बाद की गाथा कही—

**लुद्दा देव समायन्तु ये केचि विजिते तव,**
**एतेसं अहं अक्खिस्सं यादिसो मम दोहळो ॥४॥**

[आपके राज्य मे जितने शिकारी है, वे सब इकट्ठे हो। मै उनके बीच मे कहूगी कि मेरा 'दोहद' कैसा है ॥४॥]

राजा न 'अच्छा' कह स्वीकार किया और शयनागार मे निकल मन्त्रियो को आज्ञा दी कि तीन सौ योजन के काशी राष्ट्र मे जितने शिकारी है, वे सभी इकट्ठे हो, ऐसी मुनादी करा दे। उन्होने वैसा ही किया। अचिर काल मे ही काशी राष्ट्र-वासी शिकारियो ने यथा सामर्थ्य भेट के साथ अपने आगमन की सूचना राजा को भिजवाई। वे सब साठ हजार थे। राजा ने उनके आगमन की बात जान, झरोखे म खडे हो, उनक आगमन की बात हाथ फैला कर देवी को कहते हुए यह गाथा कही—

**इमे ते लुद्दका देवि कतहत्था विसारदा**
**वनञ्ञू च मिगञ्ञू च, मम ते चत्तजीविता ॥५॥**

[देवी ! ये कुशल पण्डित शिकारी है। इन्ह जगलो तथा जगली पशुओ का ज्ञान है, और ये मेरे लिए प्राण तक दे सकते है ॥५॥]

यह सुन देवी ने सम्बोधन करते हुए दूसरी गाथा कही—

**लुद्दपुत्ता निसामेथ यावन्तेत्थ समागता**
**छब्बिसाणं गजं सेतं अद्दसं सुपिनेन'हं,**
**तस्स दन्तेहि मे अत्थो, अलाभे नत्थि जीवितं ॥६॥**

[जितने भी शिकारी यहा आये है वे ध्यान से सुने कि मैने स्वप्न मे छ वर्णो के हाथी-दात वाला श्वेत हाथी देखा है। मुझे उसके दात चाहिए। यदि नही मिलते तो मै जीवित न रहूगी ॥६॥]

यह सुन शिकारी बोले—

**न नो पितुन्नं न पितामहानं**
**दिट्ठो सुतो कुञ्जरो छब्बिसाणो**
**यं अद्दसा सुपिने राजपुत्ति,**
**अक्खाहि नो यादिसो हत्थिनागो ॥७॥**

[हे राजपुत्री ! न तो हमारे पिताओ ने और न हमारे पितामहो ने ही छ.

वर्ण के दांतो वाला हाथी देखा। तूने स्वप्न मे जैसा हाथी देखा, उसका वर्णन सुना कि वह कैसा है ? ॥७॥]

इसके बाद की गाथा भी उन्ही के द्वारा कही गई—

**दिसा चतस्सो विदिसा चतस्सो**
**उद्धं अधो, दस दिसा इमायो**
**कतमं दिसं तिट्ठति नागराजा**
**यं अद्दसा सुपिने छब्बिसाणं ॥८॥**

[चार दिशाये है, चार अनु-दिशाये है तथा ऊपर नीचे की दिशा को मिला कर कुल दस दिशाये होती है। जिस छः वर्णो के दांत वाले हस्ति-राज को तूने स्वप्न मे देखा है, वह किस दिशा मे ठहरता है ? ॥८॥]

ऐसा पूछे जाने पर सुभद्रा ने सभी शिकारियों को ध्यान से देखा। उनमे उसे सोणुत्तर नाम का एक शिकारी दिखाई दिया, जो प्रशस्त-पाद था, जिसकी जाघ भात की थैली के समान थी, जिसके घुटने बडे बडे थे, जिसकी छाती चौडी थी, जिसकी मूछे बडी-बडी थी, जिसकी दाढ़ी काली थी, जिसकी आखे अत्यन्त लाल थी, जो आसानी से पहचाना नही जा सकता था, जिसका रूप वीभत्स था और जो सब म प्रधान लगता था तथा बोधिसत्व का पूर्व-वैरी था। उसने सोचा यह मेरा कहना कर सकेगा। राजा की आज्ञा ले, वह उसके साथ सात तल्ले वाले महल के सबसे ऊपर के तल्ले पर चढ गई और उत्तर की ओर के झरोखे को खोल कर उत्तर-हिमालय की ओर हाथ पसार कर उसने चार गाथाये कही—

**इतो उजुं उत्तरियं दिसायं**
**अतिक्कम्म सो सत्त गिरी ब्रहन्ते,**
**सुवण्णपस्सो नाम गिरी उळारो**
**सुपुप्फितो किंपुरिसानुचिण्णो ॥९॥**
**आरूय्ह सेलं भवनं किन्नरानं**
**आलोकय पब्बतपादमूलं,**
**अथ दक्खसि मेघसमानवण्णं**
**निग्रोधराजं अट्ठसहस्सपादं ॥१०॥**

**तत्थच्छति कुञ्जरो छब्बिसाणो**
**सब्बसेतो दुप्पसहो परेहि,**
**रक्खन्ति नं अट्ठसहस्सनागा**
**ईसादन्ता वातजवप्पहारिनो ॥११॥**
**तिट्ठन्ति ते तुमुलं पस्ससन्ता**
**कुप्पन्ति वातस्सपि एरितस्स,**
**मनुस्सभूतं पन तत्थ दिस्वा**
**भस्मं करेय्युं नास्स रजोपि तस्स ॥१२॥**

[यहा से सीधे उत्तर की ओर सात बडे पर्वतो के उस पार स्वर्ण-पार्श्व नाम का महान सुपुष्पित पर्वत है। जहा किंपुरिस रहते है ॥९॥ किन्नरो के शैल भवन पर चढ कर पर्वत के नीचे देखने से मेघ के जैसे वर्ण वाला, आठ हजार जडो वाला न्यग्रोध वृक्ष दिखाई देगा ॥१०॥ वहा छ वर्ण के दातो वाला सर्व श्वेत हाथी है। जिसे दूसरे असानी से अधीन नही कर सकते। रथ की धुरी जैसे दातो वाले और वायु के वेग से (शत्रु पर) प्रहार करने वाले आठ हजार हाथी उसकी रक्षा करते है ॥११॥ वे वहा खडे जोर-जोर से स्वास ले रहे है, उन्हे हवा के चलने पर भी क्रोध आता है। वे वहा किसी मनुष्य को देख कर उसे अपनी फुकार से भस्म कर देगे, उसकी राख तक नही होगी ॥१२॥]

यह सुन मृत्यु के डर के मारे सोणुत्तर बोला—

**बहुं हिमे राजकुलम्हि सन्ति**
**पिलन्धना जातरूपस्स देवी**
**मुत्ता मणी वेलुरीयामया च**
**किं काहसी न्तपिलन्धनेन**
**उदाहु घातेस्ससी लुद्दपुत्ते ॥१३॥**

[हे देवी राजकुल मे सोने के बहुत से गहने है, मोतियो के माणिक्य के और बिल्लौर के भी। तू हाथी-दात-गहनो को लेकर क्या करेगी? क्या तू छ वर्ण के दात वाले हाथी की हत्या कराना चाहती है? अथवा शिकारियो की ॥१३॥]

देवी ने उत्तर दिया—

**सा इस्सिता दुक्खिता चस्मि लुद्द**
**उद्धञ्च सुस्सामि अनुस्सरन्ति**
**करोहि मे लुद्दक एतमत्थं**
**दस्सामि ते गामवरानि पञ्च ॥१४॥**

[हे शिकारी ! मैं पूर्व कृत वैर को याद करके ईर्ष्या के मारे दुःखी हूँ और सूखती जा रही हूँ। शिकारी ! मेरा यह काम कर, मैं तुझे पाच श्रेष्ठ गाव दूंगी ॥१४॥]

इतना कह चुकने के बाद वह बोली—"हे शिकारी ! मैंने पूर्व जन्म मे प्रत्येक बुद्धो को दान दे कर प्रार्थना की थी कि मैं इस छ वर्ण के दातो वाले हाथी को मरवा कर उसके दोनो दात मगवा सकू। मैंने स्वप्न नही देखा है। किन्तु मेरा वह सकल्प पूरा होगा। तू जाता हुआ डर मत।" इस प्रकार देवी ने उसे आश्वासन दिया। उसने 'अच्छा' कह उसका कहना मान लिया और तब बोला—"ता आर्ये ! मुझे स्पष्टतया उसका निवासस्थान बताए !"

वह बोला—

**कत्थच्छती कत्थ मुपेति ठानं**
**वीथिस्स का नहानगतस्स होति**
**कथं हि सो नहायति नागराजा**
**कथं विजानेमु गतिं गजस्स ॥१५॥**

[वह कहा रहता है ? कहा ठहरता है ? वह किस मार्ग से नहाने जाता है ? वह नागराज किस प्रकार स्नान करता है ? हम उसकी गति किस प्रकार जाने ॥१५॥]

उसने पूर्व-जन्म की बात जानने मे समर्थ होने के कारण प्रत्यक्षत दिखाई देने वाले स्थान का वर्णन करते हुए दो गाथाए कही—

**तत्थेव सा पोक्खरनी अदूरे**
**रम्मा सुतित्था च महोदिका च**

**सम्पुप्फिता भमरगणानुचिन्ना**
**एत्थहि सो नहायती नागराजा ॥१६॥**
**सीसं नहातो उप्पलमालभारी**
**सब्बसेतो पुन्डरीकत्तचंगी**
**आमोदमानो गच्छति सन्निकेतं**
**पुरक्खत्वा महेसिं सब्बभद्दं ॥१७॥**

[वही पास ही वह पुष्करणी है जो रमणीय है, सुतीर्थ वाली है, बहुत जल वाली है, सुपुष्पित है, तथा भ्रमर गणो से युक्त है। यही वह नागराज स्नान करता है ॥१६॥ वह सर्व-श्वेत हाथी जिसकी त्वचा और अंग कमल सदृश है, नहाने के बाद सिर पर कमल ले कर अपनी पटरानी सर्वभद्रा को आगे आगे कर के मौज मनाता हुआ अपने निवासस्थान को जाता है ॥१७॥]

यह सुन सोणुत्तर ने स्वीकार किया—"आर्य अच्छा। मै उस हाथी को मार कर उसके दात ले आऊगा।" उसने उसके प्रति सतुष्ट हो हजार दिए और बोली—"अपने घर जाओ, आज से एक सप्ताह बीतने पर वहा जाना। इस प्रकार उसे जाने के लिए प्रेरित कर उसने कारीगरो को बुला कर आज्ञा दी—"हमें, छूरी, कुल्हाडी, कुदाल. खती, हथौडी, हसिया, खुरपा, तलवार, लोहे का डडा, आरा, खूटे तथा लोहे के चक्कर चाहिए। यह सब जल्दी से लाओ।" उसने चर्मकारो को भी बुलवा कर आज्ञा दी—"तात, हमे घडे का भार वहन करने वाली चमडे की धोकनी चाहिए। और हमे चमडे के पट्टे, हस्ति-पाद (?), जूते और चमडे के छाते की भी आवश्यकता है। सभी चीजो को शीघ्र बना कर लाओ।" तब दोनो ने सभी चीजे शीघ्र बना कर ला दी। उसने उसके पाथेय्य की व्यवस्था कर और रगड कर आग पैदा करने की लकडी से आरभ कर के हर तरह की सामग्री तथा सत्तु आदि भोजन सामग्री, चमडे के थैले मे डाल दी। यह सब घडे भर का भार हो गया।

सोनुत्तर ने भी अपनी तैयारी की और सातवे दिन आकर देवी को प्रणाम कर खडा हो गया। देवी बोली—

"सौम्य! तेरी रास्ते की सभी चीजे पूरी हो गई है। यह थैला ले।"

वह बडा बलशाली था, पाच हाथियो के बलवाला। उसने उसे पुओं की थैली

की तरह उठा कर बगल मे दबा लिया ओर खाली हाथ की तरह ही खडा हो गया। चुल्ल सुभद्रा ने शिकारी के बच्चो को खर्चा दे, राजा को कह, सोनुत्तर को विदा किया। उसने भी राजा ओर देवी को नमस्कार किया और राजमहल से उतर, रथों को छोड, बहुत से अनुयाइयो के साथ नगर मे निकला। वह गावो और नगरो मे होता हुआ प्रत्यन्त-प्रदेश मे पहुचा। वहा जनपद के लोगो को रोक, प्रत्यन्त-देश वासियो के साथ जगल मे प्रवेश किया। इस प्रकार बस्ती लाघ, प्रत्यन्त देशवासियो को भी छोड, अकेला ही चला। उसने तीस योजन मार्ग लाघा, जहा दूब का गहन था, काम (तृण) का गहन था, तृण-गहन था, तुलसी-गहन था, सर-गहन था, और इस प्रकार तिरिवच्छ-गहन आदि छ. काटो और कुञ्जो के गहन थे। इनके अतिरिक्त वह वेत-गहन, मिश्रित-गहन तलवन-गहन, सरवन-गहन, पेट के बल रीग कर भी पार न किया जा सकने वाला घन वन का गहन, वृक्षों का गहन, बासो का गहन, दलदल का गहन, पानी का गहन तथा पर्वतो के गहन को क्रमश प्राप्त हुआ। उसने दूब के गहन आदि को तलवार से काट डाला। उसने तुलसी-गहन आदि को बासो का झुण्ड काटने के शस्त्र से छिन्न-भिन्न कर डाला, और वृक्षो को कुल्हाडी से काट कर और बडे बडे पेडो मे बमूले (?)से छेद कर मार्ग बनाया। फिर बासो की सीढी बना, बासो के कुञ्ज पर चढ, बासो को काट और उन्हे दूसरे बासो के झुण्ड पर गिरा, बासो के झुण्ड के ऊपर ही ऊपर जा, कीचड के गहन पर लकडी के तख्ते डाल, उन पर चल और फिर पीछे के तख्तो को आगे डाल उसे पार किया। फिर डोंगी बना कर जल-गहन पार किया। फिर पर्वत के नीचे खडे हो लोहे के चतुष्कोण को रस्सी से बाध कर ऊपर फेका। वह पर्वत मे जा अटका। उसके सहारे वह रस्सी से पर्वत पर चढ गया। वहाँ उसने लोहे के एक ऐसे दण्ड मे जिसके आगे वज्र लगा हुआ था पर्वत को बीध डाला। वहाँ उसने एक खूँटा ठोक दिया। फिर वहा खडे हो, लोहे का चतुष्कोण निकाल, उसे फिर ऊपर अटकाया। वहाँ खडे हो चमडे की पट्टी लटका उसके सहारे उतरा। उस पट्टी को नीचे के खूँटे से बाँध, उसने बाये हाथ मे पट्टी पकड, दाहिने हाथ मे मुग्दर ले पट्टी को पीटा। इस प्रकार खूँटा निकाल, फिर चढा। इस प्रकार वह पर्वत के शिखर पर चढ दूसरी ओर उतरा। फिर पूर्व क्रमानुसार ही पहले पर्वत के शिखर पर खूँटा गाड, फिर चमडे की थैली में पट्टी बाँध, खूँटी को

लपट, स्वय चमडे की थैली में बैठा, और जिस प्रकार मकडी तार को छोडती चलती है, उसी प्रकार चमडे की पट्टी को उधेडता हुआ वह नीचे उतरा। 'चमडे के छाते से हवा को रोकते हुए वह पक्षी की तरह' यह भी कहा तो जाता ही है। इस प्रकार सुभद्रा के कथन को मान, नगर से निकल, सत्तारह गहनो को पार कर वह पर्वत-गहन को प्राप्त हुआ। वहाँ भी छ पर्वतो को पार कर स्वर्ण-पार्श्व-पर्वत के ऊपर चढने की बात प्रगट करते हुए शास्ता ने कहा—

तत्थेव सो उग्गहेत्वान वाक्यं
आदाय तूणि च धनुञ्च लुद्दो
वितुरेय्यति सत्त गिरी ब्रहन्ते
सुवण्णपस्सं नाम गिरिं उळारं ॥१८॥
आरुय्ह सेलं भवनं किन्नरानं
ओलोकयी पब्बतपादमूलं
तत्थ अद्दसा मेघसमानवण्णं
निग्रोधराजं अट्ठसहस्सपादं ॥१९॥
तत्थ अद्दसा कुञ्जरं छब्बिसाणं
सब्बसेतं दुप्पसहं परेहि
रक्खन्ति नं अट्ठसहस्सनाग
ईसादन्ता वातजवप्पहारिनो ॥२०॥
तत्थ अद्दसा पोक्खरणिं अदूरे
रम्मे सुतित्थं च महोदिकञ्च
सम्पुप्फितं भमरगणानुचिण्णं
यत्थ हि सो नहायति नागराज ॥२१॥
दिस्वान नागस्स गतिं ठितिं च
वीथिस्स या नहानगतस्स होति
ओपातं आगञ्छि अनरियरूपो
पयोजितो चित्तवसानुगाय ॥२२॥

[वही उसके कथन को ग्रहण कर उस शिकारी ने तरकश और कमान ले सात

पर्वतों के पास पहुँच विचार किया कि इनमें स्वर्ण-पार्श्व-पर्वत कौन सा है ?॥१८॥ उस किन्नरों के भवन शैल पर चढ कर उसने पर्वत के नीचे देखा। वहाँ उसे मेघ के समान वर्ण वाला, आठ हजार जड़ों वाला, न्यग्रोध वृक्ष दिखाई दिया॥१९॥ वहाँ उसने छ वर्ण के दान्तों वाले नाग को देखा, जो सर्वश्वेत था, जिसे दूसरे दबा न सकें और वायु-वेग को प्रहार देने वाले, रथ की धुरी सदृश दान्तों वाले आठ हजार हाथी जिसकी रक्षा करते थे॥२०॥ उससे थोड़ी ही दूर पर पुष्करिणी दिखाई दी, जो रमणीय थी, जो सुतीर्थ थी, जिसमें बहुत सा जल था, जो सुपुष्पित थी, जो भ्रमरों से घिरी थी और जहाँ नागराज स्नान करता था॥२१॥ यह देखकर कि हाथी कहाँ जाता है, कहाँ ठहरता है और स्नान करने के बाद किस रास्ते चलता है, चित्त के वशीभूत हुई उस सुभद्रा द्वारा प्रेरित शिकारी ने गढ़ा खोदा॥२२॥]

क्रमानुकूल कथा इस प्रकार है उस शिकारी ने सात वर्ष, सात महीने तथा सात दिन में बोधिसत्व के निवासस्थान पर पहुच, उक्त प्रकार से उसके निवासस्थान का विचार कर सोचा कि यहाँ गढा खोदने से, उस गढे मे खड़े हो कर हस्ति-राज को बींध कर उसका प्राणान्त कर दे सकूँगा। यह सोच उसने जगल मे प्रवेश किया और खम्भो आदि के लिए वृक्षो को काटा। फिर अपेक्षित चीजे जुटा जिस समय हाथी नहाने के लिए गए हुए थे, उसके स्थान की जगह पर महा-कुदाल से चौकोर गढा खोदा। उस पर बीज बोने की तरह खोदी हुई भूमि को पानी पर बिखेर, ऊखल के पत्थरो के ऊपर स्तम्भ खड़े कर, उन पर शहतीर और उनके ऊपर पटड़े रख, बीच मे कण्डे जैसे छेद छोड़, उस पर मिट्टी तथा कूड़ा-करकट डाला। फिर एक ओर अपने घुसने की जगह बनाई। इस प्रकार गढा तैयार हो चुकने पर उसने प्रातःकाल ही सिर-मुह ढका और कापाय वस्त्र धारण कर वह जहर-बुझा तीर तथा धनुष ले गढे मे उतर कर खडा हुआ।

उस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने—

**कत्वान कासुं फलकेहि छादयि**
**अत्तानं ओधाय धनुं च लुद्दो**
**पस्सागतं पुथुसल्लेन नागं**
**समप्पयी दुक्कतकम्मकारि॥२३॥**

विद्धो च नागो कोञ्चं अनादि घोरं
सब्बेव नागा निस्नदुं घोररूपं
तिणञ्च कट्ठञ्च चुण्णं करोन्ता
धाविंसु ते अट्ठदिसा समन्ततो ॥२४॥
वधिस्सं एतं ति परामसन्तो
कासावं अद्दक्खि धजं इसीनं
दुक्खेन फुट्ठस्स उदपादि सञ्ञा
अरहद्धजो सब्भि अवञ्झरूपो ॥२५॥

[गढा खोद कर उसे फलको से ढका और अपने आपको तथा धनुष को उसमे छिपा कर उस दुष्कृत करने वाले शिकारी ने पार्श्व मे आए हुए हाथी को बडे शल्य मे बीध दिया ॥२३॥ हाथी ने तीर मे बिधने पर घोर शब्द किया। सभी दूसरे हाथियो ने बडी जोर से चिघाडे लगाई। सभी हाथी तृण और काष्ठ को चूर्ण-विचूर्ण करते हुए चारों ओर भाग खडे हुए ॥२४॥ शत्रु का वध कर डालने का विचार करते समय उसने ऋषि-ध्वजा कापाय-वस्त्र को देखा। दु ख-वेदना से अभिभूत रहने पर भी उसके मन मे विचार आया कि अर्हत-ध्वज धारण करने वाला हर किसी के लिए अवध्य है ॥२५॥]

उसने उससे बातचीत करते हुए दो गाथाये कही--

अनिक्कसावो कासावं यो वत्थं परिदहेस्सति
अपेतो दमसच्चेन न सो कासावं अरहति ॥२६॥

[जो काषाय ( = चित्त मैल) से बिना मुक्त हुए ही काषाय ( = वस्त्र) धारण करता है, वह सयम तथा सत्य से दूर होने के कारण काषाय-वस्त्र का अधिकारी नही ॥२६॥]

यो च वन्तकासावस्स सीलेसु सुसमाहितो
उपेतो दमसच्चेन स वे कासावं अरहति ॥२७॥

[जो काषाय ( = चित्त मैल) से मुक्त हो कर शील मे प्रतिष्ठित होता है, वह सयम तथा सत्य से युक्त व्यक्ति ही काषाय के योग्य होता है ॥२७॥]

इतना कह बोधिसत्व ने अपने मन में उसके प्रति किसी भी तरह का वैर-भाव न आने देकर पूछा—"मित्र ! तूने मुझे तीर से क्यो बीधा ? अपने स्वार्थ के लिए, अथवा किसी दूसरे की प्रेरणा से ?"

इसी अर्थ को स्पष्ट करते हुए शास्ता ने—

**समप्पितो पुथुसल्लेन नागो**
**अदुट्ठचित्तो लुद्दकं अञ्ञभासि**
**किमत्थियं किस्स वा सम्म हेतु**
**ममं वधी कस्स वायं पयोगो ॥२८॥**

[बड़े शल्य से बिधे हाथी ने बिना मन मे क्रोध उत्पन्न हुए दिये शिकारी से पूछा—"मित्र ! मुझे किस मतलब से, किस हेतु से अथवा किस की प्रेरणा से मारा है ?" ॥२८॥]

उसे उत्तर देते हुए शिकारी ने गाथा कही—

**कासिस्स रञ्ञो महेसी भदन्ते**
**सा पूजिता राजकुले सुभद्दा**
**[सा] तं अद्दसा सा च मम असंसि**
**दन्तेहि अत्थो ति च मं अवोच ॥२९॥**

[हे भदन्त ! काशी-नरेश की पटरानी है। राजकुल मे उसकी प्रतिष्ठा है। नाम है सुभद्रा। उसने तुझे देखा है और उसी ने मुझे यह कह कर कि दातो की जरूरत है, अनुशासित किया है ॥२९॥]

यह सुन बोधिसत्व ने जाना कि यह चुल्ल सुभद्रा का काम है। उसने वेदना को सहन करते हुए यह प्रगट करने के लिए कि 'उसे मेरे दातो की अपेक्षा नही है, किन्तु मुझे मारने के लिए ही भेजा है' दो गाथाए कही—

**बहू हि मे दन्तयगा उळारा**
**ये मे पितुस्संपि पितामहानं**
**जानाति सा कोधना राजपुत्ती**
**वधत्थिका वेरमकासी बाला ॥३०॥**

**उट्ठेहि त्वं लुद्द खरं गहेत्वा**
**दंते इमे छिन्द पुरा मरामि**
**वज्जासि तं कोधनं राजपुत्तिं**
**नागो हतो हन्दिमस्स दन्ता ॥३१॥**

[मेरे पिताओ तथा पितामहो के दातो की यहा बहुत सी बडी बडी जोडिया है। इस बात को राजपुत्री भलीभाति जानती है। उस मूर्खा ने क्रोध के वशीभूत हो केवल मुझे मरवाने के लिए ही यह वैर किया है ॥३०॥ हे शिकारी ! तू आरी लेकर उठ और मेरे मरने से पहले इन दातो को काट ले और इन्हे ले जाकर क्रोध भरी राजपुत्री को कहना कि हाथी मर गया है औ यह उसके दात है॥३१॥]

वह उसकी बात सुन जहा बैठा था, वहा से उठा और दात काटने के लिए आरी लेकर उसके पास गया। उसकी ऊचाई ८८ हाथ की थी। पर्वत के समान हाथ न पहुच सकने वाली। इसलिए शिकारी उसके दातो तक नही पहुच सका। तब बोधिसत्व शरीर को झुका कर, सिर नीचा कर लेट रहा। तब शिकारी बोधिसत्व की चादी की जजीर सदृश सूड का मर्दन करते हुए उस पर चढ कर कैलाश-शिखर सदृश सिर पर खडा हुआ। वहा उसने उसके ओठो को घुटनो से पीट, अदर डाल, सिर से उतर आरी को मुह के अदर घुमेडा। बोधिसत्व को तीव्र वेदना होने लगी, मुह लहू से भर गया। शिकारी इधर उधर करता हुआ आरी से नही काट सका। बोधिसत्व ने मुह से रक्त छोड वेदना को सहन कर पूछा—"मित्र क्या काट नही सकता 'स्वामी हा' कहने पर बोधिसत्व न चित्त को स्थिर रखते हुए कहा—"मित्र ! तो मेरी सूड उठा कर उसमे आरी के सिरे को पकडाओ मै स्वय अपनी सूड नही उठा सकता।' शिकारी ने वैसा ही किया। बोधिसत्व ने सूड मे आरी ले उसे इधर से उधर चलाया। दान्त कोपल की तरह कट गये।

उसने दान्त मगवाये और उन्हे लेकर उसे देते हुए कहा—"मित्र ! मै ये दान्त तुझे देते हुए इसलिए नही दे रहा हूँ कि ये मेरे अप्रिय है, और न शक्रत्व, मारत्व अथवा ब्रह्मत्व आदि की प्रार्थना करते हुए ही दे रहा हू। किन्तु मै यह दान्त इसलिए दे रहा हूँ क्योंकि सर्वज्ञता ज्ञानरूपी दात इन दान्तो से लाख दर्जे प्रियतर है, मेरा यह पुण्य सर्वज्ञता-ज्ञान की प्राप्ति का हेतु हो" फिर पूछा—

"मित्र ! तू यहाँ कितने समय में पहुचा ?"

"सात वर्ष, सात महीने और सात दिन में।"

"जा, इन दान्तो के प्रताप से सात दिन के अन्दर ही पहुंच जायेगा।"

इस प्रकार उसने उसकी रक्षार्थ प्रार्थना कर उसे विदा किया। उसे विदा कर चुकने पर अन्य हाथियो तथा सुभद्रा के आने से पहले ही वह मर गया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने—

**उट्ठाय सो लुद्दो खुरं गहेत्वा**
**छेत्वान दन्तानि गजुत्तमस्स**
**वग्गू सुभे अप्पटिमे पथव्या**
**आदाय पक्कामि ततो हि खिप्पं ॥२३॥**

[श्रेष्ठ हाथी के दान्तो को काट कर वह शिकारी आरी लेकर उठा और शीघ्र ही दान्तों को लिए पृथ्वी में अतुलनीय सुन्दरी के पास पहुचा ॥३२॥]

उसके चले जाने पर हाथी अपने शत्रु को न देख वापिस लौट आये।

उस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने—

**भयट्टिता नागवधेन अट्टा**
**ये ते नागा अट्ठ दिसा विधावुं**
**अदिस्व पोसं गजपच्चमित्तं**
**पच्चागमुं येन सो नागराज ॥३३॥**

[हाथी के बीधे जाने से दु खित और भयत्रस्त हो कर जो हाथी आठ दिशाओ में दौडे थे, वे जब उन्हे कोई हाथियो का शत्रु नही दिखाई दिया तो वे हाथी के पास लौट आये ॥३३॥]

उनके साथ सुभद्रा भी आई। वे सब वही रो पीट कर बोधिसत्व के विश्वस्त प्रत्येक-बुद्धो के पास गये और बोले—"भन्ते ! आपकी आवश्यकताओ की पूर्ति करने वाला दाता विषैले तीर से बीधा जाकर मर गया। उसके शव को देखने के लिए आये।" पाँच सौ प्रत्येक-बुद्ध आकाश में आकर आगन में उतरे। उसी समय दो तरुण हाथियों ने नागराज के शरीर को दान्तो में उठा प्रत्येक-बुद्धो की वन्दना कराई

और चिता पर रख कर जला दिया। प्रत्येक-बुद्धो ने रात भर चिता के पास सूत्र-पाठ किया। आठ हजार हाथी चिता को बुझा कर, स्नान कर और सुभद्रा को आगे कर अपने अपने निवास स्थान को लौट आये।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने—

**ते तत्थ कन्दित्वा रोदित्व नागा**
**सीसे सके पंसुकं ओकिरित्वा**
**अगमंसु ते सब्बे सकं निकेतं**
**पुरक्खत्वा महेसिं सब्बभद्दं ॥३४॥**

[वे हाथी रो-पीट कर तथा अपने सिर पर धूली उठा कर सुभद्रा पटरानी को आगे कर सभी अपने अपने घर गये ॥३४॥]

सोणुत्तर ने भी सातवें दिन से पहले ही दान्तो को ले कर वाराणसी मे प्रवेश किया।

उस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने—

**आदाय दन्तानि गजुत्तमस्स**
**वग्गू सुभे अप्पटिमे पथव्या**
**सुवण्णराजीहि समन्तमोदरे**
**सो लुद्दको कासिपुरं उपागमि**
**उपनेसि सो राजकञ्ञाय दन्ते**
**नागो हतो, हन्द इमस्स दन्ता ॥३५॥**

[श्रेष्ठ हाथी के दातो को पृथ्वी मे अनूपम सुदरी के पास ले गया, स्वर्ण रश्मि को चारो ओर फैलाते हुए। उस शिकारी ने काशी नगर पहुच कर राजकुमारी को दात दिए और बोला—'हाथी मर गया, यह उसके दात है।' ॥३५॥]

इन्हे ले जाकर मेरे मरने की सूचना देते हुए कहना 'आर्ये तुम्हारे मन मे जिसका अल्प-मात्र द्वेष है उस हाथी को मैंने मार दिया।'

उसने उसे दात दिए और कहा—'वह मर गया यह उसके दांत है।' उसने बोधिसत्व के छ. वर्ण की रश्मियो वाले दातो को मणि के पखे पर लिया और छाती

पर रख कर अपने पूर्व-जन्म के प्रिय स्वामी के दांतों को देखने लगी। उसने सोचा 'कि इस प्रकार के सौभाग्यवान हाथी को विषैले शल्य से जान से मार कर दांतों को काट कर लाया है।' वह बोधिसत्व को याद करने लगी और उत्पन्न शोक को न सह सकी। वहीं उसका हृदय फट गया। वह उसी दिन मर गई।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने—

**दिस्वान दन्तानि गजुत्तमस्स**
**भत्तुप्पियस्स पुरिमाय जातिया**
**तत्थेव तस्सा हृदयं अफालि**
**तेनेवसा कालं अकासि बाला ॥३६॥**
**सम्बोधिपत्तोव महानुभावो**
**सितं अकासि परिसाय मज्झे**
**पुच्छंसु भिक्खू सुविमुत्तचित्ता**
**नाकारणे पातुकरोन्ति बुद्धा ॥३७॥**
**यं अद्दसाथ दहरिं कुमारिं**
**कासाय वत्थं अनगारियं चरन्तिं**
**साखोतदा राजकञ्ञा अहोसी**
**अहं तदा नागराजा अहोसिं ॥३८॥**
**आदाय दन्तानि गजुत्तमस्स**
**वग्गू सुमे अप्पटिमे पथव्या**
**यो लुद्दको कासीपुरं उपागमि**
**सो खो तदा देवदत्तो अहोसि ॥३९॥**
**अनावसूरं चिररत्तसंसितं**
**उच्चावचं ञ्ञरितं इदं पुराणं**
**वीतद्दरो वीतसोको विसल्लो**
**सयं अभिञ्ञाय अभासि बुद्धो ॥४०॥**
**अहं वो तेन कालेन अहोसिं तत्थ भिक्खवो**
**नागराजा तदाहोसि एवं धारेथ जातकं ॥४१॥**

[अपने पूर्व जन्म के प्रिय स्वामी श्रेष्ठ हाथी के दातो को देखने से वही उसका हृदय फट गया और वह मूर्खा वही मर गई। सम्बोधि प्राप्त महा प्रतापवान (बुद्ध) परिषद के बीच मे मुस्कराए। मुक्त चित्त भिक्षुओ ने पूछा कि बुद्ध कभी अकारण नही मुस्कराते ॥३६-३७

[जिस छोटी कुमारी को तुम काशाय वस्त्र धारण किए अनगारिका हो घूमते देखते हो, वह उस समय राजकन्या थी और मे उस समय हस्तिराज था। जो शिकारी श्रेष्ठ हाथी के दातो को पृथ्वी की अनुपम सुदरी के पास ले गया, और काशी नगर पहुचा वह उस समय देवदत्त था। चिर काल तक आचरित ऊचे नीचे पूर्व-जन्म के कर्म को याद कर के दुक्खरहित, शोक-रहित तथा शल्यरहित बुद्ध ने स्वय-जान कर कहा। भिक्षुओ मै उस समय हस्तिराज था। इस जातक को इस प्रकार धारण करे ३८-४१॥)

यह गाथाए दसबल (बुद्ध) का गुणानुवाद करने वाले, धर्म की सगायना करने वाले स्थविरो द्वारा रक्खी गई है।

इस धर्मदेशना को सुनकर बहुत से लोग स्रोतापन्न आदि हो गए। किन्तु वह भिक्षुणी पीछे विदर्शणा भावना का अभ्यास कर अर्हत्व को प्राप्त हुई।

## ५१५ सम्भव जातक

"रज्ज च परिपन्नस्मा. . " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय प्रज्ञा-पारमिता के बारे मे कही। वर्तमान कथा महाउम्मग्ग जातक[1] मे आयेगी।

---

१ महाउम्मग्ग जातक (५४६)

## ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे कुरु राष्ट्र के इन्द्रप्रस्थ नगर मे धनजय कोरव्य नाम का राजा राज्य करता था। उसका सुचीरत नाम का ब्राह्मण पुरोहित अर्थ-धर्मानुशासक था। राजा दानादि, पुण्य करता हुआ धर्म से राज्य चलाता था। एक दिन उसने धर्मयज्ञ नामक प्रश्न मन मे सोच सुचीरत ब्राह्मण को आसन पर बिठा, सत्कार कर के प्रश्न पूछते हुए चार गाथाए कही—

**रज्जं च पटिपन्नस्मा अधिपच्चं सुचीरत**
**महत्तं पत्तुं इच्छामि विजेतुं पठविमिमं ॥१॥**
**धम्मेन नो अधम्मेन अधम्मो मे न रुच्चति**
**किच्चोव धम्मो चरितो रञ्ञो होति सुचीरत ॥२॥**
**इध चेवानिन्दिता येन पेच्च येन अनिन्दिता**
**यसं देवमनुस्सेसु येन पप्पोमु ब्राह्मण ॥३॥**
**योहं अत्थं च धम्मं च कत्तुं इच्छामि ब्राह्मण**
**तं त्वं अत्थं च धम्मं च**
**ब्राह्मण अक्खाहि पुच्छितो ॥४॥**

[हे सुचीरत ! मुझे (इन्द्रप्रस्थ नगर का) राज्य प्राप्त है और (कुरु राष्ट्र मे) आधिपत्य भी प्राप्त है। अब मै इस सारी पृथ्वी को जीतने के लिए महत्व प्राप्त करना चाहता हूँ ॥१॥ मै यह कार्य धर्म से ही करना चाहता हूँ, अधर्म से नही, अधर्म मुझे अच्छा नही लगता। हे सुचीरत ! राजा का धर्माचरण ही लोगों के लिए अनुकरणीय होता है। ॥२॥ हे ब्राह्मण मे वह कर्म करना चाहता हू जिससे यहा भी अनिन्दित रहूँ और भविष्य में भी अनिन्दित रहूँ, तथा देव मनुष्यो मे यश लाभ करूँ ॥३॥ हे ब्राह्मण मै अर्थ और धर्म करना चाहता हूँ, इसलिए हे ब्राह्मण पूछे जाने पर तुम मुझे अर्थ और धर्म कहो ॥४॥]

यह प्रश्न गम्भीर है, बुद्ध का ही विषय है। यह प्रश्न केवल सर्वज्ञ बुद्ध से ही पूछा जाना चाहिए। उनके न रहने पर सर्वज्ञता की खोज मे लगे हुए बोधिसत्व से। सुचीरत बोधिसत्व न होने के कारण प्रश्न का उत्तर न दे सकता था। उसने पाडित्य

का झूठा अभिमान न दिखा अपने असामर्थ्य को प्रकट करते हुए गाथा कही—

**नाञ्ञत्र विधुरा राज एतद् अक्खातुं अरहति**
**यं त्वं अत्थं च धम्मं च**
**कत्तुं इच्छसि खत्तिय ॥५॥**

[हे राजन्! हे क्षत्रिय! तू जो अर्थ और धर्म करना चाहता है, वह विदुर के अतिरिक्त और कोई नही कह सकता ॥५॥]

राजा ने उसकी बात सुनी तो कहा—"ब्राह्मण! तू शीघ्र ही उसके पास जा।' उसने उसे भेट दे कर भेजने की इच्छा से गाथा कही—

**एहि खो पहितो गच्छ विधुरस्स उपन्तिकं**
**निक्खं इमं सुवण्णस्स हरे गच्छ सुचीरत**
**अभिहारं इमं दज्जा अत्थधम्मानुसत्थिय ॥६॥**

[हे सुचीरत! आ। मै तुझे भेजता हूँ। तू विधुर (विदुर) के पास जा। यह स्वर्ग के निकष ले जा। इसे अर्थ-धर्मानुशासक को भेट स्वरूप देना ॥६॥]

यह कह प्रश्न का समाधान लिखने के लिए, लाख के मूल्य का स्वर्ण-पट्ट, जाने के लिए यान, साथ के लिए सेना और वह भेट दे कर उसे उसी क्षण भेजा। वह इन्द्र-प्रस्थ नगर से निकल, सीधा वाराणसी ही नही गया। जहाँ जहाँ पण्डित रहते थे उन सब जगहो पर जाकर, जब उसे सारे जम्बुद्वीप मे कोई भी प्रश्नो का समाधान करने वाला नही मिला, तो क्रमश. वाराणसी पहुच, एक जगह रहने लगा। कुछ दिनो मे प्रातराश करने के समय विधुर के घर पहुच, आने की सूचना भिजवाई। जब उसने बुलवाया तो सुचीरत ने देखा कि वह अपने घर मे भोजन कर रहा है।

इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिए शास्ता ने सातवी गाथा कही—

**स्वाधिप्पा भारद्वाजो विधुरस्स उपन्तिकं**
**तं अद्दस महाब्रह्मा असमानं सके घरे ॥७॥**

[भारद्वाज विधुर के पास गया। उसने देखा कि महा-ब्रह्मा अपने घर मे भोजन कर रहा है ॥७॥]

वह उसका लंगोटिया यार था। दोनो ने एक ही आचार्य के पास विद्या सीखी थी। इसलिए दोनो ने साथ ही भोजन किया। खाना समाप्त कर आराम से बैठे होने पर उसने पूछा—"मित्र! कैसे आये?" उसने आने का कारण बताते हुए आठवी गाथा कही—

**रञ्ञो हं पहितो दूतो कोरव्यस्स यसस्सिनो,**
**अत्थं धम्मं च पुच्छेसि इच्चब्रवि युधिट्ठिलो,**
**तं त्वं अत्थं च धम्मं च**
**[विदुर क्खाहि पुच्छितो ॥८॥]**

[मै यशस्वी कोरव्य राजा द्वारा भेजा गया दूत हूँ। उस युधिष्ठिर राजाने मुझसे अर्थ और धर्म पूछा। हे विधुर! वह अर्थ और धर्म मै तुमसे पूछता हूँ। हे विधुर! पूछे जाने पर तुम कहो ॥८॥]

उस समय वह ब्राह्मण जनता के चित्त को प्रसन्न करने के लिए गगा को ढकने की तरह मुकदमो का विचार करता था। उसे प्रश्न का समाधान करने का अवकाश नही था। उसने उस अर्थ को प्रकाशित करते हुए नौवी गाथा कही—

**गंगं मे पिदहिस्सन्ति न नं सक्कोमि ब्राह्मण**
**अपिधेतुं महासिन्धुं तं कथं सो भविस्सति,**
**न ते सक्कोमि अक्खातुं**
**अत्थं धम्मं च पुच्छितो ॥९॥**

[हे ब्राह्मण! जनता के नाना प्रकार के चित्त रूपी प्रश्नावली की गगा मुझे ढक देगी। मै महासमुद्र को नही उघाड सकता हूँ। यह कैसे हो सकेगा इसलिए जो अर्थ और धर्म तुमने पूछा है मै वह तुमको नही कह सकता ॥९॥]

यह वह उसने—"मेरा पुत्र पडित है और मेरी अपेक्षा अधिक ज्ञानी है। वह तुम्हे प्रगट करेगा। उसके पास जाओ" कह दसवी गाथा कही—

**भद्रकारो च मे पुत्तो ओरसो मम अत्रजो,**
**तं त्वं अत्थं च धम्मं च**
**गन्त्वा पुच्छस्सु ब्राह्मण ॥१०॥**

[मेरा आत्मजात उर से उत्पन्न भद्रकार पुत्र श्रेष्ठ है। हे ब्राह्मण तू जा कर उससे अर्थ और धर्म पूछ ॥१०॥]

यह सुन सुचीरत विधुर के घर से निकला। जिस समय भद्रकार खा-पी कर अपनी मडली के बीच मे बैठा था, उस समय वह उसके घर मे गया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने ग्यारहवी गाथा कही—

**स्वाधिप्पगा भारद्वाजो भद्रकारस्स उपन्तिकं**
**तं अद्दस महाब्रह्मा निसिन्नं सम्हि वेसमनि ॥११॥**

[वह भारद्वाज भद्रकार के पास गया। उस महाब्राह्मण ने उसे अपने घर मे बैठे देखा ॥११॥]

उसने वहा पहुच भद्रकार माणवक द्वारा आसन पर बिठाने आदि का सत्कार किए जाने पर, बैठ कर आने का कारण पूछने पर बारहवी गाथा कही—

**रञ्ञोहं पहितो दूतो कोरव्यस्स यसस्सिनो**
**अत्थं धम्मं च पुच्छेसि इच्चब्रवी युधिट्ठिलो**
**तं त्वं अत्थं च धम्मं च**
**भद्रकार ब्रावीहि मे ॥१२॥**

[मै यशस्वी कोरव्य द्वारा भेजा गया दूत हूँ। उस युधिष्ठिर राजा ने मुझसे अर्थ और धर्म पूछा। हे भद्रकार ! यह अर्थ और धर्म मै तुमसे पूछता हूँ। हे भद्रकार पूछे जाने पर तुम कहो ॥१२॥]

भद्रकार ने उत्तर दिया—"तात इन दिनो मै परस्त्री-गमन मे लगा हुआ हूँ। इसलिए मेरा चित्त व्याकुल है। मै तेरा समाधान न कर सकूगा। मेरा छोटा भाई संजयकुमार मेरी अपेक्षा अधिक ज्ञानी है। उसे पूछ। वह तेरे प्रश्न का समाधान करेगा।" उसके पास भेजने के लिए दो गाथाएं कही—

**मंसकाचं अवहाय गोधं अनुपतां अहं**
**न ते सक्कोमि अक्खातुं अत्थं धम्मं च पुच्छितो ॥१३॥**
**संजयो नाम मे भाता कनिट्ठो मे सुचीरत**
**तं त्वं अत्थं च धम्मं च**
**गन्त्वा पुच्छस्सु ब्राह्मण ॥१४॥**

[मैं अपने घर मे रहने वाली स्त्री को छोड कर उसी प्रकार पराई स्त्री के पास जाता हूँ जिस प्रकार कोई मृग के मास को छोड कर गोह के पीछे जाए। इसलिए मै तुम्हे अर्थ और धर्म नही कह सकता हूँ ॥१३॥ हे सुचीरत ! मेरा संजय नाम का छोटा भाई है। हे ब्राह्मण तू जा कर उसे अर्थ और धर्म पूछ ॥१४॥]

वह उसी क्षण सजय के घर पहुचा और उसके द्वारा सत्कृत हो आने का कारण पूछे जाने पर बोला।

उस अर्थ को प्रकाशित करने के लिए शास्ता ने दो गाथाए कही—

**स्वाधिप्पगा भारद्वाजो संजयस्स उपन्तिकं**
**तम अद्दस्स महाब्रह्मा निसिन्नं सम्हि परीसति ॥१५॥**

**रञ्ञो हं पहितो दूतो कोरव्यस्स यसस्सिनो**
**अत्थं धम्मं च पुच्छेसि इच्चब्राबी युधिट्ठिलो**
**तं त्वं अत्थं च धम्मं च सञ्जय अक्खाहि पुच्छितो ॥१६॥**

[वह सजय के पास गया। उस महाब्राह्मण ने उसे अपनी परिषद मे बैठे देखा ॥१५॥ मैं यशस्वी कोरव्य द्वारा भेजा गया दूत हूँ। उस युधिष्ठिर राजा ने मुझसे अर्थ और धर्म पूछा। हे सजय ! यह अर्थ और धर्म मै तुमसे पूछता हूँ। हे सजय ! पूछे जाने पर तुम कहो ॥१६॥]

संजय कुमार भी उस समय परस्त्री गमन ही करता था। वह बोला—"तात ! मै परस्त्री गमन करता हूँ। और परस्त्री गमन करता हुआ गंगा पार कर उस किनारे जाता हूँ। ऐसा करते हुए साय-प्रातः मुझे मानो मृत्यु निगलती है, उससे मेरा चित्त व्याकुल रहता है। मै तेरा समाधान न कर सकूगा। मेरा छोटा भाई है। नाम सभव-कुमार। आयु से केवल सात वर्ष का होने पर भी मेरी अपेक्षा सौ गुना, हजार गुना अधिक ज्ञान वाला है। वह तुझे कहेगा। जा उससे पूछ।"

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने दो गाथाएं कही—

**सदा मं गिलति मच्चु सायं पातो सुचीरतो**
**न चे सक्कोमि अक्खातुं अत्थं धम्मं च पुच्छितो ॥१७॥**

**संभवो नाम मे भाता कनिट्ठो मे सुचीरतो**
**तं त्वं अत्थं च धम्मं च**
**गन्त्वा पुच्छस्सु ब्राह्मण ॥१८॥**

[सुचीरत ! मुझे सायं-प्रातः सदा मृत्यु निगलती है। मैं पूछे जाने पर तुम्हें अर्थ और धर्म नही बता सकता। ॥१७॥ हे सुचीरत ! सम्भव नाम का मेरा छोटा भाई है, हे ब्राह्मण ! तू उसके पास जा और धर्म तथा अर्थ पूछ ॥१८॥]

यह सुन सुचीरत सोचने लगा—"इस लोक मे यह प्रश्न शायद अद्भुत है। ऐसा लगता है कि इस प्रश्न का समाधान कर सकने वाला कोई नही है।" यह सोच उसने दो गाथाए कही—

**अब्भुतो वत भो धम्मो, नायं अस्माक रुच्चति,**
**तयो जना पिता पुत्ता ते सु पञ्ञाय नो विदु ॥१९॥**
**न तं सक्कोथ अक्खातुं अत्थं धम्मं च पुच्छिता**
**कथं नु दहरो जञ्ञा अत्थं धम्मं च पुच्छितो ॥२०॥**

[यह धर्म अद्भुत है। (तुम इसे कह सकोगे) यह बात हमे रुचिकर नही लगती। पिता और (दो) पुत्र—तीनों जन भी इसे अपनी प्रज्ञा से नही जानते थे। वे पूछने पर अर्थ और धर्म को नही कह सके। पूछे जाने पर बालक अर्थ और धर्म को कैसे जानेगा ? ॥२०॥]

यह सुन सजय कुमार बोला—"तात ! सम्भव कुमार को बालक मत समझो। यदि और कोई प्रश्नों का समाधान नही ही कर सकता तो जाकर उसे पूछो ।" उस अर्थ को व्यक्त करने वाली उपमाओं द्वारा कुमार का गुणानुवाद करते हुए बारह गाथाये कही—

**मा नं दहरों ति मञ्ञासि अपुच्छित्वान सम्भवं**
**पुच्छित्वा सम्भवं जञ्ञा**
**अत्थं धम्मं च ब्राह्मण ॥२१॥**
**यथापि चन्दो विमलो मच्छं आकास्स खतुया**
**सब्बे तारागणे लोके आभाय अतिरोचति ॥२२॥**

एवं पि दहरूपेतो पञ्ञायोगेन सम्भवो
मा नं दहरोति मञ्ञासि अपुच्छित्वान सम्भवो
पुच्छित्वा सम्भवं जञ्ञा
अत्थं धम्मं च ब्राह्मण ॥२३॥
यथापि रम्भको मासो गिम्हानं होति ब्राह्मण
अतेव अञ्ञेहि मासेहि दुमपुप्फेहि सोभति ॥२४॥
एवं पि दहरूपेते.....॥२५॥
यथापि हिमवा ब्रह्मे पब्बतो गन्धमादनो
नाना रुक्खेहि सञ्छन्नो महाभूत गणालयो
ओसधेहि च दिब्बेहि दिसा भाति पवाति च ॥२६॥
एवंपि दहरूपेतो.....॥२७॥
यथापि पावको ब्रह्मे अच्चिमाली यसस्सिमा
जालमानो चरं कच्छे अनलो कण्हवत्तनी ॥२८॥
घतासनो धूमकेतु उत्तमाहेवनन्दहो
निसीथे पब्बतग्गस्मिं पहूतेधो विरोचति ॥२९॥
एवं पि दहरूपेतो.....॥३०॥
जवेन भद्रं जानन्ति बलिवद्दं च वाहिये
दोहेन धेनुं जानन्ति भासमानं च पण्डितं ॥३१॥
एवं पि दहरूपेतो पञ्ञायोगेन सम्भवो
मा नं दहरोति मञ्ञासि अपुच्छित्वान सम्भवं
पुच्छित्वा सम्भवं जञ्ञा
अत्थं धम्मं च ब्राह्मण ॥३२॥

[बिना पूछे तुम सम्भव को 'बालक' मत समझो। 'सम्भव' को पूछने से ही हे ब्राह्मण ! तुम अर्थ और धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकोगे ॥२१॥ जिस प्रकार आकाश-गामी विमल चन्द्रमा अपनी प्रभा से सभी तारागणो को निस्तेज कर देता है, उसी प्रकार 'बालक' होता हुआ भी 'सम्भव' प्रज्ञा से युक्त है। बिना पूछे....कर सकोगे ॥२२-२३॥ जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु का चैत्र महीना अन्य महीनों की अपेक्षा

और पुष्पों के द्वारा विशेष रूप से सुशोभित होता है, उसी प्रकार बालक होता हुआ भी 'सम्भव' ....कर सकोगे ॥२४-२५॥ हे ब्राह्मण ! नाना प्रकार के वृक्षों से आच्छादित और नाना प्रकार के प्राणियो का निवासस्थान गन्धमादन पर्वत जिस प्रकार सभी दिशाओं को प्रकाशित करता है तथा व्याप्त करता है, उसी प्रकार .....॥२६-२७॥ हे ब्राह्मण ! जिस प्रकार अर्चिमान्, यशस्विनी, कच्छवन को जलायी जाने वाली, कृष्ण-वर्तिनी, घृताशन, धूम्रकेतु, उत्तम वन का दहन करने वाली तथा बहुत से ईधन को जलाने वाली अग्नि रात्रि के समय पर्वत-शिखर पर चमकती है, उसी प्रकार.....॥२८-२९॥ वेग से अच्छे घोडे का पता लगता है, भार ढोने की सामर्थ्य से अच्छे बैल का, दूहने से अच्छी गऊ का और भाषण से पण्डित का। इसी प्रकार ....॥३१-३२॥]

इस प्रकार 'सम्भव' का गुणानुवाद गाये जाने पर सुचीरत ने सोचा कि प्रश्न पूछ कर जानूंगा। उसने पूछा—"तुम्हारा छोटा कुमार कहां है ?" उसने खिडकी खोल, हाथ से दिखाते हुए उत्तर दिया—"यह जो स्वर्ण-वर्ण महल के दरवाजे पर गली में लडकों के साथ खेल रहा है, वही मेरा छोटा (कुमार) है, उसके पास जा कर पूछो। वह बुद्ध-लीला से तेरे प्रश्नों का समाधान करेगा।" सुचीरत ने उसकी बात सुनी तो महल से उतर कुमार के पास गया। किस समय ? जिस समय कुमार ने अपने पहने हुए कपडे उतार कर कधे पर रखे थे और दोनो हाथों मे बालू थी, उस समय।

इस अर्थ को स्पष्ट करते हुए शास्ता ने—

**स्वाधिप्पगा भारद्वाजो सम्भवस्स उपन्तिकं**
**तं अद्दस महा ब्रह्मा कीळमानं बही पुरे ॥३३॥**

[भारद्वाज सम्भव के पास पहुंचा। महाब्राह्मण ने उसे नगर के बाहर खेलता हुआ देखा ॥३३॥]

बोधिसत्व ने भी ब्राह्मण को सामने आया खडा देखा तो पूछा—"तात ! क्यों आया ?"

"तात कुमार ! सारे जम्बुद्वीप मे घूमने पर भी जब मुझे कोई अपने प्रश्न का उत्तर देने वाला नही मिला, तब तेरे पास आया हूँ।"

कुमार ने यह समझ कि 'समस्त जम्बुद्वीप मे जिस प्रश्न का उत्तर नही मिला,

उसे पूछने के लिए मेरे पास आया है, मैं ज्ञान-वृद्ध हूँ", लाज-शरम धारण कर हाथ की बालू फेक दी और कंधे से वस्त्र उतार कर पहन लिया। फिर सर्वज्ञ की तरह निमत्रण दिया—"ब्राह्मण! पूछ। बुद्ध-लीला मे तुझे उत्तर दूँगा।"

तब ब्राह्मण ने 'गाथा' मे प्रश्न पूछा—

**रञ्ञोहं पहितो दूतो कोरव्यस्स यसस्सिनो,**
**अत्थं धम्मं च पुच्छस्सु इच्चब्रवि युधिट्ठिलो,**
**तं त्वं अत्थं च धम्मं च**
**सम्भव अक्खाहि पुच्छितो ॥३४॥**

[मै यशस्वी कौरव्य राजा द्वारा भेजा गया दूत हूँ। उस युधिष्ठिर राजा ने मुझसे अर्थ और धर्म पूछा है। हे सम्भव! वह अर्थ और धर्म मै तुमसे पूछता हूँ। हे सम्भव! पूछे जाने पर तुम कहो॥३४॥]

सम्भव पडित को इसका अर्थ वैसे ही प्रगट था, जैसे गगन-मडल मे पूर्ण चन्द्रमा। उसने "तो सुन" कह धर्म-यज्ञ सबधी प्रश्न का उत्तर देते हुए गाथा कही—

**तग्घ ते अहं अक्खिस्सं यथापि कुसलो तथा**
**राजा च खो नं जानाति यदि काहति वा न वा ॥३५॥**

[निश्चय से जिस प्रकार कुशल (=बुद्ध) कहते उसी प्रकार मै भी कहूँगा। और जिस तरह से तुम्हारा राजा समझ जाए उस तरह से कहूँगा। इससे आगे तुम्हारा राजा तदनुसार आचारण करता है वा नही यह वही जाने॥३५॥]

उसने गली मे खडे हो कर मधुर स्वर से जो धर्मोपदेश दिया उसका शब्द बारह योजन की सारी वाराणसी नगरी मे फैल गया। राजा और उपराजा आदि सभी इकट्ठे हो गये। बोधिसत्व ने जनता के बीच मे धर्म-देशना स्थापित की।

इस प्रकार गाथा द्वारा प्रश्न के बारे मे कह कर आगे धर्म-यज्ञ का वर्णन करते हुए कहा—

**अज्ज सुवेति संसेय्य रञ्ञा पुट्ठो सुचीरत**
**मा कत्वा अवसी राजा अत्थे जाते युधिट्ठलो ॥३६॥**
**अज्झतं येव संसेय्य रञ्ञा पुट्ठो सुचीरत**
**कुम्भग्गां न निवेसेय्य यथा मूळहो अचेतसो ॥३७॥**

**अत्तानं नातिवत्तेय्य अधम्मं न समाचरे**
**अतित्थे नप्पातरेय्य अनत्थे न युतो सिया ॥३८॥**
**योच एतानि ठानानि कत्तुं जानाति खत्तियो**
**सदा सो वड्ढते राजा सुक्कपक्खे व चन्दिमा ॥३९॥**
**ञातीनं च पियो होति मित्तेस् च विरोचति**
**कायस्स भेदा रुप्पञ्ञो सग्गं सो उपपज्जति ॥४०॥**

[हे सुचीरत ! यदि कोई पूछने पर राजा को आज का काम कल करने की सलाह दे तो युधिष्ठिर को चाहिए कि अर्थ के उत्पन्न होने पर आज का काम कल न करे ॥३६॥ हे सुचीरत ! सभव है राजा द्वारा पूछे जाने पर कोई अपनी ही अनुशासना करे। राजा को चाहिए कि वह अचेतन मूढ आदमी की तरह कुमार्ग-गामी न हो ॥३७॥ सीमा का उल्लघन न कर, अधर्म आचरण न करे, अतीर्थ मे न उतरे, और अनर्थ से युक्त न हो ॥३८॥ जो क्षत्रिय इन बातो के अनुसार आचरण करना जानता है, शुक्ल-पक्ष चन्द्रमा के समान उसकी सदा वृद्धि होती है ॥३९॥ वह अपने सम्बन्धियों का प्रिय बनता है, मित्रों मे प्रकाशित होता है और वह बुद्धिमान शरीरान्त होने पर स्वर्ग मे उत्पन्न होता है ॥४०॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने आकाश मे चन्द्रमा को उदय करने के समान बुद्ध-लीला से ब्राह्मण के प्रश्नों का उत्तर दिया। जनता ने प्रसन्न होते हुए, शोर मचाते हुए, बजाते हुए, हजारो साधुकार दिए, वस्त्रो को फेका और अगुलियो को चटकाया, तथा हाथों के गहने फेके। इस प्रकार फेका गया धन करोड का हो गया। राजा ने भी प्रसन्न हो कर उसे बहुत ऐश्वर्य दिया। सुचीरत ने भी हजार निकष से पूजा कर सोने की तख्ती पर सिन्दूर से प्रश्नो का उत्तर लिख इन्द्रप्रस्थ नगर जा राजा के धर्म-यज्ञ सम्बन्धी प्रश्न का उत्तर दिया। राजा ने उस धर्म के अनुसार चल स्वर्ग लाभ किया।

शास्ता ने यह धर्म देशना ला, "भिक्षुओ, तथागत न केवल अभी महाप्रज्ञावान है किन्तु पहले भी, महाप्रज्ञावान ही थे" कह जातक का मेल बैठाया। उस समय धनजय राजा आनंद था, सूचीरत अनुरुद्ध, विधुर काश्यप, भद्रकार मौद्गल्यायन, सजय माणवक सारिपुत्र और संभव पंडित तो मै ही था।

# ५१६ महाकपि जातक

"वाराणस्स अहू राजा. . ." यह शास्ता ने वेळुवन मे विहार करते समय देवदत्त के बारे मे कही।

## क. वर्तमान कथा

देवदत्त ने धनुर्धारियो को भेजा और फिर आगे चल कर शिला फिकवाई। भिक्षू देवदत्त की निन्दा कर रहे थे। शास्ता ने 'भिक्षुओ, न केवल अभी, किन्तु देवदत्त ने पहले भी मुझ पर शिला फिकवाई ही है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

## ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय काशी-ग्राम मे एक कृषक-ब्राह्मण ने हल चलाया। फिर बैलो को छोड फावडा चलाने लगा। बैल एक झाडी के पत्ते खाते खाते क्रमशः जगल मे घुस कर भाग गये। उसने समय की ओर ध्यान द कुदाल छोडी और बैलो को देखने पर जब वे न दिखाई दिए तो दु खी हो उन्हे खोजता हुआ जगल मे घुसा। वहा घूमते घूमते हिमवन्त प्रदेश मे जा निकला। वह वहा रास्ता भटक गया। और सप्ताह भर बिना खाए पिए इधर उधर घूमते हुए उसे एक तिन्दुक वृक्ष मिला। उसने उस पर चढ कर फल खाने आरम्भ किए। उसका पैर फिसला और वह साठ हाथ नीचे प्रपात में जा गिरा। वहा वह दस दिन पडा रहा।

उस समय बोधिसत्व वानर की योनि मे पैदा हुए थे। उसने फलाफल खाते हुए उस आदमी को देख, शिलाओ को जोड उस आदमी का उद्धार किया। उसने बदर के सोते रहने पर उसके सिर पर पत्थर फेका। बोधिसत्व ने जब यह जाना कि यह उसकी करतूत है तो कूद कर शाखा पर जा बैठा। और कहा—"हे आदमी!

तू जमीन पर चल मैं पेड़ की शाखाओं पर कूदता हुआ तुझे रास्ता बताता चलूँगा।" इस प्रकार उसने उस आदमी को जगल से निकाल मार्गारूढ़ किया और स्वयं पहाड़ पर ही चला गया। उस आदमी ने बोधिसत्व के प्रति अपराध किया था, इसलिए वह कोढ़ी हो कर इसी जन्म मे मनुष्य प्रेत हो गया। वह सात वर्ष तक दु:ख से पीडित हो, घूमते घूमते वाराणसी के मृगउद्यान मे दाखिल हुआ। वहा उसने दीवार की ओट मे केले का पत्ता बिछाया और वेदना के मारे वही पड़ रहा। उस समय वाराणसी नरेश उद्यान मे आया। वहा घूमते हुए उसे पडा देख उसने पूछा—"तू कौन है और क्या कर के इस दु:ख को प्राप्त हुआ है ?" उसने भी उसे सभी विस्तार पूर्वक कहा—

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

**वाराणस्सं अहू राजा कासीनं रट्ठवड्ढनो**
**मित्तामच्चपरिब्बूळ्हो अगमासि मिगाचिरं ॥१॥**
**तत्थ ब्राह्मणं अद्दक्खि सेतं चित्रं किलासिनं**
**विद्धस्तं कुविळारं व किसं धम्मनिसंथतं ॥२॥**
**परमकारुञ्ञातं पत्तं दित्वा कच्छगतं नरं**
**अवच व्यम्हितो राजा: यक्खानं कतमो नुसि ॥३॥**
**हत्थ पादा च ते सेता, ततो सेततरो सिरो**
**गत्तं कम्मासवण्णं ते, किलासबहुलो च सि ॥४॥**
**वट्ठावलिसंकासा पिट्ठि ते निम्नतुन्नता,**
**काळा पब्बा च ते अंगा नाञ्ञं पस्सामि एदिसं ॥५॥**
**उग्घट्टपादो तसितो किसो धमनिसन्थतो**
**छातो आतत्तरूपोसि, कुतो नु त्वं अगच्छसि ॥६॥**
**दुद्दसी अप्पकारोसि दुब्बण्णो भीमदस्सनो**
**जनेत्ति यापि ते माता न तं इच्छेय्य पस्सितुं ॥७॥**
**किं कम्मं अकरा पुब्बे, कं अवज्झं अघातयि**
**किब्बिसं यं करित्वान इदं दुक्खं उपागयि ॥८॥**

[काशी राष्ट्र की वृद्धि करने वाला वाराणसी मे एक राजा था। मित्रों तथा भक्तिमान अमात्यो सहित यह मृगाचिर नामक वन मे गया ॥१॥ उसने वहां एक

ब्राह्मण देखा जो श्वेत था, चितकबरा था। जिसे खुजली थी। जो सुपुष्पित कुविळार के समान वर्ण के जख्मो से विद्ध्वस्त था। जो दुबला-पतला था। तथा जिसका ढाचा मात्र रह गया था ॥२॥ उस कृश आदमी को देख कर, उस दयालु राजा ने विभ्रमित हो पूछा—'यक्षो मे तू कौन है ? तेरे हाथ-पाव श्वेत है, सिर उससे भी अधिक श्वेत है, शरीर चितकबरा है, सारे शरीर मे कोढ़ है, तेरी पीठ वट्ठनावलि (?) के सदृश ऊची नीची हे, तेरे अग काले काले और पोर पोर हे और कोई तेरे सदृश नही दिखाई देता, पैरो मे धूल है, त्रसित है, कृश है, पिजरमात्र है, भूखा है, सूखा शरीर है, तू कहा से आया है, दुरदर्शनीय है, बेढगा है, दुर्वर्ण है, भयानक हे, जिस मा ने तुझे पैदा किया है, वह भी तुझे देखना न चाहेगी, तूने पूर्व-जन्म मे कौन सा कर्म किया, किस निर्दोष का घात किया, और किस निर्दय-कर्म के परिणामस्वरूप तू इस दु.ख को प्राप्त हुआ ॥३-८॥]

तब ब्राह्मण बोला—

**तग्घ ते अहं अक्खिस्सं यथापि कुसलो तथा**
**सच्चवादि हि लोकस्मिं पसन्सन्ति पण्डिता ॥९॥**

[मै निश्चय से जैसे कुशल ( = बुद्ध) कहते वैसे कहूगा। पण्डित-जन ससार मे सत्य बोलने वाले की ही प्रशसा करते है ॥९॥]

**एको चरं गोगवेसो मूळहो अच्चसरिं वने**
**अरञ्ञ ईरिणे वने नाना कुञ्जरसेविते ॥१०॥**
**वाळमिगानुचरिते विप्पनट्ठोस्मि कानने**
**अचरिं तत्थ सत्ताहं खुप्पिपासा समप्पितो ॥११॥**
**तत्थ निदुंक अद्दक्खिं विसमट्ठबुभुक्खितो**
**पिपातं अभिलम्बन्तं सम्पन्नफलधारिनं ॥१२॥**
**वातसीतानि भक्खेसिं, तानि रुच्चिंसु ये भुसं**
**अतित्तो रुक्खं आरुहिं तत्थ हेस्सामि आसितो ॥१३॥**
**एकं मे मक्खितं आसि दुतियं अभिपत्थतं**
**ततो सा भञ्जथ साखा छिन्ना फरसुना विय ॥१४॥**

सोहं सहा व साखाहि उद्धपादो अवं सिरो
अप्पतिटठे अनालम्बे गिरिदुग्गस्मि पापतं ॥१५॥
यस्मा च वारि गम्भीरं तस्मा न समभज्जिसं
तत्थ सेसिं निरानन्दो अनूना दस रत्तियो ॥१६॥
अथ एत्थ कपिमागञ्छि गोनंगुलो दरीचरो
साखा हि साखं विचरन्तो खादमानो दुमप्फलं
सो मं दिस्वा किसं पण्डुं कारुञ्ञं अकरं मयि ॥१७॥
अम्भो को नाम सो एत्थ एवं दुक्खेन अट्टितो
मनुस्सो अमनुस्सो वा अत्तानं मे पवेदय ॥१८॥
तस्स अञ्जलिं पणामेत्वा इदं वचनं अब्रवि
मनुस्सो'हं वसं पत्तो, सा मे नत्थि इतोगति,
तं वो वदामि भद्दवो त्वं च मे सरणं भव ॥१९॥
गरुसीलं गहेत्वान विचरि पब्बते कपि
सिलाय योग्गं कत्वान निसभो एतद अब्रवि ॥२०॥
एहि मे पिट्ठिं आरुय्ह गीवं गण्हाहि बाहुहि
अहं तं उद्धरिस्सामि गिरिदुग्गतो वेगसा ॥२१॥
तस्स तं वचनं सुत्वा वानरिंदस्स सिरीमतो
पिटिठं आरुय्ह धीरस्स गीवं बाहाहि अग्गाह ॥२२॥
सो मं ततो समुट्ठासि तेजसी बलवा कपि
विहञ्ञमानो किच्छेन गिरि दुग्गतो वेगसा ॥२३॥
उद्धरित्वान मं सन्तो निसभो एतदब्रवि
इङ्घ मं सम्म रक्खस्सु पस्सुपिस्सं महुत्तकं ॥२४॥
सीहव्यग्घा च दीपी च अच्छको कतरच्छयो
ते मं पमत्तं हिंसेय्युं, ते त्वं दिस्वान वारय ॥२५॥
एवं मे परितातून पस्सुपि सो मुहुत्तकं
तदाहं पापिकं दिट्ठिं पटिलच्छिं अयोनिसो ॥२६॥

भक्खो अयं मनुस्सानं यथा च अञ्ञो वने मिगा,
यं नून इमं वधित्वान छातो खादेय्य वानरं ॥२७॥
आसितो च गमिस्सामि मंसं आदाय सम्बलं
कन्तारं नित्थरिस्सामि, पाथेय्यं मे भविस्सति ॥२८॥
ततो सिलं गहेत्वान मत्थकं सन्निताळयिं
मम हत्थ किलंतस्स पहारो दुब्बलो अहु ॥२९॥
सो च वेगेन उदप्पत्तो कपि रुहिरमक्खितो
अस्सुपुण्णेहि नेत्तेहि रोदन्तो मं उदिक्खति ॥३०॥
माय्यो मं करि भद्दं ते, त्वं च नामेदिसं करि
त्वं च खो नाम दीघायु अञ्ञं वारेतुं अरहसि ॥३१॥
अहो वत रे पुरिस ताव दुक्करकारक
एदिसा विसमा दुग्गा पपाता उद्धटो मया ॥३२॥
आनीतो परलोका व दुब्भेय्यं मं अमञ्ञथ,
तं तेन पापधम्मेन पापं पापेन चिन्तितं ॥३३॥
मा हेव त्वं अधम्मट्ठ वेदनं कटुकं फुसि
माहेव पापं कम्मंतं फलं देळुंव त वधि ॥३४॥
तयि मे नत्थि विस्सासो, पापधम्मं अमञ्ञथ
एहि मे पिट्ठितो गच्छ दिस्समानो व सन्तिकं ॥३५॥
मुत्तोसि हत्था वाळानं, पत्तोसि मानुसं पदं
एस मग्गो अधमट्ठ, तेन गच्छ यथासुखं ॥३६॥
इदं वत्वा गिरिचरो रहदे पक्खल्य मत्थकं
अस्सूनि संयमज्जित्वा ततो पब्बतं आरुहि ॥३७॥
सो हं तेनाभिसत्तोस्मि परिळाहेन अट्टितो
डय्हमानेन गत्तेन वारिं पातुं उपागमिं ॥३८॥
अग्गिना विय सन्तत्तो रहदो रुहिरमक्खितो
पुब्बलोहितसंकासो सब्बो मे समपज्जत्थ ॥३९॥

यावन्तो उदबिन्दूनि कार्यास्मि निपतिंसु मे
तावन्तो गण्डू जायेथ अद्धबेलुवसादिसा ॥४०॥
पभिन्ना पग्घरिसु मे कुणपा पुब्बलोहिता
येन येनेव गच्छामि गामेसु निगमेसु च ॥४१॥
दण्डहत्था निवारेन्ति इत्थियो पुरिसा च मं
ओक्किता पूतिगन्धेन मास्सु ओरेन मागमा ॥४२॥
एतादिसं इदं दुक्खं सत्तवस्सानि दानि मे
अनुभोमि सकं कम्मं पुब्बे दुक्कतं अत्तनो ॥४३॥
तं वो वदामि भद्दं वो यावन्तेत्थ समागता
मास्सु मित्तानं दुब्भित्थो, मित्तदुब्भो हि पापको ॥४४॥
कुट्ठी किलासी भवति यो मित्तानं इध दुब्भति
कायस्स भेदा मित्तद्दू निरयं सो उपपज्जति ॥४५॥

[खोये हुए बैल को खोजता हुआ मै नाना प्रकार के हाथियो से सेवित शून्य, एकान्त कान्तार मे अकेला ही गया ॥१०॥ वहा उस जगली पशुओ से युक्त कानन मे मार्ग भ्रष्ट हो कर एक सप्ताह तक मै भूखा प्यासा भटकता रहा ॥११॥ वहाँ मुझ भूखे को प्रपात की ओर फलधारी तिन्दुक वृक्ष दिखाई दिया ॥१२॥ मैने वायु क गिराए हुए फल खाये। वे मुझे बहुत अच्छे लगे। मै अतृप्त हो पेड पर चढ गया कि वहाँ भर-पेट खाऊगा ॥१३॥ एक फल मैने खाया था, दूसरे की इच्छा कर रहा था, तभी वह शाखा टूट गई, मानो कुल्हाडी से काटी गई हो ॥१४॥ मै शाखा सहित सिर, नीचे पैर ऊपर हो, अप्रतिष्ठित, आलम्बन-रहित, गिरि-गह्वर मे जा पडा ॥१५॥ क्योंकि वहाँ गम्भीर पानी था, इसलिए चोट नही लगी। मै वहाँ दस रात तक आनन्द-रहित पडा रहा ॥१६॥ वहाँ जगल मे घूमने वाला एक बन्दर आया, जिसकी पूँछ बैल की पूँछ के सदृश थी। वह वृक्ष के फल खाता हुआ एक शाखा से दूसरी शाखा पर दौड रहा था। उसने मुझे कृश और पाण्डु-वर्ण देख मुझ पर दया की और बोला—"हे पुरुष! तू इस प्रकार यहाँ दु ख भोग रहा है, तेरा क्या नाम है? तू मनुष्य है, अथवा अमनुष्य है, तू अपने आपको मुझ पर प्रकट कर" ॥१७-१८॥ मैने उसे हाथ जोड कर यह उत्तर दिया मै मनु य हूँ, (दुर्भाग्य के) वश मे हूँ। यहाँ म

मेरा निस्तार नही है। मै तुझे कहता हूँ। तेरा भला हो। तू मेरा उद्धार कर ॥१९॥ कपि भारी भारी शिलाये ले कर पर्वत मे घूमा। उसने शिलाओ को जोड कर सीढ़ी बनाई और तब वह कपि बोला : आ मेरी पीठ पर चढ और बाहों से मेरी गर्दन पकड। मै तुझे शीघ्रता से इस गिरि-गह्वर से निकालूगा ॥२०-२१॥ उस श्रीमान वानर का कहना सुन, मैने उस धैर्य्यवान् वानर की गर्दन को बांहो से पकडा और उसकी पीठ पर चढ गया ॥२२॥ उस तेजस्वी बलवान कपि ने मुझे उस गिरि-गह्वर से बडी कठिनाई से क्लान्त होकर अति शीघ्र उठाया ॥२३॥ मुझे निकाल चुकने पर वह वानर बोला "मित्र ! मेरी देख-भाल रख, मै मुहूर्त भर सोता हूँ ॥२४॥ सिह, व्याघ्र, चीते, रीछ तथा भालू मुझे निद्रित देख मेरी हिसा कर सकते है। उन्हे देख कर तू हटाना ॥२५॥" इस प्रकार मुझे राखी बना कर वह मुहूर्त भर सो गया। उस समय मेरे मन मे अनुचित पाप-दृष्टि उत्पन्न हुई ॥२६॥ अन्य पशुओ की तरह यह भी मनुष्यो का खाद्य है। मै इस वानर को मार कर क्यो न अपनी भूख मिटाऊं ॥२७॥ मै खा पीकर, सबल होकर, मास रूपी पाथेय ले कर कन्तार पार कर सकूगा ॥२८॥ तब पत्थर ले कर सिर पर दे मारा। मेरा हाथ कमजोर होने के कारण जोर से चोट नही लगी ॥२९॥ वह रक्त-रजित कपि जल्दी से उठ अश्रु-भरे नेत्रो से रोता हुआ मेरी ओर देखने लगा ॥३०॥ वह बोला : "आर्य ! मेरे प्रति ऐसा न करे। तुम्हारा भला हो। तुमने ऐसा किया है ? तुम दीर्घायु हो, तुमसे तो आशा थी कि तुम दूसरो को रोकोगे। अरे पुरुष ! तेरी करतूत। मैने तुझे ऐसे भयानक प्रपात मे से निकाला। मै तुझे मानो परलोक से ही खीच लाया। तूने मुझसे द्रोह किया ! तुझ पाप-धर्मी ने पाप-युक्त मन से पाप का ही चिन्तन किया। हे अधर्मी ! तुझे दुःख न सहना पडे। तेरा पाप-कर्म ब स की तरह तेरा विनाश न करे ॥३१।३४॥ (तब क्षमा-याचना करने पर वह और बोला—) "हे पापी ! हे असयमी ! अब मेरे मन मे तेरा विश्वास नही है। तू मेरे पीछे पीछे देखता हुआ चला आ। (मै शाखाओं पर ऊपर ऊपर जाऊंगा) ॥३५॥ फिर कहा—"अब तू जगली जानवरो के भय से मुक्त है। अब तू बस्ती मे आ गया है। हे अधर्मिष्ठ ! यह तेरा रास्ता है। तू सुखपूर्वक जा" ॥३६॥ यह कह कर पर्वत चारो बानर ने तालाब मे अपना माथा धोया और आ सू गिराता हुआ वह पर्वत पर जा चढा ॥३७॥ मै उससे अभिशप्त हो कर जलन से पीड़ित होने के कारण

जलते शरीर से पानी पीने के लिए आया ॥३८॥ मेरे लिए सारे तालाब का पानी पीप और रक्त से मिला हुआ तथा अग्नि से तपा हुआ जैसा हो गया ॥३९॥ मेरे शरीर पर पानी की जितनी बूंदे पड़ी, उतने ही आधे बेल के समान फोडे हो गये ॥ ४० ॥ वे सड़े हुए पीप और लोहे से भरे फोड़े चूने लग गये। जहाँ जहाँ मैं गाँव और निगमों में जाता, सभी जगह स्त्री और पुरुष मुझे हाथ में डण्डा लेकर दुरदुराते—तेरे शरीर से दुर्गन्ध आती है। तू हमारी ओर मत आ ॥ ४१-४२ ॥ मैं अपने पूर्व कृत दुष्कर्म के फलस्वरूप सात वर्ष से इस प्रकार दुःख भोग रहा हूँ ॥४३॥ इस लिए जो लोग यहाँ आये हैं, मैं उन सब को कहता हूँ। उनका भला हो। वे मित्रद्रोही न हों। मित्रद्रोह पाप है ॥ ४४ ॥ जो मित्र से द्रोह करता है, वह कोढी होता है, उस दमा हो जाता है। मित्र द्रोही शरीर छूटने पर नरक जाता है ॥ ४५ ॥]

राजा के साथ बात करते ही करते उस आदमी को भी पृथ्वी ने विवर दे दिया। वह उसी क्षण मर कर अवीची नरक मे पैदा हुआ। उस के पृथ्वी प्रवेश कर जाने पर राजा ने उद्यान से निकल नगर में प्रवेश किया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला "भिक्षुओ ! न केवल अभी, देवदत्त ने पहले भी पत्थर मारा ही है" कह कर जातक का मेल बैठाया। उस समय मित्र-द्रोही पुरुष देवदत्त था। कपि-राज तो मैं ही था।

## ५१७. दकरक्खस जातक

"सचे वो वुटहमानानं...."यह दकरक्खस जातक है। यह सारी महाउम्मग्ग जातक[1] में आवेगी।

---

[1] महाउम्मग्ग जातक (५४६)

# ५१८. पण्डर जातक

"विकिण्णवाचं . . . . . "यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय देवदत्त के झूठ बोलकर पृथ्वी-प्रवेश करने के बारे मे कही। उस समय भिक्षुओं द्वारा उसका दुर्गुण कहे जाने पर "भिक्षुओ, न केवल अभी, देवदत्त ने पहले भी झूठ बोलकर पृथ्वी-प्रवेश किया ही है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

## क. अतीत कथा

पूर्व समय के वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय पाँच सौ व्यापारी नौका लेकर समुद्र मे उतरे। सातवे दिन भी उन्हे कही किनारा नही दिखाई दिया। उनकी नौकाएं टूट गई। और एक के अतिरिक्त शेष सभी मच्छों के पेट मे जा पहुचे। एक हवा के वेग से करम्बिय-पत्तन पर जा लगा। वह समुद्र से स्थल पर पहुंच कर नंगा ही उस पत्तन पर भिक्षा मांगने के लिए चला। अदामियों ने यह समझ कि यह श्रमण अल्पेच्छ है, सतुष्ट है, उसका सत्कार किया। उसने सोचा कि जीविका का साधन मेरे हाथ लग गया है। इसलिए लोगों के वस्त्र देने पर भी उसने उन्हे लेना स्वीकार नही किया। लोगों ने यह मान कि इससे बढकर कोई अल्पेच्छ नही है, उसके प्रति और भी अधिक प्रसन्न हो, आश्रम बना, उसे वहा बसाया। वह करम्बिय-अचेल करके प्रसिद्ध हुआ। वहां रहते समय उसका लाभ-सत्कार बहुत बढ़ गया। एक नाग राजा और एक गरूड़ राजा भी उसकी सेवा मे आने लगे। उनमें से नागराजा का नाम था, पण्डर।

एक दिन गरुड-राज ने उसके समीप पहुंच प्रणाम कर एक ओर बैठ कर कहा—"भन्ते! हमारे बहुत से सम्बन्धी नागों को पकड़ने जाकर नाश प्राप्त हो जाते हैं। इन नागों को पकड़ने का ढंग हम नही जानते हैं। यह एक रहस्य है। क्या आप उन-पर अपना प्रेम प्रगट करते हुए उनसे यह रहस्य नही जान सकते?" उसने 'अच्छा

कह स्वीकार किया। गरुड-राज प्रणाम कर के चला गया। जब नागराज आकर प्रणाम करके बैठा तो उसने नागराजा से पूछा—"नागराज ! तुम्हे पकडने जाकर बहुत से गरुड विनाश को प्राप्त होते है, तुम्हे वे कैसे पकड सकते है ?"

"भन्ते ! यह हमारा गुह्य रहस्य है। इसे प्रगट करने से हम अपने रिश्तेदारों की मृत्यु को निकट लाने वाले होते है।"

"आयुष्मान ! क्या तुझे भय है कि मैं किसी दूसरे को बता दूँगा। मै किसी दूसरे को नही कहूँगा। केवल स्वय जानने की इच्छा से ही पूछ रहा हूँ। तू मुझ पर विश्वास कर, निर्भय होकर कह।"

"भन्ते कहता हूँ"—कह नागराज प्रणाम करके चला गया। दूसरे दिन भी पूछा, तब भी उसने नही बताया। तीसरे दिन नागराज के आकर बैठने पर उसने कहा—"आज मुझे पूछते तीसरा दिन हो गया है। तू क्यों नही कहता ?"

"भन्ते ! इस डर से कि आप किसी दूसरे को कह देगे।"

"किसी से नही कहेगे, निर्भय होकर कहो।"

"तो भन्ते ! किसी दूसरे से मत कहे।" प्रतिज्ञा करा बोला—"भन्ते ! हम बडे बडे पत्थर निगल कर भारी होकर लेटे रहते है। जब गरुड आते है तो सिर आगे बढा दात निकाल गरुडो को डसने जाते है। वे आकर हमारे सिर पकड लेते है। भारी होकर लेटे रहने के कारण वे हमे खीच ले जाने का प्रयत्न करते हुए भी (खीच कर नही ले जा सकते। हम ही) उन्हे खीच कर पानी मे ले जाते है। वे पानी के अन्दर ही मर जाते है। इस कारण से बहुत से गरुड विनाश को प्राप्त होते है। वे हमे सिर से पकडते है। उससे क्या ? वे मूर्ख है। वे हमे पूछ से पकड सिर नीचा कर पेट के पत्थर मुंह से निकाल हल्के करके पकड ले सकते है।" इस प्रकार उसने अपना रहस्य उस दुराचारी पर प्रगट कर दिया।

उसके चले जाने पर गरुड राज ने आकर करम्बिय-अचेल को नमस्कार करके पूछा—"भन्ते ! क्या नागराज से रहस्य की बात पूछी ?" उसने "आयुष्मान हां" कहकर सब कुछ उसके कहने के अनुसार ही कह दिया । यह सुन गरुड ने सोचा नागराज ने अनुचित किया। अपनी जाति के नष्ट होने का उपाय दूसरे को नही बताना चाहिए। अच्छा आज मुझे गरुड़-वायु करके पहले उसे ही पकडना योग्य

है। उसने गरुड वायु करके पण्डर नागराज को पूछ से पकडा और सिर नीचा करके पेट के पत्थर निकाल उड़कर आकाश चला गया। आकाश मे सिर नीचा करके लटकते हुए पण्डर ने—"मैंने स्वय दुःख को निमत्रण दिया है" विलाप करते हुए कहा—

विकिन्नवाचं अनिगूळहमन्तं
असंयतं अपरिचक्खितारं
भयं तं अन्वेति सयं अबोधं
नागं यथा पण्डरकं सुपण्णो ॥१॥

यो गुह्यमन्तं परिरक्खनेय्यं
मोहा नरो संसति भासमानो
तं भिन्नमन्तं भयं अन्वेति खिप्पं
नागं यथा पण्डरकं सुपण्णो ॥२॥

नानुमित्तो गरूं अत्थं गुह्यं वेदेतुं अरहति
सुमित्तो च असम्बुद्धं संबुद्धं वा अनत्थवा ॥३॥

विस्सासं आपज्जिं अहं अचेलो
समणो अयं सम्मतो भावितत्तो
तस्साहं अक्खिं विवरिं गुह्यं अत्थं
अतीतमत्थो कपणो रुदामि ॥४॥

तस्साहं परमं ब्रह्मे गुह्यं
वाचं हिमं नासक्खि संयमेतुं
तप्पक्खतो हि भयं आगतं मम
अतीतमत्थो कपणो रुदामी ॥५॥

यो वे नरो सुहदं मञ्ञमानो
गुह्यं अत्थं संसति वुक्खुलीनं
दोसा भया अथवा रागरत्तो
पल्लित्थो बालो असंसयं सो ॥६॥

तिरोक्खवाचो असतं पविट्ठो
यो संगतीसु मुदीरेति वाक्यं
आसीविसो दुम्मुखो त्याहु तं नरं
आरा अरा संयमे तादिसम्हा ॥७॥
अन्नं पानं कासिकं चन्दनञ्च
मनापिट्ठियो मालमुच्छादनञ्च
ओहाय गच्छामसे सब्बकामे
सुपण्णा पाणुपगता व त्यम्हा ॥८॥

[जिसका मुह खुला है, जो किसी रहस्य को छिपाकर नहीं रख सकता, जो असयत है, जो किसी की परीक्षा नही करता ऐसे मूर्ख आदमी का भय उसी प्रकार पीछा करता है जैसे गरुड ने पण्डर नाग का किया ॥ १ ॥ जो आदमी बोलता हुआ रक्षा करने योग्य, रहस्य बात को (पापी आदमी पर) प्रगट कर देता है उस मंत्रणा का खंडन करने वाले पुरुष का भय उसी प्रकार अनुगमन करता है जैसे गरुड ने पण्डरक नाग का किया ॥२॥ जो ऊपर ऊपर से मित्र बना हुआ है, वह रहस्य के जानने का अधिकारी नही है, जो मूर्ख मित्र है, वह भी नही और जो बुद्धिमान किन्तु अनर्थकामी है वह भी नही ॥ ३ ॥ "मैने विश्वास किया—यह अचेलक श्रमण है, यह प्रसिद्ध है, यह आइत है। मैने उस पर रहस्य की बात प्रकट कर दी, अब मै अपने अर्थ की हानिकर, दुखित हो, रोता हूं ॥ ४ ॥ हे ब्रह्म (गरुड) मै उस से रहस्य की बात को गुप्त नही रख सका। उसी की ओर से मुझे यह भय प्राप्त हुआ। मै अब अपने अर्थ की हानिकर, दुःखित हो रोता हूं ॥ ५ ॥ जो आदमी द्वेष, भय अथवा राग के वशीभूत हो नीच-कुल पर रहस्य प्रकट कर देता है, वह मनुष्य निश्चय से पतित होता है ॥ ६ ॥ जो मनुष्य रहस्य की बात को असत्पुरुषों की संगति मे जाकर प्रकट कर देता है, ऐसा पुरुष विषैले सर्प के समान दुर्मुख कहलाता है। उस तरह के पुरुष से दूर दूर रहे ॥ ७ ॥ खाद्य, पेय, काशी का चदन, श्रेष्ठस्त्रिया, मालाएं और वस्त्र—सभी कामभोग की वस्तुयें छोड़कर हम जा रहे है। हे! गरुड हमारे प्राण तेरे वश में हैं ॥ ८ ॥]

इस प्रकार नीचा सिर करके लटकते हुए पण्डरक ने आठ गाथाओं से विलाप

किया। गरुड ने उसकी विलाप वाणी सुन निदा की,—"नागराज अचेलक पर अपना रहस्य प्रगट करके अब किसलिये विलाप करता है?" वह बोला—

**को नीध तिण्णं गरहं उपेति**
**अस्मिन घ लोके पाणभ् नागराजा**
**समणो सुपण्णो अथवा तवेव**
**किंकारणां पण्डरकग्गहितो ॥९॥**

[हे नागराज! हम तीनों मे यहा कौन निन्दनीय है? श्रमण, गरुड, अथवा तू ही? हे पण्डरक! तू क्यों पकडा गया है? ॥ ९ ॥

यह सुन पण्डरक ने अगली गाथा कही—

**समणो ति मे सम्मतत्तो अहोसी**
**पियो च मे मनसा भावितत्तो**
**तस्माहं अक्खिं विवरिं गुह्यं अत्थं**
**अतीतमत्थो कपणं रुदामि ॥१०॥**

[मै समझता था कि श्रमण सत्पुरुष है, वह मेरा मन से प्रिय था और आदृत था। मैंने उस पर रहस्य प्रगट किया। अब मै अर्थ की हानि होने पर दुःखित हो रोता हू ॥ १० ॥

तब गरुड़ ने चार गाथाए कही—

**न चत्थि सत्तो अमरो पथव्या**
**पञ्ञाविधा नत्थि न निन्दितब्बा**
**सच्चेन धम्मेन धिया दमेन**
**अलब्भं अब्याहरति नरो इध ॥११॥**

**माता पिता परमा बन्धवानं**
**नास्स ततियो अनुकम्पक अत्थि**
**तसं पि गुह्यं परमं न संसे**
**मंतस्स भेदं परिसंकमानो ॥१२॥**

**माता पिता भगिनी भातरोच**
**सभाय वा यस्स होन्ति सपक्खा**
**तेसं पि गुय्हं परमं न संसे**
**मंतस्स भेदं परिसंकमानो ॥१३॥**
**भरियाच पुरिसं वज्जा कोमारी पियभाणिनी**
**पुत्तरूपयसूपेता ञातिसंघ पुरक्खता**
**तस्सापि गुय्हं परमं न संसे**
**मंतस्स भेदं परिसंकमानो ॥१४॥**

[पृथ्वी पर कोई आदमी अमर नही है। और जो प्रज्ञावान है वह निन्दनीय नही है, आदमी सत्य से, धर्म से, बुद्धि से, और संयम से अलभ्य लाभ को प्राप्त करता है ॥ ११ ॥ संबंधियों मे माता पिता सर्वश्रेष्ठ है। इनसे बढकर कोई तीसरा अनुकम्पा करने वाला नही है। आदमी को चाहिए कि रहस्य-भेद की आशंका से उन पर भी रहस्य प्रकट न करे ॥ १२ ॥ माता, पिता, बहन, भाई, मित्र और स्वपक्ष के लोग हों तो रहस्य भेद की आशंका से उन पर भी रहस्य प्रकट न करे ॥ १३ ॥ यदि प्रिय भाषिणी कुमारी अथवा पुत्र, रूप, यश तथा सबंधियों से युक्त भार्या भी पुरुष को (रहस्य प्रकट करने को) कहे तो रहस्य भेद की आशका से उन पर भी रहस्य प्रकट न करे ॥ १४ ॥]

इसके आगे की पाच गाथाएँ उमग्ग जातक मे पच पडित प्रश्न में (भी) आएगी—

**न गुह्यं अत्थं विवरेय्य रक्खेय्य नं यथा निधिं,**
**न हि पातुकतो साधु गुह्यो अत्थो पजानता ॥१५॥**
**थिया गुह्यं न संसेय्य अमितस्स च पण्डितो**
**यो चामिसेन संहीरो हदयत्थे ह्नो च यो नरो ॥१६॥**
**गुह्यं अत्थं असंबुद्धं सम्बोधयति यो नरो**
**मंतभेदभया तस्स दासभूतो तितिक्खति ॥१७॥**
**यावंतो पुरिसस्स अत्थं गुह्यं जानन्ति मन्तिनं**
**तावन्तो तस्स उब्बेगा, तस्मा गुह्यं न विस्सजे ॥१८॥**

**विविच्छ भासेय्य दिवा रहस्सं रत्तिं गिरं नातिवेलं पमुञ्चे**
**उपस्सुतिका हि सुणन्ति मंतंतस्मामतो खिप्पं उपेति भेदं ॥३९॥**

[रहस्य बात को न प्रकट करे। उसे खजाने की तरह सुरक्षित रक्खे। बुद्धिमान आदमी द्वारा रहस्य का प्रकट किया जाना अच्छा नही ॥१५॥ स्त्री पर गुप्त बात प्रकट न करे, अमित्र पर न प्रकट करे, जो आमिष का लोभी हो (?) और जो हृदय से विश्वसनीय न हो, (उस पर प्रकट न करे)॥ १६॥ जो नर मूर्ख आदमी को रहस्य की बात बता देता है, रहस्य बात के प्रकट हो जाने के डर से उसे मूर्ख आदमी का गुलाम बन कर सब कुछ सहन करना पडता है॥ १७॥ जितने भी आदमी मनुष्य की रहस्य बात को जान लेते है, उसी मात्रा मे उसका उद्वेग बढ जाता है। इसलिए रहस्य के बारे मे किसी का विश्वास न करे॥१८॥ दिन मे रहस्य की बात एकान्त मे व्यक्त करे और रात को असमय मे न व्यक्त करे। इधर उधर सुन लेने वाले(?)रहस्य को सुन लेते है, इसलिए रहस्य शीघ्र ही प्रकट हो जाता है॥१९॥]

इससे आगे—

**यथापि अस्स नगरं महन्तं**
**आळारकं आयसं भद्दसालं**
**समन्तखाता परिखा उपेतं**
**एवं पि मे ते इध गुय्हमन्ता ॥२०॥**

**ये गुय्हमन्ता अविकिण्णवाचा**
**दळहा सदत्थेसु नरा दुजिह्वा**
**आरा अमित्ता व्यवजन्ति तेहि**
**आसीविसा वारिव सत्तु संघा ॥२१॥**

[जैसे कोई बडा भारी लोह निर्मित, अपेक्षित शालाओं से युक्त, चारों ओर खाइयों वाला नगर हो वैसे ही वे लोग होते है जो रहस्य को छिपाए रखते है ॥ २०॥ हे पण्डरक ! जो लोग रहस्य को छिपा कर रख सकते है, जो सयत वाणी हैं, जो सदर्थों में दृढ है, उनसे शत्रुगण ऐसे ही दूर दूर रहते है जैसे प्राणी विषैले सर्प से ॥ २१॥]

इस प्रकार गरुड के धर्मोपदेश देने पर पण्डरक बोला—

**हित्वा घरं पब्बजितो अचेलो**
**नग्गो मुंडो चरति यासहेतु**
**तम्ही नु खो विवरिं गुह्यं अत्थं**
**अत्थाच धम्माच अवागतम्हा ॥२२॥**
**कथं करोचा हि सुपण्णराज**
**किंसीलो केन वतेन वत्तं**
**समणो चरं हित्वा ममायितानी**
**कथंकरो सग्गं उपेति ठानं ॥२३॥**

[यह सोच कर कि यह घर त्याग, प्रबज्जित हो, निर्वस्त्र, नग्न, मुंडी, भिक्षाटन करता घूमता है, मैंने उसे रहस्य बताया। इससे हम अर्थ तथा धर्म से परिहीण हुए ॥२२॥ हे गरुड-राज। क्या करने से किस शील से किस व्रत से श्रमण ममत्व छोड़कर विचरता है ? क्या करने से स्वर्ग लाभ करता है ? ॥ २३ ॥]

गरुड बोला—

**हिरिय तितिक्खाय दमेन खन्तिया**
**अक्कोधनो पेसुणीयं पहाय**
**समणो चरं हित्वा ममायितानी**
**एवंकरो सग्गं उपेति ठानं ॥२४॥**

[लज्जा से सहनशीलता से, सयम से, शान्ति से, युक्त होकर, क्रोध रहित भिक्षु चुगलखोरी छोड, ममत्व त्याग विचरता है। ऐसा करने से वह स्वर्गलाभ करता है ॥२४॥]

इस प्रकार गरुडराज से धर्म कथा सुनकर पण्डरक ने प्राणों की भिक्षा मांगते हुए गाथा कही—

**माता व पुत्तं तरुणं तनुज्जं**
**सम्पस्स तं सब्बगत्तं फरेति**
**एवम्पि मे त्वं पातुरहु दिजिन्द**
**माता व पुत्तं अनुकम्पमानो ॥२५॥**

[हे द्विजेन्द्र ! जिस प्रकार मा अपने औरस पुत्र को देखकर प्रसन्नता से बाग बाग हो जाती है, इसी प्रकार तू मेरे लिए प्रादुर्भुत हुआ है। तू माता के पुत्र की रक्षा करने की तरह मेरी रक्षा कर ॥२५॥]

गरुड ने उसे जीवन दान देते हुए दूसरी गाथा कही—

**हन्दज्ज त्वं मुञ्च वधा दुजिह्व**
**तयो हि पुत्ता न हि अञ्ञो अत्थि**
**अन्तेवासी दिन्नको अत्रजो च**
**रजस्सु,पुत्त,अञ्ञतरो मे अहोसि ॥२६॥**

[हे पण्डरक ! आज तू वध से मुक्त हुआ। तीन ही पुत्र होते है, चौथा नही। शिष्यपुत्र, दत्तकपुत्र और औरसपुत्र। प्रसन्न हो तू मेरा शिष्य पुत्र है ॥२६॥]

यह कह आकाश मे उतर उसे पृथ्वी पर रख दिया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने दो गाथाए कही—

**इच्चेव वाक्यं विसजी सुपण्णो**
**भुम्या पतिट्ठाय दिजो दुजिव्हं**
**मुत्त अज्जा त्वं सब्बभयातिवत्तो**
**थलूदके होहि मयाभिगुत्तो ॥२७॥**
**आनंकितं यथा कुसलो भिसक्को**
**पिपासितानं रहदो व सीतो**
**वेस्मं यथा हिमसिसिरट्टितानं**
**एवं पि ते सरणं अहं भवामि ॥२८॥**

[गरुड-राज ने पण्डरक को पृथ्वी पर रख यह वाक्य कहा—"तू आज सब भयों से मुक्त हुआ। तू जल तथा थल,मे मेरे द्वारा सुरक्षित है ॥२०॥ जिस प्रकार रोगी के लिए कुशल वैद्य, प्यासे के लिए शीतल तालाब, हिम-शिशिर से पीडित के लिए घर, उसी तरह से मैं तेरा शरण-स्थान होता हूँ" ॥२८॥]

उसने 'तू जा' कह विदा किया। वह नाग-भवन मे जा घुसा। दूसरे ने भी गरुड भवन जा सोचा "मैंने पण्डरक नाग को शपथ कर और श्रद्धावान बना छोड़ा। मैं

उसकी परीक्षा करूँगा कि उसका हृदय मेरे प्रति कैसा है ?" उसने नाग-भवन पहुँच गरुड-वायु छोडी। यह देख नाग ने सोचा कि गरुड-राज मुझे पकडने आया होगा। यह सोच उसने अपना शरीर हजार गुणा बडा फैलाया और पत्थर तथा बालु निगल भारी हो, पूछ नीचे कर तथा फण उठा, पडे-पडे गरुड राज को डसने वाला जैसा हुआ ।

यह देख गरुड-राज ने दूसरी गाथा कही—

**संन्धि कत्वा अमित्तेन अण्डजेन जलाबुज**
**विवरिय दाठं सयसि, कुतो तं भयं आगतं ॥२९॥**

[हे जलचर ! तूने शत्रु अण्डज (गरुड) से सन्धि की है। तू दाढ खोले लेटा है। तुझे कहाँ से भय आया है ? ॥ २४ ॥]

यह सुन नाग-राज ने तीन गाथाये कही—

**संकेथेव अमित्तस्मिं, मित्तस्मिं पि न विस्ससे,**
**अभया भयं उप्पन्नं अपि मूलानि कन्तति ॥३०॥**
**कथं नु विस्ससे त्यम्हि येनासि कलहो कतो**
**निच्चयत्तेन ठातब्बं, सो दिसम्हि न र ज्जति ॥३१॥**
**विस्सासये न च तं विस्ससेय्य,**
**असंकितो च संकितो भवेय्य,**
**तथा तथा विञ्ञू परक्कमेय्य**
**यथा यथा भावं परो न जञ्ञा ॥३२॥**

[शत्रु के प्रति शका ही रक्खे, मित्र पर भी विश्वास न करे निर्भयता के स्थान से उत्पन्न हुआ भय जीवनमूल को ही काट डालता है ॥ ३० ॥ जिसने झगडा किया उसका कैसे विश्वास करे ? सशकित हो रहना चाहिए ? शत्रु शत्रु का विश्वास नही करते ॥ ३१ ॥ दूसरे को अपना विश्वासी बनाए, अपने दूसरे में विश्वास न करें। दूसरे को भी असशयी बनाए, अपने सशकित रहे। बुद्धिमान आदमी को चाहिए कि ऐसा प्रयत्न करे कि दूसरा अपना भाव न जान सके ॥ ३२ ॥]

इस प्रकार परस्पर बात-चीत करके मेल-मिलाप से प्रसन्नचित्त हो दोनों अचेलक के आश्रम गये।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने—

**ते देव वण्णानि सुखुमालरूपा**
**उभो समा सुजयो पुञ्ञगन्धा**
**अपागमुं कारम्बियं अचेलं**
**मिस्सीभूता अस्सवाहा व नागा ॥३३॥**

[वे सुकुमार-रूप, देव-वर्ण, समान-शील, पुण्यवान दोनों के दोनों कारम्बिय अचेलक के पास पहुचे—एक हुए जैसे (रथ मे जुते हुए) घोडे ॥ ३३ ॥]

इस सम्बन्ध मे शास्ता ने दूसरी गाथा कही—

**ततो हवे पण्डरको अचेलं**
**सयं (एव) उपागम्म इदं अवोचः**
**मुत्त अज्ज अहं सब्बभयातिवत्तो**
**न ह नून तुय्हं मनसो पियम्ह ॥३४॥**

[तब पण्डरक ने अचेलक के पास आकर स्वय कहा —"मै आज सभी भयों से मुक्त हो गया हू। अब मै तुम्हे मन से प्यार नही करता हू" ॥ ३४ ॥]

तब नग्न-साधु ने दूसरी गाथा कही—

**पियो हि मे आसि सुपण्णराज**
**असंसयं पण्डरकेन सच्चं**
**सो रागरत्तो व अकासि एतं**
**पापं कम्मं सम्पजानो न मोहा ॥३५॥**

[निस्सन्देह सत्य ही पण्डरक की अपेक्षा गरुड़-राज मेरा अधिक प्रिय था। मैंने अनुराग के वशी-भूत हो जान-बूझकर ही यह पाप-कर्म किया, कुछ अज्ञान से नही ॥ ३५ ॥]

यह सुन नाग-राज ने दो गाथाये कही—

**न हि मे पियं अप्पियं वापि होति**
**सम्पस्सतो लोकं इमं परं च,**
**सुसञ्ञातानं हि वियञ्जनेन**
**असञ्ञतो लोकं इमं चरासि ॥३६॥**

**अरियावकासो सि अनरियो चासि**
**असञ्ञतो सञ्ञतसन्निकासो**
**कण्हाभिजातिको सि अनरियरूपो**
**पापं बहुं दुच्चरितं अचारि ॥३७॥**

[इस लोक तथा परलोक को देखते हुए मेरा न कोई प्रिय है और न अप्रिय। तू सुसंयत लोगों का वेश धारणकर असंयत होकर लोक में विचरण करता है॥ ३६॥]

[आर्य-वेषधारी होकर भी तू अनार्य है; संयत-वेष होकर भी असंयत है। तू कृष्ण-स्वभाव अनार्य-रूप है। तूने बहुत पाप दुश्चरित्र किया है॥ २७॥]

इस प्रकार उसकी निन्दा कर उसे शाप देते हुए यह गाथा कही—

**अदुट्ठस्स तुवं दूभि दूभी च पिसुणो चासि,**
**एतेन सच्चवज्जेन मुधा ते फलतु सत्तधा ॥३८॥**

[तूने निर्दोष के साथ द्वेष किया, तू दुष्ट है, चुगलखोर है। इस सत्य-वचन के प्रताप से तेरा सिर सौ टुकडे हो जाय॥ ३८॥]

इस प्रकार नागराज के सामने ही नग्न-साधु के सिर के सौ टुकडे हो गये। जहा बैठा था, वही उसे भूमि ने विवर दे दिया। वह पृथ्वी मे प्रविष्ट हो, अवीची-नरक मे जाकर पैदा हुआ। नाग-राज और गरुड-राज भी अपने अपने भवन को ही चले गये।

शास्ता ने उसके पृथ्वी-प्रवेश की बात को प्रकाशित करते हुए अन्तिम गाथा कही—

**तस्मा हि मित्तानं न दुब्भितब्बं**
**मित्तद्दुभा पापियो नत्थि अञ्ञो**
**आसित्तसत्तो निहतो पथव्या**
**इन्दस्स वाक्येन हि संवरो हतो ॥३९॥**

[इस लिये मित्रों से द्रोह न करे। मित्र-द्रोह से बढकर पाप नही है। इन्द्र (नाग) के वाक्य रूपी विष से आसक्त होकर संवर-वान (साधु) पृथ्वी मे निहत हुआ॥ ३९॥]

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला "भिक्षुओ, न केवल अभी, पहले भी देवदत्त ने झूठ बोल पृथ्वी मे प्रवेश किया था," कह जातक का मेल बैठाया। उस समय अचेलक देवदत्त था। नाग राजा सारिपुत्र। गरुड-राज तो मैं ही था।

# ५१६. सम्बुल जातक

"का वेधमाना "यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय मल्लिका देवी के बारे में कही। कथा-वस्तु कुम्मास पिण्ड जातक मे आ ही गई है, वह उन तीन कुल्माष-पिण्डों के दान के प्रताप से उसी दिन राजा की पटरानी हो, पूर्व उठने वाली आदि पाच भलि बातों से युक्त हो, ज्ञान-वान्, बुद्ध-सेविका तथा पति को देवता मानने वाली हुई। उसकी पति-भक्ति सारे नगर मे प्रकट हो गई। एक दिन धर्म-सभा मे बात-चीत चली, "आयुष्मानो, मल्लिका देवी व्रती तथा पति-भक्त है।" शास्ता ने आकर पूछा, 'भिक्षुओ, बैठे क्या बात चीत कर रहे हो?" "अमुक बात-चीत।" "भिक्षुओ, न केवल, अभी, यह पहले भी पति-भक्त ही थी," कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

## ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे राजा ब्रह्मदत्त का सोत्थिसेन नाम का पुत्र था। आयु-प्राप्त होने पर राजा ने उसे उपराज के पद पर प्रतिष्ठित किया। उसकी सम्बुला नाम की पटरानी थी, उत्तम रूपवान, शरीर-प्रभा से युक्त, वायु रहित स्थान मे जलने वाली दीप-शिखा के समान प्रतीत होती थी।

आगे जाकर सोत्थि-सेन को कोढ हो गया। वैद्य चिकित्सा न कर सके। कोढ के फूट पडने पर उसे अनुताप हुआ। वह सोचने लगा—"मै राज्य लेकर क्या करूगा?" मै जगल मे जा अनाथ की तरह मर जाऊंगा।"वह राजा को सूचना दे, रनिवास छोड चल दिया। सम्बुला को नाना उपायों से रोका गया। वह न रुकी। "मै जंगल मे स्वामी की सेवा करूगी" कह वह भी साथ ही चली गई। वह जंगल मे जा ऐसी जगह पर जहा फल-मूल सुलभ थे और छाया तथा पानी की कमी न थी पर्णशाला बना रहने लगा। राजकुमारी उसकी सेवा करने लगी। कैसे? वह प्रातःकाल

उठकर आश्रम मे झाड़ू लगाती, पीने तथा नहाने-धोने का पानी रखती, दातुन तथा मुह धोने का पानी लाकर रखती, मुह धो चुकने पर नाना प्रकार की औषधिया पीस कर उसके जख्मों पर लगाती, उसके मधुर फलाफल खा चुकने पर, और मुह तथा हाथ धो चुकने पर उसे कहती "देव ! अप्रमादी रहो।" फिर बगल मे टोकरी और कुदाल लेकर फलाफल के लिये जगल मे जा, फलाफल ला, एक ओर रखती। फिर घडे से पानी ला और नाना प्रकार के चूर्णो तथा मिट्टियों से सोत्थिसेन को नहला मधुर फलाफल लाकर सामने रखती। उसके खा चुकने पर सुगन्धित जल ला और स्वय फलाफल खा, लकडी के फट्टों का बिस्तर बना, उसके उस पर लेट जाने पर उसके पाव धोती फिर सिर, पीठ और पैरों आदि का दबाना कर शयनासन पर एक ओर लेट रहती। इस प्रकार वह स्वामी की सेवा करती थी।

एक दिन वह जगल से फलाफल लाई। एक गिरिकन्दरा देख उसने सिर पर से टोकरी उतारी और कन्दरा के किनारे खडी हो "नहाऊगी" सोच उतर कर बदन पर हल्दी का उबटन मला। फिर स्नान कर, शुद्ध साफ हो, ऊपर आ, वल्कल-वस्त्र पहन, कन्दरा के किनारे खडी हुई। उसकी शरीर-प्रभा से सारा जगल जगमगाने लगा। उस समय एक दानव अपना भोजन खोजता घूम रहा था। उसने उसे देख, आसक्त हो, दो गाथाये कही—

**का वेधमाना गिरिकन्द्ररायं**
**एका तुवं तिट्ठसि सञ्ञातूरु**
**पुट्ठासि मे पाणिपमेय्यमज्झे**
**अक्खाहि मे नामं च बन्धवे च ॥१॥**
**ओभासयं वनं रम्मं सीहब्यग्घ निसेवितं**
**का वा त्वं असि कल्याणि, कस्स वा त्वं सुमज्झिमे,**
**अभिवादेमि तं भद्दे, दानवहं, नमत्थु ते ॥२॥**

[हे ! श्रेष्ठ जाघ वाली ! गिरिकन्दरा मे अकेली खडी, कापने वाली तू कौन है ? नाप जा सकने वाले पानी मे, मै तुझे पूछता हू कि तेरा क्या नाम है और तेरे कौन बान्धव है ॥ १ ॥ सिह और व्याघ्रों से सेवित सुन्दर वन को प्रकाशित

करने वाली हे कल्याणी ! तू कौन है ? हे मध्यम आकार वाली तू किसकी है ? भद्रे ! मैं तुझे अभिवादन करता हूं, मै दानव हूं। तुझे नमस्कार है ॥ २ ॥]

[उसने उसकी बात सुन तीन गाथाए कही—]

**यो पुत्तो कासीराजस्स सोत्थिसेनोति तं विदू**
**तस्साहं सम्बुला भर्या, एवं जानाहि दानव,**
**अभिवादेमि तं भन्ते, सम्बुलाहं, नमत्थुते ॥३॥**
**वेदेहपुत्तो भद्दंते वने वसति आतुरो,**
**तं अहं रोगसम्मत्तं एका एकं उपट्ठहं ॥४॥**
**अहं च वनं उञ्छाय मधुमंसं मिगा बिलं**
**यदा हरामी तं भक्खो, तस्स नू अज्ज नाधति ॥५॥**

[हे दानव ! यह जान कि काशीराज का सोत्थिसेन नाम का जो प्रसिद्ध पुत्र है मैं उसकी सम्बुला नामकी भार्या हू। भन्ते ! मै तुझे अभिवादन करती हू। मै सम्बुला हूं, तुझे नमस्कार है ॥ ३ ॥ तेरा भला हो वेदेह-पुत्र रुग्ण अवस्था में वनमे रहता है, मैं अकेली उस अकेले रोगी की सेवा करती हूं ॥ ४ ॥ मैं बन में (फलमूल) चुग कर, मधु और व्याघ्र आदि से छोड़ा हुआ मास जब ले जाती हूं तब वह खाता है। आज निश्चय से वह म्लान हो रहा होगा ॥ ५ ॥]

दानव—

**किं वने राजपुत्तेन आतुरेन करिस्ससि**
**सम्बुलेपरिचिण्णेन, अहं भत्ता भवामि ते ॥६॥**

[हे सम्बुले ! ,रोगी राजपुत्र की बन मे सेवा करके तू क्या करेगी ? मै तेरा स्वामी हो जाता हूं ॥ ६ ॥]

सम्बुला—

**सोकट्ठाय दुरत्ताय किं रूपं विज्जते मम,**
**अञ्ञं परियेस भद्दं ते अभिरुपतरं मया ॥७॥**

[मुझ शोकार्त, दुःखित, का रूप क्या है ? तेरा भला हो तू मेरी अपेक्षा किसी दूसरी अधिक रूपवती को खोज ॥ ७ ॥]

दानव—

**एहि मंगिरिं आरुय्ह, भरिया मह्यं, चतुस्सता**
**तासं त्वं पवरा होहि सब्बकामसमिद्धिनी ॥८॥**

[आ, पर्वत पर चढकर मेरे पास आ, मेरी (और भी) चार सौ भार्याएं हैं। हे सर्व कामनाओं की पूर्त्ति करने वाली तू उनमें सर्वश्रेष्ठ हो जा ॥ ८ ॥]

दानव—

**ननु हाटकवण्णाभे यं किंचि मनस इच्छसि**
**सब्बं तं पचुरं मय्हं, रमस्वज्ज मया सह ॥९॥**

[हे स्वर्णिम रूप वाली ! जो भी मन से चाहती है, वह सभी कुछ मेरे पास प्रचुर मात्रा मे है, आज मेरे साथ रमण कर ॥ ९ ॥]

दानव—

**नोचे त्वं महेसय्यं सम्बुले कारइस्ससि**
**अलं त्वं पातरासाय मञ्ञो भक्खा भविस्ससि ॥१०॥**

[हे सम्बुले ! यदि तू मेरी पटरानी होना स्वीकार नही करेगी तो तू मेरा प्रातराश बनेगी ॥ १० ॥]

**तं च सत्तजटोलुद्दो कळारो पुरिसादको**
**वने नाथं अपस्संतिं सम्बुलं अग्गही भुजे ॥११॥**

[उस सात जटाओं वाले शिकारी लम्बे दांत वाले आदमखोर ने उस सम्बुला को जिसका वहां वन मे कोई रक्षक नही था, भुजाओं मे ग्रहण कर लिया ॥ ११ ॥]

**अधिपन्ना पिसाचेन लुद्देनामिसचक्खुना**
**सा च सत्तुवसं पत्ता पतिं एवानुसोचति ॥१२॥**

[उस कामुक, शिकारी, पिशाच के द्वारा गृहीत, शत्रु के हाथ मे पडी हुई वह पति को ही याद करती थी ॥ १२ ॥]

**न मे इदं तथा दुक्खं यं मं खादेय्य रक्खसो**
**पं चे मे अय्यपुत्तस्स मनो हेस्सति अञ्ञथा ॥१३॥**

**न संति देवा पवसंति नून**
**न ह नून संति इध लोकपाला,**
**सहसा करोन्तानं असंयतानं**
**न ह नून संति पटिसेधितारो ॥१४॥**

[मुझे इस बात का दुःख नही है कि मुझे राक्षस खा जायगा। मुझे इसी बात का दुःख है कि आर्य-पुत्र का मन अन्यथा हो जायगा ॥ १३ ॥ निश्चय से न तो यहां देवता ही हैं और न कही लोकपाल ही हैं, जो असंयतों को, दुःस्साहस करने वालों को रोक सके ॥ १४ ॥]

इसके शील के तेज से शक्र का भवन काँप उठा। पाण्डु कम्बल शिलासन गर्म हो उठा। शक्र ने ध्यान दिया तो उसे कारण पता लगा। उसने वज्र हाथ मे लिया और शीघ्रता से आकर दानव के सिर पर खडे हो यह गाथा कही—

**इत्थीनं एसा पवरा यसस्सिनी**
**सन्ता समा अग्गिरिव उग्गतेजा,**
**तञ्चे तुवं रक्खसादेसि कञ्ञं**
**मुद्धा व हि सत्तधा ते फलेय्य**
**मा त्वं जही मुञ्च पटिब्बता या ॥१५॥**

[यह स्त्रियो मे श्रेष्ठ है, यशस्विनी है, शान्त है, अग्नि के समान तेजस्विनी है। हे राक्षस ! यदि तू इस कन्या को खायेगा तो तेरा सिर सात टुकडे हो जायेगा। तू इसे मत रोक। यह जो पतिव्रता है इसे तू छोड दे ॥ १५ ॥]

यह सुन दानव ने सम्बुला को छोड दिया। शक्र ने इस भय से कि कही वह फिर भी ऐसा न करे, दानव को देव-बन्धन से बांध, और जिसमें फिर न चला आये, तीसरे पर्वत के पार ले जाकर छोड़ा। फिर राजकन्या को अप्रमाद का उपदेश दे वह अपने स्थान पर ही गया। राज-कन्या भी सूर्य्यास्त होने पर चन्द्रमा के प्रकाश में आश्रम पहुची।

इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिए ये आठ गाथाये कही—

**सा च अस्समं आगञ्छि पमुत्ता पुरिसादका**
**बोळं फलिनसकुणीव गतसिगं व आलयं ॥१६॥**

सा तत्थ परिदेवेसि राजपुत्ती यसस्सिनी
सम्बुला उतुमत्तक्खा वने नाथं अपस्सन्ती:
समणे ब्राह्मणे वन्दे सम्पन्नचरणे इसे
राजपुत्तं अपस्सन्ती तुम्हं हि सरणं गता ॥१७-१८॥
वन्दे सीहे च व्यग्घे च ये च अञ्ञो वने मिगा
राजपुत्तं अपस्सन्ती.....॥१९॥
तिणलतानि ओसधयो पब्बतानि वनानि च ॥२०॥
वन्दे इन्दीवरीसामं रत्तिं नक्खत्तमालिनिं ॥२१॥
वन्दे भागीरथिं गंगं सवन्तीनं पटिग्गहं ॥२२॥
वन्दे अहं पब्बतराजसेट्ठं
हिमवन्तं सिलुच्चयं.....॥२३॥

[आदमखोर से मुक्त होकर वह आश्रम आई, जैसे फलिन पक्षी अपने घोंसले में। अथवा बछड़े की ममता से गऊ अपने स्थान पर लौट आए॥ १६॥ शोक से मस्त आखों वाली, यशस्विनी, राजपुत्री, सम्बुला वनमे मालिक को न देख[1] विलाप करती थी। मै श्रमण ब्राह्मणों की तथा आचार्यवान ऋषियों को प्रणाम करती हूँ। राजपुत्र की अनुपस्थिति मे तुम्हारी ही शरण हूँ॥ १७॥॥ १८॥ मै सिंह व्याघ्र, और दूसरे वन्यपशुओं को नमस्कार करती हूँ, राजपुत्र की अनुपस्थिति मे मै तुम्हारी ही शरण हूँ॥१९॥ तृण, लताओं, औषधियों, पर्वतों तथा वनों को नमस्कार करती हूँ, राजपुत्र की अनुपस्थिति में.....॥ २०॥ इन्दीवर पुण्य के समान वर्ण वाली, नक्षत्रों की मालाओं से युक्त रात्रि को नमस्कार करती हू, राजपुत्र की अनुपस्थिति .....॥ २१॥ नदियों को ग्रहण करने वाली गंगा नदी को मै नमस्कार करती हूँ, राजपुत्र की अनुपस्थिति में.....॥ २२॥ पर्वतराज श्रेष्ठ ऊंचे शिखर वाले हिमालय को मैं नमस्कार करती हूँ, राजपुत्र की अनुपस्थिति मे॥ २३॥]

---

[1]सम्बुला को विशेष विलम्ब होते देख सोत्थिसेन को शंका हुई। वह किसी शत्रु की आशंका से आश्रम छोड़ आसपास ही कहीं जा कर छिप गया था।

उसे इस प्रकार विलाप करते देख सोत्थिसेन ने सोचा यह बहुत विलाप करती है। मैं इसके भाव से परिचित नही हूँ। यदि यह मेरे प्रति स्नेह के कारण ही ऐसा करती है तो इसका कलेजा भी फट जा सकता है। मैं इसकी परिक्षा लूगा। इसलिए वह जाकर पर्णशाला के द्वार पर बैठा। वह भी रोती पीटती पर्णशाला के द्वार पर पहुची और उसके पाव पकडकर पूछा—"देव ! कहां चले गये थे ?" उसने, "भद्रे ! और दिन तुम्हें इतना विलम्ब नही होता था। आज बहुत अंधेरा करके आई हो" पूछते हुए गाथा कही—

**अतिसायं वन्तागन्छि राजपुत्ति यसस्सिनि,**
**केननुज्ज समागञ्छि, को ते पियतरो मया ॥२४॥**

[हे यशस्विनी राजपुत्री ! आज तू बहुत अधेरा करके आई है। इसका क्या कारण है। मुझसे भी बढ़कर तेरा कौन प्रिय है ? ॥ २४॥]

उसने उसे,"आर्य पुत्र ! मै फलाफल लेकर आरही थी। मैंने एक दानव देखा। उसने मुझपर आसक्त हो मुझे हाथ से पकड कर कहा कि यदि मेरा कहना नही करती तो मै तुझे खा जाऊंगा ; मैं उस समय ही चिन्ता करती हुई, इस प्रकार विलाप करती थी—

**इदं खोहं तदावोचं गहिता तेन सत्तुना,**
**न मे इदं तथा दुक्खं यं समं खादेय्यरक्खसो**
**यञ्चे मे अय्यपुत्तस्स मनो हेस्सति अञ्ञथा ॥२५॥**

[उस शत्रु के द्वारा पकडी जाने पर मैंने उस समय यही कहा था कि मुझे इस बात का उतना दुःख नही है कि मुझे राक्षस खा जायगा, जितना इस बात का कि आर्य-पुत्र मेरे बारे मे अन्यथा सोचेगा ॥ २५ ॥]

इसके बाद शेष समाचार भी निवेदन करते हुए उसने कहा—"देव ! उस दानव द्वारा पकडी जाने पर मैं अपने आपको छुडा न सकी। तब मैंने देवताओं को कोसना आरम्भ किया। तब वज्र-हस्त शक्र आया और उसने आकाश मे खड़े हो, दानव को भयभीत कर मुझे छुडाया। फिर उसे देव-बन्धन से बाध, तीसरे पर्वत के पार फेक, चला गया। इस प्रकार शक्र की कृपा से मेरी जान बची।" यह सुन

सोत्थिसेन बोला "भद्रे! होगा, स्त्रियों का सच्चा होना दुर्लभ है। हिमालय मे बहुत से वनचारी, तपस्वी, विद्याधर आदि रहते है। कौन तेरा विश्वास कर सकता है?" यह कह उसने गाथा कही—

**चोरीनं बहुबुद्धीनं यासु सच्चं सुदुल्लभं**
**थीनं भावो दुराजानो मच्छस्सेवोदके गतं ॥२६॥**

[जिस प्रकार पानी मे गये हुए मच्छ का पता नही लगता उसी प्रकार चोरी करने वाली, बहुत बुद्धिमान स्त्रियों का भाव दुरज्ञात रहता है, जिनमें सत्य का होना अति दुर्लभ है॥ २६॥]

उसने उसकी बात सुनी तो बोली "आर्य पुत्र! तू मेरा विश्वास नही करता। मै अपने सत्य-बल से ही तेरी चिकित्सा करूगी।" उसने पानी का घडा भर और सत्य-क्रिया कर उसके सिरपर पानी छिडकते हुए यह गाथा कही—

**तथा मं सच्चं पालेतु पालयिस्सति चे ममं**
**यथाहं नाभिजानामि अञ्ञं पियतरं तया**
**एतेन सच्चवज्जेन व्याधि ते वूपसम्मतु ॥२७॥**

[जैसा मै कहती हूँ, वैसा सत्य मेरी अब भी वैसे ही रक्षा करे, जैसी वह भविष्य मे करेगा। क्योंकि तुझसे अधिक अन्य कोई भी मेरा प्रिय नही है, इस लिए मेरे इस सत्य-कथन के प्रताप से तेरा रोग शान्त हो जाय॥ २७॥]

इस प्रकार उसके सत्य-क्रिया करके पानी के छिडकते ही सोत्थिसेन का कोढ तुरंत ऐसे अदृश्य हो गया जैसे खटाई से धोने से ताम्बे मे लगा हुआ जंग। वे कुछ दिन वहा रह, अरण्य से निकल, बाराणसी पहुच, उद्यानमे प्रविष्ठ हुए। राजा को जब इनके आने का समाचार मिला तो वह उद्यान गया और वही सोत्थिसेन के सिर पर छत्र धारण कर सम्बुला को पटरानी बनाया। फिर उन्हे नगर में ला स्वयं ऋषि-प्रव्रज्या ग्रहण कर उद्यान मे रहने लगा। वह नियम पूर्वक राज-भवन में ही भोजन ग्रहण करता था। सोत्थिसेन ने भी सम्बुला को मात्र पटरानी ही माना। उसका कुछ आदर सत्कार नही किया। उसके लिए उसका होना न होना बराबर था। वह दूसरी स्त्रियों के साथ ही रमण करता था। सम्बुला सपत्नीक-रोष से कृष हो गई, पाण्डु-वर्ण उसकी पसलियां मात्र रह गईं। एक दिन वह मनो-

रंजनार्थ खाने के लिए आए स्वसुर-तपस्वी के पास जाकर उसके भोजन कर चुकने पर प्रणाम कर एक ओर बैठी। उसने उसे म्लान-मुख देख गाथा कही —

**ये कुंजरा सत्तसता उळारा**
**रक्खन्ति रत्तिंदिवं उय्युतावुधा**
**धनुग्गहानञ्च सतानि सोळस**
**कथंविधे पस्सति भद्दे सत्तवो ॥२८॥**

[जो बड़े बड़े सात सौ धनुर्धर हाथी और सोलह सौ धनुर्धर रातदिन (वाराणसी की) रक्षा करते है, उनके रहते भद्रे तू किस तरह के शत्रुओ को देखती ह, जिनके कारण तू म्लान-मुख है ॥२८॥ ]

उसने उसकी बात सुन, "देव मेरे प्रति तेरे पुत्र का व्यवहार पूर्व-सदृश्य नही है" कह पांच गाथाएं कही—

**अलंकतायो पदुमुत्तरत्तचा**
**विरागिता पस्सति हंसगग्गरा**
**तासं सुणित्वा मितगीतवादिनं**
**नदानिमे तात तथा यथा पुरे ॥२९॥**
**सुवण्णसंकच्चधरा सुविग्गहा**
**अलंकता मानुसियच्छरूपमा**
**सेनुपिया तात अनिन्दितंगियो**
**खत्तिय कञ्ञा पटिलाभयन्ति नं ॥३०॥**
**सचे अहं तात तथा यथा पुरे**
**पतीत उन्छाय पुना वने भरे**
**सम्मानये मं न च मं विमानये**
**इतोपि मे तात ततो वरं सिया ॥३१॥**
**यं अन्नपाने विपुलस्मि ओहिते**
**नारी विमट्ठाभरणा अलंकता**
**सब्बंउपेता पतिनो व अप्पिया**
**आबज्झ तस्सा मरणं तरो परं ॥३२॥**

**अपिचे दळिद्दा कपणा अनाळिहया**
**कालादुतिया पतिनो च सा पिया**
**सब्बंगुपेताय पि अप्पियाय**
**अयमेव सेय्या कपणापि या पिया ॥३३॥**

[वह अलकृत पद्म सदृश त्वचा वाली, कमर-पतली, हंस के समान मधुर स्वर वाली स्त्रियों को देखता है। उनका भाषण तथा गीतादि सुन लेने से अब उसका मेरे प्रति पूर्व-सदृश भाव नही है ॥ २९ ॥ स्वर्णमय अलंकारो वाली सुदर शरीरवाली, आभूषणों वाली, अप्सराओं के समान मानुषी निर्दोष अंगवाली, क्षत्रिय कन्याएं हे तात ! उसे साथ सोने के लिए मिलती है ॥ ३० ॥ तात ! यदि मै जैसे पहले उसे वन मे फलाफल लाकर खिलाती थी वैसा ही हो तो चाहे वह मेरा आदर करे चाहे अनादर। इस स्थिति से वह भी मेरे लिए अच्छा है ॥ ३१ ॥ अन्नपान-सुलभ कुल हो, नाना अलकारों से अलकृत अगो से युक्त हो, किन्तु यदि नारी पति को अप्रिया हो तो उसका मरना ही श्रेष्ठ है ॥ ३२ ॥ यदि दरिद्र हो दया की पात्र हो, निर्धन हो, काली कलूटी हो, किन्तु पति की प्रिय हो, वह सर्वांगीण पति की अप्रिया से श्रेष्ठ है ॥ ३३ ॥ ]

उसने जब तपस्वी को अपने सूखने का कारण कहा तो तपस्वी ने राजा को बुलाकर उपदेश दिया "तात ! सोत्थिसेन जब तू कुष्ठ रोग से पीडित होकर जगल मे गया था तो इसने तेरे साथ जाकर तेरी सेवा की और अपने सत्यबल से तेरा रोग शांत कर तुझे राज्य पर प्रतिष्ठित किया। तू अब यह भी नही जानता कि यह कहां रहती है कहा बैठती है ? तूने अनुचित-कर्म किया है। मित्र द्रोह पाप कर्म है।" इतना कह पुत्र को उपदेश देते हुए उसने यह गाथा कही—

**सुदुल्लभं इत्थी पुरिसस्स या हिता,**
**भत्तं इत्थिया दुल्लभो यो हितो च**
**हिता च ते सीलवती च भारिया**
**जनिन्द धम्मञ्चर सम्बुलाय ॥३४॥**

[पुरुष के लिए उसकी हित चिन्ता करने वाली स्त्री दुर्लभ है और स्त्री के लिए उसकी हित चिंता करने वाला स्वामी भी दुर्लभ है। हे राजन् ! सम्बुला तुम्हारी

हित-चिंतक और सदा चारिणी भार्या है। तू उसके प्रति धर्मका व्यवहार कर ॥३४॥]

इस प्रकार पुत्र को उपदेश दे, वह उठ कर चला गया। राजा ने पिता के चले जाने पर सम्बुला को बुलाकर "भद्रे, अबतक किए मेरे अपराध को क्षमा कर, अब से सारा ऐश्वर्य तुझे ही सौंपता हूँ।" कह अंतिम गाथा कही—

**सचे तुवं विपुले लद्ध-भोगे**
**इस्सावतिन्ना मरणं उपेसि**
**अहंचते भद्दे इमा च कञ्ञा**
**सब्बेव ते वचनकरा भवाम ॥३५॥**

[यदि तू विपुल ऐश्वर्य को प्राप्त करके भी ईर्षा के वशीभूत हो मरण को प्राप्त होगी तो हे भद्रे, मैं और ये सब कन्याएं तेरी आज्ञाकारिणी होती हैं ॥३५॥]

तब से दोनों जने मेल से रहकर दानादि पुण्य करके कर्मानुसार (परलोक) सिधारे। तपस्वी ध्यान-अभिज्ञा प्राप्त कर ब्रह्मलोक गामी हुआ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, "भिक्षुओ, न केवल अभी, पहले भी मल्लिका पति-देवता हुई है" कहकर जातक का मेल बैठाया। उस समय सम्बुला मल्लिका थी, सोत्थिसेन कोशल-राजा, तपस्वी पिता तो मैं ही था।

# ५२०. गण्डतिन्दु जातक

"अप्पमादो.. "यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय 'राजोवाद के बारे में कही। 'राजोवाद' का वर्णन पहले भी आ चुका है।

## क. वर्तमान कथा

पूर्व समय में कम्पिल्ल राष्ट्र में उत्तर पञ्चाल नगर में पञ्चाल नामक राजा अनुचित मार्ग पर चल, अधर्म से प्रमादी हो, राज्य करता था। उसके

आमात्य आदि भी सभी अधार्मिक हो गये। कर से पीड़ित हो कर राष्ट्र-वासी, पुत्र और स्त्री के साथ जगल मे जगली-पशुओं की तरह रहते थे। गाँव की जगह पर गाँव नही रह गये। आदमी राज-पुरुषों के भय से दिन मे घर मे नही रह सकते थे। घरों के चारो ओर काँटो की झाँपें बिखेर सूर्य्योदय होते ही होते जंगल मे जा घुसते। दिन मे राज पुरुष लूटते, रात मे चोर।

उस समय बोधिसत्व नगर के बाहर गण्डतिन्दुक वृक्ष पर देवता होकर पैदा हुए। उसे राजा से प्रति वर्ष हजार के मूल्य की बलि मिलती थी। वह सोचने लगा 'यह राजा प्रमादपूर्वक राज्य करता है। सारा राष्ट्र नष्ट हो रहा है। मेरे अतिरिक्त और कोई भी राजा को सीधे रास्ते नही ला सकता। यह प्रति वर्ष मुझे हजार की बलि चढाता है। इसलिए मेरा उपकारी भी है। मैं इसे उपदेश दूगा"।

वह रात के समय राजा के शयन-गृह मे जा, सिर की ओर हो, प्रकाश फैलाता हुआ, आकाश मे खडा हुआ। राजा ने उसे बाल-सूर्य्य की तरह प्रदीप्त देख पूछा—"तू कौन है, किस लिए आया है?" उसने उसकी बात सुन उत्तर दिया—"महाराज मैं तिन्दुक-देवता हूँ। तुम्हे उपदेश देने के लिए आया हूँ।" "क्या उपदेश देगा?" पूछने पर कहा—"महाराज! तू प्रमादी हो कर राज्य करता है। इस लिए तेरा सारा राज्य लूटे पाटे हुए की तरह विनष्ट हुआ है। राजा प्रमाद से राज्य करते हैं तो सारे राष्ट्र के स्वामी भी नही रहते। इसी जन्म मे विनाश को प्राप्त हो, मरने पर महान-नरक मे जन्म ग्रहण करते है। उनके प्रमादी होने पर, उनके भीतर बाहर के सभी जन प्रमादी हो जाते है। इसलिए राजा को विशेष रूप से अप्रमादी होना चाहिए।" इतना कह धर्म-देशना की स्थापना करते हुए उसने ग्यारह गाथाएं कही।

**अप्पमादो अमतपदं, पमादो मच्चुनो पदं**
**अप्पमत्ता न मीयन्ति, ये पमत्ता यथामता ॥१॥**
**मदा पमादो जायेथ, पमादा जायते खयो**
**खया पदोसा जायन्ति, मा मदो भरतूसभ ॥२॥**
**बहू हि खत्तिया जीना अत्थं रट्ठं पमादिनो**
**अथो पि गामिनो गामा अनागारा अगारिनो ॥३॥**

खत्तियस्स पमत्तस्स रट्ठस्मिं रट्ठवड्ढन
सब्बे भोगा विनस्सन्ति, रञ्ञो तं वुच्चते अघं ॥४॥
नेस धम्मो महाराज, अतिवेलं पमज्जसि,
इद्धं फीतं जनपदं चोरा विद्धंसयन्ति तं ॥५॥
न ते पुत्ता भविस्सन्ति न हिरञ्ञं न धानियं
रट्ठे विलुम्पमानम्हि सब्बभोगेहि जीयसि ॥६॥
सब्बभोगपरिजिण्णं राजानं चापि खत्तिय
जातिमित्ता सुहज्जा च न नं मञ्ञन्ति खत्तियं ॥७॥
हथारूहा अनीकट्ठा रथिका पत्तिकारिका
तं एवं उपजीवन्ता न नं मञ्ञन्ति खत्तियं ॥८॥
असंविहितकम्मंतं बालं दुम्मंतिमंतितं
सिरी जहति दुम्मेधं जिण्णं व उरगो तचं ॥९॥
सुसंविहितकम्मंतं कालुट्ठायिं अतंदितं
सब्बे भोगाभिवड्ढन्ति गावो सोसभामिव ॥१०॥
उपस्सुति महाराज रट्ठे जनपदे चर,
तत्थ दिस्वा च सुत्वा च ततो तं पटिपज्जिसि ॥११॥

[अप्रमाद अमृत है। प्रमाद मृत्यु ही है। अप्रमादी नही मरते। प्रमादी तो मृत सदृश ही होते है ॥ १ ॥ मद से प्रमाद पैदा होता है। प्रमाद से हानि होती है। हानि से दोष पैदा होते है। इस लिये हे राजन्! प्रमाद न करे ॥ २ ॥ प्रमाद से बहुत से क्षत्रियों की अर्थ तथा राष्ट्र की हानि हुई। बहुत से ग्राम-मुखियों को ग्राम की, तथा बहुत से प्रव्रजितों और गृहस्थों को भी ॥ ३ ॥ हे राष्ट्रवर्धन! प्रमादी क्षत्रिय के राष्ट्र में सभी भोग नष्ट हो जाते हैं। राजागण उसे 'पाप' मानते है ॥४॥ महाराज! यह (पुरातन) धर्म नही है। तुम बहुत प्रमाद करते हो। (प्रमादी-राजा के) धन-धान्य पूर्ण राष्ट्र को चोर आकर उजाड़ देते है ॥ ५ ॥ न तेरे पुत्र रहेगे, न सोना और न धान्य। राष्ट्र के उजड जाने पर तू सभी भोगों से हीन हो जायगा ॥ ६ ॥ हे क्षत्रिय! सभी भोगों से क्षत्रिय को जाति-मित्र तथा सुहृदय क्षत्रिय (=राजा) नही मानेगे ॥ ७ ॥ तेरे ही आश्रय से जीने वाले हाथी-सवार, पहरेदार, रथी, और पैदल-

सैनिक भी तुझे क्षत्रिय नही मानेगे ॥ ८ ॥ जो असयमी है, जो मूर्ख है, जिसकी मत्रणा गलत है, ऐसे दुर्बुद्धि आदमी को श्री उसी प्रकार छोड जाती है, जैसे साप अपनी केचुल को ॥ ९ ॥ जो संयमी है, जो समय मे (सोकर) उठने वाला है, जो तन्द्रा-रहित है, उसके सभी भोग उसी प्रकार बृद्धि को प्राप्त होते है, जैसे वृषभ सहित गौवें ॥ १० ॥ महाराज ! राष्ट्र मे और जनपद मे ज्ञान-वृद्धि के लिये घूमे। देख-सुन कर आप यथोचित मार्ग पर चलेगे ॥ ११ ॥]

इसी प्रकार ग्यारह गाथाओ द्वारा राजा को उपदेश दे कर "जा विलम्ब न कर, राष्ट्र को संभाल, नष्ट मत होने दे" कह अपने स्थान को ही चला गया। राजा ने भी उसकी बात सुनी तो उसे वैराग्य हुआ। वह अगले दिन राज्य अमात्यों को सौप, पुरोहित के साथ, समय से ही, पूर्व-द्वार से नगर से निकल योजन भर गया। वहा एक बूढा ग्रामीण जंगल से काटों की झापे ला, घर के द्वार को घेर, बन्द कर, पुत्र और स्त्री के साथ चला गया था। शाम को राजपुरुषो के चले जाने पर अपने घर आया तो घर के द्वार पर पाव मे कांटा लग गया। वह उकड् बैठ गया और पाव मे काटा निकालता हुआ बोला—

**एवं वेदेतु पञ्चालो संगामे सरसमप्पितो**
**यथाहं अज्ज वेदेमि कण्टकेन समप्पितो ॥१२॥**

[जिस प्रकार आज मुझे काटा लगने से दुःख हो रहा है, वैसा ही दुःख पचाल राज को भी युद्ध में तीर लगने से हो ॥ १२ ॥]

इस प्रकार उसने राजा को गाली दी। किन्तु उसका यह गाली देना बोधिसत्व के ही प्रताप से हुआ। यह जानना चाहिये कि बोधिसत्व से अधिगृहीत होने के कारण ही वह गाली देता था। उस समय राजा और पुरोहित अप्रकट-वेष मे उसके पास ही खडे थे। उसकी बात सुन पुरोहित ने दूसरी गाथा कही—

**जिण्णो दुब्बल चक्खू सी, न रूपं साधु पस्ससि,**
**किं अत्थ ब्रह्मदत्तस्स यं तं मग्घेय्य कन्टको ॥१३॥**

[तू बूढ़ा है, दुर्बल-दृष्टि वाला है। तुझे साफ साफ नही दिखाई देता। यदि तुझे काटा लगता है तो इसमे ब्रह्मदत्त का क्या दोष है ? ॥ १३ ॥]

यह सुन बूढे ने तीन गाथाए कही—

**पहोत्थ ब्रह्मदत्तस्स योहं मग्गोस्मि ब्राह्मण,**
**अरक्खिता जानपदा, अधम्मबलिना हत्ता ॥१४॥**
**रत्तिन्हि चोरा खादन्ति, दिवा खादन्ति तुण्डिया**
**रट्ठस्मि कुडु राजस्स बहु अधम्मिको जनो ॥१५॥**
**एतादिसे भये तात भयट्ठा ताव मानवा**
**निल्लेनकानि कुब्बन्ति वने आहतवा कन्टकं ॥१६॥**

[हे ब्राह्मण ! जो मुझे मार्ग मे काटा लगा है उसमे ब्रह्मदत्त का बहुत दोष है। जनपद के सभी लोग अरक्षित हो गये है और जोर जबर्दस्ती कर वसूल करने वालो से अत्यधिक है पीडित ॥ १४॥ रात को चोर लटते है और दिन मे कर वसूल करने वाले। दुष्ट राजा के राष्ट्र मे बहुत जन अधार्मिक हो गये है ॥ १५ ॥ हे तात ! इस प्रकार के भय के उपस्थित रहने पर भय से अभिभूत मनुष्य वन से काटे लाकर अपने छिपने के स्थान बनाते है ॥ १६ ॥]

यह सुन राजा ने पुरोहित को सम्बोधित करके कहा—"आचार्य ! बूढा ठीक कहता है। हमारा ही दोष है। आ लोट चले। धर्मानुसार राज्य करायेगे।" बोधिसत्व ने पुरोहित के शरीर मे प्रवेश कर आगे खडे हो कहा—"महाराज ! अभी और देखें।" उन्होंने उसे गाव से दूसरे गाव जाते हुए मार्ग मे एक बुढिया की आवाज सुनी। वह एक दरिद्र स्त्री थी। जिसकी दो आयु-प्राप्त कन्याए थी। उनकी सुरक्षा के ख्याल से वह उन्हे जंगल न जाने देती। स्वयं जंगल से लकडी और शाक लाकर लडकियों को पालती। एक दिन वह एक झाड़ पर चढकर शाक तोडती हुई पलटकर भूमि पर आ रही। वह राजा को मरने की गाली देती हुई बोली—

**कदास्सु नाम अयं राजा ब्राह्मदत्तो मरिस्सति**
**यस्स रट्ठस्मिं जीवन्ति अप्पतीता कुमारिका ॥१७॥**

[यह ब्रह्मदत्त राजा कब मरेगा ? जिसके राज्य में कुमारी लडकियां पति विहीन रहती है ॥ १७ ॥]

पुरोहित ने उसका निषेध करते हुए गाथा कही—

**दुब्भासितं हि ते जम्मि अनत्थपदकोविदे**
**कुहिं राजा कुमारीनं भत्तारं परियेसति ॥१८॥**

[अरी दुष्ट! अनुचित बोलने वाली तेरा बोलना बहुत खराब है। राजा कुमारियों के लिये पति कहा से ढूढेगा? ॥ १८॥]

यह सुन बुढिया ने दो गाथाए कही—

**न मे दुब्भासितं ब्रह्मे कोविदत्थपदा अहं**
**अरक्खिता जानपदा अधम्मबलिना हता ॥१९॥**
**रत्तिम्हि चोरा खादन्ति दिवा खादन्ति तुन्डिया**
**रट्ठस्मिमं कुदु राजस्स बहु अधम्मिको जनो**
**दुज्जीवे दुब्भरे दारे कुतो भत्ता कुमारियो ॥२०॥**

[हे ब्राह्मण! मैंने खराब बात नही कही है। मै अर्थ और पद की समझने वाली हूं। जनपद के सभी लोग अरक्षित हो गये है और जोर जबर्दस्ती कर वसूल करने वालों से अत्याधिक पीडित है। रात को चोर लूटते है और दिन मे कर वसूल करने वाले। दुष्ट राजा के राष्ट्र मे बहुत लोग अधार्मिक है। जब जीवन दूभर हो गया हो, जब दाराओं का भरण-पोषण कठिन हो गया हो, तो कुमारियों को भर्ता कहां से मिलेगा? ॥ २०॥]

उन्होंने उसकी बात सुन कहा—"ठीक कहती है।" आगे जाने पर एक किसान का शब्द सुना दिया। उस हल चलाने वाले का शालीय नाम का बैल पैनी की मार से जमीन पर गिरा रहा था। किसान ने राजा को गाली देते हुए गाथा कही—

**एवं सयतु पञ्चालो संगामे सत्तिया हतो**
**यथायं कपणो सेति हतो फालेन सालियो ॥२१॥**

[संग्राम मे पाञ्चाल इसी प्रकार शक्ति-आयुध से आहत होकर पड रहे, जैसे यह बिचारा शालीय बैल पैणी से आहत होकर गिर पडा है॥ २१॥]

पुरोहित ने उसका निषेध करते हुए कहा—

**अधम्मेन तुवं जम्म ब्रह्मदत्तस्स कुज्झसि**
**यो त्वं सपति राजानं अपरज्झि त्वान अत्तना ॥२२॥**

[हे दुष्ट! तू व्यर्थ ही ब्रह्मदत्त पर क्रोध करता है। तेरा अपना दोष है और तू राजा को गाली देता है॥ २२॥]

यह सुन उसने तीन गाथायें कहीं—

**धम्मेन ब्रह्मदत्तस्स अहं कुज्झामि ब्राह्मण**
**अरक्खिता जानपदा अधम्मबलिना हता॥२३॥**
**रत्तिम्हि चोरा खादन्ति, दिवा खादन्ति तुण्डिया,**
**रट्ठस्मिं कुरुराजस्स बहु अधम्मिको जनो॥२४॥**
**सा नून पुन रे पक्का विकाले भत्तं आहरि,**
**भत्तहारिं अवेक्खन्तो हतो फालेन सालियो॥२५॥**

[हे ब्राह्मण! मेरा ब्रह्मदत्त पर क्रोध करना उचित ही है। जनपद के सभी लोग अरक्षित हो गये हैं। और जोर जबर्दस्ती कर वसूल करने वालो से अत्यधिक पीड़ित हैं। रात को चोर लूटते हैं और दिन में कर वसूल करने वाले। दुष्ट राजा के राज्य मे बहुत लोग अधार्मिक है। वह भात पकाने वाली दुबारा पका कर मेरे लिए भात लाई।[1] भात की प्रतीक्षा करते हुए मैंने शालियो को अनुचित-स्थल पर मारा॥ २५॥]

आगे चल कर वे एक ग्राम मे रहे। अगले दिन प्रातः काल ही एक मारखानी गऊ ने दूध देने वाले पर लात चला उसे दूध सहित उलट दिया। उसने भी ब्रह्मदत्त को गाली देते हुए गाथा कही—

**एवं हञ्ञातु पञ्चालो संगामे असिना वळहं**
**यथाहं अज्ज पहतो खीरञ्च मे पवट्टितं॥२६॥**

[संग्राम मे पञ्चाल-नरेश तलवार द्वारा आहत होकर इसी प्रकार उलट जाय, जिस प्रकार आज मुझे चोट लगी और मेरा दूध उलट गया॥ २६॥]

यह सुन ब्राह्मण बोला—

**यं पसु खीरं छड्डेति पसु फालञ्च हिंसति**
**किं तत्थ ब्रह्मदत्तस्स यं नो गरहतो भवं॥२७॥**

---

[1] पहले पकाया हुआ भात सरकारी आदमी छीन कर खा गये।

[जो पशु दूध देता है, वही पशु हिंसा करता है। इसमें ब्रह्मदत्त का क्या अपराध है, जो आप ब्रह्मदत्त की निन्दा करते है ॥ २७॥ ]

इस प्रकार ब्राह्मण के गाथा कहने पर उसने फिर तीन गाथायें कही—

**गारय्हो ब्रह्मे पञ्चालो ब्रह्मदत्तस्स राजिनो**
**अरक्खिता जानपदा अधम्मबलिना हता ॥२८॥**
**रत्तिम्हि चोरा खादन्ति, दिवा खादन्ति तुण्डिया**
**रट्ठस्मिं कुरुराजस्स बहु अधम्मिको जनो ॥२९॥**
**चण्डा अटनकगावी यं पुरे न दुहामसे**
**तं दानि अज्ज दोहाम खीरकामेहुपद्दुता ॥३०॥**

[हे ब्राह्मण ! पञ्चाल-नरेश ब्रह्मदत्त निन्दनीय है। जनपद के सभी लोग अरक्षित हो गये है, और जोर जबर्दस्ती कर वसूल करने वालों से अत्यधिक पीडित हैं। रात को चोर लूटते है और दिन मे कर वसूल करने वाले। दुष्ट राजा के राज्य मे बहुत लोग अधार्मिक है। जिन-चण्ड-स्वभाव भाग जाने वाली गऊों को हम पहले नही दूहते थे, उन्हे आज दूध चाहने वाले सरकारी आदमियों के मारे दुहना पडता है ॥ २८—३० ॥ ]

वे ठीक कहते है करके उस गाँव से निकल महा-मार्ग पर चल नगर की ओर गये। एक गाँव मे कर वसूल करने वालों ने म्यान के लिये एक तरुण चितकबरे बछड़े को मार उसका चमडा लिया। बछडे की माँ गऊ पुत्र-शोक मे न घास खाती, न पानी पीती, किन्तु विलाप करती भटकती। उसे देख गाँव के बच्चे राजा को गाली देते हुए कहते—

**एवं कन्दतु पञ्चालो विपुत्तो विप्पसुक्खतु**
**यथाहं कपणा गावी विपुत्ता परिधावति ॥३१॥**

[पुत्र-विहीन पञ्चाल इसी प्रकार रोये और सूख जाये, जैसे यह विचारी पुत्र-विहीन गऊ इधर उधर भटकती है ॥३१॥ ]

तब पुरोहित ने दूसरी गाथा कही—

**यं पसु पसुपालस्स पभमेय्य रवेय्य वा**
**को नीध अपराध अत्थि ब्रह्मदत्तस्स राजिनो ॥३२॥**

[किसी पशुवाले का पशु यदि भटके अथवा रंभे, तो ब्रह्मदत्त राजा का इस मे क्या अपराध है ? ॥ ३२ ॥]

तब गाँव के बच्चो ने दो गाथायें कही—

**अपराधो महाब्रह्मे ब्रह्मदत्तस्स राजिनो**
**अरक्खिता जानपदा, अधम्मबलिना हता ॥३३॥**
**रत्तिम्हि चोरा खादन्ति, दिवा खादन्ति तुण्डिया,**
**रट्ठस्मिं कुद्दुराजस्स बहु अधम्मिको जनो,**
**कथं नो असिकोसत्था खीरपा हञ्ञते पजा ॥३४॥**

[हे महा ब्राह्मण ! ब्रह्मदत्त राजा अपराधी है। जनपद के सभी लोग अरक्षित हो गये हैं, और जोर-जबर्दस्ती कर वसूल करने वालों से अत्यधिक पीडित हैं। रात को चोर लूटते है और दिन मे कर वसूल करने वाले। दुष्ट राजा के राज्य में बहुत लोग अधार्मिक है। अन्यथा खड्ग को म्यान के लिए, दूध पीने वाले बछड़े कैसे मारे जायेगे ? ॥ ३४ ॥ ] वे "ठीक कहते है" कह चले गये। रास्ते में एक सूखे पोखर मे कौवे चोंच मार मार कर मेण्डकों को खा रहे थे। जब वे वहां पहुंचे तो बोधिसत्व ने अपने प्रताप से मेण्डक से राजा को गाली दिलवाई—

**एवं खज्जतु पञ्चालो हतो युद्धे सपुत्तको**
**यथाहं अज्ज खज्जामि गामकेहि अरञ्ञजो ॥३५॥**

[इसी प्रकार सपुत्र पञ्चाल-नरेश युद्ध मे मारा जाकर खाया जाय, जिस प्रकार मै अरण्यवासी आज गाँव के कौओ द्वारा खाया जा रहा हूँ ॥ ३५ ॥ ]

यह सुन पुरोहित ने मेण्डक के साथ बातचीत करते हुए गाथा कही —

**न सब्बभूतेसु विधेन्ति रक्खं**
**राजानो मण्डूक मनुस्सलोके**
**न एत्तावता राजा अधम्मचारी**
**यं तादिसं जीवं अदेय्यु धका ॥३६॥**

[हे मेण्डक ! दुनिया मे राजा सभी प्राणियों की रक्षा की व्यवस्था नही करता। यदि कौवे तेरे जैसे जीव को खा जायं तो इतने से ही राजा अधार्मिक नही होता॥३६॥]

यह सुन मेण्डक ने दो गाथाए कही—

**अधम्मरूपो वत ब्रह्मचारी**
**अनुप्पियं भासति खत्तियस्स**
**विलुम्पमानाय पुथुप्पजाय**
**पूजेसि राजा परमप्पवादिं ॥३७॥**

**सचे इमं ब्रह्मे सुरज्जकंसिया**
**फीतं रट्ठं मुदितं विप्पमन्नं**
**भुत्वा बलिं अग्गपिण्डंच काका**
**न मादिसं जीवं अट्ठेय्यु धंका ॥३८॥**

[हे ब्रह्मचारी ! तू अधार्मिक है। क्योंकि तू क्षत्रिय के अनुकूल ही बोलता है। बहुत सारी प्रजा के लुटते हुए तू परम निन्दित राजा की प्रशसा करता है॥ ३७॥

हे ब्राह्मण ! यदि यहां सुशासन होता और यह राष्ट्र प्रमुदित, प्रसन्न तथा स्मृद्ध होता तो कौवे काक-बलि और अग्रपिण्ड खाकर मेरे सदृश प्राणियोंको न खाते॥३८॥]

यह सुना तो राजा और पुरोहित ने कहा कि जगल मे रहने वाले जीव, मेण्डक तक, सब हमे ही गाली देते है। उसी समय से वे नगर गये और उन्होंने धर्मानुसार राज्य करवा, बोधिसत्व के उपदेशानुसार चल दानादि पुण्य कर्म किए।

शास्ता ने कौशल नरेश को यह धर्म-देशना सुना, "महाराज ! राजा को अगतियों से बच धर्मानुसार राज्य करना चाहिए" कह जातक का मेल बैठाया। उस समय गण्डतिन्दुक देवता मै ही था।

# चालीसवाँ परिच्छेद

## ५२१. तेसकुण जातक

**"वेस्सन्तरन्तं पुच्छामि"....यह आस्ता ने जेतवन में बिहार करते समय कोशल राजा को उपदेश देने के तौर पर कही।**

### क वर्तमान कथा

जिस समय वह नरेश धर्म सुनने के लिये आया, शास्ता ने उसे सम्बोधित कर कहा—"महाराज! राजा को धर्मानुसार राज्य करना चाहिये। जिस समय राजा अधार्मिक हो जाते है, राजपुरुष भी उस समय अधार्मिक हो जाते है।" इसी प्रकार चौथे परिच्छेद मे कहे अनुसार उपदेश दे, अगति-गमन के दोष और अगति-अगमन के लाभ दिखा कर, तथा काम-भोगो की स्वप्नो आदि से विस्तारपूर्वक उपमा देकर शास्ता ने—

**मच्चुना सङ्करो नत्थि, लञ्चग्गाहो न विज्जति,**
**युद्धं नत्थि जयो नत्थि, सब्बे मच्चुपरायना।**

[मृत्यु से समझौता नही होता. रिश्वत लेना-देना भी नही होता, युद्ध भी नही होता, विजय भी नही होती: सभी को मरना ही होता है।]

कह, और उन परलोक जाने वालों के लिये उन के अपने शुभकर्मों के अतिरिक्त और अन्य कोई भी आधार नही, कह, और क्षण-भगुर ससार के प्रति आसक्ति छोडनी ही चाहिये, स्पष्ट कर, तथा वैभव के लिये प्रमाद नही करना चाहिये और अप्रमाद पूर्वक ही रहना चाहिये, कहकर कहा कि 'जिस समय बुद्ध का प्रादुर्भाव नही हुआ था, उस समय प्राचीन राजा पण्डित-जनों के उपदेशानुसार चल, धर्मपूर्वक राज्य कर देव-नगर को भरते हुए परलोक सिधारे'। फिर उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही।

## ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय राजा निपुत्ता था, प्रार्थना करने से भी उसे लडका लडकी कुछ नही हुआ। एक दिन वह बहुत से अनुयाइयों के साथ उद्यान गया था। वहां वह दिन भर उद्यान में खेलता रहा। फिर उसने मगल-शाल-वृक्ष के नीचे बिस्तर लगवाया और थोडी देर सो गया। उठने पर उसकी शाल-वृक्ष पर नजर गई तो वहा उसने पक्षि-घोंसला देखा। नजर पडते ही उसके मन में स्नेह पैदा हो गया। उसने एक आदमी को बुलाकर कहा—"इस वृक्ष पर चढकर देख कि इस घोंसले मे कोई है, अथवा नही?" उसने चढकर वहा तीन अण्डे देखे और राजा को सूचना दी। तो इन को अपनी सास मन लगने दे, कह, बोहिये में रुई बिछाकर आज्ञा दी कि इसमे इन अण्डों को रख धीरे से उतर आ। उसे उतार और बोहिया हाथ में ले अमात्यों से पूछा कि यह किसके अण्डे है? उन्होंने उत्तर दिया—"हम नही जानते। शिकारी जानते होंगे।" राजा ने शिकारियों को बुलाकर पूछा। शिकारी बोले—"महाराज! एक तो उल्लु का अण्डा है, एक मैना का अण्डा है और एक तोते का अण्डा है।" "क्या एक घोंसले मे तीन भिन्न प्रकार के पक्षियो के अण्डे होते है?" "हा देव! खतरा न होने पर, अच्छी तरह रखे गये अण्डे नष्ट नही होते है।" राजा ने सन्तुष्ट हो सोचा, "ये तीनो अण्डे मेरी सन्तान होंगे।" उसने वे तीनों अण्डे तीन अमात्यों को सौपे और कहा—"ये मेरी सन्तान होगे। तुम अच्छी तरह देख-भाल करो। जब अण्डा फोड कर बाहर निकले, तो मुझे सूचित करना।" उन्होंने भलि प्रकार रक्षा की। पहले उल्लु का अण्डा फूटा। अमात्य ने एक शिकारी को बुलाकर पूछा—यह 'नर' है या 'मादा'? उसने परीक्षा करके उत्तर दिया—'नर'। तब आमात्य राजा के पास गया और बोला—"राजन्! आपको पुत्र हुआ है।" राजा ने सन्तुष्ट हो उसे बहुत सा धन दिया और यह कहकर विदा किया कि पुत्र का भलि-प्रकार पालन पोषण करे और उसका नाम वेस्सन्तर रक्खे। उसने वैसा ही किया। उसके कुछ दिन बाद मैना का अण्डा फूटा। उसकी भी अमात्य ने उसी शिकारी से परीक्षा करा, उसके 'मादा' कहने पर राजा के पास जा निवेदन किया "राजन्! आपको पुत्री हुई है।" राजा

ने सन्तुष्ट हो उसे भी धन दे और यह कह कर विदा किया कि "मेरी पुत्री को अच्छी तरह पाल-पोस और उसका नाम कुण्डलिनी रख" उसने वैसा ही किया। फिर कुछ दिन बाद तोते का अण्डा फूटा। उस अमात्य ने भी उसी शिकारी से परीक्षा करा, उसके 'नर' कहने पर राजा के पास जाकर कहा—"देव ! आपको पुत्र हुआ है ।" राजा ने सन्तुष्ट हो उसे भी धन देकर और यह कहकर विदा किया कि मेरे पुत्र का बडे ठाट बाट से लालन-पालन कर, उसका जम्बुक नाम रख। उसने वैसा ही किया। वे तीनों पक्षी, तीनो अमात्यो के घर मे राजकुमारों की तरह बढने लगे। राजा कहता—"मेरे पुत्र, मेरी पुत्री।" अमात्य-गण परस्पर परिहास करते—"देखो राजा की क्रिया ! पशु-पक्षियों को 'मेरे पुत्र, मेरी पुत्री' कहता फिरता है !" राजा ने सोचा, "ये अमात्य इन की बुद्धि-सामर्थ्य से परिचित नहीं है। इन पर प्रकट करूगा।"

उसने एक अमात्य को वेस्सन्तर के पास भेजा कि जाकर पूछकर आ कि तुम्हारा पिता प्रश्न पूछने के लिये आना चाहता है, कब आये ? अमात्य ने आकर और वेस्सन्तर को नमस्कार कर वह सन्देश दिया। वेस्सन्तर ने अपना पालन-पोषण करने वाले अमात्य को सबोधन कर कहा कि मेरा पिता मुझसे प्रश्न पूछना चाहता है, उसके यहा आने पर उसका सत्कार करना होगा। फिर पूछा कि कब आयेगा ? अमात्य ने उत्तर दिया कि आज से सातवे दिन। यह सुन वेस्सन्तर ने अमात्य को यह कह कर विदा किया कि मेरा पिता आज से सातवे दिन आवे। उसने जाकर राजा से कहा। राजा ने सातवे दिन नगर मे मुनादी कराई और पुत्र के निवास-स्थान पर पहुचा। वेस्सन्तर ने राजा का बहुत आदर-सस्कार किया, यहा तक कि दास तथा कर्मकर आदि से भी करवाया। राजा ने वेस्सन्तर पक्षी के घर भोजन किया और बडे आनन्द का अनुभव कर अपने निवास स्थान को लौट आया। फिर राजागन मे बडा भारी मण्डप बनवा, नगर मे मुनादी करा, अलकृत मण्डप मे बहुत से जनों के मध्य बैठ, अमात्य के पास सन्देस भेजा कि वेस्सन्तर को ले आये। अमात्य वेस्सन्तर को सोने के पीढे पर बिठाकर ले आया। पक्षी पिता की गोद मे बैठ, पिता के साथ खेल, फिर जाकर वही स्वर्णासन पर बैठा। राजा ने बडी भारी जनता के सम्मुख उससे राजधर्म पूछते हुए पहली गाथा कही—

**वेस्सन्तरं तं पुच्छामि, सकुण भद्दं अत्थुते,**
**रज्जं कारेतु कामेन किं सु किच्चं कतं वरं ॥१॥**

[हे वेस्सन्तर! मैं पूछता हू। हे पक्षी! तेरा कल्याण हो। जो राज्य करना चाहता है, उसके लिये कोन कोन सा कर्म करना अच्छा होता है? ॥ १ ॥]

यह सुन वेस्सन्तर ने बिना प्रश्न का उत्तर दिये ही राजा पर प्रमादी होने का दोषारोपण करते हुए दूसरी गाथा कही—

**चिरस्सं वत मं तातो कंसो बाराणसिग्गहो**
**पमत्तो अप्पमत्तं मं पिता पुत्तं अचोदयि ॥२॥**

[चिरकाल तक आज वाराणसी-नरेश प्रमादी कंस पिता ने मुझ अप्रमादी पुत्र से प्रश्न पूछा॥ २॥]

उसने इस गाथा से दोषारोपण कर, "महाराज! राजा को तीन धर्मो मे स्थित रहकर धर्मानुसार राज्य करना चाहिये' कह राज-धर्म का उपदेश देते हुए कहा—

**पठमेनेव वितथं कोधं हासं निवारये**
**ततो किच्चानि कारेय्य, तं वतं आहु खत्तिय ॥३॥**
**यं त्वं तात तपे कम्मं पुब्बे कतं असंसयं**
**रत्तो दुट्ठो च यं कयिरा न तं कयिरा ततो पुनं ॥४॥**
**खत्तियस्स पमत्तस्स रट्ठस्मिं रट्ठवद्धन**
**सब्बे भोगा विनस्सन्ति, रञ्ञो तं वुच्चते अघं ॥५॥**
**श्री च तात लक्खी च पुच्छिता एतद् अब्रवुं**
**उट्ठानविरिये पोसे रमाहं अनुसुय्यके ॥६॥**
**उस्सुय्यके दुहदये पुरिसे कम्मदुस्सके**
**कालकण्णी महाराज रमति चक्कभञ्जनी ॥७॥**
**सो त्वं सब्बेसं सुहदयो सब्बेसं रक्खितो भव,**
**अलक्खिं नुद महाराज लक्खी भव निवेसनं ॥८॥**
**सलक्खि धितिसम्पन्नो पुरिसो हि महग्गतो**
**अमित्तानं कासिपति मूलं अग्गं च छिन्दति ॥९॥**

**सक्को पि हि भूतपति उट्ठाने नप्पमज्जति**
**स कल्याणे धितिं कत्वा उट्ठाने कुरुते मनो ॥१०॥**
**गन्धब्बा पितरो देवा सञ्जीवा होन्ति तादिनो**
**उट्ठहतो अप्पमज्जतो अनुतिटठन्ति देवता ॥११॥**
**सो अप्पमत्तो अकुट्ठो तात किच्चानि कारये**
**वायमस्सु च किच्चेसु, नालसो विन्दते सुखं ॥१२॥**
**तत्थेव ते वत्तपदा एसा च अनुसासनी**
**अलं मित्ते सुखा पेतुं अमित्तानं दुक्खाय च ॥१३॥**

[सर्वप्रथम तो उसे चाहिये कि वह असत्य, क्रोध तथा छिछोरपन का त्याग करे। तब अन्य कार्य्य करे। हे क्षत्रिय ! यही राजाओं का व्रत कहा गया है ॥ ३ ॥ हे तात ! जिस कर्म को पहिले किया हो और उसके करने से असन्दिग्ध रूप से अनुताप होता हो, उस कर्म को राग अथवा द्वेष के वशीभूत हो फिर न करे ॥ ४ ॥ हे राष्ट्र-वर्धन ! प्रमादी राजा के राष्ट्र मे उसके सभी भोग नाश को प्राप्त हो जाते है। पाप राजा का पाप कहलाता है ॥ ५ ॥ तात ! श्री और लक्ष्मी से जब पूछा गया तो उन्होंने यही उत्तर दिया कि हम उत्थान-वीर्य्य से युक्त इर्षा-विहीन पुरुष के पास रहती है ॥ ६ ॥ हे महाराज ! जो इर्षावान् है, जो दुष्ट हृदय है, जो दूषित-कर्म है, उसके पास (कुशल-चित्त का) भञ्जन करने वाली मनहूसियत रहती है ॥ ७ ॥ हे महाराज ! इस लिये आप सबके सुहृदय तथा सब के हितचिन्तक हों। दरिद्रता को दूर भगावे और लक्ष्मी के निवास-स्थान बने ॥ ८ ॥ वह लक्ष्मी-पति, धृतिवान्, उदार हृदय पुरुष, हे काशीपति ! शत्रुओं को जड़मूल से उखाड फेकता है ॥ ९ ॥ हे राजन् ! शक्र भी उत्थान-वीर्य्य के प्रति प्रमाद नही करता। वह शुभ-कर्म के प्रति धैर्य्यवान् होकर उत्थान-वीर्य्य मे अनुरक्त होता है ॥ १० ॥ स्थिर-चित्त राजा के गन्धर्व, पितर तथा देवता उसका आश्रय लगाये रहते है। जो अप्रमादी है, जो उत्थान-वीर्य्य युक्त है, देवता उसका अनुरक्षण करते है ॥ ११ ॥ इस लिये हे तात ! आनिन्दित रहकर, अप्रमादी रहकर कार्य्य करे। कर्तव्यों को करने में प्रयत्न शील हों। आलसी आदमी को सुख प्राप्त नही होता ॥ १२ ॥ इसी मे तेरे व्रत हैं। यही

तेरे लिये अनुशासन है। यं मित्रों को सुखी तथा शत्रुओं को दुखी बनाये रखने के लिये पर्य्याप्त हैं ॥ १३ ॥]

इस प्रकार वेस्सन्तर-पक्षी ने एक गाथा से राजा को प्रमाद का दोषी ठहरा, ग्यारह गाथाओं से धर्मोपदेश दे, बुद्ध के ढग से प्रश्नोत्तर दिया। जनता ने आश्चर्य से चकित हो सैकडों साधुकार दिये। राजा ने प्रसन्न हो मंत्रियों को बुलाकर पूछा—"अमात्यो! मेरे पुत्र वेस्सन्तर ने जो इस प्रकार कहा, वह किस के करने योग्य कार्य्य किया?" "देव! महासेन रक्षक के योग्य।" "तो इसे महासेन रक्षक का पद देता हू" कह उसे उस पद पर नियुक्त किया। उस समय से वह महासेन रक्षक के पद पर नियुक्त रह पिता का कार्य्य करता रहा।

## वेस्सन्तर-प्रश्न समाप्त

फिर कुछ दिन के बाद राजा ने पहले ही की तरह कुण्डलिनी के पास दूत भेज, सातवें दिन वहां जा, वापिस आ, वही मण्डल के बीच बैठ, कुण्डलिनी को मगवाया। फिर सोने के आसन पर बैठी हुई उस कुण्डलिनी से राजधर्म पूछते हुए गाथा कही—

**सक्खी त्वं कुण्डलिनि मञ्ञसि खत्तिय बन्धुनी**
**रज्जं कारेतु कामेन किं सु किच्चं कतं वरं ॥१४॥**

[हे क्षत्रिय-भगिनी कुण्डलिनी! तू प्रश्न का उत्तर देने मे अपने आपको समर्थ मानती है? यदि मानती है तो बता कि राज्य करने की इच्छा रखने वाले के लिये क्या क्या करना अच्छा होता है? ॥ १४ ॥]

इस प्रकार राजा द्वारा राजधर्म पूछे जाने पर "तात! ऐसा मालूम देता है कि तुम यह सोचते हो कि यह स्त्री जाति क्या उत्तर दे सकेगी, मै सारे राज-धर्म को दो पदों के अन्तर्गत करके कहूगी" कह ये गाथाये कही—

**द्वे व तात पदकानि येसु सब्बं पतिट्ठितं**
**अलद्धस्स च यो लाभो लद्धस्स अनुरक्खना ॥१५॥**
**अमच्चे तात जानाहि धीरे अत्थस्स कोविदे**
**अनक्ख आकिवे तात असोण्डे अविनासके ॥१६॥**
**यो च तं तात रक्खेय्य धनं यञ्चेव ते सिया**
**सूतोव रथं संगण्हे सो ते किच्चानिकारये ॥१७॥**

सुसंगहीतन्तजनो सयं चित्तं अवेक्खिय
निधिं च इणदानं च न करे परपत्तिया ॥१८॥
सयं आयवयं जञ्ञा, सयं जञ्ञा कताकतं,
निग्गण्हे निग्गहारहं, पग्गण्हे पग्गहारहं ॥१९॥
सयं जानपदं अत्थं अनुसास रथेसभ
मा ते अधम्मिका पुत्ता धनं रट्ठं च नासयुं ॥२०॥
मा च वेगेन किच्चानि कारेसि कारयेसि वा,
वेगसा हि कतं कम्मं मन्दो पच्छानुतप्पति ॥२१॥
मा ते अविसरे मुञ्च सुबाळहं अधिकोधितं,
कोधसा हि बहू पिता कुला अकुलतं गता ॥२२॥
मा तात इस्सरोम्हीति अनत्थाय पतारयि
इत्थीनं पुरिसानञ्च मा ते आसि दुखुद्रयो ॥२३॥
अपेत लोम हंसस्स रञ्ञो कामानुसारिनो
सब्बे भोगा विनस्सन्ति, रञ्ञोतं वुच्चते अघं ॥२४॥
तत्थेव ते वत्तपदा एसा च अनुसासनी
दक्खस्सु दानि पुञ्ञाकरो असोण्डो अविनासको
सीलव अस्सु महाराज, दुस्सीलो विनिपातको ॥२५॥

[तात ! दो ही बातो मे सब कुछ समा जाता है—अप्राप्त की प्राप्ति मे और प्राप्त के अनुरक्षण मे ॥ १५ ॥ हे तात ! अपने आमात्यों को पहचान ओर उनमे ऐसे आमात्य देख जो धीर हों, जो अर्थ के जानकार हों, जा जुआरी न हों, जो ठग न हों, जो शराबी न हों तथा जो नष्ट करने वाले न हो ॥ १६ ॥ हे तात ! जो तेरे धन की रक्षा करें और जो उसी प्रकार अर्थ को सभाले जैसे सूत रथ के घोडों को सभालता है, वही तेरे कार्य्यो को करे ॥ १७ ॥ अपने अन्दर के आदमियों का भलि प्रकार सग्रह करके और स्वय विचार कर ही पैसे को खजाने मे रखना अथवा ऋण देना आदि करे। यह दूसरे के विश्वास पर न करे ॥ १८ ॥ आय-व्यय की स्वय जाच करे और कृत्य-अकृत्य को स्वयं जाने। दण्डनीय को दण्ड दे, आदरणीय का आदर करे ॥ १९ ॥ हे राजन् ! स्वयं जनपद-वासियो का अर्थ के विषय मे मार्ग दर्शन

कर। ऐसा न हो कि तेरे द्वारा नियुक्त अधार्मिक (अफसर) धन तथा राष्ट्र का नाश कर दें ॥ २० ॥ जल्दबाजी में न कोई काम स्वय कर और न दूसरे से करा। जल्दबाजी से काम लेने से मूर्ख आदमी को पीछे पछताना पड़ता है ॥ २१ ॥ तू अपने आपको भूलकर कभी भी अत्यधिक क्रोधित मत हो। क्रोध के कारण बहुत से कुलों की कुलीनता नष्ट हो गई ॥ २२ ॥ तात ! अपने आप को सबका मालिक समझ, लोगों का अनर्थ न कर। तेरे कारण स्त्रियों तथा पुरुषों को दुःख का अनुभव न हो ॥ २३ ॥ जो राजा निर्भय होकर जो जो चाहता है, वही सब करने लगता है, उसके सभी भोग नाश को प्राप्त होते हैं। राजा के लिए यह दुःख होता है ॥२४॥ यही तेरे कर्त्तव्य है, यही तेरे लिए अनुशासन है। अब तू दक्ष हो जा। पुण्यकारी हो जा। सुरा-त्यागी हो जा। अविनाशक हो जा। सदाचारी हो जा। हे राजन् ! दुराचारी नरकगामी होता है ॥ २५ ॥ ]

इस प्रकर कुण्डलिनी ने भी ग्यारह गाथाओं द्वारा धर्मोपदेश दिया। राजा ने संतुष्ट हो आमात्यों को बुलाकर पूछा—"अमात्यो ! मेरी पुत्री कुण्डलिनी ने जो इस प्रकार कहा, वह किसका कार्य्य किया ?" "देव ! खजानची का।" "तो उसे खजानची का ही पद देता हूँ" कह कुण्डलिनी को वह पद दे दिया। उसके बाद से वह खजानची होकर पिता का कार्य्य करने लगी।

## कुण्डलिनी-प्रश्न समाप्त

कुछ दिनों के बाद राजा ने फिर पहले की तरह जम्बुक पण्डित के पास दूत भेजा और सातवें दिन वहाँ पहुच, ऐश्वर्य्य भोग, वापिस लौट, उसी प्रकार मण्डप के बीच में बैठा। अमात्य जम्बुक पण्डित को सोना-बंधे पीढे पर बिठा, उसे सिर पर उठा, लाया। पण्डित पिता की गोद में बैठा, खेला और फिर जाकर स्वर्णासन पर ही बैठा। राजा ने उससे प्रश्न पूछते हुए गाथा कही—

**अपुच्छम्हापि कोसिकं कुण्डलिनिं च तत्थेव,**
**जम्बुक त्वं दानि वदेहि बलानं बलं उत्तमं ॥२६॥**

[ हमने वेस्सन्तर तथा कुण्डलिनी को पूछा। उसी प्रकार हे जम्बुक ! अब तू राज-धर्म तथा जो बलों में श्रेष्ठ बल है, वह कह ॥ २६ ॥ ]

राजा ने मुझसे प्रश्न पूछते समय ठीक औरों की तरह न पूछ कर कुछ विशेष करके पूछा ! उस पण्डित ने 'तो राजन् ध्यान दे कर सुन, तुझे सब कुछ कहूंगा' कह, पसारे हुए हाथ पर हजार की थैली रखते हुए की तरह धर्म-देशना आरम्भ की—

बलं पञ्चविधं लोके, पुरिसस्मिं महग्गते,
तत्थ बाहा बलं नाम चरिमं वुच्चते बलं,
भोगबलं च दीघायु दुतियं वुच्चते बलं ॥२७॥
अमच्चबलं च दीघायु ततियं वुच्चते बलं,
अभिजच्चबलं चेव तं चतुत्थं असंसयं,
यानि चेतानि सब्बानि अधिगण्हाति पण्डितो ॥२८॥
तं बलानं बलं सेट्ठं अग्गं पञ्ञाबलं बलं
पञ्ञाबलेन उपत्थद्धो अत्थं विन्दति पण्डितो ॥२९॥
अपि चे लभति मन्दो फीतं धरणिं उत्तमं
अकामस्स पसय्हं वा अञ्ञो तं पटिपज्जति ॥३०॥
अभिजातोपि चे होति रज्जं लद्धान खत्तियो
दुप्पञ्ञो हि कासिपति सब्बेन पि न जीवति ॥३१॥
पञ्ञा सुतविनिच्छनी पञ्ञा सिलोकवद्धनी,
पञ्ञासहितो नरो इध अपि दुक्खे सुखानि विन्दति ॥३२॥
पञ्ञं च खो असुस्सुसं न कोपि अधिगच्छति
बहुस्सुतं अनागम्म धम्मट्ठं अविनिब्भुजं ॥३३॥
यो धम्मं च विभागञ्ञू कालुट्ठायी अतन्दितो
अनुट्ठहति कालेन कम्मफलं तस्स इज्झति ॥३४॥
नाना यतनसीलस्स नाना यतनसेविनो
न निब्बिन्दियकारिस्स सम्मदत्थो विपच्चति ॥३५॥
अज्झत्तं च पयुत्तस्स तथायतन सेविनो
अनिविन्दियकारिस्स सम्मदत्थो विपच्चति ॥३६॥

**योगप्पयोगसंखातं सम्मतस्सानुरक्खनं**
**तानि त्वं तात सेवस्सु, मा अकम्माय रन्धयि**
**अकम्मना हि दुम्मेधो नळागारं व सीदति ॥३७॥**

[हे महाराज ! इस लोक मे बल पाँच प्रकार का है, जिसमे काय-बल प्रथम है, किन्तु वह सब से निम्न-स्तर का कहलाता है। दूसरा बल है, भोग्य-सामग्री का बल॥ २७॥ अमात्य-बल तीसरा बल कहलाता है, और अभिजात्य-कुल मे जन्म लेना निस्सन्देह चौथा-बल है। पण्डित आदमी इन्ही सब बलों को ग्रहण करता है॥ २८॥ लेकिन सभी बलो मे श्रेष्ठ, अग्र है प्रज्ञा-बल। प्रज्ञा-बल से युक्त पण्डित ही अर्थ को समझता है॥२९॥ यदि मन्द-बुद्धि को श्रेष्ठ, धन-धान्य पूर्ण धरती भी प्राप्त हो जाती है, तो उस अनिच्छुक को कोई भी दूसरा प्रज्ञावान अभिभूत करके उसे प्राप्त कर लेता है॥३०॥ यदि क्षत्रिय अभिजात भी होता है और परम्परा-गत राज्य भी प्राप्त कर लेता है, तो भी प्रज्ञा-रहित होने से उतना सब होने पर भी वह योग-क्षेम नही चला सकता ॥ ३१॥ प्रज्ञा द्वारा सुनी हुई बात का निर्णय होता है प्रज्ञा ख्याति बढाने वाली है, प्रज्ञावान नर दु ख आ पड़ने पर भी (मन मे) सुखी रहता है॥३२॥ बिना बहुश्रुतों से सुने कोई भी प्रज्ञा लाभ नही करता, और बिना धर्मार्थ का बोध हुए॥ ३३॥ जो धर्मों के वर्गीकरण को जानता है, जो समय से, उठकर आलस्य-रहित हो काम करता है, उसका कर्म सुफल होता है॥ ३४॥ जो दुराचारी है, अथवा दुराचारी की सगति मे रहता है और जो सदाचारी न हीहैं, उसका कर्म सफल नही होता॥ ३५॥ अध्यात्म मे लगे हुए और वेसी सगत मे रहने वाले तथा सदाचार-परायण मनुष्य का कर्म सफल होता है॥ ३६॥ जो करणीय है उसमे लगने वाली प्रज्ञा तथा सग्रहीत का सरक्षण—इन दो बातों का हे तात ! आप पालन करे। आप दुष्कर्म द्वारा (वैभव का) नाश न करे। दुष्कर्म से दुर्बुद्धि बास के घर की तरह बैठ जाती है॥ ३७॥ ]

इस प्रकार बोधिसत्व ने इतने मे पाच बलो का वर्णन करते हुए प्रज्ञा-बलको उठाकर चन्द्र लोक तक पहुचाते हुए, अब दस गाथाओं द्वारा राजा को उपदेश दिया—

**धम्मं चर महाराज मातापितुसु खत्तिय**
**इध धम्मं चरित्वान राज सग्गं गमिस्ससि॥३८॥**

**धम्मं चर महाराज पुत्तदारेसु खत्तिय ॥३९॥**
**धम्मं चर महाराज मित्ता मच्चेसु खत्तिय ॥४०॥**
**धम्मं चर महाराज वाहनेसु बलेसु च ॥४१॥**
**धम्मं चर महाराज गामेसु निगमेसु च ॥४२॥**
**धम्मं चर महाराज रट्ठे जनपदेसु च ॥४३॥**
**धम्मं चर महाराज समणब्राह्मणेसु च ॥४४॥**
**धम्मं चर महाराज मिगपक्खिसु खत्तिय ॥४५॥**
**धम्मं चर महाराज धम्मो चिण्णो सुखावहो,**
**इध धम्मं चरित्वान राज सग्गं गमिस्ससि ॥४६॥**
**धम्मं चर महाराज इन्दो देवा सब्रह्मका**
**सुचिण्णेन दिवं पत्ता, मा धम्मं राज पमादो ॥४७॥**

[ हे क्षत्रिय ! हे राजन् ! माता-पिता के प्रति धर्माचरण करे। यहा धर्माचरण करने से स्वर्ग लाभ होगा ॥ ३८ ॥ हे क्षत्रिय ! हे राजन् ! पुत्र स्त्री के प्रति धर्माचरण करे . मित्रों अमात्यों के प्रति धर्माचरण करे वाहनों तथा सेनाओं के प्रति धर्माचरण करे ग्रामों तथा निगमों के प्रति धर्माचरण करे . .राष्ट्रो तथा जनपदों के प्रति धर्माचरण करे श्रमण-ब्राह्मणों के प्रति धर्माचरण करे. . . पशु-पक्षियों के प्रति धर्माचरण करे ॥ ४५ ॥ महाराज धर्माचरण करे। धर्माचरण सुखदायक होता है। यहा धर्माचरण करने से स्वर्ग-गमन होगा ॥ ४६ ॥ महाराज ! धर्माचरण करे। धर्माचरण करने से ही इन्द्र तथा सब्रह्म देवतागण-दिव्य-लोक को प्राप्त हुए। राजा धर्म मे प्रमाद मत करे ॥ ४७ ॥ ]

इस प्रकार धर्माचरण की दस गाथाये कह, और भी उपदेश देते हुए अन्तिम गाथा कही—

**तत्थेव एते वत्तपदा एसा च अनुसासनी**
**सप्पञ्ञो सेवी कल्याणि समत्तं सामतं विदू ॥४८॥**

[ ये ही तेरे कर्तव्य है और यही तेरा अनुशासन है। हे राजन् ! आप प्रज्ञावानों की संगत करे, शुभकर्म करे और स्वय सम्पूर्ण बात के जानकार बने ॥ ४८ ॥ ]

इस प्रकार बोधिसत्व के आकाश-गङ्गा उतारने के समान बुद्ध की तरह उपदेश देने पर जनता ने बहुत सत्कार किया और सहस्त्रों साधुकार दिये। राजा ने संतुष्ट हो अमात्यों को बुलाकर पूछा—"अमात्यो! लाल जामुन सदृश चोंच वाले मेरे पुत्र जम्बुक पण्डित ने जो कुछ कहा वह किसका कर्तव्य कहा?" "देव! सेनापति का।" "तो मैं इसे सेनापति का पद देता हूं" कह जम्बुक को पद पर प्रतिष्ठित किया। तब से वह सेनापति के पद पर प्रतिष्ठित हो पिता के कार्य करने लगा। तीनों पक्षियों का बहुत आदर हुआ। तीनों जनों ने अर्थ तथा धर्म का ही अनुशासन किया। बोधिसत्व के उपदेशानुसार चल राजा दानादि पुण्य कर्म कर स्वर्ग-गामी हुआ। अमात्यों ने राजा का शरीर-कृत्य कर पक्षियों को बुलाकर कहा—"स्वामी जम्बु पक्षी! राजा ने तुम्हे छत्रधारी बनाने को कहा है।" बोधिसत्व ने उत्तर दिया "मुझे राज्य की आवश्यकता नहीं। तुम अप्रमादी होकर राज्य करो।" उसने जनता को शीलों मे प्रतिष्ठित किया और 'इस प्रकार न्याय करो' कह न्याय-धर्म सोने की पट्टी पर लिखा, स्वय अरण्य मे चला गया। उसका उपदेश चालीस हजार वर्ष चला।

शास्ता ने राजा को उपदेश के तौर पर यह धर्म देशना दे जातक का मेल बैठाया। उस समय राजा आनन्द था, कुण्डलिनी उत्पलवर्णा, वेस्सन्तर सारिपुत्र, जम्बुक पक्षी तो मैं ही था।

## ५२२. सरभङ्ग जातक

"अलंकृता कुण्डलिनो सुवत्था..." यह शास्ता ने वेळुवन मे महामोग्गल्लान स्थविर के परिनिर्वाण के बारे में कही।

## क. वर्तमान कथा

सारिपुत्र स्थविर ने तथागत के जेतवन मे विहार करते समय, परिनिर्वाण की अनुज्ञा ले, जा कर नाल ग्राम मे, जिस घर मे जन्म ग्रहण किया था, उसी मे परिनिर्वाण लाभ किया। उसके परिनिर्वृत होने की वात सुन शास्ता राजगृह जाकर वेळुवन मे रहने लगे। उस समय मोग्गल्लान स्थविर इसिगिलि (पर्वत) के पास काळशिला मे विहार करते थे। मोग्गल्लान स्थविर ऋद्धि-बल की पराकाष्ठा को प्राप्त थे। वे देव लोक तथा उस्सद (नरक) दोनों मे घूम आते थे। वे देव-लोक मे बुद्ध-शिष्यों की महान् ऐश्वर्य्य प्राप्ति और उस्सद नरकों मे अबौद्ध साम्प्रदायिक शिष्यों का दु ख भुगतना देख, आकर मनुष्यों से कहते—"अमुक उपासक तथा अमुक उपासिका अमुक देव-लोक मे जन्म ग्रहण कर महान् भोगो को भोगती है, और अबौद्ध साम्प्रदायिक शिष्यो मे अमुक तथा अमुक अमुक-नरक मे पैदा हुए है।" लोग (बुद्ध) शासन मे श्रद्धावन हो तैर्थिकों का त्याग करने लगे। बुद्ध-शिष्यो का सत्कार बढने लगा, अबौद्ध साम्प्रदायिकों का घटने। उन्होंने स्थविर के प्रति मन मे वैर बाध लिया। सोचा "जबतक यह जीता रहेगा, हमारे सेवक छीजते रहेगे, सत्कार घटता रहेगा, इसे मरवाये।" उन्होंने स्थविर को मरवाने के लिये श्रमण-गुप्त नामक चोर को हजार दिये। वह स्थविर को मारने के लिए बहुत से अनुयाइयों के साथ काळशिला पहुचा। स्थविर ने उसे आता देखा तो ऋद्धि-बल से ऊपर उठकर चले गये। चोर को उस दिन स्थविर नही दिखाई दिये। वह अगले दिन और अगले दिन, इस प्रकार छ. दिन लगातार गया। स्थविर भी उसी प्रकार ऋद्धि-बल से चले जाते रहे।

सातवे दिन स्थविर के अन्य जन्म में फल देने वाले कर्म को फल देने का अवकाश मिल गया। वह पूर्व-जन्म में स्त्री के कथन पर विश्वास कर माता पिता को मारने की इच्छा से गाडी मे बिठा जगल ले गया था। 'वहाँ चोर आ गये' का ढंग बना माता पिता को पीटने लगा, प्रहार देने लगा। वे नजर की दुर्बलता के कारण रूप देखने मे असमर्थ होने से पुत्र को न पहचान सके। उन्होंने समझा कि चोर ही है। वे उसी का नाम लेकर दुहाई देने लगे—"तात ! अमुक चोर हमें मार

रहे है। तू भाग जा।" वह सोचने लगा—"इन्हे मे ही पीट रहा हूं और ये मुझे ही याद कर रहे है। यह अनुचित है।" उसने उन्हे आश्वासन दिया और चोरो के भाग जाने का ढॅग बनाकर, उनके हाथ पैर दबाते हुए कहा—"माता जी, पिता जी भय न करे चोर भाग गये।" यह कह फिर अपने घर ही ले आया ।

वह कर्म इतने समय तक राख से ढकी आग की तरह पडा रहा। उसने अब जाकर इस अन्तिम-शरीर के समय फल देने का अवसर पाया। स्थविर उस कर्म के प्रभाव से ऊपर आकाश मे न उठ सके। नन्द-उपनन्द को दमन करने वाली तथा वैजयन्त को कॅपा देने वाली भी उसकी ऋद्धि कर्म-बलके कारण दुर्बलता को प्राप्त हुई। चोर ने स्थविर की हड्डियो को चूर चूर करके, पराल की ढेरी के समान कर दिया और यह समझ कि स्थविर मर गया,वह अपने साथियों सहित चला गया।

स्थविर को भी जब होश आया तो ध्यान-बल से शरीर को इकट्ठा कर, ऊपर उठकर शास्ता के पास पहुचे और प्रणाम कर निवेदन किया—"भन्ते। मेरा आयु सस्कार समाप्त हो गया। मै निर्वाण प्राप्त कर रहा हूँ।" इस प्रकार निर्वाण की अनुज्ञा ले स्थविर ने वही परिनिर्वाण प्राप्त किया। उसी समय छः देव लोकों मे एक साथ क्रन्दन होने लगा—"हमारे आचार्य का परिनिर्वाण हो गया"। वे दिव्य सुगन्धियाँ मालाये, सुगन्धित धूपे तथा नाना प्रकार की लकडियाँ लेकर पहुचे। निन्नानवे रतन ऊँची चन्दन की चिता बनी। शास्ता ने स्थविर के पास खडे होकर शरीर चिता पर रखवाया। आग के चारों ओर योजन भर पुष्प वर्षा हुई। देवताओं के बीच मे मनुष्य और मनुष्यों के बीच देवता खडे थे। सात दिन तक साधु-क्रीडा होती रही। शास्ता ने स्थविर की अस्थियां लिवा जाकर वेळुवन के द्वार पर चैत्य बनवाया। तब धर्म सभा में बात चीत चली—"आयुष्मानो ! सारिपुत्र स्थविर ने तथागत के पास परिनिर्वाण नही प्राप्त किया, इसलिए उसे बुद्धों से महान सत्कार प्राप्त नही हुआ, किन्तु महामोग्गल्लान स्थविर का परिनिर्वाण पास ही हुआ, इस लिए उसे बहुत सम्मान प्राप्त हुआ।" शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, यहा बैठे क्या बातचीत कर रहे हो !"अमुक बात चीत ।" भिक्षुओ,

मोग्गल्लान ने न केवल अभी मुझसे सम्मान प्राप्त किया, पहले भी प्राप्त किया ही है" कह कर पूर्व-जन्म की कथा कही।

## ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने पुरोहित की ब्राह्मणी की कोख मे पटि-सन्धि ग्रहण की और दस महीने के बाद प्रातःकाल के समय माता की कोख से बाहर निकले। उस समय बारह योजन की वाराणसी मे सभी आयुध चमकने लगे।

पुत्रोत्पत्ति के समय पुरोहित ने बाहर निकल कर आकाश पर नजर उठा नक्षत्रो का योग देखा। उसे मालूम हुआ कि इस नक्षत्र-विशेष मे जन्म लेने के कारण यह कुमार सारे जम्बुद्वीप के धनुर्धारियो मे श्रेष्ठतम होगा।

वह दिन चढते चढते ही राज-कुल पहुँचा और राजा से सुखपूर्वक सोने की बात पूछी। राजा बोला—"आचार्य! मुझे सुख कहा! आज सारे घर में आयुध प्रज्वलित हो उठे।"

"देव! मत डरे। तुम्हारे घर मे ही नही। आज सारे नगर में आयुध प्रज्वलित हुए है। आज हमारे घर मे कुमार के जन्मग्रहण करने से ऐसा हुआ है।"

"आचार्य! जिस कुमार का जन्म इस प्रकार होता है, उसका क्या होता है?"

"महाराज! कुछ नही। वह केवल सारे जम्बुद्वीप मे सर्वश्रेष्ठ धनुषधारी होगा।"

"तो अच्छा आचार्य! उसका पालन-पोषण करें, जब वह बडा हो जाय, तो हमें दिखाये।"

राजा ने कुमार के दूध के लिये हजार दिलवाये। पुरोहित ने वह लिये और घर लौटा। उत्पत्ति के समय आयुधों के प्रज्वलित होने के कारण, नामकरण के दिन उसने कुमार का नाम ज्योति-पाल ही रखा। वह बडे ठाट-बाट के साथ बढ़ता रहा। सोलह वर्ष का होने पर वह बहुत ही रूपवान् हुआ।

उसकी शरीर-सम्पत्ति देख एक दिन उसका पिता बोला—

"तात! तक्षशिला जाकर प्रसिद्ध आचार्य के पास शिल्प सीख।"

उसने 'अच्छा' कहा और आचार्य की 'फीस' ले, माता-पिता को प्रणाम कर वहां पहुचा। वहां जाकर उसने हजार दिये और 'शिल्प' सीखना आरम्भ कर एक सप्ताह मे ही पारगत हो गया। आचार्य ने संतुष्ट हो अपने पास ही खड्ग (रत्न) सन्धि-युक्त मेढे के सीग का धनुष, सन्धि-युक्त तूणीर, अपना कवच, कचुक, तथा उष्णीप देकर कहा—"तात ! ज्योतिपाल ! मै बूढा हो गया। अब तू ही इन शिष्यों को सिखा।" इतना कह पाच सौ शिष्य भी उसी को सौप दिये।

बोधिसत्व ने सभी कुछ लिया और आचार्य को प्रणाम कर, वाराणसी लौट माता-पिता के दर्शन किये। जिस समय वह हाथ जोडे खडा था, पिता ने पूछा--

"तात ! शिल्प सीख लिया ?"

"तात ! हाँ !"

उसने उसकी बात सुन राज-कुल जाकर पूछा—

"देव ! मेरा पुत्र शिल्प सीख आया। अब उसके लिए क्या करणीय है ?"

"आचार्य्य ! हमारी सेवा मे रहे।"

"देव ! उसका खर्चा जाने।"

"प्रति दिन हजार लिया करे।"

उसने 'अच्छा' कहा और घर जाकर कुमार को बुलाकर कहा—"तात ! राजा की सेवा मे रह।"

उस समय से वह प्रति दिन हजार लेता हुआ राजा की सेवा मे रहने लगा। राजकीय मनुष्य खीझने लगे—"हम ज्योति-पाल की करनी नही देखते। प्रतिदिन हजार लेता है। हम इसका शिल्प देखना चाहते है।"

राजा ने उनकी बात पुरोहित से कही। पुरोहित ने "देव ! अच्छा" कह पुत्र से कही। वह बोला—"अच्छा। तात ! अब से सातवे दिन दिखाऊगा। राजा अपने राज्य के धनुर्धारियों को इकट्ठा करे।" पुरोहित ने जाकर वह बात राजा से कही। राजा ने नगर मे मुनादी करा धनुर्धारियों को इकट्ठा करवाया। साठ हजार धनुर्धारी इकट्ठे हुए। राजा को जैसे ही यह मालूम हुआ कि वे इकट्ठे हो गये हैं, उसने नगर मे मुनादी करा दी कि नगर-वासी ज्योतिपाल की कला देखे। फिर राजाङ्गन को सजवाकर, स्वयं जनता के बीच श्रेष्ठ आसन पर बैठ,

धनुर्धारियों को बुलवा, ज्योति-पाल को बुलवा भेजा। उसने आचार्य्य के दिये हुए धनुष, तूणीर, कवच, कञ्चुक और उष्णीष को एक दूसरे कपड़े से ढका और तलवार लिवाकर सामान्य वेष मे ही राजा के पास पहुच एक ओर खडा हुआ। धनुर्धारियों ने आपस मे सलाह की—"ज्योतिपाल धनुर्विद्या दिखाने आया है। किन्तु क्योंकि बिना धनुष लिये आया है, इससे मालूम होता है कि हमारा धनुष लेना चाहता होगा। हम नही देगे।" राजा ने ज्योतिपाल को संबोधन कर कहा—"शिल्प दिखाओ।"

उसने कनात तनवाई और कनात के भीतर हो, वस्त्र हटा, कवच धारण कर, कञ्चुक मे प्रवेश किया और सिर पर उष्णीष रख, मेढे के सीग वाले धनुष मे मूगे के रग की डोरी बाध, पीठ पर तूणीर कस, बाई ओर तलवार लटका, और वज्र की नोक वाले तीर को नाखुन पर घुमाते हुए, क़नात को हटा उससे इस प्रकार बाहर आया मानो पृथ्वी बीध कर अलकृत नागकुमार बाहर आया हो। कनात से बाहर आ उसने राजा को अभिवादन किया और एक ओर खडा हो गया। उसे देख जनता उछलती थी, शोर मचाती थी, तालिया बजाती थी। राजा बोला—"ज्योतिपाल! (अपनी) विद्या दिखाओ।"

"देव। अपने धनुर्धारियों मे से चार क्षण-वेधी, बाल-वेधी, शब्द-वेधी, शर-वेधी धनुर्धारियों को बुलवाये।"

राजा ने बुलवाये। बोधिसत्व ने चौकोर (जगह) के भीतर मण्डप बना, चारों कोनों पर चारों धनुर्धारियों को खड़ा किया। फिर एक एक को तीस तीस हजार तीर दिलवाये, और हर एक के पास एक एक तीर देने वाला खडा किया। फिर स्वय वज्र की नोक वाला तीर ले मण्डल के बीचोंबीच खडे होकर कहा—"महाराज! ये चारों धनुर्धारी एक साथ तीर चलाकर मुझे बीधे। मैं इनके तीरों को रोकूंगा।" राजा ने आज्ञा दी—"ऐसा करो।" "महाराज! हम लोग क्षण-वेधी है, बाल-वेधी हैं, शब्द-वेधी है, शर-वेधी हैं। ज्योतिपाल तरुण बालक है। हम उसे नही बीधेंगे।"

बोधिसत्व ने कहा—"यदि सामर्थ्य है तो मुझे बीधो।"

उन्होंने 'अच्छा' कह एक साथ ही तीर चलाये। बोधिसत्व ने उन्हें अपने तीर

का चोटों से जैसे-तैसे गिरा दिया। उसने जैसे कोई कोठा घेरने के समय ताड़ से ताड, डण्डे से डण्डा और फलक से फलक मिला दे, उसी प्रकार बाणों का घर बना दिया। धनुर्धारियों के तीर समाप्त हो गये। जैसे ही उसे ज्ञात हुआ कि तीर समाप्त हो गये, वह बिना तीरों के घर को हानि पहुचाये कूद कर राजा के पास आ खडा हुआ। जनता ने चिल्लाते हुए, शोर मचाते हुए, तालिया बजाते हुए बडा हल्ला किया और वस्त्र-आभरण फेके। इस प्रकार अठारह करोड घन एकत्र हो गया।

राजा ने उसे पूछा—"ज्योतिपाल! इस विद्या का क्या नाम है?"

"देव! तीरों को रोकने की विद्या।"

"और भी कोई इसका जानकार है?"

"देव! सारे जम्बुद्वीप मे मेरे अतिरिक्त और कोई नही।"

"तात! तो दूसरा प्रदर्शन करो।"

"देव! ये चारों जने चारों कोनो पर खडे होकर मुझे नही बीध सके, किन्तु मै इन चारों कोनों पर खडे हुओं को एक ही बाण से बीध दूगा"

धनुर्धारियों ने खडे होने का साहस नही किया। बोधिसत्व ने चारों कोनो पर चार केले के खम्भे खडे किये। फिर तीर के पँखे मे लाल रंग का सूत्र बाधकर केले के एक खम्भे की ओर छोडा। तीर ने उस खम्भे को बीध दिया, फिर दूसरे को, फिर तीसरे को, फिर चौथे को और फिर पहले बिधे हुए को ही पुनः बीधकर तीर वापिस हाथ में चला आया। केलों के खम्भों में सूत पिरोया गया। जनता ने सहस्रों घोष किये।

"तात! यह कौन सी विद्या है।"

"देव! चक्र वीधने की विद्या।"

"और भी प्रदर्शन कर।"

बोधिसत्व ने शर-लाठी, शर-रज्जु तथा शर-वेणी का प्रदर्शन किया। शर-प्रासाद, शर-मण्डप, शर-सोपान तथा शर-पुष्करिणी की रचना की। शर-पद्म खिलाया। शर-वर्षा बरसाई। इस प्रकार दूसरों के लिए असाधारण इन बारह विद्याओं का प्रदर्शन कर, फिर दूसरों के लिए इन सात बड़ी बडी चीजों को चीरा। आठ अंगुल मोटा अंजीर का पटड़ा चीरा। चार अंगुल मोटी चट्टान चीरी।

दो अगुल मोटा ताम्बे का पत्ता। एक अंगुल मोटा लोहे का पत्ता। फिर एक साथ बधे हुए सौ पटडों को एक साथ चीरा। फिर पराल की गाडियों के, बालू की गाडियों के तथा पटडों की गाड़ियों के आगे तीर मार कर पिछली ओर से निकाला तथा पीछे की ओर से तीर मार कर आगे की ओर से निकाला। पानी में चार ऋषभ और स्थल पर आठ ऋषभ तक तीर चलाया। हवा के इशारे से ऋषभ भर की दूर पर बाल को बीधा। उसके इन प्रदर्शनो को करते हुए ही सूर्य्यास्त हो गया। राजा ने उसे सेनापति पद देने की घोषणा करते हुए कहा—"ज्योतिपाल! आज विकाल हो गया। कल सेनापति-सत्कार ग्रहण करोगे। हजामत बनवाकर और स्नान करके आना।" उस दिन के खर्चे के तौर पर एक लाख दिया गया।

बोधिसत्व ने "मुझे इस की अपेक्षा नही है" कह अठारह करोड धन स्वामियों को ही सौंप दिया। फिर बडी शान से स्नान करने गया। हजामत बनवा, स्नान कर सभी अलकारों से अलंकृत हो, अनुपम शोभा के साथ घर मे प्रवेश कर, नाना प्रकार का श्रेष्ठ भोजन खा, शैय्या पर चढकर लेटा। दो याम (-भर) सोकर पिछले याम मे उठकर पालथी मारकर बेठा और अपनी धनुर्विद्या के आदि मध्य और अन्त पर विचार करने लगा। उसे सूझा की मेरी धनुर्विद्या के आरम्भ मे मृत्यु है, बीच मे काम-भोग है और अन्त मे नरक है। प्राणातिपात का परिणाम काम-भोग होते है और उनमे अति-प्रमाद नरक मे उत्पत्ति का कारण होता है। राजा ने मुझे सेनापति का पद दिया है। मै बहुत ऐश्वर्य्यवान हो जाऊगा। मेरी भार्य्या और बहुत से लडके लडकियाँ हो जायेगी। काम-भोग वृद्धि पा जाने पर दुष्त्याज्य हो जाते है। मेरे लिए यही उचित है कि मै इसी समय निकल कर और अकेला ही वन मे प्रवेश कर, ऋषियों के प्रव्रज्या-क्रम से प्रव्रजित हो जाऊ। यह सोच बोधिसत्व शैय्या से उठा और बिना किसी को सूचना दिये, महल से उतर मुख्य-द्वार से ही बाहर निकल, अकेला ही जंगल मे घुस, गोदावरी के तट पर तीन-योजन लम्बे खैर के वन मे गया।

शक्र को जब पता लगा कि बोधिसत्व ने अभिनिष्क्रमण किया है तो उसने विश्वकर्मा को बुलाकर कहा—"तात! ज्योतिपाल ने अभिनिष्क्रमण किया है।

बडा जलसा होगा। गोदावरी-तट पर खैर के वन मे आश्रम बनाकर प्रव्रजितों की आवश्यकताओं की व्यवस्था कर।" उसने वैसा ही किया।

बोधिसत्व ने वहाँ पहुंचने पर जब पग-डण्डी देखी तो सोचा—प्रव्रजितों के रहने की जगह होगी। वह उसी मार्ग से वहाँ पहुँचा और जब उसने वहाँ किसी को नहीं देखा, किन्तु प्रव्रजितों की आवश्यकताएं देखीं तो सोचा—"मालूम होता है देवेन्द्र शक्र ने मेरे प्रव्रजित होने की बात जान ली।" उसने अपना वस्त्र उतार फेंका और रक्त-वर्ण वल्कल चीवर पहन एक कन्धे पर अजिन (-मृग) चर्म रखा। फिर जटायें बांध, कँधे पर वैहँगी रखी और हाथ मे वैशाखी ले, पर्णशाला से निकल, चन्क्रमण-भूमि पर चढ, कई बार इधर से उधर घूमा। प्रव्रज्या-श्री से वन को सुशोभित करते हुए वह योग-विधि के द्वारा, प्रव्रज्या के सातवें दिन आठ समापत्तिय और पाच अभिज्ञाये प्राप्त कर, फल-मूल चुग कर खाता हुआ अकेला ही रहने लगा।

(उधर) उसके माता-पिता, मित्र, सुहृद तथा रिश्तेदार भी उसे न देख, रोते हुए भटक रहे थे। एक वनवासी ने खैर के आश्रम मे बोधिसत्व को देख, पहचान, उसके माता-पिता को कहा। उन्होंने राजा को कहा। राजा ने "आओ, उसे देखने चलें "कहा और उस के माता-पिता को साथ ले, अनुयाइयों सहित, वनवासी के बताये मार्ग से गोदावरी के तीर पर पहुचा। बोधिसत्व ने नदी तट पर आ, आकाश मे बैठ, धर्मोपदेश दे, उन सबका आश्रम-प्रवेश कराया। वहा भी आकाश मे बैठे ही बैठे काम-भोगों के दोष दिखाते हुए धर्मोपदेश दिया। राजा से आरम्भ करके सभी प्रव्रजित हो गये। ऋषि-समूह से घिरे हुए बोधिसत्व वही रहने लगे।

उसके वहा रहने की बात सारे जम्बुद्वीप मे फैल गई। राष्ट्रवासियो सहित राजागण आकर उसके पास प्रव्रजित होने लगे,। बहुत लोग हो गये। क्रमश. उनकी सख्या कई हज़ार हो गई। जो कोई काम-भोग सम्बन्धी, क्रोध-सम्बन्धी अथवा विहिसा सम्बन्धी सकल्प-विकल्प मन मे उठाता, बोधिसत्व जाकर, उसके सामने आकाश मे स्थित हो उसे धर्मोपदेश देते, योग-विधि बताते। उसके उपदेशानुसार चल, समापत्ति प्राप्त कर, निष्णात हुए प्रधान शिष्य सात थे—सालिस्सर, मेण्डिस्सर,

पब्बत, काळदेवल, किसवच्छ, अनुसिस्स तथा नारद। आगे चलकर खैर-आश्रम भर गया। ऋषियों के रहने की जगह नही रही।

तब बोधिसत्व ने सालिस्सर को बुलाकर कहा—"सालिस्सर! यह आश्रम ऋषियों के लिये अपर्य्याप्त हो गया है। तू इन ऋषियों को ले जाकर चण्ड-प्रद्योत के राज्य मे लम्बचूलक कस्बे के आश्रय मे रह।" उसने 'अच्छा' कह, उसका कहना स्वीकार किया और अनेक सहस्र ऋषियों को ले, वहा जाकर रहने लगा। आने वाले आदमियों के कारण फिर आश्रम भर गया। बोधिसत्व ने मेण्डिस्सर को बुलाकर प्रेरित किया कि सुरट्ठजनपद की सीमा पर सातोदिका नाम की नदी है, तू इन ऋषियों को ले जाकर उसके किनारे रह। इसी प्रकार तीसरी बार पब्बत को 'महा-अटवी मे अजन-पर्वत है, उसके आश्रय में रह' कह कर भेजा। चौथी वार काळदेवल को 'दक्षिणपथ मे अवन्तिराज्य मे घन-शैल नामक पर्वत है, तू उसके आश्रय रह' कह कर भेजा। फिर खैर-आश्रम भर गया। पाचों स्थानो पर हजारों ऋषी जुट गये। किस-वच्छ बोधिसत्व की अनुज्ञा ले दण्डकी राजा के प्रदेश मे कुम्भवती नगर मे सेनापति के आश्रय से उद्यान मे रहने लगा, नारद मज्झिमदेश मे अरंजर-गिरि नामक पर्वत-श्रृङ्खला मे रहने लगा। अनुसिस्स बोधिसत्व के पास ही रहा।

उस समय दण्डकी राजा ने एक सत्कार-प्राप्त वैश्या को पद-च्युत कर दिया। उसने घूमते-घूमते उद्यान मे पहुच किसवच्छ तपस्वी को देखा। सोचा "यही मनहूस होगा। इसके शरीर पर थूक कर, स्नान करके जाऊगी।" उसने दातुन करते समय सबसे पहले बाहर गिरने वाला थूक किसवच्छ तपस्वी की जटाओं में ही गिराया और बाद मे दातुन भी उसकी जटाओं मे ही गिरा स्वय नहाकर गई। राजा ने भी उस की याद कर उसे पूर्व-पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। उसने मूढता के कारण "मनहूस के सिर पर थूकने से ही मुझे मेरा पद मिला" सूचना दी। उसके कुछ ही समय बाद राजा ने पुरोहित को पदच्युत कर दिया। उसने उस वैश्या से जाकर पूछा—"तुझे कैसे अपना पूर्व-पद प्राप्त हुआ?" उसका उत्तर था—"राजोद्यान मे मनहूस के सिर मे थूकने से।" पुरोहित ने भी जाकर उसी प्रकार उसके सिर मे थूका। राजा ने उसे भी उसके पूर्व-पद पर प्रतिष्ठित कर दिया।

आगे चल कर राजा के प्रत्यन्त—देश मे विद्रोह उठ खडा हुआ। वह सेना

को लेकर युद्ध के लिये निकला। मूढ पुरोहित ने राजा से पूछा—"महाराज! तुम जय चाहते हो, अथवा पराजय?" "जय" कहने पर, कहा—"तो उद्यान में एक मनहूस रहता है, उसके शरीर पर थूक कर आओ।" उसने उसका कहना मान आज्ञा दी—"मेरे साथ चलने वाले मनहूस के सिर पर थूकते चले।" यह कह, उद्यान जा, दातुन कर, सबसे पहले स्वय ही उसकी जटाओ मे थूका और दातुन भी वही फेक, स्नान किया। उसकी सेना ने भी वैसे ही किया। उसके चले जाने पर सेनापति ने तपस्वी को देखा और उसके सिर मे से दातुन निकलवा, अच्छी प्रकार स्नान करवा, पूछा—"राजा का क्या होगा?" "आयुष्मान्! हमारे मन मे तो क्षोभ नही है। किन्तु देवता कुपित हो गये है। आज से सातवे दिन सारा राष्ट्र अराष्ट्र हो जायेगा। तू शीघ्र ही भाग कर अन्यत्र चला जा।" उसने भय से त्रासित हो, जाकर राजा से कहा। राजा ने उसपर विश्वास नही किया। वह रुका, अपने घर गया तथा स्त्री-बच्चों को ले भाग कर दूसरे राष्ट्र को ही चला गया। सरभग शास्ता को ज्यो ही उस बात का पता लगा उन्होंने दो तरुण तपस्वियो को भेज किस-वच्छ तपस्वी को डोली में बिठा आकाश-मार्ग से मगवा लिया। राजा युद्ध कर, विद्रोहियों को पकड वापिस नगर लौट आया।

उसके आने पर देवताओ ने पहले वर्षा की। जब बरसात की बाढ सभी लाशो को बहा ले गई, तो शुद्ध बालू पर दिव्य-फूलो की वर्षा हुई। फूलो के ऊपर मासों की वर्षा, मासो के ऊपर कार्षायणो की वर्षा तथा कार्षायणों के ऊपर दिव्य आभरणों की वर्षा हुई। आदमियो ने प्रसन्न होकर सोने के गहनों को बटोरना आरम्भ किया। उस समय उनके शरीर पर नाना प्रकार के प्रज्वलित आयुधो की वर्षा हुई। आदमियों के टुकडे टुकडे हो गये। तब उनके ऊपर दहकते हुए अगारे गिरे। उनके ऊपर बडी बडी दहकती हुई चट्टाने। उसके ऊपर साठ हाथ जगह को भरने वाली सूक्ष्म-बालू की वर्षा हुई। इस प्रकार साठ योजन राष्ट्र उजड गया। उसका इस प्रकार नाश को प्राप्त हो जाना सारे जम्बुद्वीप मे प्रसिद्ध हो गया।

उस राष्ट्र के भीतर राज्य करने वाले तीन राजागण कालिग, अट्ठक तथा भीमरथ—सोचने लगे—"सुना था पूर्व समय मे वाराणसी मे कलाबू नाम के काशी-राज ने क्षान्ति-वादी तपस्वी के विरुद्ध अपराध करके पृथ्वी मे प्रवेश किया,

उसी, प्रकार नामिकीट राजा तपस्वी को कुत्तों से खिलाकर, सहस्रबाहू अर्जुन अगीरस के प्रति अपराधी होकर, और अब दण्डकी राजा किसवच्छ के प्रति अपराधी होकर सराष्ट्र विनाश को प्राप्त हुआ। हम नही जानते कि ये चारों राजागण कहा जाकर पैदा हुए। सरभंग शास्ता को छोडकर और कोई बता भी नही सकता। उसके पास चल कर पूछेगे।" वह तीनो जने बडे ठाट-बाट के साथ प्रश्न पूछने के लिये निकल पडे। वे यह नही जानते थे कि अमुक भी निकला है, और अमुक भी निकला है। अकेला अकेला यही सोचता था कि मे ही निकला हू। उनका गोदावरी के पास मिलाप हुआ। वे रथों से उतर एक ही रथ मे बैठ गोदावरी के तट पर पहुचे।

उस समय पाण्डु-वर्ण कम्बल शिलासन पर बैठे हुए शक्र के मन मे सात प्रश्न पूछने का विचार उत्पन्न हुआ। उसने सोचा कि सरभग शास्ता के अतिरिक्त और कोई भी सदेव लोक मे इन प्रश्नो का उत्तर नही दे सकता। मै उन्ही से ये प्रश्न पूछूगा। ये तीन राजागण भी प्रश्न पूछने के लिये ही गोदावरी के तट पर आपहुचे है। इन के प्रश्न भी मै पूछूगा।" यह सोच वह दोनों देव-लोको के देवताओ से घिरा हुआ देव-लोक से उतरा। उसी दिन किसवच्छ का देहान्त हो गया। उसका शरीर-कृत्य करने के लिये चारों स्थानो से हजारो ऋषिगण इकट्ठे हुए। उन्होन किसवच्छ के लिये चन्दन की चिता बना, शरीर का अग्नि-सस्कार किया। जलती हुई चिता के चारो ओर आध योजन भूमि मे दिव्य कुसुमो की वर्षा हुई।

बोधिसत्व उसके शरीर-कृत्य की समाप्ति पर आश्रम मे प्रवेश कर उन ऋषियों के हृदय में बैठे। उन राजाओ के भी नदी तट पर पहुचने के समय, महा-सेना-वाहन-तुर्य्य बाजा बजा। बोधिसत्व ने सुना तो अनुसिस्स तपस्वी को बुला कर कहा—"तात! जाकर देख कि यह क्या आवाज है?" वह पानी का घडा लेकर गया। वहां पहुच कर जब उसने उन तीन राजाओं को देखा, तो उनसे प्रश्न करते हुए पहली गाथा कही—

**अलङ्कता कुण्डलिनो सुवन्था**
**वेलुरिय मुत्ता थरुलग्गबद्धा**
**रथेसभा तिट्ठथ, के नु तुम्हे**
**कथं वो जानन्ति मनुस्स लोके ॥१॥**

[अलकृत. कुण्डलो वाले, सुवस्त्रधारी, बिल्लोर तथा मोतियों के दस्तोंवाली खड्ग को धारण किये हुए, हे रथों के स्वामीगण ! ठहरो। आप लोग कौन है ? आप लोगों को लोक मे कैसे सम्बोधन करते हैं ॥ १ ॥]

उसकी बात सुन, वे रथ से उतरे और नमस्कार करके खड़े हो गये। उनमे से अट्ठकराज ने उसके साथ बातचीत करते हुए दूसरी गाथा कही—

**अहं अट्ठको, भीमरथो पनायं**
**व कालिंगराजा पन उग्गतो अयं,**
**सुसञ्ञातानं इसिनं दस्सनाय**
**इधागता पुच्छिता येम्ह पञ्हे ॥२॥**

[मै अट्ठक हू, यह भीमरथ है, और यह प्रसिद्ध कालिग-नरेश है। हम लोग यहा सयमी ऋषियों के दर्शन कर उनसे प्रश्न पूछने के लिये आये हैं ॥ २ ॥]

उस तपस्वी ने उत्तर दिया—"महाराज ! अच्छा। जहा आना चाहिये, आप लोग वही आये है। स्नान कर, विश्राम कर, आश्रम मे जा, ऋषियों को प्रणाम कर शास्ता से प्रश्न पूछे।" फिर उन के साथ बातचीत कर, पानी का घडा उठा, नीचे लगा पानी पोछते हुए, उसने आकाश की ओर शक्र को देखा, जिसके साथ देव-राजाओं का समूह था, और जो ऐरावत के कन्धे पर बैठा आकाश से उतर रहा था। उसने शक्र से बातचीत करते हुए तीसरी गाथा कही—

**वेहासयं तिट्ठति अन्तलिक्खे**
**पथद्धुनो पण्णरसे व चन्दो,**
**पुच्छामि तं यक्ख महानुभाव**
**कथं नं जानन्ति मनुस्सलोके ॥३॥**

[हे आकाश मे, अन्तरिक्ष मे स्थित ! हे पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान आकाश-चारी ! हे महाप्रतापी यक्ष ! मै पूछता हू कि मनुष्य लोक मे (लोग तुम्हे कैसे सम्बोधन करते है ॥ ३ ॥]

यह सुन शक्र ने चौथी गाथा कही—

यं आहु देवेसु सुजम्पतीति
मघवति नं आहु मनुस्सलोके,
स देवराजा इदं अज्ज पत्तो
सुसञ्ञतानं इसिनं दस्सनाय ॥४॥

[जिसे देव-लोक मे 'सुजम्पति' कहते हैं और मनुष्य-लोक मे 'मघवा', वह मै देवेन्द्र आज यहा सुसञ्ञत ऋषियों के दर्शन के लिये आया हू ॥ ४ ॥]

तब अनुसस्स बोला—"अच्छा, महाराजाओं, आप पीछे पीछे आये।" उसने पानी का घडा उठाया और आश्रम मे प्रवेश कर पानी का घडा यथास्थान रख, तीनों राजाओं तथा देवेन्द्र के प्रश्न पूछने के लिये आने की बात बोधिसत्व को कही। वह ऋषियों के बीच मे बडे भारी मण्डप मे बैठा। तीनों राजा जाकर ऋषियों को प्रणाम कर एक ओर बैठे। शक्र ने भी उतर, ऋषिगणो के पास आ, हाथ जोड, ऋषियों की स्तुति करते हुए पाचवी गाथा कही—

दूरे सुता नो इसयो समागता
महिद्धिका इद्धिगुणूपपन्ना
वन्दामि ते अयिरे पसन्नचित्तो
ये जीव लोक एत्थ मनुस्स सेट्ठ ॥५॥

[हमने दूर से सुना था कि महान् ऋद्धि गुणों से युक्त ऋषियों का आगमन हुआ है। हे आर्यो! मै प्रसन्नचित्त हो, आप सबको, जो लोक मे श्रेष्ठ है प्रणाम करता हू ॥ ५ ॥]

इस प्रकार ऋषिगण को प्रणाम कर, बैठने के छ दोषो से बच, इन्द्र एक ओर बैठा। उसे ऋषियों से नीचे की हवा की ओर बैठे देख अनुसिस्स ने छठी गाथा कही—

गन्धो इसीनं चिरदक्खितानं
काया चुतो गच्छति मालुतेन,
इतो परक्कम्म सहस्सनेत्त
गन्धो इसीनं असुचि देवराज ॥६॥

[चिर-प्रव्रजित ऋषियों के शरीर से निकल कर हवा के जोर से गन्ध नीचे

की ओर जाती है। हे सहस्रनेत्र ! इससे बचे। हे देवराज ! ऋषियों की गन्ध दुर्गन्धयुक्त होती है ॥ ६ ॥]

यह सुन शक्र ने दूसरी गाथा कही—

**गन्धो इसीनं चिरदिक्खितानं**
**काया चुतो गच्छतु मालुतेन,**
**विचित्र पुप्फं सुरभिं व मालं**
**गन्धं एतं पाटिकंखाय भन्ते,**
**न हेत्थ देवा पटिक्कूल सञ्ञिनो ॥७॥**

[चिर-प्रव्रजित ऋषियों के शरीर की गन्ध भले ही हवा के जोर से नीचे की ओर जाय। भन्ते ! हम इस गन्ध को विचित्र फूलों की माला की सुगन्ध की तरह मानते हैं। देवताओं को इसमें प्रति-कूल भावना नहीं होती ॥ ७ ॥]

इतना कह, फिर निवेदन किया—"भन्ते अनुसिस्स ! मैं बड़े उत्साह से प्रश्न पूछने आया हूं। हमें आज्ञा हो।"

उसने उसकी बात सुनी तो आसन से उठ, ऋषिगण से अनुज्ञा मांगते हुए दो गाथायें कही—

**पुरिन्ददो भूतपती यसस्सी**
**देवानं इन्दो मघवा सुजम्पति**
**स देवराजा असुर (गण) प्पमद्दनो**
**ओकासं आकंखति पञ्ह पुच्छितुं ॥८॥**
**को नेव इमेसं इध पण्डितानं**
**पञ्हे पुठो निपुणे ब्याकरिस्सति**
**तिण्णं च रञ्ञं मनुजाधिपानं**
**देवानं इन्दस्स च वासवस्स ॥९॥**

[यह 'पुरिंदद', 'भूत-पति', 'यशस्वी', 'देवेन्द्र', 'मघवा', 'सुजम्पति', असुरों का मर्दन करने वाला देव-राज प्रश्न पूछने की अनुज्ञा चाहता है ॥ ८ ॥ यहां उपस्थित इन पण्डितों में से कौन इन तीन राजाओं के तथा देवेन्द्र शक्र के सूक्ष्म प्रश्नों का उत्तर देगा ॥ ९ ॥]

यह बात सुनी तो ऋषि-गण "मित्र ! अनुसिस्स ! तू पृथ्वी पर खड़े होकर पृथ्वी नही दिखाई देती जैसी बात कह रहा है, सरभग शास्ता को छोड़ और कौन इन प्रश्नों का उत्तर दे सकता है ?" कह यह गाथा कही—

**अयं इसी सरभंगो तपस्सी**
**यतो जातो विरतो मेथुनस्मा**
**आचरियपुत्तो सुविनीतरूपो**
**सो नेसं पञ्हानि वियाकरिस्सति ॥१०॥**

[यह तपस्वी सरभग ऋषि है। जन्मकाल से ही मैथुन-धर्म से विरत रहा है। आचार्य्य-पुत्र है। विनयी है। वही इनके प्रश्नों का उत्तर देगा॥ १० ॥]

यह कह ऋषिगण ने अनुसिस्स को कहा—"मित्र ! तू ही शास्ता को प्रणाम कर ऋषि-गणों की ओर से शक्र के लिये प्रश्न पूछने की अनुज्ञा ले दे।" उसने 'अच्छा' कह, स्वीकार कर, शास्ता की वन्दना कर अनुज्ञा मागते हुए अगली गाथा कही—

**कोण्डञ्ञ पञ्हानि वियाकरोहि,**
**याचन्ति तं इसयो साधुरूपा,**
**कोण्डञ्ञ एसो मनुजेसु धम्मो**
**यं बुद्धं आगच्छति एस भारो ॥११॥**

[हे कोण्डञ्ञ (-गोत्र) ! प्रश्नो का उत्तर दे। साधुरूप ऋषि-गण तुझसे प्रार्थना करते है। हे कोण्डञ्ञ (-गोत्र) ! यही मनुष्यो की रीति है कि जो ज्येष्ठ होता है, उसी पर यह भार आता है॥ ११ ॥]

तब बोधिसत्व ने अनुज्ञा देते हुए अगली गाथा कही—

**कतावकासा पुच्छन्तु भोन्तो**
**यं किञ्चि पञ्हं मनसाभिपत्थितं**
**अहं हि तं तं वो वियाकरिस्सं**
**ञत्वा सयं लोकं इमं परं च ॥१२॥**

[आप लोगो को अनुज्ञा है। आप लोग जो मन मे आये प्रश्न पूछे। मै ही इस लोक तथा परलोक का जानकार होने से उस प्रश्न का उत्तर दूगा ॥ १२ ॥]

इस प्रकार अनुज्ञा मिलने पर शक्र ने अपने मन का प्रश्न पूछा।
इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

**ततो च मघवा सक्को अत्थदस्सी पुरिंददो**
**अपुच्छि पठमं पञ्हं यञ्चासि अभिपत्थितं ॥१३॥**
**किं सु वधित्वा न कदाचि सोचति**
**किस्स प्पहानं इसयो वण्णयन्ति**
**कस्सीध वुत्तं फरूसं खमेथ,**
**अक्खाहि मे कोण्डञ्ञ एतमत्थं ॥१४॥**

[तब 'मघवा', 'शक्र', 'अर्थदर्शी', 'पुरिंदर', 'देवेन्द्र' ने जो मन मे था, वह पहला प्रश्न पूछा ॥ १३ ॥ किसका वध करने से कभी पछतावा नही होता ? किस (चीज) के त्याग की ऋषि-गण प्रशंसा करते है ? किस के कठोर-वचन को सहन करना चाहिये ? हे कोण्डञ्ज (गोत्र) मुझे यह बात बताये ॥ १४ ॥]

तब प्रश्न का उत्तर देते हुए—

**कोधं वधित्वा न कदाचि सोचति,**
**मक्खप्पहानं इसयो वण्णयन्ति**
**सब्बेसं वुत्तं फरूसं खमेथ**
**एतं खन्तिं उत्तमं आहु सन्तो ॥१५॥**

[क्रोध का वध करने से कभी पछतावा नही होता। ऋषि-गण ढोग के त्याग की प्रशंसा करते है। सभी के कठोर-वचन को सहन करना चाहिये—सन्त-पुरुषों ने इसे ही उत्तम शान्ति कहा है ॥ १५ ॥]

शक्र—

**सक्का हि द्विन्नं वचनं तितिक्खितुं**
**सदिसस्स वा सेट्ठ नरस्स वापि**
**कथं नु हीनस्स वचो खमेथ**
**अक्खाहि मे कोण्डञ्ञ एतमत्थं ॥१६॥**

[अपने बराबर वाले के अथवा अपने से श्रेष्ठ के—इन दो जनो के वचनों को तो

हन किया जा सकता है। हे कोण्डञ्ञ (गोत्र) ! मुझे यह बता कि अपने से नीचे : वचन को कैसे सहन करे ? ॥ १६ ॥]

बोधिसत्व—

**भया हि सेटठस्स वचो खमेथ**
**सारम्भहेतु पन सदिसस्स**
**यो चीध हीनस्स वचो खमेथ**
**एतं खन्तिं उत्तमं आहु सन्तो ॥१७॥**

[अपने से ऊचे का (कठोर) वचन भय से सहन किया जाता है। बराबर ाले का झगडे के डर से। यह जो अपने से नीचे वाले के वचन का सहन करना है, से ही सन्त-पुरुष उत्तम शान्ति कहते हैं ॥ १७ ॥]

यह सुन शक्र बोला—"भन्ते ! पहले तो आपने कहा 'सभी के वचन को सहन रना चाहिये ' और बाद मे कहा 'यह जो अपने से नीचे वाले के वचन को हन करना है. ', सो इस मे पूर्वापर का मेल नही बैठता।" बोधिसत्व का त्तर था—"शक्र ! पिछली बात मैंने यह नीच (जाति का) है, जानकर उसके ठोर वचन सहने के बारे में कही, और क्योंकि शक्ल देखने मात्र से प्रणियों की ष्ठता आदि का पता नही चलता, इस लिये पहली बात कही।" फिर बिना सहवास : केवल शक्ल देखने मात्र से प्राणियो की श्रेष्ठता आदि का पता लगना कठिन है। स बात को स्पष्ट करने के लिये गाथा कही—

**कथं विजञ्ञा चतुमटठरूपं**
**सेय्यं सरिक्खं अथवापि हीनं**
**विरूप रूपेन चरन्ति सन्तो**
**तस्माहि सब्बेसं वचो खमेथ ॥१८॥**

[उठने बैठने आदि चार प्रकार के अचारणों से ही यह कैसे जाना जा सकता कि कौन श्रेष्ठ है, कौन बराबरी का है और कौन (अपने से) हीन है ? श्रेष्ठ-न भी कुरूप अवस्था मे घूमते है। इस लिये सभी के वचन को सहन करे ॥ १८ ॥]

यह सुन शक्र सन्देह-रहित हुआ। तब उसने प्रार्थना की—"भन्ते ! इस शान्ति ा महात्म्य कहे।"

बोधिसत्व——

**न हेतं अत्थं महती पि सेना**
**सराजिका युज्झमाना लभेथ**
**यं खन्तिमा सप्पुरिसो लभेथ,**
**खन्तीबलस्स ऊपसमन्ति वेरा ॥१९॥**

[राजा सहित बड़ी भारी सेना भी कभी युद्ध करके उस चीज को प्राप्त नहीं कर सकती, जिसे क्षमा-शील सत्पुरुष प्राप्त कर लेता है। क्षमा से ही वैर शान्त होता है॥ १९॥]

इस प्रकार बोधिसत्व के क्षमा की महिमा प्रकाशित करने पर वे राजा सोचने लगे—"शक्र अपने प्रश्न पूछता है। हमें पूछने का अवसर नहीं देगा?" शक्र ने उनका आशय समझ अपने सोचे हुए शेष चार प्रश्न न पूछ उनकी जिज्ञासा उपस्थित की—

**सुभासितं ते अनुमोदियानं**
**अञ्ञं तं पुच्छामि, तद इंघ ब्रूहि**
**यथा अहू दण्डकी नाळिकीरो**
**अथ अज्जुनो कलाबु चापि राजा**
**तेसं गतिं ब्रूहि सुपापकम्मिनं**
**कत्थूपपन्ना इसिनं विहेठका ॥२०॥**

[आपके सुभाषित का अनुमोदन करते हुए, मैं दूसरा भी प्रश्न पूछता हूं, वह मुझे कहें। दण्डकी, नालिकीर, अर्जुन तथा कलाबु राजा का क्या हुआ? उन पापियों की गति कहिये। ऋषियों को कष्ट देने वाले कहां उत्पन्न हुए? ॥ २०॥]

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए बोधिसत्व ने पांच गाथायें कहीं—

**किसं पि वच्छं अवकिरिय दण्डकी**
**उच्छिन्नमूलो सजनो सरट्ठो**
**कुक्कुलनामे निरयम्हि पच्चति**
**तस्स पुलिंगानि पतन्ति काये ॥२१॥**

**यो सञ्ञते पब्बजिते अवञ्चसि**
**धम्मं भणन्ते समणे अदूसके**
**तं नाळिकीरं सुनखा परत्थ**
**संगम्म खादन्ति विफन्दमानं ॥२२॥**
**अथ अज्जुनो निरये सत्तिसूले**
**अवंसिरो पतितो अद्धपादो**
**अंगीरसं गोतमं हेठयित्वा**
**खन्तिं तपस्सिं चिरब्रह्मचारिं ॥२३॥**
**यो खण्डसो पब्बजितं अछेदयि**
**खन्तिं वदन्तं समणं अदूसकं**
**कलाबु योचि उपपज्ज पच्चति**
**महाभितापं कटुकं भयानकं ॥२४॥**
**एतानि सुत्वा निरयानि पण्डितो**
**अञ्ञानि पापिट्ठतरानि चेत्थ**
**धम्मं चरे समणब्राह्मणेसु**
**एवं करो सग्गं उपेति ठानं ॥२५॥**

[दण्डकी ने किसवच्छ (तपस्वी) के शरीर पर जो थूकना आदि किया, उससे वह तथा उसकी जनता और राष्ट्र निर्मूल हो गया। वह कुक्कुल नामक नरक में जलता है। उसके शरीर पर अगारे गिरते है ॥ २१ ॥ जिस नाळिकीर राजा ने धर्मोपदेशक, निर्दोष, सयत, प्रव्रजित श्रमणो को ठगा, उस राजा को परलोक मे कुत्ते इकट्ठे होकर खाते है, और वह छटपटाता है ॥ २२ ॥ क्षमाशील, चिरब्रह्मचारी, तपस्वी अगीरस गौतम को कष्ट देने के कारण अर्जुन शक्ति-शूल नरक मे सिर नीचे, पैर ऊपर करके पडा है ॥ २३ ॥ जिस कलाबु राजा ने क्षमाशील, निर्दोष, प्रव्रजित श्रमण के टुकडे टुकडे किये, वह महान् ताप-युक्त, कटु, भयानक अवीची नरक मे पडा जलता है ॥ २४ ॥ पण्डित (जन) को चाहिये कि इन नरकों की बात सुनकर और यह जानकर कि इन से भयानक और भी नरक है, श्रमण-ब्राह्मणों के प्रति धर्माचरण करे। ऐसा करने से स्वर्ग-लाभ होता है ॥ २५ ॥]

इस प्रकार जब बोधिसत्व ने चारों राजाओं का क्या हुआ, कह दिया, तो तीनों राजा विगत-सन्देह हो गये। तब शक्र ने अपने शेष चारों प्रश्न पूछते हुए गाथा कही—

**सुभासितं ते अनुमोदियानं**
**अञ्ञं तं पुच्छामि, तद इङ्घ ब्रूहि,**
**कथं विधं सीलवन्तं वदन्ति,**
**कथं विधं पञ्ञावन्तं वदन्ति,**
**कथं विधं सप्पुरिसं वदन्ति,**
**कथं विधं नो सिरि नो जहाति ॥२६॥**

[आपके सुभाषित का अनुमोदन करते हुए अन्य प्रश्न पूछता हूँ, उसका उत्तर दें। कैसा आदमी शीलवान् कहलाता है? कैसा आदमी प्रज्ञावान् कहलाता है? कैसा आदमी सत्पुरुष कहलाता है? कैसे आदमी को सौभाग्य नही छोडता है? ॥ २६ ॥]

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए बोधिसत्व ने चार गाथाये कही—

**कायेन वाचाय च योच सञ्ञतो**
**मनसा च किञ्चि न करोति पापं**
**न अत्थहेतु अलिकं भणाति**
**तथाविधं सीलवन्तं वदन्ति ॥२७॥**
**गम्भीरपञ्ञं मनसाभिचिन्तयं**
**नाच्चाहितं कम्म करोति लुद्दं**
**कालाभतं अत्थपदं न रिञ्चति**
**तथाविधं पञ्ञावन्तं वदन्ति ॥२८॥**
**यो वे कतञ्ञू कतवेदि धीरो**
**कल्याणमित्तो दळहभत्ति च होति**
**दुक्खितस्स सक्कच्च करोति किच्चं**
**तथाविधं सप्पुरिसं वदन्ति ॥२९॥**

**एतेहि सब्बेहि गुणेहि उपेतो**
**सद्धो, मुदु, संविभागी वदञ्ञू**
**संगाहकं सखिलं सण्हवाचं**
**तथाविधं नो सिरि नो जहाति ॥३०॥**

[जो काय, वाक् तथा मन से संयत है, और मन से भी कोई पाप-कर्म नही करता, तथा स्वार्थ के लिये झूठ नही बोलता—ऐसे व्यक्ति को सदाचारी कहते है ॥२७॥ जो मन से गम्भीर प्रश्न को सोचता है, जो लोभ के वशीभूत हो आत्म-हित के विरुद्ध नही करता, क्रमागत अवसर को हाथ से नही जाने देता; वैसा आदमी प्रज्ञावान् कहलाता है ॥ २८ ॥ जो कृतज्ञ हो, कृत-उपकार का बदला चुकाने वाला हो, कल्याणप्रिय हो, दृढ-भक्तिमान हो, दुखी का उपकार करने के लिए उद्यत हो—वैसे आदमी को सत्पुरुष कहते है ॥ २९ ॥ इन सब गुणों से युक्त जो श्रद्धावान् होता है, मृदु होता है, सविभागी होता है, प्रज्ञावान् होता है, संग्राहक होता है, मधुर-भाषी होता है, स्निग्ध होता है—ऐसे आदमी को श्री नही छोडती ॥ ३० ॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने आकाश मे चन्द्रमा के उगाने की तरह प्रश्नों का उत्तर दिया । उसके आगे शेष प्रश्न और उनका उत्तर है—

**सुभासितं ते अनुमोदियानं**
**अञ्ञं ते पुच्छामि, तद इङ्घ ब्रूहि,**
**सीलं सिरी चापि सतं च धम्मा**
**पञ्ञा च कं सेट्ठतरं वदन्ति ॥३१॥**

[तेरे सुभाषित का अनुमोदन करता हुआ, मैं तुझ से दूसरा प्रश्न पूछता हूँ, वह कह। शील, सौभाग्य, सत्पुरुषों का धर्म और प्रज्ञा—इन मे सर्व श्रेष्ठ क्या है ? ॥ ३१ ॥]

**पञ्ञाहि सेट्ठा कुसला वदन्ति**
**नक्खत्तराजारिव तारकानं**
**सीलं सिरी चापि सतं च धम्मा**
**अन्वायिका पञ्ञवतो भवन्ति ॥३२॥**

[ (अर्थ-)कुशल लोग प्रज्ञा को ही श्रेष्ठ कहते है। यह तारागण मे चन्द्रमा के समान है। शील, सौभाग्य तथा सत्पुरुषों के धर्म प्रज्ञावान के अनुयायी होते है॥ ३२ ॥]

**सुभासितं ते अनुमोदियानं**
**अञ्ञं तं पुच्छामि, तद इंघ ब्रूहि**
**कथंकरो कितिकरो किं आचरं**
**किं सेवमानो लभतीध पञ्ञं**
**पञ्ञाय दानि पटिपदं वदेहि**
**कथंकरो पञ्ञवा होति मच्चो॥३३॥**

[तेरे सुभाषित का अनमोदन करता हूँ। दूसरी बात पूछता हूँ . .वह कह। कैसे करने से, क्या करने से, किस आचरण से तथा कैसी संगति से आदमी को प्रज्ञा का लाभ होता है ? अब प्रज्ञा का पथ कह। आदमी कैसे प्रज्ञावान बनता है ?॥ ३३ ॥]

**सेवेथ वद्धे निपुणे बहुस्सुते**
**उग्गाहको वा परिपुच्छको सिया**
**सुणेय्य सक्कच्च सुभासितानि,**
**एवंकरो पञ्ञवा होति मच्चो॥३४॥**
**स पञ्ञवा कामगुणे अवेक्खति**
**अनिच्चतो दुखतो रोगतो च**
**एवं विपस्सी पजहाति छन्दं**
**दुक्खेसु कामेसु महब्भयेसु॥३५॥**
**स वीतरागो पविनेय्य दोसं**
**मेत्तं चित्तं भावये अप्पमाणं**
**सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डं**
**अनिन्दितो ब्रह्मं उपेति ठानं॥३६॥**

[जो (ज्ञान) वृद्ध है, जो दक्ष है, जो बहुश्रुत है, ऐसे लोगों की संगति करे। उनसे ग्रहण करने वाला तथा प्रश्न पूछने वाला बने। उनके सुभाषित को मनोयोग

पूर्वक सुने। ऐसा करने से आदमी प्रज्ञावान होता है ॥ ३४ ॥ जो प्रज्ञावान् काम-भोगों को अनित्य, दुःख और रोग करके जानता है, वह दुःख-रूप, भय-रूप काम-भोगों के प्रति अपनी आसक्ति छोड देता है ॥ ३५ ॥ वह वीत-राग द्वेष-मुक्त होकर असीम मैत्री की भावना करता है। वह सभी प्राणियों के प्रति दण्ड-त्यागी होकर निर्दोष जीवन व्यतीत करता हुआ ब्रह्म-लोक को प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥]

इस प्रकार बोधिसत्व के काम-भोगों के दोष प्रकट करने पर, उन तीनों विशाल-काय राजाओं की तात्कालिक रूप से काम-भोगों के प्रति आसक्तिनष्ट हो गई। यह जान बोधिसत्व ने उनकी प्रशंसा करते हुए गाथा कही—

**महिद्धियं आगमनं अहोसि**
**तव-म-अट्टका भीमरथस्स चापि**
**कालिंगराजस्स च उग्गतस्स**
**सब्बेसं वो कामरागो पहीनो ॥३७॥**

[बडी बात हुई। तुम्हारी, भीमरथ की, उग्रतेज कालिग नरेश की— सभी की काम-भोगों के प्रति, तात्कालिक रूप से आसक्ति समाप्त हो गई ॥ ३७ ॥]

यह सुन राजाओ ने बोधिसत्व की स्तुति करते हुए गाथा कही—

**एवं एतं परचित्तवेदी**
**सब्बेसं नो कामरागो पहीनो,**
**करोहि ओकासं अनुग्गहाय**
**यथा गतिं ते अभिसम्भवेम ॥३८॥**

[इस प्रकार आप दूसरे के चित्त की जान लेते है। हम सब की काम-भोग सम्बन्धी आसक्ति प्रहीण हो गई है। कृपा कर, हमें प्रव्रजित होने की अनुज्ञा दे, जिससे हम भी आपकी गति को प्राप्त हों ॥ ३८ ॥)

उन्हे अनुज्ञा देते हुए बोधिसत्व ने अगली गाथा कही—

**करोहि ओकासं अनुग्गहाय**
**तथा हि वो कामरागो पहीनो,**
**फरथ कायं विपुलाय पीतिया**
**यथा गतिं मे अभिसम्भवेथ ॥३९॥**

[क्योंकि तुम्हारी काम-भोग सम्बन्धि आसक्ति (तात्कालिक रूप से) छूट गई है, तो तुम्हे करुणा पूर्वक अनुज्ञा है कि (प्रव्रज्या ग्रहण) करो। सारे शरीर में विपुल प्रीति का सचार करो, जिससे मेरी अवस्था का अनुभव कर सको ॥ ३९ ॥]

यह सुन उन्होंने स्वीकार करते हुए गाथा कही—

**सब्बं करिस्साम तवानुसासनं**
**यं पं तुवं वक्खसि भूरिपञ्ञ**
**फराम कायं विपुलाप पीतिया**
**यथागतिं ते अभिभ्भवेम ॥४०॥**

[हे महान् प्रज्ञ ! जो जो तू आज्ञा देगा, हम तेरी सब आज्ञाओं का पालन करेंगे। हम सारे शरीर मे विपुल प्रीति का संचार कर लेंगे, जिससे हम तेरी अवस्था का अनुभव कर सके ॥ ४० ॥]

बोधिसत्व ने उनकी सेना को भी प्रव्रज्या दिला ऋषियों को प्रेरित करते हुए कहा—

**कतायं वच्छस्स किसस्स पूजा**
**गच्छन्तु भोन्तो इसयो साधुरुपा**
**झानेरता भोथ सदा समाहिता**
**एसा रती पब्बजितस्स सेट्ठा ॥४१॥**

[वच्छ किच्छ की पूजा हो गई। अब आप साधुरूप ऋषिगण अपने अपने आश्रम जाये। सदैव एकाग्रचित्त हो ध्यान मे रत रहे। प्रव्रजित की यही श्रेष्ठ अनुरक्ति है ॥ ४१ ॥]

ऋषियों ने उसका कथन शिरोधारण किया, और उसे नमस्कार कर, उठकर अपने अपने स्थान को चले गये। शक्र भी आसन से उठ, बोधिसत्व की स्तुति कर, हाथ जोड, सूर्य्य को नमस्कार करते हुए बोधिसत्व को नमस्कार कर सपरिषद चला गया।

इस बात को जान शास्ता ने ये गाथायें कहीं—

**सुत्वान गाथा परमत्थसंहिता**
**सुभासिता इसिना पण्डितेन**
**ते वेदजाता अनुमोदमाना**
**पक्कामु देवा देवपुरं यसस्सिनो ॥४२॥**

**गाथा इमा अत्थवती सुब्यञ्जना**
**सुभासिता इसिना पण्डितेन**
**यो कोचि इमा अट्ठिकत्वा सुणेय्य**
**लभेथ पुब्बापरियं विसेसं**
**लद्धान पुब्बापरियं विसेसं**
**अदस्सनं मच्चुराजस्स गच्छे ॥४३॥**

[पण्डित ऋषि द्वारा कही गई अर्थ-भरी गाथाओं को सुनकर, उनके अर्थ का अवबोध कर और उनका अनुमोदन कर यशस्वी देवगण देव-लोक सिधारे ॥४२॥ पण्डित ऋषि द्वारा कही गई इन अर्थ-वान तथा सुव्यञ्जन-युक्त गाथाओं को जो कोई एकाग्र चित्त होकर सुनेगा, वह प्रथम-ध्यान आदि लाभ करेगा और उन्हें लाभ कर मृत्यु-राज की सीमा को लाघ जायेगा ॥ ४२ ॥]

इस प्रकार शास्ता ने अर्हत्व को ही धर्म-देशना के सिर पर रख 'भिक्षुओ, न केवल अभी, किन्तु पहले भी मोग्गल्लान की दाह-क्रिया के समय पुष्प-वर्षा हुई है' कह जातक का मेल बैठाते हुए—

**सालिस्सरो सारिपुत्तो मेण्डिस्सरो च कस्सपो**
**पब्बतो अनुरुद्धो च कच्चायनो च देवलो**
**अनुसिस्सो च आनन्दो किसवच्छो च कोलितो**
**सरभंगो बोधिसत्तो, एवं धारय जातकं ॥४४॥**

[सालिस्सर सारिपुत्र थे, मेण्डिस्सर काश्यप, पर्वत अनुरुद्र, देवल कच्चायन, अनुशिष्य आनन्द, किसवच्छ कोलित और सरभंग तो बोधिसत्व ही था—इस प्रकार इस जातक को समझना चाहिये ॥४४॥]

## ५२३. अलम्बुस जातक

"अथ ब्रवी..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय पूर्व-भार्य्या द्वारा लुभाये जाने के बारे में कही।

### क वर्तमान कथा

कथा इन्द्रिय-जातक[1] में आयेगी ही। शास्ताने उस भिक्षु को "भिक्षु, क्या तू सचमुच उद्विग्न है?" पूछ, "भन्ते, सचमुच" कहने पर "किसने, उद्विग्न किया?" प्रश्न किया। उत्तर मिला—"पूर्व भार्य्या ने।" "भिक्षु, यह स्त्री तेरा अनर्थ करने वाली है, इसके कारण तेरा ध्यान नष्ट हुआ, और तीन वर्ष तक तू मूढ-मद-होश होकर पड रहा। होश आने पर बहुत रोया पीटा" कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

### ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व काशी राष्ट्र में ब्राह्मण-कुल में जन्म ग्रहण कर, बडे होने पर सब शिल्पों में निष्णात हो, ऋषियों के प्रव्रज्या-क्रम के अनुसार प्रव्रजित हो, जगल मे फल-मूल खाकर रहने लगा।

एक हिरनी थी। उसने उसके पेशाव करने की जगह पर उत्पन्न घास खाई और पानी पिया। इतने से ही वह उसमे आसक्त हो गई और उसे गर्भ रह गया। उसके बाद से वह वहीं आकर आश्रम के आस-पास ही चरने लगी। बोधिसत्व ने विचार किया तो उसे इस बात का पता लगा।

आगे चलकर उस हिरनी ने एक बालक को जन्म दिया। बोधिसत्व उसे पुत्र-स्नेह से पालने लगे। उसका नाम हुआ ऋषि शृङ्ग। जब उसने होश संभाला

---

१. इन्द्रिय जातक (४२३)

तो उसे प्रव्रजित कर, अपने बूढ़ा होने पर, उसे अपने साथ नारी-वन ले गया। और उपदेश दिया—"तात! इस हिमालय प्रदेश में इन पुष्पों के सदृश स्त्रियाँ हैं। जो उनके वश में हो जाते हैं, उन्हें वे जड़मूल से नष्ट कर डालती हैं। उनके वश में नहीं आना चाहिए।" इस प्रकार उपदेश दे, आगे चलकर वह ब्रह्मलोक गामी हुआ।

ऋषि-शृङ्ग भी ध्यान-क्रीडा करता हुआ, हिमालय में रहने लगा, घोर-तपस्वी। उसने अपनी इन्द्रियों को जैसे मार ही डाला था। उसके शील के तेजसे शक्र-भवन काँप उठा।

शक्र ने ध्यान दिया, तो उसे इस बात का पता लगा। वह डरा कि कहीं यह मुझे 'शक्रत्व' से न धकेल दे। उसने तै किया कि एक अप्सरा को भेज कर इसका 'शील' खण्डित कराऊँगा। उसने सारे देव-लोक में खोज की। अपनी ढाई-करोड़ सेविकाओं में उसे एकमात्र अलम्बस अप्सरा ही ऐसी दिखाई दी जो उसके 'शील' को खण्डित कर सके। उसने, उसे बुला, उसका 'शील' खण्डित करने की आज्ञा दी।

इस अर्थ को प्रगट करते हुए शास्ता ने यह गाथा कही—

**अथ अब्रवी ब्रह्म इन्दो वत्रभू जयतं पिता**
**देवकञ्ञं पराभेत्वा सुधम्भायं अलम्बुसं ॥१॥**

[तब महान, वत्रभू, जयत-पिता, इन्द्र ने सुधर्मा में देवकन्या को समर्थ जान उस अलम्बुस को कहा॥ १॥]

**मिस्से देवा तं याचन्ति तावतिंसा सेन्डका**
**इसिं पलोभिके गच्छ इसिसिंगं अलम्बुसे ॥२॥**

[हे मिश्रे! इन्द्र सहित त्रयोत्रिंश देवता तुझे चाहते हैं। हे ऋषियों को लुभाने में समर्थ आलम्बसे! ऋषि-शृङ्ग के पास जा॥ २॥]

शक्र ने आलम्बुस को आज्ञा दी, "जा ऋषि-शृङ्ग के पास जा और उसे अपने वश में कर, उसका 'शील' खण्डित कर।"

**पुरायं अम्हे अच्चेति वतवा ब्रह्मचरियवा**
**निब्बानाभिरतो वद्धो तस्स मग्गानि आचर ॥३॥**

[इससे पहले कि यह निर्वाण-रत, ज्ञान-वृद्ध तपस्वी हमें व्रत से और ब्रह्मचर्य से लाँघ जाय, तू उसके मार्ग का अवरोध कर।। ३ ।।]

यह सुन अलम्बुस ने दो गाथायें कहीं—

**देवराजा किमेव त्वं, मं एव तुवं सिक्खसि**
**इसिं पलोभिके, सन्ति अञ्ञापि अच्छरा ।।४।।**
**मादिसियो पवरा चेव असोके भंडने वने,**
**तासंपि होतु परियायो, तापि यन्तु पलोभिका ।।५।।**

[हे देवराज! क्या कारण है कि तू मेरी ही ओर देखता है कि हे 'लुभाने वाली ऋषि के पास जा'। इस अशोक नन्दन-वन में मेरे समान दक्ष और भी नो अप्सरायें हैं। उन्हें भी अवसर मिले। वे भी 'लुभाने वाली' बनें।। ५।।]

तब शक्र ने तीन गाथायें कहीं—

**अद्धा हि सच्चं भणसि, सन्ति अञ्ञापि अच्छरा,**
**तादिसियो पवरा चेव असोके नन्दने वने ।।६।।**
**न ता एवं पजानन्ति परिचरियं पुमं गता**
**यादिसं त्वं पजानासि नारि सब्बंगसोभने ।।७।।**
**त्वं एव गच्छ कल्याणि, इत्थीनंपवरा चसि,**
**तं एव वण्णरूपेन वसं आनामयिस्ससि ।।८।।**

[यह तू निश्चय से सत्य कहती है कि अन्य भी अप्सरायें हैं, तेरे ही समान दक्ष, इस अशोक नन्दन-वन में ।।७।। हे सर्वांग शोभनी नारी! जिस प्रकार तू पुरुषों की परिचर्य्या करना जानती है, उस प्रकार दूसरी नहीं जानती है ।। ७ ।। हे कल्याणी! तू ही स्त्रियों में (अधिक) दक्ष है, इसलिये तू ही जा। तू ही अपने वर्ण और रूप से उसे वश में लायगी ।। ८ ।।]

यह सुन अलम्बुसा ने दो गाथायें कहीं—

**न वाहं न गमिस्सामि देवराजेन पेसिता,**
**विहेमि चेतं आसादुं, उग्गतेजो हि ब्राह्मणो ।।९।।**
**अनेके निरयं पत्ता इसिं आसादिया जना**
**आपन्ना मोहसंसारं, तस्मा लोमानि हंसये ।।१०।।**

[ऐसा नही है कि देवराज की भेजी हुई मै नही जाऊँगी। किन्तु मै उसे लुभाती हुई डरती हूँ, क्योंकि तपस्वी उग्र-तेज वाला है। ऋषि को लुभाने वाले अनेक मोह-ग्रस्त जन नरकगामी हुए है। इसलिये मै डरती हूँ ॥१०॥)

ये सम्बुद्ध-गाथाये है—

**इदं वत्वान पक्कामि अच्छरा नाम वण्णिनी**
**मिस्सा मिस्सेतुं इच्छन्ती इसिसिंगं अलम्बुसा ॥११॥**
**सा च नं वनं ओगय्ह इसिसिंगेन रक्खितं**
**बिम्बिजालकसञ्छन्नं समन्ता अडढयोजनं ॥१२॥**
**पातोव पातरासम्हि उदण्हसमयं पति**
**अग्गिट्ठं परिमज्जन्तं इसिसिंगं उपागमि ॥१३॥**

[यह कहकर अलम्बुसा नाम की अप्सरा ऋषि-शृङ्ग को लुभाने की इच्छा से (उसके आश्रम की ओर) चल दी ॥ ११ ॥ वह चारों ओर आधे योजन तक रक्त-कुरुक वर्ण वन से आछन्न, ऋषि-शृङ्ग द्वारा सुरक्षित वन मे पहुँची ॥१२॥ प्रात काल ही, सूर्योदय के समय जब ऋषि-शृङ्ग अग्नि-शाला मे झाडू लगा रहा था, वह ऋषि-शृङ्ग के पास पहुंची॥ १३ ॥]

उस तपस्वी ने उससे पूछा—

**का नु विज्जु दिवाभासि ओसधी विय तारका**
**विचित्रहत्थाभरणा आमुत्तमणिकुण्डला ॥१४॥**
**आदिच्चवण्णसंकासा हेमचन्दनगन्धनी**
**सञ्जतूरु महामाया कुमारी चारुदस्सना ॥१५॥**
**विलोका मुदुका सुद्धा, पादा ते सुप्पतिट्ठिता**
**कमना कमनीया तं हरन्ती जेव मे मनो ॥१६॥**
**अनुपुब्बा वाते ऊरू नागनाससमूपमा**
**विमट्ठा तुय्हं सुस्सोणी अक्खस्स फलकं यथा ॥१७॥**
**उप्पलस्सेव किञ्जक्खा नाभि ते साधुसण्ठिता**
**पुरा कण्हञ्जनस्सेव दूरतो पतिदिस्सति ॥१८॥**

दुविधा जाता उरजा अवण्टा साधुपच्चुदा
पयोधरा अप्पतीता अद्धलाबुसमा थना ॥१९॥
दीघा कम्बुतलाभासा गीवा एणेय्यका यथा
पण्डरावरणा वग्गु चतुत्थमनसन्निभा ॥२०॥
उद्धग्गा च अधग्गा च दुमग्गपरिमज्जिता
दविजा नेलसम्भूता दन्ता तव सुदस्सना ॥२१॥
अपण्दरा लोहितन्ता जिञ्जुकफलसन्निभा
आयता च विसाला च नेत्ता तव सुदस्सना ॥२२॥
नातिदीघा सुसम्मट्ठा कनकग्गासमोचिता
उत्तमंगरुहा तुय्हं केसा चन्दनगन्धिका ॥२३॥
यावता कसिगोरक्खा वाणिजानं च या गीत
इसीनं च परक्कन्तं सञ्ञतानं तपस्सीनं ॥२४॥
न ते समसमं पस्से अस्मिं पुथुविमण्डले
कोवा त्वं कस्स वा पुत्तो, कथं जामेसु तं मयं ॥२५॥

[तू कौन है जो विद्युत की तरह चमकती है ? कौन है जो औषध नक्षत्र के समान प्रकाशमान है ? कौन है जिसके हाथों मे विचित्र आभरण है ? कौन है जिसके कानों मे मोतियो तथा मणि के कुण्डल है ? ॥ १४ ॥ आदित्य-वर्ण,स्वर्ण-वर्ण चन्दन से सुगन्धित, गोल-मटोल जाँघ वाली, महामाया, सुदर्शनीय कुमारी तू कौन है ? ॥ १५ ॥ हे मध्यम आकार वाली, मृदु स्वभाव वाली, शुद्ध, प्रतिष्ठि पादों वाली ! तेरी गति मेरे मन का हरण करती ही है ॥ १६ ॥ हाथी की सूण्ड की तरह तेरी जाँघ क्रमश मोटी होती चली गई है और सोने के पटडे की तरह तेरा पिछला हिस्सा विशाल है ॥ १७ ॥ तेरी नाभी कवल के डोडे के समान सुस-स्थित है, और तू मसिवर्ण कालिख की तरह दूर से ही चमकती है ॥ १८ ॥ तेरे दो स्तन बिना डण्ठल के भलि प्रकार बाहर निकले हुए स्थित है, दूध से भरे हुए हैं, भीतर धंसे हुए नही है और आधे कद्दु के समान है ॥ १९ ॥ तेरी गर्दन शंख के तल के समान चिकनी और हिरन के समान लम्बी है, दातों के वर्ण की है और जिह्वा के समान (लचकदार) है ॥ २० ॥ तेरे ऊपर और नीचे के दाँत दातुन से साफ

किये हुए है, द्वि-जन्मा है, निर्दोष है तथा दर्शनीय है ॥२१ ॥ तेरी आँखे काली है, सिरों पर रक्त वर्ण है, चौडी है, विशाल है और दर्शनीय है ॥ २२ ॥ तेरे सिरके बाल अधिक लम्बे नही है, सुसंस्थित है, सोने की चिपटी से तैल-सिंचित है तथा चन्दन की गन्ध वाले है ॥२३ । ऋषि, गो-रक्षण तथा वाणिज्य से जीविका चलाने वालों की जैसी स्थिति होती है और संयत, तपस्वी, पराक्रमशील ऋषियों की जो स्थिति होती है, उनमे से किसी की भी स्थिति ऐसी नही है जिसे इस भूमि मण्डल मे तेरे समान कहा जा सके। तू कौन है ? किसकी सन्तान है ? हम तुझे कैसे जाने ॥२४-२५॥]

इस प्रकार सिर से पैर तक अपने रूप का वर्णन सुन अलम्बुसा ने चुप हो, उस की बात-चीत से उसे मुग्ध हुआ जान गाथा कही—

**न पञ्हकालो भद्दं ते कस्सप एवं गते सति,**
**एहि सम्भ रमिस्साम उभो अम्हाकं अस्समे**
**एहि तं उपगूहिस्सं रतीनं कुसलो भव ॥२६॥**

[हे काश्यप ! तेरे चित्त की ऐसी अवस्था हो जाने पर अब यह प्रश्न पूछने का समय नही है। आ मित्र ! हम दोनों अपने आश्रम मे रमण करे और तू गुह्य रतियो मे कुशल हो जा ॥ २६ ॥]

यह कह अलम्बुसा ने सोचा—"यह मेरे खडी रहने पर पास नही आयेगा, मुझे जाने वाली की तरह होना चाहिए।" वह स्त्री-माया मे कुशल होने से तपस्वी के चित्त को चलायमान कर जिधर से आई थी, उधर ही चली गई।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

**इदं वत्वान पक्कामि अच्छरा कामवण्णिनी**
**मिस्सा मिस्सेतुं इच्छन्ती इसिसिंगं अलम्बुसा ॥२७॥**

[यह कह काम-भोगों की महिमा गाने वाली अलम्बुसा अप्सरा ऋषिशृङ्ग के साथ रमण करने की इच्छा को लेकर चलती बनी ॥ २७ ॥]

उसे जाते देख तपस्वी ने "यह चली जा रही है" सोच अपने ढीले पराक्रम युक्त मन्दगमन को छोड, तेजी से भाग कर उसके केशों को हाथ लगाया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

**सो च वेगेन निक्खम्भ छेत्वा दन्धपरक्कमं**
**तं उत्तमासु वेणीसु अज्झापत्तो परामसि ॥२८॥**
**तं उदावत्तं कल्याणी पलिस्सजि सुसोभना**
**चवि तम्हि ब्रह्मचर्य्या यथा तं अथ तोसिता ॥२९॥**
**मनसा आगमा इन्दं वसंतं नन्दने वने**
**तस्सा संकप्पं अञ्ञाय मघवा देवकुञ्जरो**
**पल्लंकं पहिणी सिप्पं सोवण्णं सोपवाहनं ॥३०॥**
**सौत्तरच्छदपञ्ञासं सहस्सपटियत्थतं**
**तं एनं धारेसि उरे कत्वान सोभना ॥३१॥**
**यथा एकमुहुत्तं व तीणि वस्सानि धारयि**
**विमदो तीहि वस्सेहि पटिबुज्झित्वान ब्राह्मणो ॥३२॥**
**अदस्सासि हरीरुक्खे समन्ता अग्गियापनं**
**नव पत्त वनं फुल्लं कोकिलगण घोसितं ॥३३॥**
**समन्ता पविलोकेत्वा रुदं अस्सूनि वत्तयि**
**न जुहे न जपे मन्ते अग्गिहुत्तं अहापितं ॥३४॥**
**को नु मे पारिचरियाय पुब्बे चित्तं पलोभयि**
**अरञ्ञे मे विहरतो यो मे तेजा ह सम्भतं**
**नाना रतन परिपूरं नावं व गण्हि अण्णवे ॥३५॥**

[उसने जल्दी से निकल, अपने ढीले-ढाले पन को छोड उसे उत्तम वेणी से जा पकड़ा ॥ २८ ॥ उस सुन्दरी कल्याणी ने रुक कर उसका आलिगन किया। उसके ब्रह्मचर्य्य से च्युत होने पर, वह जैसे इन्द्र चाहता था वैसा होने के कारण सन्तुष्ट हुई ॥२९॥ उसके मन की बात जान कर नन्दन-वन मे रहने वाले देवेन्द्र, मघवा, इन्द्र ने शीघ्र उपवाहन सहित सोने का पलँग भेजा ॥३०॥ हजार कम्बल बिछे और पचास ओढने वाले उस पलग पर वह सुन्दरी उसे छाती पर लिटाये रही ॥३१॥ वह उसे तीन वर्ष तक ऐसे ही लिटाये रही, मानो एक ही क्षण बीता हो। तीन वर्ष के बीतने पर विगत-मद ब्राह्मण को होश आया ॥ ३२ ॥ उसने अग्नि-

शाला को चारों ओर से हरित-वर्ण वृक्षों से घिरे देखा जिनमे नये पत्ते फूट आये थे और जहाँ कोयल की कूक थी।। ३३ ।। चारो ओर देखने से उसकी आँखों से आंसुओं की धार बहने लगी। उसका यज्ञ करना तथा मन्त्र-जाप छूट गया। उसका अग्नि-होत्र जाता रहा ।।३४ ।। वह रोता था—"किसने मेरी परिचर्य्या करके मेरे चित्त को लुभाया ? किसने जगल मे विहार करते हुए मेरे तेज से उत्पन्न ध्यान को उसी प्रकार नष्ट कर दिया जैसे कोई नाना रत्नों से भरी नौका को समुद्र मे डुबो दे।। ३५ ।।]

यह सुन अलम्बुसा सोचने लगी--"यदि मैं उसे नही बताऊँगी तो यह मुझे श्राप दे देगा। मैं उसे बताऊँगी।" उसने प्रकट रूप से यह गाथा कही—

**अहं ते पारिचरियाय देवराजेन पेसिता**
**अवधी चित्तं चित्तेन पमादा त्वं न बुज्झसि ।।३६।।**

[मुझे देवेन्द्र ने भेजा था। मैंने परिचर्य्या द्वारा अपने चित्त से तेरे चित्त का वध किया। तू प्रमाद के कारण नही समझता है।। ३६ ।।]

उसने उसकी बात सुनी तो पिता के उपदेश को यादकर "मैंने पिता की आज्ञा का पालन नही किया, इसी लिये महा विनाश को प्राप्त हुआ" कह रोते हुए चार गाथायें कही—

**इमानि किर मं तातो कस्सपो अनुसासते**
**कमला सरिसित्थियो, तायो बुज्झेसि माणव,**
**उरे गण्डायो बुज्झेसि, तायो बुज्झेसि माणव**
**इच्चानुसासि मं तातो यथा मं अनुकम्पको ।।३७-३८।।**
**तस्साहं वचनं नाकं पितु वुद्धस्स सासनं**
**अरञ्ञे निम्मनुस्सम्हि स्वज्ज झायामि एकको ।।३९।।**
**सोहं तथा करिस्सामि धि-र-त्थु जीवितेन मे**
**पुन वा तादिसो हेस्सं, मरणं मे भविस्सति ।।४०।।**

[मेरे तात काश्यप ने मुझे यह शिक्षा दी थी कि स्त्रियों को आदमी पुष्प सदृश

समझता है, किन्तु वे गले की ग्रन्थी होती हैं, यह बात (भी) आदमी (बाद को) समझता है। मेरे दयालु पिता ने मुझे यह शिक्षा दी थी ॥ ३७-३८॥ मैंने अपने वृद्ध पिता की आज्ञा का पालन नही किया। इस लिये आज मैं इस एकात जगल मे अकेला सोच मे पडा हूँ। मैं वैसा करूँगा। मेरे जीवन को धिक्कार है। मैं फिर वैसा ध्यान-लाभी होऊँगा। मेरी मृत्यु निश्चित है ॥३९-४० ॥]

उसने काम-भोग की आसक्ति त्याग ध्यान लाभ किया। उसके श्रमण-तेज तथा ध्यान लाभ को देख अलम्बुसा ने डर के मारे उससे क्षमा मागी।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने दो गाथाये कही—

**तस्स तेजं च विरियं च धितिं च ञत्वा अवत्थितं**
**सिरसा अग्गहि पादे इसिसिगं अलम्बुसा ॥४१॥**
**मा मे कुज्झि महावीर, मा मे कुज्झि महाइसि**
**महा अत्थो मया चिण्णो तिदसानं यसस्सिनं**
**तया पकम्पितं आसि सब्बं देवपुरं तदा ॥४२॥**

[उसके तेज, वीर्य्य तथा धृति को पुनः स्थिर हुआ जान अलम्बुसा ने ऋषि-शृङ्ग के पैरो पर अपना सिर रख दिया ॥ ४१ ॥ हे महावीर ! मुझ पर क्रोध न करे। हे महर्षि ! मुझ पर क्रोध न करें। मैने त्रयोत्रिश लोक के यशस्वी देवताओं के कहने से बडा (अन-) अर्थ किया। उस समय तूने सारे देव-लोक को कंपा दिया था ॥ ४२ ॥]

उसने 'भद्रे ! तुझे क्षमा करता हूँ, सुख पूर्वक जा" कह विदा करते हुए गाथा कही—

**तावतिंसा च ये देवा तिदसानं च वासवो**
**त्वं च भद्दे सुखी होहि, गच्छ कञ्ञे यथासुखं ॥४३॥**

[त्रयोत्रिश-लोक के देवता तथा उन का इन्द्र और हे भद्रे ! तू सुखी हो। हे कन्या ! तू सुखपूर्वक जा ॥ ४३ ॥]

वह उसे नमस्कार कर उसी स्वर्ण-पलंग से देव पुर-गई।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने तीन गाथाये कही—

**तस्स पादे गहेत्वान कत्वा च नं पदक्खिणं**
**अञ्जलिं पग्गहेत्वान तम्हा ठाना अपक्कमि ॥४४॥**
**यो च तस्सासि पल्लंको सोवण्णसोपवाहनो**
**सौत्तरच्छदपञ्ञासो सहस्सपटियत्थतो**
**तं एव पल्लंकं आरुय्ह अगा देवान संतिके ॥४५॥**
**तं ओक्कं इव आयन्तिं जलं तं विज्जुतं यथा**
**पतीतो सुमनो वित्तो देविन्दो अदवा वरं ॥४६॥**

[उसके पैर पकड, उसकी प्रदक्षिणा कर तथा उसे नमस्कार कर वह वहाँ से चली गई ॥ ४४ ॥ उसका जो उपवाहन सहित स्वर्ण-पलंग था, जिस पर पचास ओढने तथा हजार कम्बल थे, वह उसी पलंग पर चढकर देवताओं के पास गई ॥ ४५ ॥ उसे प्रदीप की तरह, प्रज्वलित बिजली की तरह आते देख सन्तुष्ट-चित्त देवेन्द्र ने वर दिया ॥ ४६ ॥]

उसने उस से 'वर' की याचना करते हुए अन्तिम गाथा कही—

**वरं चे मे अदो सक्क सब्बभूतानं इस्सर**
**न इसि पलोभियं गच्छे, एतं सक्क वरं वरे ॥४७॥**

[हे सभी प्राणियों के ईश्वर इन्द्र ! यदि तू मुझे 'वर' देना चाहता है तो मैं तुझ से यही 'वर' मांगती हूँ कि मुझे फिर ऋषि को लुभाने न जाना पडे ॥४७ ॥]

शास्ता ने उस भिक्षु को यह धर्म-देशना ला, सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों का प्रकाश होने पर वह भिक्षु श्रोतापत्ति-फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय अलम्बुसा पूर्व-भार्य्या थी, ऋषिशृङ्ग उदविग्न-भिक्षु था, और महर्षि पिता तो मैं ही था।

# ५२४ सङ्खपाल जातक

"अरियावकासो सी..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय उपोसथ-कर्म के बारे मे कही। उस समय शास्ता ने "उपोसथ-व्रत धारी उपासकों पर प्रसन्न हो पुराने पण्डितों ने बडे भारी नाग-ऐश्वर्य को छोड उपोसथ-व्रत धारण किया" कह उनके प्रार्थना करने पर पूर्व जन्म की कथा कही—

## क. अतीत कथा

पूर्व समय मे राजगृह मे मगध-नरेश राज्य करता था। उस समय बोधिसत्व ने उस राजा की पटरानी के गर्भ से जन्म ग्रहण किया। उसका नाम दुर्योधन रखा गया। उसने बडे होने पर तक्षशिला जा, शिल्प सीख, वापिस आकर पिता का दर्शन किया। पिता ने उसका राज्याभिषेक कर, स्वय ऋषि-प्रव्रज्या ली और जंगल मे रहने लगा। बोधिसत्व दिन मे तीन बार पिता के दर्शन के लिये जाता। (पिता का) लाभ-सत्कार बहुत बढ गया। उस बाधा से उसे योगाभ्यास के लिये भी अवकाश नही मिलने लगा, तो वह सोचने लगा, "मेरा लाभ-सत्कार बहुत है। यहाँ रहकर मै इस जजाल से नही निकल सकता। पुत्र को बिना सूचित किये मै अन्यत्र चला जाऊँगा।" उसने किसी को सूचना नही दी और उद्यान से निकल, मगध राष्ट्र का अतिक्रमण कर महिसक राष्ट्र मे, शङ्खपाल सरोवर से निकली कर्णपेण्ण नदी के तट पर स्थित चन्द्रक पर्वत के आश्रय मे पर्णशाला बना वहाँ रहने लगा। वहाँ रहते समय योग-विधि का अभ्यास कर ध्यान तथा अभिज्ञा प्राप्तकर, फल-मूल चुग कर जीवन-यापन करता था।

सङ्खपाल नाम का नाग-राज कर्णपेण्ण नदी से निकल बहुत से अनुयाइयो के साथ बीच बीच मे उसके पास आता। वह उसे धर्मोपदेश देता। उसके पुत्र की इच्छा पिता का दर्शन करने की हुई। वह नही जानता था कि वह कहां गया है?

उसने पता लगवाया और जब उसे पता लगा कि 'अमुक स्थानपर रहता है' तो उसका दर्शन करने के लिये बहुत से अनुयाइयोंके साथ वहाँ पहुँच, एक ओर छावनी डाल, कुछ अमात्यों को साथ ले आश्रम की ओर गया। उस समय शङ्खपाल अनेक अनुयाइयों सहित बैठा धर्मोपदेश सुन रहा था। जब उसने उस राजा को आते देखा तो वह ऋषि को प्रणाम कर उठकर चला गया। राजा ने पिता को प्रणाम किया और कुशल-क्षेम पूछ, बैठकर प्रश्न किया— "भन्ते! यह तुम्हारे पास कौन सा राजा आया था?"

"तात! यह सङ्खपाल नागराज था।" उसने वहाँ की सम्पत्ति के कारण नाग-भवन के लिये मन मे लोभ उत्पन्न कर, कुछ दिन वही रह, पिता को निरन्तर भिक्षा दिलवा, अपने नगर लौट कर, चारों द्वारों पर दान-शालाये बनवा, सारे जम्बुद्वीप को क्षुब्ध-कर दान दे, शीलों की रक्षा कर, उपोसथ-व्रत रख, नाग-भवन मे पैदा होने की इच्छा की। आयु पूरी होने पर वह नाग-भवन में पैदा हो शङ्खपाल नागराजा हुआ। समय बीतने पर उसे उस सम्पत्ति से विरक्ति हो गई। तब स वह मनुष्य-योनि की इच्छा करता हुआ उपोसथ-व्रत करने लगा। नाग-भवन मे रहते समय उसका उपोसथ-व्रत पूरा न होता। शील-नाश हो जाता। तब से वह नाग-भवन से कर्णपेण्ण नदी से नातिदूर महामार्ग तथा पग-डण्डी के बीच एक बॉबी को घेर, उपोसथ-व्रत ले, दान-चेतना युक्त हो पड़ रहता। उसका संकल्प होता 'जिन्हे मेरा चर्म चाहिए वे मेरा चर्म आदि ले जायँ और जिन्हे मेरा मांस चाहिये वे वे मास आदि ले जायँ।' वह अपना बलिदान कर, बाँबी के मुंह पर पडा पडा, श्रमण-धर्म पूरा करता हुआ चतुर्दशी तथा पूर्णिमा के दिन वहाँ रह, प्रतिपदा को नाग-भवन जाता।

एक दिन जब वह इस प्रकार शील ग्रहण किये पडा था, सीमाप्रदेश के सोलह ग्राम वासी हाथों मे हथियार ले मांस लाने के लिये जंगल में निकले। जब उन्हें जंगल मे कुछ न मिला और उन्होंने बाँबी पर पड़े हुए उस (नागराज) को देखा तो रुक कर सोचने लगे—"आज हमें गोह का मांस तक भी नहीं मिला। हम इस नाग-राजा का वध करके खायेंगे।" फिर सोचा, "यह बहुत बडा है। पकड़े जाने पर भाग भी जा सकता है। इसे पड़े ही पड़े, इसके फन को शूलो

से बीध, दुर्बल करके पकडेगे।" यह विचार कर वे शूल लेकर पास आये ।

बोधिसत्व का शरीर भी बडा था, एक द्रोणी नौका भर। वह ऐसा लगता था मानों फूलों की माला लपेट कर रखी हो। आँखे जिञ्जुक फल के समान थी। सिर जय सुमन के समान था। इस प्रकार वह बहुत ही सुन्दर लगता था। उसने उन सोलह जनों की पदध्वनि सुन, फन मे से सिर बाहर कर, लाल आँखे खोल, उन्हें हाथ मे शूल लिये आते देख सोचा, "आज मेरा मनोरथ पूरा होगा। मैं अपना बलिदान करके दृढ सकल्प करके पडा हूँ। ये जिस समय मेरे शरीर को शक्ति से कूट कूट कर टुकडे टुकडे करेगे, तो मै क्रोध भरी आँखे खोल कर इनकी ओर न देखूँगा।" अपने शील के खण्डित होने के डर से उसने दृढ संकल्प किया और सिर को फन के अन्दर ही कर पड़ रहा।

वे उसके पास पहुँचे और उसे पूँछ से पकड, खींच कर जमीन पर गिराया और तेज शूलों से आठ स्थानों पर बीधा। फिर काँटेदार काली बेत की लकडियो को जखमों में घुसा, आठ जगहों से बैहगी पर उठा वे मार्गारूढ हुए। बोधिसत्व ने शूलों से बिध जाने के बाद से एक जगह भी क्रोध भरी आँखे खोलकर उनकी ओर नही देखा। जब वे उसे आठ बैहगियों पर ढोये लिये जा रहे थे, उसका सिर लटक कर जमीन से टकराया। उन्होंने "इसका सिर लटकता है" सोच, उसे महामार्ग पर लिटा, उसके नथनों को छोटे शूलों से बीध, उनमे रस्सी डाल, सिर को उठा, सिरे से लटकाया और फिर उसे उठा मार्गारूढ़ हुए।

उस समय विदेह राष्ट्र के मिथिला नगर का आळार नामक गृहस्थ, पाँच सौ गाडियाँ ले, आराम से गाडी मे बैठा जा रहा था। उसने उन ग्रामीणों को बोधिसत्व को इस प्रकार ले जाते देखा। उसने उन सभी सोलहजनों को एक एक लद्दू बैल, पसत पसत भर सोने के मासे, ओढ़ने-बिछाने के वस्त्र तथा उनकी भार्य्याओं के लिए वस्त्र-आभरण दे कर विदा किया। नाग-राज ने नागभवन पहुँच, बिना विलम्ब किये, बहुत से अनुयाइयो के साथ बाहर आ, आळार के पास पहुँच, नाग-भवन की महिमा सुना, उसे नाग-भवन में ले जा, तीन सौ नाग-कन्याओं के साथ बहुत ऐश्वर्य्य दे, दिव्य काम-भोगों से सन्तुष्ट किया। आळार नागभवन में वर्ष भर रहा। वहाँ

रहते समय दिव्य काम-भोगों का उपभोग कर "मित्र ! मैं प्रव्रजित होना चाहता हूँ" कह नागराज से प्रव्रजित-परिष्कार ले, नागभवन से हिमालय-प्रदेश पहुँचा। वहाँ प्रव्रजित हो चिरकाल तक रहा। आगे चलकर चारिका करता हुआ, वाराणसी पहुँच, राजोद्यान में रह, भिक्षार्थ नगर में प्रवेश कर राज-द्वार पर पहुँचा।

वाराणसी-नरेश ने देखा तो उसके चलने-फिरने के ढग पर प्रसन्न हो, उसे बुला, बिछे-आसन पर बिठाया। फिर नाना प्रकार के श्रेष्ठ भोजन खिला, स्वय एक नीचे आसन पर बैठ, प्रणाम कर, उसके साथ बातचीत करते हुए पहली गाथा कही—

**अरियावकासो सि पसन्ननेत्तो**
**मञ्ञे भवं पब्बजितो कुलम्हा**
**कथं नु वित्तानि पहाय भोगे**
**पब्बजि निकखम्म घरा सपञ्ञा ॥१॥**

[हे प्रज्ञावान् ! तू सुन्दरवर्ण है, प्रसन्न-नेत्र है। लगता है कि तू किसी (श्रेष्ठ) कुल से प्रव्रजित हुआ है। तू किस प्रकार धन और भोगों को छोड घर से बे-घर हो प्रव्रजित हुआ ? ॥१॥]

इसके आगे की गाथामे तपस्वी तथा राजा का वार्तालाप है —

तपस्वी—

**सयं विमानं नरदेव दिस्वा**
**महानुभावस्स महोरगस्स**
**दिस्वान पुञ्ञानं महाविपाकं**
**सद्धाय'हं पब्बजितोम्हि राज ॥२॥**

[हे नरदेव ! महा प्रतापवान् नागराज के विमानों को स्वयं देखकर और पुण्यो के महान् फल को देखकर मै श्रद्धा से प्रव्रजित हुआ हूँ ॥२॥]

राजा—

**नकामकामा न भया न दोसा**
**वाचं मुसा पब्बजिता भणन्ति,**
**अक्खाहि मे पुच्छितो एतमत्थं**
**सुत्वान मे जायिहिति प्पसासादो ॥३॥**

[न काम (भोगों) की कामना से, न भय से और न द्वेष से ही प्रव्रजित लोग झूठ बोलते है। इसलिए मै जो यह बात पूछ रहा हूँ, मुझे कहें। सुनने से मेरे मनमे प्रसाद पैदा होगा ॥३॥]

तपस्वी—

**वणिज्ज रट्ठाधिप गच्छमानो**
**पथे अद्दसासिं हि मिलाचपुत्ते**
**पवट्ठ कायं उरगं महन्तं**
**आदाय गच्छन्ते पमोदमाने ॥४॥**

[हे राजन्! मैने व्यापार के लिए जाते समय रास्ते में ग्रामवासियों को विशाल-काय नागराज को प्रमुदित मन हो ले जाते हुए देखा ॥४॥]

तपस्वी—

**सोहं सभागम्म जनिन्द तेहि**
**संहट्ठ लोभो अवचस्मि भीतो**
**कुहिं अयं नीयति भीमकायो**
**नागेन किं काहथ भोजपुत्ता ॥५॥**

[हे राजन्! मैने उनके पास पहुँच रोमाञ्चित हो डर कर कहा—हे भोज-पुत्रो! इस विशाल-काय को तुम कहाँ ले जा रहे हो? तुम इस नागराज का क्या करोगे? ॥५॥]

तपस्व —

**नागो अयं नीयति भोजनत्थं**
**पवट्टकायो उरगो महन्तो**
**सादुं च थूलं च मुदुं च मंसं**
**न त्वं रसमञ्ञासि विदेहपुत्त ॥६॥**

[ (उन्होंने मुझे कहा.—) यह विशाल-काय बड़ा भारी नाग भोजन के लिए ले जाया जा रहा है। इसका माँस स्वादु है, स्थूल है तथा मृदु है। हे विदेह-पुत्र! तू इसके रस को नही जानता ॥६॥]

तपस्वी—

**इतो मयं गन्त्वा सकं निकेतनं**
**आदाय सत्थानि विकोपयित्वा**
**मंसं भोक्खाय पमोदमाना**
**मयं हि वो सत्तवो पन्नगानं ॥७॥**

[(वे बोले—) यहाँ से हम अपने अपने घर जा कर, शस्त्र ले, काट, प्रमुदित-बन हो इसका माँस खायेंगे। हम नागों के शत्रु है ॥७॥]

तपस्वी—

**सचे अयं नीयति भोजनत्थं**
**पवट्ट कायो उरगो महन्तो**
**ददामि वो बलिवट्टानि सोळस**
**नागं इमं मुञ्चथ बन्धनस्मा ॥८॥**

[(मैंने कहा—) यदि उस विशाल-काय महान् नाग को भोजन के लिए लिये जा रहे हो, तो मैं तुम्हे सोलह बैल देता हूँ। इस नाग को बन्धन से मुक्त कर दो ॥८॥]

तपस्वी—

**अद्धा हि नो भक्खो अयं मनापो**
**बहू च नो उरगा भुत्तपुब्बा**
**करोम ते तं वचनं आळार**
**मित्तं च नो होहि विदेहपुत्त ॥९॥**

[(वे बोले—) निश्चय से यह हमारा श्रेष्ठ भोजन है। हमने इससे पहले बहुत से साँप खाये है। किन्तु हे अळार ! हम तेरा कहना करते है। तू हमारा मित्र बन ॥९॥]

तपस्वी—

**तद अस्सु ते बन्धना मोचयिंसु**
**यं नत्थुतो पटिमोक्खस्स पासे**
**मुत्तो च सो बन्धना नागराजा**
**पक्कामि पाचीनमुखो मुहुत्तं ॥१०॥**

[तब उन्होंने उसे बन्धन से मुक्त कर दिया और जो रस्सी उसके नाक में डाली थी, वह खोल दी। उस बन्धन से मुक्त होकर वह नागराज कुछ देर तक पूर्वाभिमुख गया ॥१०॥]

तपस्वी—

**गन्त्वान पाचीनमुखो मुहुत्तं**
**पुण्णेहि नेत्तेहि पलोकयी मं**
**तदस्स अहं पिट्ठितो अन्वगञ्छं**
**दसङ्गुलिं अंजलिं पग्गहेत्वा ॥११॥**

[थोडी देर पूर्वाभिमुख जा कर उसने मेरी ओर (अश्रु-) पूर्ण नेत्रों से देखा। मैं भी दसों अंगुलियों वाले हाथ जोड उसके पीछे पीछे चला ॥११॥]

तपस्वी—

**गच्छेव खो त्वं तरमानरूपो**
**मा तं अमित्ता पुनरग्गहेसुं**
**दक्खोहि लुद्देहि पुन समागमो**
**अदस्सनं भोजपुत्तांन गच्छ ॥१२॥**

[(मैंने कहा—) तू यथाशीघ्र चला जा। तेरे शत्रु कहीं तुझे फिर न पकड ले। दुबारा शिकारियों के हाथ पड जाना दुःखदायी होगा। उन ग्रामवासियों की आँख से ओझल हो जा ॥१२॥]

तपस्वी—

**अगमासि सो रहदं विप्पसन्नं**
**नीलोभासं रमणीयं सुतित्थं**
**समोततं जम्बुहि वेतसाहि**
**पावेक्खि निक्खिणभयो पतीतो ॥१३॥**

[वह उस तालाब में जा पहुँचा, जो शान्त था, जो नील-वर्ण था, जो रमणीय था, जो सुतीर्थ था और जिसके दोनों ओर जम्बु तथा बेत की शाखायें घिरी हुई थी। वह निर्भय तथा प्रसन्न चित्त होकर उसमें प्रविष्ट हुआ ॥१३॥]

तपस्वी—

**सो तं पविस्स नचिरस्स नागो**
**दिब्बेन मे पातुरअहू जनिन्द**
**उपट्ठहि मं पितरं व पुत्तो**
**हृदयंगमं कण्णसुखं भणंतो ॥१४॥**

[हे राजन ! वह नाग उस तालाब मे प्रविष्ठ हो अचिर-काल मे ही दिव्य रूप मे प्रकट हुआ। उसने हृदय तक पहुचने वाली, कर्ण-सुख वाणी बोलते हुए मेरी उसी प्रकार सेवा की जैसे पुत्र पिता की करता है ॥१४॥]

तपस्वी—

**त्वं मे सि माता च पिता च अळार**
**अब्भन्तरो पाणददो सहायो**
**सकं च इद्धिं पटिलाभितोस्मि**
**अळार पस्स मे निवेसनानि**
**पहुतभक्खं बहुन्नपानं**
**मसक्कसारं विय वासवस्स ॥१५॥**

[(वह बोला—) हे अळार ! तू मेरा माता-पिता है। तू मेरा हार्दिक प्राणदाता मित्र है। मै (तेरी कृपा से) अपन ऐश्वर्य्य को प्राप्त हुआ हूँ। हे अळार ! मेरे भवन देख। वहां भोजन तथा अन्न-पान बहुत है और वह इन्द्र के भवन के समान है—सिमेरु पर्वत-राज पर निर्मित ॥१५॥]

महाराज ! यह कह उस नागराज ने अपने भवन की प्रशसा करते हुए और भी दो गाथायें कहीं—

**तं भूमिभागेहि उपेतरूपं**
**असक्खरा चेव मुद्धु सुभा च**
**नीचातिणा अप्पराजा च भूमि**
**पासादिका यत्थ जहन्ति सोकं ॥१६॥**
**अनावकुला वेळुरियूपनीला**
**चतुद्दिसं अम्बवनं सुरम्मं**

**पक्का च पेसी च फला सुफुल्ला**
**निच्चोतुका धारयन्ति फलानि ॥१७॥**

[उस (भवन) के चारों ओर कंकर-पत्थर रहित, कोमल, सुन्दर, छोटे तृणों से युक्त तथा धूलि-विहीन ऐसी चित्त को प्रसन्न करने वाली भूमि है, जहाँ जाने से शोक का नाश हो जाता है ॥१६॥ वहाँ की भूमि समतल है। वहाँ बिल्लौर के समान नीली पुष्करिणियाँ हैं। उसके चारों ओर सुन्दर आम्रवन है, जिनमें पके और अधपके आम लगे हैं। ये वन सभी वस्तुओं के योग्य फलों को धारण करते हैं ॥१७॥]

तपस्वी—

**तेसं वनानं नरदेव मज्झे**
**निवेसनं भस्सरसन्निक्कासं**
**रजतग्गळं सोवण्णमयं उळारं**
**ओभासती विज्जुरिव अन्तलिक्खे ॥१८॥**

[हे नरदेव! उन वनों के मध्य प्रभास्वर भवन के दरवाजे चान्दी के थे, वह स्वर्णमय था, वह विशाल था और वह ऐसे चमकता था जैसे अन्तरिक्ष में बिजली ॥१८॥]

तपस्वी—

**मणिमया सोवण्णमया उळारा**
**अनेकचित्ता सततं सुनिम्मिता**
**परिपूरकञ्ञाहि अलङ्कताहि**
**सुवण्णकायूरधराहि राज ॥१९॥**

[मणिमय, स्वर्णमय, विशाल, सुचित्रित तथा सतत रूप से सुनिर्मित वह भवन सोने के बाजू-बन्द पहने अलंकृत कन्याओं से भरा भरा था ॥१९॥]

तपस्वी—

**सो संखपालो तरमानरूपो**
**पासादं आरुय्ह अनोमवण्णो**
**सहस्सथम्भं अतुलानुभावं**
**यत्थ अस्स भरिया महेसी अहोसि ॥२०॥**

[वह श्रेष्ठ वर्ण वाला शंखपाल शीघ्रता से उस प्रासाद पर चढ़ गया जिसके हजार खम्भे थे और जिसका असीम प्रताप था, तथा वहाँ पहुँचा जहाँ उसकी भार्य्या बैठी थी ॥२०॥]

तपस्वी—

**एका च नारी तरमानरूपा**
**अदाय बेळुरियमयं महग्घं**
**सुभं मणि जातिमन्तूपपन्नं**
**अचोदिता आसनं अभिहासि ॥२१॥**

[उस समय बिना नागराज के कहे ही एक नारी शीघ्रता से बिल्लौरमय, महार्घ, सुन्दर, मणियुक्त आसन ले आयी और उसे बिछा दिया ॥२१॥]

तपस्वी—

**ततो मं उरगो हत्थे गहेत्वा**
**निसीदयी पमुखं आसनस्मिं**
**इदं आसनं अत्रभवं निसीदतु**
**भवं हि मे अञ्ञतरो गरूनं ॥२२॥**

[तब नागराज ने मुझे हाथ से पकड आसन पर प्रमुखस्थान पर बिठाया। वह बोला—"आप इस आसन पर बैठें। आप मेरे आदरणीयों मे एक है।" ॥२२॥]

तपस्वी—

**अञ्ञा च नारी तरमानरूपा**
**आदाय वारिं उपसंकमित्वा**
**पादानि पक्खालयि मे जनिन्द**
**भरिया च भत्तु पतिनो पियस्स ॥२३॥**

[एक और नारी शीघ्रता से पानी ले कर मेरे पास आई और हे राजन ! उसने मेरे पाँव इस प्रकार धोये जैसे कोई भार्य्या अपने प्यारे पति के पाँव का प्रक्षालन करे ॥२३॥]

तपस्वी—

**अपरा च नारी तरमानरूपा**
**पग्गय्ह सोवण्णमया पातिया**
**अनेकसूपं विविधं वियञ्जनं**
**उपनामयी भत्तमनुञ्ञरूपं ॥२४॥**

[एक और नारी शीघ्रता से सोने की थाली में अनेक प्रकार का सूप, नाना प्रकार का व्यञ्जन तथा श्रेष्ठ भात लायी ॥२४॥]

तपस्वी—

**तुरियेहि मं भारत भुत्तवन्तं**
**उपट्ठहुं भत्तु मनो विदित्वा**
**ततुत्तरिं मं निगति महंतं**
**दिब्बेहि कामेहि अनप्पकेहि ॥२५॥**

[हे राजन्! मेरे भात खा चुकने पर स्वामी के मन को जानकर उन नारियों ने वाद्य से मेरा मनोरजन किया। उसके बाद अनल्प काम-भोगों सहित वह राजा मेरे पास आया ॥२५॥]

इस प्रकार आकर उसने यह गाथा कही—

**भरिया मं एता तिसता अळार**
**सब्ब अत्थमज्झा पदुमुत्तराभा**
**अळार एतासु ते कामकारो**
**ददामि ते ता परिचारयस्सु ॥२६॥**

[हे अळार! यह मेरी तीन सौ भार्य्यायें है, सभी मध्याकार की है और पदुम-वर्णा है। हे अळार! यह तेरा काम करने वाली रहें। मैं तुझे ये सब सेवा के लिए देता हूँ ॥२६॥]

तपस्वी—

**संवच्छरं दिब्बरसानुभुत्वा**
**तदस्सहं उत्तरिं पञ्चभासिं**

**नागस्स इदं किंति कथं चलद्धं**
**कथ अज्झगमासि विमानसेट्ठं ॥२७॥**
**अधिच्च लद्धं परिणामजं ते**
**सयं कतं उदाहु देवेहि दिन्नं**
**पुच्छामि ते नागराज तं अत्थं**
**कथं अज्झगमासि विमानसेटंठ ॥२८॥**

[वर्ष भर तक दिव्य रसों का अनुभव करके, मैंने उससे आगे प्रश्न किया—हे नाग ! यह श्रेष्ठ विमान तुझे कैसे किस प्रकार मिला ? ॥२७॥ क्या यह तुझे यूँ ही प्राप्त हो गया है ? अथवा किसी ने दिया है ? अपना किया है ? अथवा देवताओ ने दिया है ? हे नागराज ! मै तुझे यह बात पूछता हूँ कि तुझे यह श्रेष्ठ विमान कैसे प्राप्त हुआ ? ॥२७-२८॥]

इससे आगे की गाथायें दोनों के प्रश्नोतर है—

नागराज—

**नाधिच्च लद्धं न परिणामजं मे**
**न सयं कतं न पि देवेहि दिन्नं**
**सकेहि कम्मेहि अपापकेहि**
**पुञ्ञेहि मे लद्धं इदं विमानं ॥२९॥**

[न यूँ ही प्राप्त हुआ, न किसी से आया, न स्वय अर्जित किया और न देवताओं ने ही दिया। मुझे यह विमान अपने निर्दोष पुण्य कर्मों से मिला ॥२९॥]

तपस्वी—

**किं ते वतं किं पन ब्रह्मचरियं**
**किस्स सुचिण्णस्स अयं विपाको,**
**अक्खाहि मे नागराजे तं अत्थं**
**कथं नु ते लद्धं इमं विमानं ॥३०॥**

[तेरा व्रत क्या है ? तेरी श्रेष्ठ चर्य्या क्या है ? यह तेरे किस आचरण का फल है ? हे नागराज ! मुझे तू यह बात बता कि तुझे यह विमान कैसे मिला ? ॥३०॥]

नागराज—

राजा अहोसिं मगधानं इस्सरो
दुय्योधनो नाम महानुभावो
सो इत्तरं जीवितं संविदित्वा
असस्सतं विपरिणामधम्मं ॥३१॥
अन्नं च पानं च पसन्नचित्तो
सक्कच्च दानं विपुलं अदासि
ओपानभूतं मे घरं तदासि
संतप्पिता समणब्राह्मणा च ॥३२॥
तं मे वतं तं पन ब्रह्मचरियं
तस्स सुचिण्णस्स अयं विपाको
तेनेव मे लद्धं इदं विमानं
पहूतभक्खं बहुन्नपानं ॥३३॥

[मैं मगधो का ईश्वर राजा था। दुर्योधन नाम था, महाप्रतापी। मैंने जीवन को अस्थिर, अशास्वत तथा परिवर्तन-शील जाना ॥३१॥ मैंने प्रसन्नतापूर्वक अन्न-पान का विपुल दान दिया। मेरा घर उस समय प्याओ के समान था। मैंने सभी श्रमण-प्रभव ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया ॥३२॥ यही मेरा व्रत है, यही मेरी श्रेष्ठ चर्य्या है। यह मेरे इसी आचरण का प्रताप है कि मुझे विपुल भोजन तथा विपुल अन्न-पान वाला विमान मिला है ॥३३॥]

तपस्वी—

नच्चेहि गीतेहि उपेतरूपं
चिरट्ठितिकं न च सस्सतायं,
अप्पानुभावा तं महानुभावं
तेजस्सिनं हन्ति अतेजवन्तो,
किं एव दाठावुध किं पटिच्च
हत्थत्थं आगच्छि वनिब्बकानं ॥३४॥

भयं नु ते अन्वगतं महन्तं
तेजो नु ते नान्वगं दन्तमूलं,
किं एव दाठावुध किं पटिच्च
किलेसं आपज्जि वनिब्बकानं ॥३५॥

[नृत्य और गान का संयोग चिरस्थायी होने पर भी शास्वत नही है। उन अल्प-प्रताप वालों ने, उन तेजहीनो ने तुझ महाप्रतापी, तेजस्वी का हनन किया। हे नागराज ! किस कारण से, किस हेतु से तू उन दरिद्रों के हाथ आ गया ? ॥३४॥ क्या तू भारी भय से अभिभूत हो गया ? अथवा तेरा तेज ( = विष) ही तेरे दान्तों तक नही पहुँचा ? हे नागराज ! किस कारण से, किस हेतु से तू उन दरिद्रो द्वारा दु:ख को प्राप्त हुआ ॥३५॥]

नागराज—

न मे भयं अन्वगतं महन्तं
तेजो न सक्का मम तेहि हन्तुं
सतञ्च धम्मानि सुकित्तितानि
समुद्दवेला व दुरच्चयानि ॥३६॥
चातुद्दसिं पन्नरसिञ्चाळार
उपोसथं निच्चं उपावसामि
अथागमुं सोळस भोजपुत्ता
रज्जुं गहेत्वान दळहं च पासं ॥३७॥
भेत्वान नासं अतिकस्स रज्जुं
नयिंसु मं सम्पटिग्गय्ह लुद्दा
एतादिसं दुक्खं अहं तितिक्खिं
उपोसथं अ पटिको पयन्तो ॥३८॥

[मुझे भय भी नही हुआ और वे मेरे तेज को भी नष्ट नही कर सकते। सत्पुरुषों के सुकीर्तित धर्म समुद्र की लहरों की तरह दुर्लघ्य होते है ॥३६॥ हे अळार ! मै प्रत्येक चतुर्दशी तथा पूर्णिमा को उपोसथ-व्रत रखता हूँ। सोलह ग्रामीण रस्सी और दृढ बन्धन ले कर आ पहुंचे ॥३७॥ शिकारी नाक के अन्दर रस्सी डालकर, मुझे

पकड़ कर ले चले। मैंने उपोसथ-व्रत को अखण्डित रख कर इस प्रकार का दुःख अनुभव किया ॥३८॥]

तपस्वी—

**एकायने तं पथे अद्दसासिं**
**बलेन वण्णेन उपेतरूपं**
**सिरिया च पञ्ञाय च भावितोसि**
**किमत्थियं नाग तपो करोसि ॥३९॥**

[हे संखपाल ! तुझे उन्होंने अकेले रास्ते पर देखा, बल और वर्ण से युक्त। तू श्री तथा प्रज्ञा से सम्पन्न है। हे नाग ! तू किस लिए तप करता है ? ॥३९॥]

नागराज—

**न पुत्तहेतु न धनस्स हेतु**
**न आयुनो चापि अळार हेतु**
**मनुस्स योनिं अभिपत्थयानो**
**तस्मा परक्कम्म ततो करोमि ॥४०॥**

[न पुत्र के लिए न धन के लिये, और हे अळार ! न आयु के लिये ही मैं (तपस्या करता हूँ)। मैं मनुष्य-योनि की कामना करता हुआ यह पराक्रम करता हूँ ॥४०॥]

तपस्वी—

**त्वं लोहितक्खो विहतंतरंसो**
**अलंकतो कप्पितकेसमस्सु**
**सुरोसितो लोहितचन्दनेन**
**गन्धब्बराजा व दिसा पभाससि ॥४१॥**
**देविद्धिपतो सि महानुभावो**
**सब्बेहि कामेहि समंगीभूतो**
**पुच्छामि तं नागराजे तं अत्थं**
**सेय्यो इतो केन मनुस्सलोको ॥४२॥**

[तेरी आँखें लाल हैं। शरीर से रश्मियाँ निकल रही हैं। अलंकृत है। केश और दाढ़ी कटी है। रक्त चन्दन से लिप्त है। गन्धर्व-राज की तरह प्रकाशमान है। दिव्य-

ऋद्धि प्राप्त है। महाप्रतापवान् है। सभी काम-भोगों से युक्त है। हे नागराज ! मैं पूछता हूँ कि मनुष्य-योनि किस बात मे श्रेष्ठ है ? ॥४२॥]

नागराज—

**अळार नाञ्ञत्र मनुस्सलोका**
**सुद्धी च संविज्जति सञ्ञमो वा**
**अहं च लद्धान मनुस्सयोनिं**
**काहामि जातिमरणस्स अन्तं ॥४३॥**

[हे अळार ! मनुष्य-लोक के अतिरिक्त और कही भी शुद्धि तथा संयम नही है। मै मनुष्य-योनि प्राप्त कर जाति तथा मरण का अन्त करूंगा ॥४३॥]

तपस्वी—

**संवच्छरो मे वुसितो तवन्तिके**
**अन्नेन पानेन उपट्ठितोस्मि**
**आमन्तयित्वान पलेमि नाग**
**चिरप्पवुत्थोस्मि अहं जनिन्द ॥४४॥**

[मै वर्ष भर तेरे पास रहा। अन्न-पान से मेरी सेवा होती रही। हे नागराज ! अब मैं तुझे सूचना देकर जाता हूँ। हे जनिन्द ! मै चिर-प्रवासी हूँ ॥४४॥]

नागराज—

**पुत्ता च दारा च अनुजीविनो च**
**निच्चानुसिट्ठा उपतिट्ठते तं**
**कच्चिं नु ते नाभिसंसित्थ कोचि**
**पियं हि मे दस्सनं तुय्ह अळार ॥४५॥**

[मेरे पुत्र, स्त्रियाँ तथा अनुजीवी नित्य अनुशासित हो कर तेरी सेवा मे रहते है। क्या किसी ने कभी कोई हलकी बात तो नही कहा ? हे अळार ! तेरा दर्शन मेरे लिये बहुत प्रियकर है ॥४४॥]

तपस्वी—

**यथा च माता च पिता च अगारे**
**पुत्तो पियो पदिविहितो व सेय्यो**

**ततोपि मय्हं इध-मेव-सेय्यो,**
**चित्तं हि ते नाग मयी पसन्नं ॥४६॥**

[जिस प्रकार घर मे माता-पिता उसी प्रकार सेवित पुत्र भी श्रेयस्कर है। लेकिन हे नागराज ! मेरे लिये इससे भी श्रेयस्कर यह बात है कि तेरा चित्त मेरे प्रति प्रसन्न है ॥४६॥]

नागराज—

**मणी मम विज्जति लोहितंको**
**धनाहारो मणिरतनं उळारं**
**आदाय तं गच्छ सकं निकेतं**
**लद्धा धनं तं मणि उस्सजस्सु ॥४७॥**

[हे तपस्वी ! मेरे पास रक्त-वर्ण, धन लाने वाली, बडी मणी है। तू उसे लकर घर जा। यथेच्छ धन प्राप्त कर उस मणी को (कही) रख देना ॥४७॥]

यह कह अळार ने "तो महाराज ! मैने उस नागराज को 'मित्र ! मुझे धन की आवश्यकता नही। मै प्रव्रजित होना चाहता हूँ' कहा और प्रव्रजितों की आवश्यकताये माँग, उसी के साथ नागभवन से निकल, उसे रोक, हिमालय मे प्रविष्ट हो, प्रव्रजित हुआ। यह कह राजा को उपदेश देते हुए दो गाथाये कही—

तपस्वी—

**दिट्ठा भया मानुसिकापि कामा**
**असस्सता विपरिणामधम्मा**
**आदीनवं कामगुणेसु दिस्वा**
**सद्धाय अहं पब्बजितोम्हि राज ॥४८॥**
**दुमप्फलानेव पतन्ति मानवा**
**दहरा च वुद्धा च सरीरभेदा**
**एतं पि दिस्वा पब्बजितोम्हि राज**
**अपण्णकं सामञ्ञं एव सेय्यो ॥४९॥**

[मैने मनुष्य-लोक के काम-भोगों का भी अनुभव किया है। वे भी अशाश्वत है, परिवर्तनशील है। मैने काम-भोगों के दोष देखे है। हे राज ! मै श्रद्धापूर्वक

प्रव्रजित हुआ हूँ ॥४८॥ जिस प्रकार वृक्षों के फल गिरते हैं, उसी प्रकार शरीर-भेद होने पर छोटे-बड़े मानव भी गिर पडते हैं। यह बात भी देख कर हे राजन! मैं प्रव्रजित हुआ हूँ। निर्दोष प्रव्रज्या ही श्रेष्ठ है ॥४९॥]

यह सुन राजा ने अगली गाथा कही—

**अद्धा हवे सेवितब्बा सपञ्ञा**
**बहुस्सुता ये बहुठानचिन्तिनो,**
**नागं च सुत्वान तवञ्च अळार**
**करोमि पुञ्ञानि अनप्पकानि ॥५०॥**

[निश्चय से प्रज्ञावान्, बहुश्रुत तथा विचारवानों की संगति करनी चाहिए। हे अळार! मैं तेरी तथा नाग की बात सुन कर बहुत पुण्य करूँगा ॥५०॥]

उसे उत्साहित करते हुए तपस्वी ने अन्तिम गाथा कही—

**अद्धा हवे सेवितब्बा सपञ्ञा**
**बहुस्सुता ये बहुठानचिन्तिनो**
**नागं च सुत्वान ममं च राज**
**करोहि पुञ्ञानि अनप्पकानि ॥५१॥**

[निश्चय से प्रज्ञावान बहुश्रुत तथा विचारवानों की संगति करनी चाहिए। हे राजन! मेरी तथा नाग-राज की बात सुन कर आप बहुत पुण्य करें ॥५१॥]

इस प्रकार उसने राजा को धर्मोपदेश दे वर्षा के चारो महीने वहीं बिताये। फिर हिमालय जा जीवन भर चारों ब्रह्म-विहारों की भावना कर, ब्रह्मलोकगामी हुआ। संखपाल भी जीवन भर उपोसथ-व्रत करता रहा। राजा दानादि पुण्य कर्म कर यथा-कर्म परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय पिता तपस्वी काश्यप था। वाराणसी-नरेश आनन्द। अळार सारिपुत्र। शखपाल तो मैं ही था।

# ५२५ चुल्लसुतसोम जातक

"आमन्तयामि निगम..." यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय नैष्क्रम्य पारमिता के बारे मे कही। वर्तमान कथा महानारद काश्यप जातक[१] सदृश ही है।

## अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी (राष्ट्र) मे सुदर्शन नाम का नगर था। वहा ब्रह्मदत्त नाम का राजा राज्य करता था। बोधिसत्व ने उसकी पटरानी की कोख से जन्म ग्रहण किया। उसका मह पूर्ण चन्द्रमा के समान सुशोभित था। उसका नाम सोम कुमार रखा गया। बडा होने पर वह (बात) सुनने वाला था, श्रवण-प्रिय, इस लिये वह सुतसोम नाम से भी विख्यात था।

आयु प्राप्त होने पर यह तक्षशिला गया और शिल्प सीख कर लौट आने पर पिता से श्वेत-छत्र प्राप्त कर धर्म से राज्य करने लगा। उसका महान ऐश्वर्य्य था। उसकी सोलह हजार रानिया थी, जिनमे चन्द्र देवी प्रमुख थी। आगे चल कर बेटा-बेटी के बडे होने पर उसका मन घर मे नही लगा। उसकी इच्छा हुई कि जंगल मे जा कर प्रव्रजित हो जाय।

एक दिन उसने नाई को बुला कर कहा कि मित्र! मेरे सिर मे जब सफेद बाल देखे तो मुझे कहना। नाई ने उसकी बात मान, आगे चलकर सफेदबाल दिखाई देने पर सूचना दी। "तो मित्र! उखाड कर मेरी हथेली पर रख।" उसके ऐसा कहने पर नाई ने सोने की चिमटी से वह बाल उखाड उसके हाथ पर रखा।

यह सुन "मुझ पर जरा ने आक्रमण किया है" सोच डर कर, वह सफेद बाल को हाथ मे लिये ही प्रासाद से उतरा और जनता को दर्शन देने की जगह बिछे

---

[१] महानारद काश्यप जातक (५४४)

राज-सिहासन पर बैठा। उसने अस्सी हजार अमात्यो को, जिनमे सेनापति प्रमुख था और साठ हजार ब्राह्मणों को, जिनमे पुरोहित प्रमुख था तथा दूसरे बहुत से राष्ट्रिक, नेगम आदि को बुला कर 'मेरे सिर में सफेद बाल उग आया है, मै बूढा हो चला हूँ, मेरी प्रव्रज्या की बात जानें' कह, पहली गाथा कही—

**आमन्तयामि निगमं मित्तामच्चे परीसजे**
**सिरस्मिं फलितं जातं, पब्बज्जं दानि रोचहं ॥१॥**

[मैं नेगमों को, मित्रों को, अमात्यों को तथा परिषद वालों को सम्बोधन कर के कहता हू कि मेरे सिर मे सफेद बाल उग आया है, इसलिए मैं अब प्रव्रजित होना चाहता हूँ ॥१॥]

यह बात सुनी तो उनमे से प्रत्येक विषाद ग्रस्त हो कर बोला—

**अभुम्मे कथं नु भणसि**
**सल्लं मे देव उरसि कम्पेसि,**
**सत्तसता ते भरिया**
**कथं नु ते ता भविस्सन्ति ॥२॥**

[यह तू अनुन्नति की बात कैसे कहता है ? हे देव ! यह तो हमारे हृदय मे शल्य चुभोना है। तेरी सात सौ स्त्रियो का क्या होगा ?॥२॥]

तब बोधिसत्व ने तीसरी गाथा कही—

**पञ्ञायिहिन्ति एता,**
**दहरा, अञ्ञं पि ता गमिस्सन्ति,**
**सग्गं च पत्थयानो**
**तेन-म-अहं पब्बजिस्सामि ॥३॥**

[ये (अपना रास्ता) जानेगी। ये तरुण है। दूसरे (होने वाले) राजा के पास चली जायेगी। मै स्वर्ग की कामना से प्रव्रजित होऊंगा ॥३॥]

अमात्य बोधिसत्व को कुछ न कह सके। वे उसकी माता के पास गए और वह बात कही। वह जल्दी जल्दी आई और यह पूछ कि क्या तात ! तू सचमुच प्रव्रजित होना चाहता है, उसने दो गाथाये कहीं—

**दुल्लद्धं मे आसि**
**सुतसोम यस्स ते अहं माता**
**यं मे विलपन्तिया**
**अनपेक्खो पब्बजसि देव ॥४॥**
**दुल्लद्धं मे आसि**
**सुतसोम यं तं अहं विजायिस्सं**
**यं मे विलपन्तिया**
**अनपेक्खो पब्बजसि देव ॥५॥**

[हे सुतसोम ! मैंने तुझे बडी कठिनाई से प्राप्त किया है। मै तेरी माता हूँ। मैंने तुझे बडी कठिनाई से जन्म दिया है। देव ! तू मुझे विलखती छोड, मेरी ओर से निपेक्ष हो प्रव्रजित होता है ॥४-५॥]

बोधिसत्व ने इस प्रकार रोती हुई मा को भी कुछ नही कहा। वह रो-पीट कर स्वय ही एक ओर हो गई। उसके पिता को सूचना दी गई। (बोधिसत्व के) पिता ने आकर एक गाथा कही—

**को नाम एसो धम्मो**
**सुतसोम का नाम पब्बज्जा**
**यं नो अम्हे जिण्णे**
**अनपेखो पब्बजसि देव ॥६॥**

[सुत सोम ! यह कैसा धर्म है ! यह कैसी प्रव्रज्या है ! देव ! जो तू हम बूढो की ओर से उपेक्षावान होकर प्रव्रजित होता है ॥६॥]

यह सुन बोधिसत्व चुप हो गया। तब उसके पिता ने "तात सुतसोम ! यदि तेरे मनमें माता पिताका स्नेह नही है, तो तेरे बच्चे अभी बहुत छोटे है। वे तेरे बिना न रह सकेंगे। उनके बडे होने पर प्रव्रजित होना," कह सातवी गाथा कही—

**पुत्तापि तुय्हं बहवो**
**दहरा अप्पतयोब्बना**
**मञ्ञे ते तं अपस्सन्ता**
**मञ्ञे दुक्खं निगछन्ति ॥७॥**

[तेरे बच्चे भी अभी बहुत छोटे हैं। जवान नहीं हुए हैं। वे विचारे तुझे नहीं देखेंगे तो बहुत दुःखी होंगे ॥७॥]

यह सुन बोधिसत्व ने गाथा कही—

पुत्तेहि च मे एतेहि
दहरेहि अप्पत्तयोब्बनेहि
मञ्जूहि सब्बेहि पि तुम्हेहि
चिरं पि कत्वा विनाभावो ॥८॥

[यह जो मेरे अप्राप्त यौवन, छोटे, सुन्दर बच्चे हैं, इन सबसे और आप सबसे एक न एक दिन पृथक होना ही होगा ॥८॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने पिता को धर्मोपदेश दिया। वह उसकी धर्म की बात सुन चुप हो रहा। उसकी सात सौ भार्य्याओं को सूचना दी गई। वे महल से उतर उसके पास आई और हाथों पर सिर रख कर रोती हुई बोली—

छिन्नं नु तुय्हं हदयं
आदु करुना च नत्थि अम्हेसु
यं नो पि कन्दन्तियो
अनपेखो पब्बजसि देव ॥९॥

[क्या तेरा हृदय टूक टूक हो गया है, अथवा हमारे प्रति करुणा नहीं है, जो हे देव! हमारे रोते-पीटते हुए तू हमारी ओर से उपेक्षावान् हो प्रव्रजित होता है? ॥९॥]

वे बोधिसत्व के पैरों में लिपट-लिपट कर रोने लगी। उन्हें रोते सुन बोधिसत्व ने अगली गाथा कही—

न च मय्हं छिन्नं हदयं
अत्थि करुणापि मय्हं तुम्हेसु
सग्गं च पत्थयानो
तेन-म-हं पब्बजिस्सामि ॥१०॥

[न तो मेरा हृदय ही टूक टूक हुआ है, और मेरे मनमें तुम्हारे प्रति करुणा भी है। किन्तु मैं स्वर्ग की कामना से प्रव्रजित होता हूँ ॥१०॥]

उसकी पटरानी को सूचना दी गई। वह गर्भवती होनेपर भी आई और बोधिसत्व को प्रणाम कर, एक ओर खड़ी हो उसने तीन गाथाये कही—

दुल्लद्धं मे आसि
सुतसोम यस्स ते अहं भरिया
यं मे विलपन्तिया
अनपेखो पब्बजसि देव ॥११॥
दुल्लद्धं मे आसि
सुतसोम यस्स ते अहं भरिया
यं मं कुच्छिमंति सन्तिं
अनपेखो पब्बजसि देव ॥१२॥
परिपक्को मे गब्भो
कुच्छिगतो, याव नं विजायामि
माहं एका विधवा
पच्छा दुक्खानि अद्दक्खि ॥१३॥

[हे सुतसोम ! तू मुझे कठिनाई से मिला है। मैं तेरी भार्य्या हूँ। देव ! तू मुझे विलखती छोड़ प्रव्रजित होता है ॥११॥ हे सुत-सोम ! तू मुझे कठिनाई से मिला है। मैं तेरी भार्य्या हूँ। देव ! तू मुझ गर्भवती को छोड़ प्रव्रजित होता है ॥१२॥ मेरा गर्भ परिपक्व हो गया है। जब तक मैं बालक को जन्म न दे लूं, तब तक तू प्रतीक्षा कर। ऐसा न हो कि मैं अकेली विधवा पीछे दुःख भोगूँ ॥१३॥]

तब बोधिसत्व ने गाथा कही—

परिपक्को ते गब्भो
कुच्छिगतो, इंघ नं विजायस्सु
पुत्तं अनोमवण्णं
तं हित्वा पब्बजिस्सामि ॥१४॥

[भद्रे ! तेरा गर्भ-परिपाक हो गया है। तू श्रेष्ठ पुत्र को जन्म दे। मैं उसे छोड़ कर प्रव्रजित होता हूँ ॥१४॥]

वह उसकी बात सुन शोक को सहन न कर सकी। 'अब से देव! हमारा सौभाग्य जाता रहा' कह दोनों हाथों से छाती पकड आसुओं को पोंछती हुई, जोर-जोर से रोने लगी। बोधिसत्व ने उसे आश्वासन दिया—

**मा त्वं चन्दे रुदि**
**मा सोचि वनतिमिरमत्तक्खि,**
**आरोह च पासादं**
**अनपेखो अहं गमिस्सामि ॥१५॥**

[हे चन्द्रे! तू रो मत। हे गिरि-कर्णिका सदृश नेत्रों वाली! तू सोच मत कर। तू प्रासाद पर वापिस जा। मैं निरपेक्ष हो जाऊँगा ॥१५॥]

वह उसकी बात सुन खडी न रह सकी। प्रासाद पर चढ बैठ कर रोने लगी।

बोधिसत्व के ज्येष्ठ पुत्र ने मा को रोते हुए देखा तो 'मेरी मा क्यो बैठी रोती है?' पूछते हुए गाथा कही—

**को तं अम्म कोपेसि,**
**किं रोदसि पेक्खसि च मं बाळहं**
**घातेमि कं अवज्झं**
**ञातीनं उदिक्खमानानं ॥१६॥**

[अम्मा! तुझे किसने कष्ट दिया है? तू मेरी ओर देख देख कर क्यों रोती है? मैं किस अवध्य रिश्तेदार का भी घात करूँ, मुझे बता ॥१६॥]

तब देवी ने गाथा कही—

**न हि सो सक्का हन्तुं**
**जीवितावी यो मं [तात] कोपेसि,**
**पिता ते मं तात अवचः**
**अनपेखो अहं गमिस्सामि ॥१७॥**

[हे तात! जिस विजयी ने मुझे कष्ट दिया है, उसे मारा नही जा सकता। हे तात! तेरे पिता ने मुझे कहा है कि वह निरपेक्ष हो कर जायगा ॥१७॥]

उसने उसकी बात सुनी तो बोला "मा! तू क्या कहती है। ऐसा होने पर हम अनाथ नही हो जायेगे?"

उसने रोते हुए यह गाथा कही—

**यो हं पुब्बे निय्यामि**
**उय्यानं मत्तकुञ्जरे च योधेमि**
**सुतसोमे पब्बजिते**
**कथं नु दानि करिस्सामि ॥१८॥**

[पहले जो मैं (रथ पर चढ कर) उद्यान जाता था और मस्त हाथियों से खेलता था, अब सुतसोम के प्रव्रजित हो जाने पर यह सब कैसे होगा? ॥१८॥]

उसका छोटा भाई सात वर्ष का था। उसने दोनों को रोते देखा तो मा के पास आ कर बोला—"क्यों रोते हो?" जब उसे कारण ज्ञात हुआ, तो "रोओ मत, मैं पिता को प्रव्रजित होने न दूगा" कह, दोनों को आश्वासन दे, दाई के साथ महल से उतरा और पिता के पास पहुंच उसकी गरदन जोर से पकड़ बोला—"तात! तू कहता है कि तू हमारी परवाह न करके हमे छोड प्रव्रजित हो जायेगा। मैं प्रव्रजित होने न दूँगा।" उसने गाथा कही—

**मातुच्च मे रुदत्या**
**जेटठस्स च भातुनो अकामस्स**
**हत्थे पि ते गहेस्सं**
**न हि गच्छिसि नो अकामानं ॥१९॥**

[मेरी माँ और ज्येष्ठ भाई के रोते हुए, उनकी इच्छा के विरुद्ध तू नही जा पायेगा। मैं तुझे हाथ से पकड लूँगा॥ १९॥]

बोधिसत्व ने सोचा—"यह मेरे मार्ग की बाधा है। मैं किस उपाय से इसे दूर करूँ?" फिर उसने दाई की ओर देख, "दाई! यह ले, यह मणि-कण्ठा धारा है, पुत्र को ले जा। यह बाधा न डाले।" वह स्वयं पुत्र को न हटा सका। इस लिये दाई को पुरस्कृत कर कहा—

**उटठेहि त्वं धाति**
**इमं कुमारं रमेहि अञ्ञत्थ**
**मा मे परिपन्थं अका**
**सग्गं मं पत्थयानस्स ॥२०॥**

[हे दाई! तू यहां से उठ। इस कुमार को अन्यत्र बहला। मेरा रास्ता मत रोक। मैं स्वर्ग की कामना कर रहा हूँ॥ २०॥]

वह पुरस्कार ले, कुमार को इशारे से अन्यत्र ले गई और वहां जाकर रोने लगी—

**यं नून इमं जहेय्यं**
**पभंकरं, को नु मे न' अत्थो,**
**सुतसोमे पब्बजिते**
**किं नु मे तं करिस्सामि॥२१॥**

[मैं इस जमकीले कण्ठे को छोड दूं। मेरे यह किस काम आयेगा? सुतसोम के प्रव्रजित हो जाने पर मैं इसका क्या करूँगी?॥ २१॥]

तब महा-सेनगुप्त ने सोचा—"मालूम होता है, यह राजा समझता है कि मेरे घर मे धन की कमी पड गई है। मैं इसे धन की बहुलता की बात कहूँ।" उसने उठकर प्रणाम करके कहा—

**कोसो च तुय्हं विपुलो**
**कोट्ठागारं च तुय्हं परिपूरं**
**पठवी च तुय्हं विजिता**
**रमस्सु मा पब्बज देव॥२२॥**

[तेरा कोष विपुल है। तेरा भण्डार भरा है। तू पृथ्वी-विजयी है। हे देव! प्रव्रजित न हो, भोगों मे रमण कर॥ २२॥]

यह सुन बोधिसत्व ने गाथा कही—

**कोसोम्यहं विपुळो**
**कोट्ठागारं च मय्हं परिपूरं**
**पठवी च मय्हं विजिता**
**नं हित्वा पब्बजिस्सामि॥२३॥**

[मेरा कोष विपुल है। मेरा भण्डार भरा है। मैं पृथ्वी-विजयी हूँ। इसे छोड कर मैं प्रव्रजित होऊँगा॥ २३॥]

यह सुन उसके चले जाने पर कुल वर्धन श्रेष्ठी उठा और प्रणाम करके बोला—

**मय्हं पि धनं पहूतं**
**संखातुं नो पि देव सक्कोमि,**
**तं ते ददामि सब्बं**
**रमस्सु मा पब्बज देव ॥२४॥**

[मेरे पास भी बहुत धन है। मैं उसकी गिनती भी नही कर सकता हूँ। मैं वह सब धन तुम्हे देता हूँ। हे देव ! प्रव्रजित न हो, (भोगों मे) रमण करे ॥२४॥]

यह सुन बोधिसत्व ने गाथा कही—

**जानामि धनं पहूतं**
**कुळवद्धन पूजितो तया चास्मि,**
**सग्गं च पत्थयानो**
**तेनाहं पब्बजिस्सामि ॥२५॥**

[मैं जानता हूँ कि तेरे पास बहुत धन है, और हे कुलवर्धन ! मैं तेरे द्वारा पूजित भी हूँ। तो भी मैं स्वर्ग की कामना से प्रव्रजित होता हूँ॥ २५ ॥]

यह सुन कुल वर्धन के चले जाने पर सुतसोम ने अपने सोमदत्त नामक छोटे भाई को बुलाया और उसे राज्य सौंपते हुए कहा—"तात ! मैं पिंजरे मे पडे जगली मुर्गे की तरह उद्विग्न हूं। मुझे गृहस्थ अच्छा नही लगता। आज ही प्रव्रजित होऊँगा। तू यह राज्य सभाल।"

उसने यह गाथा कही—

**उक्कण्ठितोस्मि बाळहं**
**अरति मं सोमदत्त आविसति**
**बहुकापि अन्तराया**
**अज्जेव अहं पब्बजिस्सामि ॥२६॥**

[हे सोमदत्त ! मै बहुत उद्वेग्न हूँ। (ग्रहस्थ जीवन के प्रति) मेरी अरुचि बढ रही है। बाधाये भी बहुत है। मैं आज ही प्रव्रजित होऊँगा॥ २६ ॥]

यह सुन उसकी भी प्रव्रजित होने की इच्छा हुई और उसे प्रकट करने के लिये वह बोला—

**इदं च तुय्हं रुचितं**
**सुतसोम अज्जेव दानि त्वं पब्बज**
**अहं पि पब्बजिस्सामि**
**न उस्सहे तया विना अहं ठातुं ॥२७॥**

[हे सोमसुत ! यदि तुझे यही अच्छा लगता है, तो तू आज ही प्रव्रजित हो जा। मैं भी प्रव्रजित होऊँगा। मैं भी तेरे बिना नही रह सकता॥ २७ ॥]

उसे रोकते हुए उसने आधी गाथा कही—

**न हि सक्का पब्बजितुं**
**नगरे नहि पच्चति जनपदे वा,**

[तू प्रव्रजित नही हो सकता। (दोनो का प्रव्रजित होना सुनने से) न नगर में और न जनपद मे कही भी चूल्हा नही जलेगा॥]

यह सुन जनता बोधिसत्व के पैरों पर गिर पडी और रोने लगी—

**सुतसोमे पब्बजिते**
**कथं नु दानि करिस्साम ॥२८॥**

[सुत सोम के प्रव्रजित हो जाने से अब हम कैसे क्या करेगे ?॥२८॥]

तब बोधिसत्व ने "बस करो, चिन्ता न करो। मैं दीर्घकाल तक रह कर भी तुम से पृथक होऊंगा ही। जो भी सस्कार उत्पन्न हुआ है, वह नित्य नही ही है" कह जनता को उपदेश देते हुए—

**उपनीयत इदं मञ्ञे**
**परित्तं उदकं व चंगवारम्हि**
**एवं सुपरित्तके जीविते**
**न पमज्जितुकालो ॥२९॥**
**उपनीयत इदं मञ्ञे**
**परित्तं उदकं व चंगवारम्हि**
**एवं सुपरित्तके जीविते**
**अथ बाला पमज्जन्ति ॥३०॥**

**ते वड्ढयन्ति निरयं**
**तिरच्छानयोनिञ्च पेत्तिविसयञ्च,**
**तण्हाबन्धनबद्धा**
**वड्ढेन्ति असुरकायं ॥३१॥**

[जिस प्रकार थोडा पानी भर जाने से डोंगी डूब जाती है, उसी प्रकार यह जीवन डूब जाता है। इस लिये, जीवन के इस प्रकार अत्यन्त सीमीत होने पर प्रमाद का समय नही है॥ २९ ॥ जिस प्रकार. .जीवन के इस प्रकार अत्यन्त सीमित होने पर केवल मूर्ख लोग प्रमाद करते है॥ ३० ॥ वे नरकलोक, पशु-योनि तथा प्रेत योनि मे वृद्धि करते है, और तृष्णा के बन्धन मे बन्धे हुए वे असुर योनि मे भी वृद्धि करते है॥ ३१ ॥]

इस प्रकार जनता को धर्मोपदेश दे, पुष्पक नाम के प्रासाद पर चढ, सातवे तल्ले पर खडे हो खड्ग से बाल काट "मै तुम्हारा कुछ नही लगता, तुम अपना राजा चुन लो" कह वेष्ठन सहित बालों को जनता के बीच फेक दिया। उसे ले लोग पृथ्वी पर लोट-लोट कर रोने लगे। वहाँ बडा बवण्डर उठा। लोगों ने पलट कर देखा तो उन्हे वह बगूला दिखाई दिया। उन्होने सोचा, "राजा ने बाल काट, वेष्ठन सहित बाल जनता के बीच फेके होंगे, इसीलिये प्रासाद के पास यह बगूला उठा है" कह रोते-पीटते यह गाथा कही—

**उहञ्ञाते रजग्गं**
**अविदूरे पुप्फकम्हि पासादे**
**मञ्ञे नो केसा छिन्ना**
**यसस्सिनो धम्मराजस्स ॥३२॥**

[पुष्पक प्रासाद से थोडी ही दूर पर बगुला उठता है। लगता है कि यशस्वी धर्म राज ने अपने बाल काट डाले है॥ ३२ ॥]

बोधिसत्व ने भी सेवक को भेज प्रव्रजितों की आवश्यकताये मंगा, नाई से सेर-दाढी मुँडवा, अलंकारों को सोने के पलंग पर छोड, रक्त-वर्ण वस्त्र की झालर निकाल, उन काषाय वस्त्रों को पहन, बाये कन्धे पर मिट्टी का बरतन लटका, हाथ

मे लकुटिया ले, इधर-उधर चहल-कदमी कर, प्रासाद से उतर, गली में निकल पड़ा। उसे जाते हुए किसी ने नही पहचाना।

उसकी सात सौ क्षत्रिय कन्याये प्रासाद पर चढ उसे न देख, और केवल गहनो की पोटली ही देख, प्रासाद से उतरी और शेष सोलह हजार स्त्रियों के पास जाकर बोली--"तुम्हारा प्रिय स्वामी सुतसोम महेश्वर प्रव्रजित हो गया।" यह कह जोर-शोर से रोती पीटती बाहर निकल आई। उसी समय जनता को उसके प्रव्रजित होने का पता लगा। सारा नगर क्षुब्ध होकर राजद्वार पर इकट्ठा हो गया कि हमारा राजा प्रव्रजित हो गया। जनता ने प्रासाद आदि तथा उसकी मौज करने की जगहों मे ढूंढा "यहाँ होगा, यहाँ होगा।" जब राजा नही दिखाई दिया तो जनता इन गाथाओं से विलाप करने लगी—

अयं अस्स पासादो
सुवण्णो पुप्फमल्यवीतिकिण्णो
यम्हि-म-अनुविचरि राजा
परिकिण्णो इत्थागारेहि ॥३३॥

अयं अस्स.....
परिकिण्णो जातिसंघेन ॥३४॥

इदं अस्स कूटागारं
सोवण्णं पुप्फमल्यवीतिकिण्णं
यम्हि-म-अनुविचरि राजा
परिकिण्णो इत्थागारेहि ॥३५॥

इदं अस्स कूटागारं.....
.....जातिसंघेन ॥३६॥

अयं अस्स असोकवनिका
सुपुप्फिता सब्बकालिका रम्मा
यम्हि-म-अनुविचरि राजा
परिकिण्णो इत्थागारेहि ॥३७॥

अयं अस्स असोकवणिका

.....

परिकिण्णो जातिसंघेन ॥३८॥

इदं अस्स उय्यानं

सुपुप्फितं सब्बकालिकं रम्मं

यम्हि-म-अनुविचरि राजा

परिकिण्णो इत्थागारेहि ॥३९॥

इदं अस्स उय्यानं

.....

परिकिण्णो जातिसंघेन ॥४०॥

इदं अस्स कणिकारवनं ॥४१॥

इदं अस्स कणिकारवनं ॥४२॥

इदं अस्स पाटलिवनं ॥४३॥

इदं अस्स पाटलिवनं ॥४४॥

इदं अस्स अम्बवनं ॥४५॥

इदं अस्स अम्बवनं ॥४६॥

अयं अस्स पोक्खरणी

सञ्छन्ना अण्डजेहि वीतिकिण्णा

यम्हि.....इत्थागारेहि ॥४७॥

अयं अस्स.....जातिसंघेन ॥४८॥

[यह उस राजा का प्रासाद है, पुष्प-मालाओ से लदा हुआ जहाँ वह राजा स्त्रीगण तथा जातिगण से घिरा विचरता था॥ ३३-३४ ॥ यह उस राजा का कूटागार है, पुष्प मालाओ से लदा हुआ, जहाँ वह राजा .विचरता था॥ ३५-३६ ॥ यह उस राजा का अशोक वन है, पुष्प-मालाओं से लदा हुआ, जहाँ वह राजा .....विचरता था ॥ ३७-३८ ॥ यह उस राजा का उद्यान है. विचरता था॥ ३९-४० ॥ यह उसका कर्णिकार वन है, सभी ऋतुओं मे रमणीय जहाँ वह राजा. . विचरता था॥ ४१-४२ ॥ यह उसका पाटली-वन है,

जहां वह राजा विचरता था ॥ ४३-४४ ॥ यह उसका आभुवन है, जहा वह राजा विचरता था ॥ ४५-४६ ॥ यह उसकी पुष्करिणी है, नाना प्रकार के पुष्पो तथा पक्षियो से आकीर्ण, जहा वह राजा . . . विचरता था ॥४७-४८॥

इस प्रकार उन उन स्थानों पर रो पीटकर और फिर राजाङ्गन म आकर बोले—

**राजा खो पब्बजितो**
**सुतसोमो रज्जं इमं पहत्वान**
**कासायवत्थवसनो**
**नागो व एको चरति ॥४९॥**

[राजा सुतसोम उस राज्य को छोड़कर प्रव्रजित हो गया है। काषाय-वस्त्र-धारी (वह) हाथी की तरह अकेला विचरता है ॥४९॥]

फिर लोग अपना अपना घर-द्वार छोड़, पुत्र तथा पुत्रियों को हाथों पर ले, निकल कर बोधिसत्व के ही पास पहुचे। उसी प्रकार माता-पिता, छोटे बच्चे और सोलह हजार नर्तकिया। सारा नगर खाली सा हो गया। उनके पीछे पीछे जनपद-वासी भी पहुँचे। बारह योजन (लम्बी) परिषद को साथ ले बोधिसत्व हिमालय की ओर बढे।

उसके अभिनिष्क्रमण की बात जान शक्र ने विश्व-कर्मा को बुलाया और यह कह कर भेजा कि "तात विश्वकर्मा! सुतसोम राजा ने अभिनिष्क्रमण किया है। निवास-स्थान की व्यवस्था होनी चाहिए। बहुत जनता इकट्ठी होगी। जा हिमालय प्रदेश मे गगातट पर तीस योजन लम्बा और पाच योजन चौडा आश्रम बना।" उसने वैसा कर, उस आश्रम मे प्रव्रजितों की आवश्यकताये रखी और पगडण्डी बना स्वय देव-लोक चला गया।

बोधिसत्व ने उस मार्ग से उस आश्रम मे प्रवेश किया और पहले स्वयं प्रव्रजित हो, फिर अन्यों को प्रव्रजित किया। आगे चलकर बहुत प्रव्रजित हुए। तीस योजन स्थान भर गया। विश्वकर्मा के आश्रम के बनाने का ढग, बहुत से लोगों के प्रव्रजित होने का ढग और बोधिसत्व द्वारा की गई आश्रम की व्यवस्था का प्रकार, यह **हस्तिपाल जातक**[1] मे आये क्रम से ही जानना चाहिए। वहाँ जिस जिस के मन

---

[1] **हस्तिपाल जातक (५०९)**

मे काम-वितर्क आदि मिथ्या-वितर्क पैदा होत, बोधिसत्व उस उस के पास पहुँचते और आकाश मे पालथी मार बैठ, उपदेश देते हुए दो गाथायें कहते—

**मास्सु पुब्बे रतिकीळितानि**
**हसितानि अनुसरित्थो**
**मा वो कामा हनिंसु**
**रम्मं हि सुदस्सनं नगरं ॥५०॥**
**मेत्तं च चित्तं च भावेथ**
**अप्पमाणं दिवा च रत्तो च**
**अथ गच्छित्थ देवं पुरं**
**आवासं पुञ्ञकम्मानं ॥५१॥**

[पूर्व समय की रति-क्रीडा तथा हँसने आदि का स्मरण न करो। तुम्हे काम-भोग हनन न करें। सुदर्शन नगर रमणीय है ॥ ५० ॥ मैत्री चित्त की भावना करो, असीम तथा रात-दिन। इस प्रकार तुम पुण्य कर्मियों के निवासस्थान देव-नगर को जाओगे ॥ ५१ ॥]

वे ऋषीगण भी उसके उपदेशानुसार चल ब्रह्मलोकगामी हुए। सारी कथा हस्तिपाल जातक[1] के ढग पर ही कही जानी चाहिए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, "भिक्षुओ, न केवल अभी, तथागत ने पहले भी महाभिनिष्क्रमण किया ही है" कह जातक का मेल बैठाया। उस समय माता-पिता महाराज-कुल थे। चन्दा राहुल-माता। ज्येष्ठपुत्र सारिपुत्र। छोटा पुत्र राहुल। दाई खुज्जुत्तरा। कुलवर्धन सेठ काश्यप। महासेन गुप्त मौद्गल्यायन। सोमदत्त कुमार आनन्द। सुतसोमराजा तो मै ही था।

---

[1]हस्तिपाल जातक (५०९)

# अठारहवाँ परिच्छेद

## ५२६. नक्खिनिका जातक

"उड्डय्हते जनपदो " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय पूर्व-भार्य्या के वशीभूत हो जाने के बारे मे कही। कहते समय उस भिक्षु से 'किस ने उद्विग्न किया?' पूछा और "पूर्व भार्य्या ने" उत्तर मिलने पर, "भिक्षु! यह तेरा अनर्थ करने वाली है, इसने पहले भी तुझे ध्यान से च्युत कर, तेरा सर्वनाश किया है", पूर्व-जन्म की कथा कही।

### क. अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उदीच्य-ब्राह्मणों के महासारवान् कुल मे जन्म ग्रहण कर, बड़े होने पर शिल्प सीख, ऋषी-प्रव्रज्या ग्रहण कर, ध्यान-अभिज्ञा प्राप्त कर, हिमालय प्रदेश मे रहने लगा। अलम्बुस जातक[1] मे कहे अनुसार ही, उसके सम्बन्ध से एक मृगी ने गर्भिणी हो पुत्र को जन्म दिया। नाम उसका ऋषी-शृंङ्ग ही हुआ।

बड़े होने पर उसके पिता ने उसे प्रव्रजित कर योग-विधि सिखाई। वह शीघ्र ही ध्यान-अभिज्ञा लाभी हो, हिमालय मे ध्यान-सुख मे रत रहने लगा। वह घोर तपस्वी था, इन्द्रिय-विजयी। उसके सदाचार की तेजस्विता से इन्द्र-भवन काँप उठा। शक्र को विचार करने पर जब पता लगा तो उसने सोचा कि कोई उपाय करके इसका शील खण्डित करूँगा। उसने तीन वर्ष तक सारे काशी-राष्ट्र मे वर्षा नहीं होने दी। सारा राष्ट्र अग्नि-दग्ध सा हो गया। खेती न होने पर दुर्भिक्ष

---

[1] अलम्बुस जातक (५२३)

पीडित मनुष्य इकट्ठे होकर राजाङ्गण मे आये और (राजा को) दोष देने लगे।

राजा ने झरोखे मे खडे हो पूछा—"यह क्या है?" "तीन वर्ष तक देव के न बरसने से सारा राष्ट्र अनुतप्त है, मनुष्य दुखी है। हे देव! देव बरसाये।"

राजा शील ग्रहण कर, उपोसथ-व्रत रख, पानी बरसाने मे असफल रहा।

उस समय शक्र आधी-रात के समय, उसके शयनागार में प्रविष्ट हो, उसे पूर्ण प्रकाशित कर, एक ओर खडा हुआ। राजा ने उसे देख पूछा—"तू कौन है?"

"मै शक्र हूँ।"

"किस लिये आया है?"

"महाराज! तेरे राज्य मे बरसा होती है?"

"बरसा नही होती है।"

"जानता है कि बरसा क्यों नही होती?"

"नही जानता हूँ।"

"महाराज हिमालय मे ऋषी-शृङ्ग नाम का तपस्वी रहता है, घोर तपस्वी, इन्द्रिय-विजयी। वह लगातार देव के बरसने के समय क्रोधभरी आँखों से आकाश की ओर देखता है। इसलिये देव नही बरसता।"

"तो इस विषय मे क्या करना चाहिये?"

"उसका तप खण्डित होने पर देव बरसेगा।"

"इसके तप को कौन खण्डित कर सकता है?"

"महाराज! तेरी लडकी नळिनिका समर्थ है, उसे बुलाकर भेजें कि "अमुक स्थान पर जाकर तपस्वी के तप को खण्डित करे।"

इस प्रकार राजा को अनुशासित कर, वह अपने स्थान को ही चला गया। राजा ने अगले दिन अमात्यों से सलाह की और लड़की को बुलाकर पहली गाथा कही—

**उड्डय्हते जनपदो रट्ठं चापि विनस्सति,**
**एहि नळिनिके गच्छ, तं मे ब्राह्मणं आनय ॥१॥**

[जनपद जल रहा है और राष्ट्र विनष्ट हो रहा है। हे नळिनिके आ! और जाकर उस ब्राह्मण को अपने वश मे ला॥१॥]

यह बात सुन उसने दूसरी गाथा कही—

**नाहं दुक्खखमा राज, नाहं अद्धान कोविदा**
**कथं अहं गमिस्सामि वनं कुंजर सेवितं ॥२॥**

[राजन ! न मुझे कष्ट सहने का अभ्यास है और न ही मैं मार्ग से परिचित हूँ। मैं हाथियों से घिरे उस जगल मे कैसे जाऊँगी ? ॥ २ ॥]

तब राजा ने दो गाथाये कही—

**फीतं जनपदं गन्त्वा हत्थिना च रथेन च**
**दारुसंघाटयानेन एवं गच्छ नळीनिये ॥३॥**
**हत्थी अस्सरथा पत्ति गच्छेवादाय खत्तिये**
**तवेव वण्णरुपेन वसं तं आनयिस्ससि ॥४॥**

[स्मृद्ध जनपद मे हाथी और रथ से तथा लकड़ियों को बाध कर बनाई गई नोका से हे नळिनी ! जा॥ ३ ॥ हे क्षत्रिय कुमारी ! हाथी, अश्वरथ और पैदलो को लेकर जा। तू ही अपने वर्ण-रूप से उसे वश मे ला सकेगी॥ ३ ॥]

इस प्रकार उसने जो बात लडकी से कहनी अनुचित है, वह भी राष्ट्र-पालन के हित मे कही। उसने भी 'अच्छा' कह स्वीकार किया।

उसने जो जो उसे देना योग्य था, सभी कुछ द अमात्यों के साथ विदा किया। अमात्य प्रत्यन्त-प्रदेश तक गये और वहाँ छावनी डाल, राजकन्या को (कन्धों पर) उठवा, जगली आदमियों के बताये मार्ग से, हिमालय मे प्रविष्ट हो, पूर्वाह्ण समय उसके आश्रम मे प्रविष्ट हुए।

उस समय बोधिसत्व पुत्र को आश्रम मे बिठा, स्वय फलमूल के लिये जगल म गया था। जगली मनुष्यों ने स्वय आश्रम तक न जा, जहां से वह दिखाई देता था वहा खड़े हो, नळिनिका को आश्रम दिखा दो गथाये कही—

**कदलिधजपञ्ञाणो आभुजि परिवारणो**
**एसो पदिस्साति रम्मो इसिसिंगस्स अस्समो ॥५॥**
**एसो अग्गिस्स संखानो, एसो धूमो पदिस्सति,**
**मञ्ञे नो अग्गि हापेति इसिसिंगो महिद्धिको ॥६॥**

[यह जहाँ केले के पौदों की पताकाये है और जहाँ चारों ओर भोज-पत्रों के पेड है, यही शृङ्गी ऋषीका रमणीक आश्रम है ॥ ५ ॥ यह आग उसके ज्ञान से (जल रही है), यह धुआं दिखाई दे रहा है। ऐसा लगता है कि महा ऋद्धिवान् शृङ्गी-ऋषी अग्नि छोड रहा है ॥ ६ ॥]

अमात्यों ने भी ठीक उसी समय जब बोधिसत्व आरण्य मे गया हुआ था, आश्रम को घेर, पहरा बिठा, राजकुमारी को ऋषि-वस्त्र पहना, स्वर्ण-वर्ण परिधान धारण करा, सभी अलकारो से अलकृत किया। फिर उसके हाथ मे धागो की सुन्दर गेन्द दे, आश्रम मे दाखिल कर, स्वय बाहर खडे हो पहरा देने लगे। वह उस गेंद से खेलती हुई ध्यान करने के चबूतरे के सिरे पर पहुँची।

उस समय शृङ्गी-ऋषी पर्णशाला के द्वार पर पर्णशाला के पटरे पर बैठा था। वह उसे आती देख भय के मारे उठ कर पर्णशाला के भीतर चला गया। वह भी पर्णशाला के द्वार पर ही जाकर खेलने लगी।

शास्ता ने यह और इससे आगे की बात प्रकाशित करने के लिये तीन गाथाये कही—

**तञ्च दिस्वान आयन्तिं आमुत्तमणिकुण्डलं**
**इसि सिगों पाविसि भीतो अस्समं पण्णछादनं ॥७॥**

[उसे मोतियो तथा मणि की बालियाँ पहने आते देख ऋषीशृङ्ग भय के मारे पर्णशाला मे चला गया ॥ ७ ॥]

**अस्समस्स च सा द्वारे भेण्डुकेन अस्स कीळति**
**विदंसयन्ती अंगानि गुय्ह पकासितानि च ॥८॥**

[वह आश्रम के द्वार पर गेंद से खेलने लगी, अगो को प्रकट करती हुई और गुह्य अगो का प्रदर्शन करती हुई ॥ ८ ॥]

**तञ्च दिस्वान कीळन्तिं पण्णसालं गतो जटी**
**अस्समा निक्खमित्वान इदं वचनं अब्रवि ॥९॥**

[उसे खेलते देखा तो आश्रम से बाहर आकर ऋषी ने उससे पूछा ॥ ९ ॥]

**अम्भो को नाम सो रुक्खो यस्सतेवंगतं फलं**
**दूरे खित्तं पच्चेति, न तं ओहाय गच्छतीतिकथेसि ॥१०॥**

[अम्भो ! वह कौन सा पेड़ है, जिसका यह ऐसा फल है कि दूर फेंका हुआ भी वापिस चला आता है और तुझे छोड़ कर नहीं ही जाता ॥ १० ॥]

उसने उसे पेट बताते हुए उत्तर दिया—

**अस्समस्स मम ब्रह्मे समीपे गन्धमादने**
**बहवो तादिसा रुक्खा यस्स तेवं गतं फलं,**
**दूरे पि खित्तं पच्चेति, न यं ओहाय गच्छति, ॥११॥**

[हे ब्राह्मण ! मेरे आश्रम के समीप गन्धमादन पर्वत पर इस प्रकार के बहुत से वृक्ष हैं, जिनका ऐसा फल होता है कि जो दूर फेंका हुआ भी वापिस चला आता है और मुझे छोड़ कर नहीं ही जाता ॥ ११ ॥]

इस प्रकार वह झूठ बोली। किन्तु उसने उसका विश्वास कर और उसे भी "तपस्वी" मान उसका स्वागत करते हुए कहा—

**एतू भवं अस्सम इमं अदेतु,**
**पज्जं च भक्खं च पटिच्छ दम्मि,**
**इदं आसनं अत्रभवं निसीदतु,**
**इतो भवं मूलफलानि भुञ्जतु ॥१२॥**

[आप इस आश्रम में आयें, भोजन करें और पादोदक तथा खाद्य ग्रहण करें। (प्रवेश करने पर) आप इस आसन पर बैठें। यहां से आप फलमूल खायें ॥ १२ ॥]

"यह तेरा क्या है ?" कह, उसके पर्णशाला में प्रविष्ट हो लकड़ी के पटड़े पर बैठ जाने पर, सुनहरी वस्त्र के दो हिस्सों में बंट जाने पर, शरीर के नंगा हो जाने पर उसने पूछा। तपस्वी ने इससे पहले किसी स्त्री को नहीं देखा था, इसलिये समझा कि 'यह जख्म है', और यही मान कर पूछा—

**किं ते इदं ऊरुनं अन्तरस्मं**
**सुपिच्छितं कण्हरिवप्पकासति**
**अक्खाहि मे पुच्छितो एतं अत्थं**
**कोसे नु ते उत्तमंग पविट्ठं ॥१३॥**

[यह तेरी जाँघों के बीच में क्या है ? दोनों जाघों के संघर्ष से कुछ काला काला

प्रतीत होता है। मैं तुझसे जो बात जानना चाहता हूं वह बता कि क्या तेरा उत्तमाग (पुरुष-लिग) कोष के भीतर चला गया है? ॥ १३ ॥]

उसे ठगते हुए उसने दो गाथाये कही—

**अहं वने मूलफलेसनं चरं**
**आसादयिं अच्छं सुघोररूपं,**
**सो मं पतित्वा सहसज्झपत्तो**
**पनुज्जमं अब्बहि उत्तमंगं ॥१४॥**
**स्वायं वणो खज्जति कण्डुवायति**
**सब्बंच कालं न लभामि सातं,**
**पहो भवं कण्डुं इमं विनेतुं,**
**कुरुते भवं याचितो ब्राह्मणत्थं ॥१५॥**

[मैं वन मे फल मूल खोजता फिरता था (थी) तब एक भयानक भाल से मुठ भेड हुई। उसने दौडकर मुझे गिराकर मुझ पर काबू कर लिया और वह मेरे उत्तमङ्ग को उखाड ले गया। तब से इस जख्म मे खाज होती है, और यह खुजलाता है। मुझे किसी भी समय शान्ति नही है। आप इस खाज को दूर करने मे समर्थ है। आप से यह उपकार करने की प्रार्थना की गई है, आप इसे करे ॥१५॥]

उसने उसके झूठ को सत्य मान, "यदि ऐसे सुख होता है, तो करूँगा" कह उस स्थान-विशेष को देखकर अगली गाथा कही—

**गम्भीररूपो ते वणो सलोहितो**
**अपूतिको पन्नगन्धो महाच**
**करोमि ते किञ्चि कसाययोगं**
**यथा भवं परमसुखी भवेय्य ॥१६॥**

[तेरा जख्म गम्भीर है, रक्तवर्ण है, किन्तु सडा नही है, बदबू बहुत है। मै तेरे लिये कुछ काषाय बनाता हूँ, जिससे तुम पर सुखी होवो ॥ १६ ॥]

तब नळिनिका ने गाथा कही—

**न मन्तयोगा न कसावयोगा**
**न ओसधा ब्रह्मचारी कर्मन्ति,**
**यं ते मुदु तेन विनेहि कण्डुकं**
**यथा अहं परमसुखी भवेय्यं ॥१७॥**

[न मन्त्र-योग से ही, न कषाय से ही और न औषध से ही ब्रह्मचारी इसे ठीक कर सकते हैं। यह जो तेरा मृदु (उत्तमाङ्ग), है उससे इस खाज को दूर कर दे, जिससे मैं सुखी हो जाऊँ॥ १७॥]

उसने "यह सत्य कहती है" मान और यह न जान कि मैथुन करने से शील खण्डित होता है और ध्यान का लोप हो जाता है और इससे पहले कभी स्त्री को न देखे रहने के कारण तथा मैथुन-क्रिया से अपरिचित होने के कारण यह मान लिया कि यह दवाई है और उसके साथ मैथुन किया। उसी समय उसका शील खण्डित हो गया और ध्यान लुप्त हो गया। उसने दो तीन बार समर्ग किया। जब थक गया तो (शाला) से निकल तालाब पर पहुँचा और वहा स्नान किया। जब क्लान्ति दूर हो गई तो आकर पर्णशाला पर बैठ, अभी भी उसे तपस्वी ही समझ उसका निवास-स्थान पूछा—

**इतो नु भोतो कतमेन अस्समो,**
**कच्चि भवं अभिरमसी अरञ्ञे,**
**कच्चि ते मूलफलं पहूतं**
**कच्चिभवंतं न विहिंसन्ति वाळा ॥१८॥**

[यहा से आपका आश्रम किधर है ? क्या आपका जगल मे मन लगता है ? क्या वहा पर्याप्त फल-मूल है ? क्या आपको जगली जानवर कष्ट नही देते ?॥१८॥]

तब नळिनिका ने चार गाथाये कही—

**इतो उजुं उत्तरायं दिसायं**
**खेमा नदी हिमवन्ता पभाति,**
**तस्सा तीरे अस्सयम मय्ह रम्मो**
**अहो भवं अस्समं मय्ह पस्से ॥१९॥**

**अम्बा च साला तिलका च जम्बुयो**
**उद्दालका पाटलियो च फुल्ला,**
**समन्ततो किम्पुरिसाभिगीतं**
**अहो भवं अस्समं मय्हं पस्से ॥२०॥**
**ताला च मूला च फला च मेत्थ**
**वण्णेन गन्धेन उपेतरूपं**
**तं भूमिभागेहि उपेतरूपं**
**अहो भवं अस्समं मय्हं पस्से ॥२१॥**
**फला च मूला च पहूत मेत्थ**
**वण्णेन गन्धेन रसेन उपेता,**
**आयन्ति च लुद्दका तं पदेसं**
**मा मे ततो मूलफलं अहंसु ॥२२॥**

[यहाँ से सीधी उत्तर दिशा में हिमालय में चेमा नामक नदी बहती है। उनके तट पर मेरा रमणीक आश्रम है। अहो! आप मेरा आश्रम देखेंगे॥ १९॥ अम्ब, साल, तिलक, जम्बु, उद्दालक तथा गुल्फिल पाटली और उनके चारो ओर गाने-वाले किन्नर। अहो! आप मेरा आश्रम देखेंगे॥ २०॥ ताल, मूल और वर्ण तथा गन्ध से युक्त फल वहा उस भूमि-भाग में बहुत है। अहो! आप मेरा आश्रम देखेंगे॥ २१॥ वहा वर्ण, गन्ध तथा रस से युक्त बहुत फल है। वहा शिकारी भी आते है। (मेरे यहा विलम्ब करने से) कही व फल-मूल न ले जाये॥२२॥]

यह सुन तपस्वी ने पिता के आगमन तक प्रतीक्षा करने के लिये गाथा कही—

**पिता ममं मूलफलेसनं गतो**
**इदानि आगच्छति सायकाले,**
**उभो व गच्छामसे अस्समं तं**
**याव पिता मूलफलतो एतु॥२३॥**

[मेरा पिता फल-मूल खोजने गया है। अब शाम को आता है। पिता के फल-मूल लेकर आने पर दोनों उस आश्रम को जायेंगे॥२३॥]

तब उसने सोचा। "यह जंगल मे पला होने से मेरे स्त्री होने की बात नही जानता। किन्तु, इसका पिता मुझे देखते ही पहचान लेगा और पूछेगा, 'तू यहां क्या करती है?' वह बैहगी के सिरे से मेरा सिर भी फोड दे सकता है। उसके आने से पहले मुझे चल देना चाहिए। मेरे आने का उद्देश्य भी पूरा हो गया।" उसने उसे पीछे आने का रास्ता बताते हुए अगली गाथा कही—

**अञ्ञे बहू इसयो साधुरूपा**
**राजीसयो अनुमग्गे वसन्ति,**
**ते येव पुच्छेसि मं अस्समं तं**
**ते तं नयिस्सन्ति ममं सकासे ॥२४॥**

[मार्ग मे और बहुत से साधुरूप राजर्षि रहते है। तू उन से मेरा आश्रम पूछना। वे तुझे मेरे पास पहुंचा देगे॥ २४॥]

इस प्रकार वह अपने भागने का उपाय कर, पर्णशाला से निकल, उसके देखते ही देखते, "तू रुक" कह, जिस रास्ते से आई थी उसी रास्ते से अमात्यो के पास पहुंची। वे उसे ले छावनी पर पहुंचे और वहां से क्रमश. वाराणसी चले आये। शक्र ने भी उसी दिन सन्तुष्ट हो सारे राष्ट्र मे वर्षा करदी।

ऋषी-शृङ्ग तपस्वी के शरीर मे भी उसके विदा होते ही जलन पैदा हुई। वह कांपता हुआ पर्णशाला मे घुसा और वल्कल-चीर धारण कर अफसोस करता हुआ पड रहा।

बोधिसत्व ने शाम को आने पर जब पुत्र को नही देखा तो सोचा कि कहाँ गया? उसने बैहगी उतारी और पर्णशाला मे प्रवेश कर उसे पडा देखा तो उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए "तात! क्या करता है?" कह तीन गाथाये कही—

**न ते कट्ठानि भिन्नानि, न तं उदकं आभतं**
**अग्गि पि ते न ह्मापितो, किं नु मन्दो व झायसि ॥२५॥**
**भिन्नानि कट्ठानि हुतो च अग्गि**
**तपानि पि ते समिता ब्रह्मचारी**
**पीठं च मय्हं उदकं च होति**
**रमसि तुवं ब्रह्मभूतो पुरत्था ॥२६॥**

**अभिन्नकट्ठोसि अनाभतोदको**
**अहापितग्गीसि असिद्धभोजनो**
**न म तुवं आलपसी मं अज्ज**
**नट्ठं नु किं चेतसि कञ्चि दुक्खं ॥२६॥**

[न तो तूने लकड़ियाँ ही तोड़ी है, और न तू पानी ही लाया है। और तूने आग भी नही जलायी है। क्या मन्द-बुद्धि की तरह पड़ा सोचता है? ॥ २५ ॥ इससे पहले तू लकड़िया तोड़ रखता था, आग जला रखता था और तपनीय भी तैय्यार रहती थी। और मेरे लिये आसन तथा पादोदक भी रहता था। हे ब्रह्मचारी। तू ब्रह्मभूत होकर रमण करता था॥ २६ ॥ आज न लकड़िया टूटी है, न पानी लाया गया है, न आग जली है, न भोजन पका है। और तू आज मुझसे बोलता भी नही है! तेरा क्या नष्ट हो गया है? और तुझे क्या चैतसिक दुःख है? ॥२७॥]

उसने पिता का वचन सुन वह बात बताते हुए कहा—

**इधागमा जटिलो ब्रह्मचारी**
**सुदस्सनेय्यो सुतनू विनेति**
**नेवतिदीघो न पुनातिरस्सो**
**सुकण्हकण्हच्छदनेहि भोतो ॥२८॥**
**अभस्सु जातो अपुराणवण्णी**
**आधाररूपं च पन अस्स कण्ठे**
**द्वास्स गण्डा उरे सुजाता**
**सोवण्णपिण्डूपनिभा पभस्सरा ॥२९॥**
**मुखं च तस्स भुसदस्सनेय्यं**
**कण्णेसु लम्बन्ति च कुञ्चितग्गा**
**ते जोतरे चरतो माणवस्स**
**सुत्तं च यं संयमनं जटानं ॥३०॥**
**अञ्ञा च तस्स सञ्ञामानि चतस्सो**
**नीलापि ता लोहितका च सेता**

ता पिंसरे चरतो माणवस्स
चिरोटिसंघा-रिव पावुसम्हि ॥३१॥

न मेखलं मञ्जुमयं धरेति
न संतचं नो पन पब्बजस्स
ता जोतरे जघनवरे विलग्गा
सतेरता विज्जुरिव अन्तलिक्खे ॥३२॥

अखीलकानि च अवण्टकानि
हेट्ठा नभया कटिसमोहितानि
अविघट्टिता निच्चं किलि करोन्ति,
हं तात किं रुक्खफलानि तानि ॥३३॥

जटा च तस्स भुसदस्सनेय्या
परोसतं वेल्लितग्गा सुगन्धा
द्वधा सिरो साधुविभत्तरूपो
अहो नु खो मय्ह तथा जटास्सु ॥३४॥

यदा च सो परिकति ता जटायो
वण्णेन गन्धेन उपेतरूपा
नीलुप्पलं वातसमेरितं व
तत्थेव संखाति वनस्समो अयं ॥३५॥

पंको च तस्स भुसदस्सनेय्यो
नेतादिसो यादिसो मय्ह कायो,
सो वायती एरितो मालुतेन
वनं यथा अग्गगिम्हेसु फुल्लं ॥३६॥

निहन्ति सो रुक्खफलं पथव्या
सुचित्तरूपं रुचिरं दस्सनेय्यं
खित्तं च नस्स पुनरेति हत्थं
हं तात किं रुक्खफलं नु खो तं ॥३७॥

दन्ता च तस्स भुसदस्सनेय्या
सुद्धा समा संखवरूपपन्ना
मनो पसादेन्ति विवरियमाना,
न ह नून सो साकं अखादि तेहि ॥३८॥

अकक्कसं अगळितं मुहुं मुदुं
[उजुं] अनुद्धतं अचपलं अस्स भासितं,
रुदं मनुञ्ञा करवीक सुस्सरं
हृदयंगमं रज्जयतेव मे मनो ॥३९॥

बिन्दुस्सरो नातिविस्सट्ठकायो
न नून सञ्ञायमतिप्पयुत्तो,
इच्छामि खो तं पुनरेव दट्ठुं
मित्तं हि मे मागव आहू पुरत्था ॥४०॥

सुसन्धि सब्बत्थ विमट्ठ इमं वनं
पुथुं सुजातं खरपत्तसन्निभं
तेनेव मं उत्तरियान मागवो
विवरिय ऊरुं जघनेन पीळयि ॥४१॥

तपन्ति आभन्ति विदोचरे व
सतेरता विज्जुरिव अन्तलिक्खे
बाहा मुदू अञ्जनलोमसादिसा
विचित्र वट्टगुंलिकास्स सोभरे ॥४२॥

अकक्कसङ्गो न च दीघलोमो
नखास्स दीघा अपि लोहितग्गा
मुदूहि बाहाहि पलिस्सजन्तो
कल्याणरूपो रमयं उपट्ठहि ॥४३॥

दुमस्स तूलूपनिभा पभस्सरा
सुवण्णकम्बूतल वट्टसुच्छवी

हत्था मुदू, तेहि मं सम्फुसित्वा
इतो गतो, ते मं दहन्ति तात ॥४४॥

न ह नून सो खारिविधं अहासि
न नून कटठानि सयं अभञ्जि
न नून सो हन्ति दुमे कुठारिया
न पिस्स हत्थेसु खीलानि अत्थि ॥४५॥

अच्छो च खो तस्स वणं अकासि
सो मं ब्रविः सुखितं मं करोहि,
ताहं करिं, तेन ममापि सोख्यं
सोच ब्रवी सुखितोस्मीति ब्रह्मे ॥४६॥

अयं च ते मालुवपण्णसन्थता
विकिण्णरूपा व मया च तेन च,
किलन्तरूपा उदके रमित्वा
पुनप्पुनं वस्स कुटिं वजाम ॥४७॥

न मज्ज मन्ता पटिभन्ति तात
न अग्गि हुत्तं न पि यञ्ञ तत्र,
न चापि ते मूलफलानि भुञ्जे
याव न पस्सामि तं ब्रह्मचारिं ॥४८॥

अद्धा पजानासि तुवं पि तात
यस्सं दिसायं वसते ब्रह्मचारी
तं मं दिस पापय तात खिप्पं
मा ते अहं अम्हेर अस्समम्हि ॥४९॥

विचित्रपुप्फं हि वनं सुतं मया
दिजाभिघुट्ठ दिजसङ्घसेवित,
तं मं दिसं पापय तात खिप्पं
पुरा ते पाणं विजहामि अस्समे ॥५०॥

[यहाँ जटिल ब्रह्मचारी आया, सुदर्शनीय, सुशरीर, तथा तेजवान। वह न बहुत ऊंचा था और न बहुत नीचा। उसका काला सिर काले बालों से ढका था ॥२८॥ अभी दाढी नही आई नवीन-प्रव्रजित, कण्ठ म (घड़े रखने के) आधार सदृश कण्ठा, ओर छाती पर सोने के पिण्ड के समान प्रकाशित दो गाठे ॥ २९ ॥ उसका मुँह अत्यन्त दर्शनीय, उसके कानो मे कुण्डल लटकते थे। उस चलते हुए ब्रह्मचारी के वे चमकते थे और वह सूत्र भी जो जटाओं को बाधे था ॥ ३० ॥ ओर भी उसके चार प्रकार के बधन है, वे नीले भी हैं लाल भी हैं। ओर वे उस चलते हुए ब्रह्मचारी के ऐसी ही आवाज करते हैं, जैसे वर्षाऋतु मे देव के बरसने पर तोते ॥ ३१ ॥ उसके शरीर पर न मुञ्ज की मेखला थी, न वल्कल (त्वचा) की, और न बब्बज की। उसके बदन पर जो स्वर्ण मेखला थी, वह आकाश मे बिजली की तरह चमकती थी ॥ ३२ ॥ बिना काँटो के ओर बिना डठल के, नाभी से नीचे कटि के साथ लगे हुए, बिना रगड के भी आवाज करने वाले हे तात ! यह किस पेड के फल है ? ॥ ३३ ॥ उसकी सौ से ऊपर सुगन्धित, घुघराली जटाये थी। उसका सिर भली प्रकार दो हिस्सो मे विभक्त था। ओह ! मेरी जटाये भी वैसी होती ॥ ३४ ॥ जब वह अपनी वर्ण तथा गन्ध से युक्त जटाओ को सभालता था, तब यह आश्रम ऐसा लगता था, जैसे वायु से नीले कमल हिल रहे हों ॥ ३५ ॥ उसका शरीर (पङ्क ?) बहुत दर्शनीय है। वह मेरे शरीर के सदृश नही है । वह हवा मे चालित की तरह हिलता है जैसे वसन्त ऋतु मे खिला हुआ वन ॥ ३६ ॥ पृथ्वी पर जो सुन्दर, दर्शनीय फल गिराया जाता है, वह फेका जाने पर फिर हाथ मे नही आता। लेकिन तात ! यह कौन से वृक्ष का पेड है? ॥ ३७ ॥ उसके दान्त भी बहुत दर्शनीय थे, शुद्ध तथा शङ्ख के समान चमकने वाले। वह उखडने पर मन को प्रसन्न करते हैं। निश्चय मे उसने उन दान्तों से शाक नही खाया होगा ॥ ३८ ॥ उसकी वाणी कठोर नही थी, बार बार बोलने पर भी मृदु थी, सीधी थी, उद्धत नही थी, चपल नही थी, मनोज्ञ थी, हृदय हारी थी, तथा करवीक पक्षी के स्वर की तरह मुझे आनन्द देने वाली भी ॥ ३९ ॥ केन्द्रित-स्वर, सम्बन्धियों की तरह विश्वसनीय तथा निश्चय से पाठ मे अतितल्लीन नही। मै उसे देखना चाहता हूँ। वह ब्रह्मचारी मेरा पूर्व (जन्म) से मित्र था ॥ ४० ॥ उनका व्रण सुसस्थित

था, चारों ओर से गोल-मटोल, बडा था, कँवल के कुड्मल की तरह सुजात था। उस ब्रह्मचारी ने उसी को उघाड कर जाँघ से दबाया॥ ४१ ॥ आकाश मे बिजली के चमकने की तरह (उसके शरीर से) किरने निकलती थी। अञ्जन-वर्ण रोमो से युक्त उसकी बाहे भी कोमल थी। और उसकी गोल-गोल विचित्र अगुलियाँ भी शोभा देती थी॥ ४२ ॥ फोडे फुन्सी से रहित शरीर, बडे बडे बाल नही, नाखून लम्बे किन्तु लाल-वर्ण। उसने मृदु बाहों से स्पर्श करते हुए मेरा भलि प्रकार उपस्थान किया॥ ४३॥ पेड की रुई के समान कोमल तथा प्रभास्वर, स्वर्णादास के तल के समान छवियुक्त, उसके मृदु हाथ थे। उन हाथों से मेरा स्पर्श करके, वह यहाँ से गया। हे तात! वे हाथ ही मुझे जलाने हे॥४४॥ न तो उसने बैहँगी ही उठाई थी, न उसने स्वय लकडियाँ ही तोडी थी और न उसने कुल्हाडी से पेड़ ही काटे थे। हाथ मे गट्ठे भी नही थे॥ ४५ ॥ एक भालू ने उसको वह जख्म कर दिया था। उसने मुझे कहा—"मुझे सुखी कर।" मैने वैसा किया। उससे मुझे भी सुख हुआ। वह भी बोला—"ब्राह्मण! मै भी सुखी हूँ" ॥४६॥ यह तेरी मालुव-बेल के पत्तों की चटाई मैने और उसने बिखेर दी। क्लान्त होकर, जल मे रमणकर मै फिर फिर उसकी कुटी मे जाऊँगा॥ ४७ ॥ तात! आज मुझे मन्त्र भी नही सूझते है, न अग्नि-होत्र और न यज्ञ। और मै उन फल-मूलो को भी तब तक नही खाऊँगा, जब तक उस ब्रह्मचारी को नही देखलेता॥ ४८ ॥ हे तात! तू भी निश्चय से जानता होगा कि वह ब्रह्मचारी किस दिशा मे रहता है? हे तात! मुझे उस दिशा मे शीघ्र पहुँचा दे। मै तेरे आश्रम मे ही न मर जाऊँ॥ ४९॥ मैने सुना है कि वह वन विचित्र पुष्पों वाला है, और वहाँ पक्षियों क समूह के समूह रहते है। हे तात! मुझे उस दिशा मे शीघ्र पहुँचा दे। (विलम्ब होने से) मै तेरे आश्रम मे ही प्राण न छोड दूं॥५०॥]

उसका इस प्रकार का विलाप सुन् बोधिसत्व ने समझ लिया कि किसी स्त्री ने इसका शील खण्डित किया होगा। उसने उसे उपदेश देते हुए छः गाथायें कही—

**इमास्मा हं जोतिरसे वनम्हि**
**गन्धब्बवेबच्छरसंघसेविते**

इसीनं आवासे सनन्तनम्हि
नेतादिसं अरतिं पापुणेथ ॥५१॥

भवन्ति मित्तानि अथ न होन्ति
ञातीसु मित्तेसु करोन्ति पेमं,
अयञ्च जम्मो किस्स वा निविट्ठो
यो नेव जानाति कुतोम्हि आगतो ॥५२॥

संवासेन हि मित्तानि सन्धीयन्ति पुनप्पुनं,
सा च मेत्ति असंगन्तु असंवासेन जीरति ॥५३॥

सचे तुवं दक्खस्सि ब्रह्मचारिं
सचे तुवं सल्लपे ब्रह्मचारिना
सम्पन्नसस्सं व महोदकेन
तपोगुणं खिप्पं इमं पहस्ससि ॥५४॥

पुनप्पि चे दक्खसि ब्रह्मचारिं
पुनप्पि चे सल्लपे ब्रह्मचारिना
सम्पन्नसस्सं व महोदकेन
उस्मागतं खिप्पं इमं पहस्ससि ॥५५॥

भूतानि एतानि चरन्ति तात
विरूपरूपेन मनुस्सलोकं
न तानि सेवेथ नरो सपञ्ञो
आसज्ज नं तस्सति ब्रह्मचारिं ॥५६॥

[इस गन्धर्व, देव, अप्सराओं के संघ से युक्त, प्रकाशमान वन में ऋषियों के आवास में रहते समय, पुराने समय से किसी को भी कभी ऐसी 'अरति' नही प्राप्त हुई ॥ ५१ ॥ (मन ही मन कहने लगा—) मित्र होते भी हैं और नही भी होते। जब होते है, तो रिशतेदारों तथा मित्रों से प्रेम किया जाता है। इस निकृष्ठ ने कहाँ प्रेम किया है, जो यह भी नही जानता कि मेरा जन्म कहाँ से हुआ है ! ॥ ५२ ॥

बार बार साथ रहने से ही मैत्री बढ़ती है और साथ न रहने से वह मैत्री नष्ट हो जाती है ॥ ५३ ॥ यदि तू फिर उस ब्रह्मचारी को देखेगा अथवा उस ब्रह्मचारी के साथ सलाप करेगा, तो तेरी तपस्या उसी प्रकार नष्ट हो जायगी जैसे बाढ से खेती ॥ ५४ ॥ यदि तू फिर उस ब्रह्मचारी को देखेगा अथवा उस ब्रह्मचारी से बात-चीत करेगा, तो तेरा श्रमण-तेज उसी प्रकार नष्ट हो जायगा, जैसे बाढ से खेती ॥ ५५ ॥ तात ! मनुष्य लोक मे इस प्रकार के प्राणी नाना रूप धारण कर घूमते है। बुद्धिमान आदमी को चाहिए उनका सेवन न करे । ब्रह्मचारी वैसे प्राणियो की सगति कर त्रास को प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥]

उसने पिता की बात सुनी तो सोचा, "वह यक्षिणी होगी।" वह डरा और उधर से चित्त हटा पिता से क्षमा मागी, "तात ! क्षमा करे। मै नही जाऊँगा।' उसने भी उसे आश्वासन दे कहा, "ब्रह्मचारी ! तू आ। मैत्री-भावना कर। करुणा-भावना कर। मुदिता-भावना कर। उपेक्षा-भावना कर। इस प्रकार ब्रह्मविहारो की भावना कर।"

उसने वैसा कर, फिर ध्यान लाभ किया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, सत्यो के अन्त मे जातक का मेल बैठाया। (सत्य-प्रकाशन के अन्त मे उद्विग्न-चित्त भिक्षु स्रोता-पत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ)। उस समय नलिनिका पूर्व भार्य्या थी, ऋषि-शृङ्ग उद्विग्न-चित्त भिक्षु और पिता तो मै ही था।

•

## ५२७. उम्मदन्ती जातक

"निवेसन कस्स नुद सुनन्द . . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय उद्विग्न-चित्त भिक्षु के बारे मे कही।

## क. वर्तमान कथा

वह एक दिन श्रावस्ती में भिक्षाटन करता हुआ एक अलंकृत, उत्तम रूपवती स्त्री को देख, आसक्त हो, चित्त को काबू न रख सका। वह विहार लौटने पर शल्य से बिधे, रागातुर भ्रान्त-मृग के समान कृष हो गया; हड्डी पसलियाँ निकल आई; पीला पड गया; (बुद्ध-शासन) अरुचिकर हो गया; एक ही ढग से (ध्यानादि करते रहने मे) चित्त की शान्ति न पा, आचार्य्य-सेवा आदि कर्तव्यों को छोड़ धर्मोपदेश, परिप्रश्न, योग-विधि आदि को विसार रहने लगा। उसके साथी भिक्षु पूछते—"आयुष्मान! पहले तेरी इन्द्रियाँ प्रसन्न थी। मुख-वर्ण प्रसन्न था। अब वैसा नही है। क्या कारण है?" बोला—"आयुष्मानो! (बुद्ध-शासन) मे मेरा मन नही है।" उन्होंने उपदेश दिया—"आयुष्मान! मन लगा। (लोक मे) बुद्ध का उत्पन्न होना दुर्लभ है। उसी प्रकार सद्धर्म सुनने का अवसर और मनुष्य-जन्म। तू मनुष्य योनि प्राप्त कर, दु ख का नाश करने की इच्छा से, रोते-धोते सम्बन्धियों को छोड, श्रद्धा से प्रव्रजित होकर क्यो कामनाओ के वशीभूत होता है? काम-वासना छोटे से छोटे कीडे से लेकर सभी अजनो मे समान रूप से विद्यमान रहती है, जो उसके वशीभूत होते है उन्हे भी कुछ बहुत मजा नही मिलता, काम-भोग बहुत दु:ख देने वाले तथा बहुत हैरानी का कारण हैं, यहाँ दुष्परिणाम ही अधिक है, ये अस्थि-ककाल के समान है, ये मास-पेशी के समान है, ये तिनको की मशाल के समान है, ये जलते कोलों के समान है, ये स्वप्नों के समान है, ये दूसरो से उधार माँगी हुई चीज के समान है, ये वृक्ष के फल के समान है, ये शक्ति-शूल के समान है, ये सर्प के फन के समान है; और तू इस प्रकार के (बुद्ध-) शासन मे प्रव्रजित हो, इस प्रकार के अनर्थकारी संकल्पों के वशीभूत हो गया।" जब उन्होंने देखा कि वह उनका कहना नही मानता तो वे उसे शास्ता के पास धर्म-सभा में ले गये। शास्ता ने पूछा—"भिक्षुओ, क्या अनिच्छुक भिक्षु को लिये आ रहे हो?"

"यह उद्विग्न-चित्त हो गया है।"

"क्या सचमुच?"

भिक्षु ने उत्तर दिया—"हां, सचमुच।"

"भिक्षु! पुराने पण्डितों ने राज-काज चलाते हुए भी काम-वासना जाग्रत हो जाने पर, उसके वशीभूत न हो, चित्त को काबू मे रख, अनुचित (-कर्म) नहीं किया।"

शास्ता ने यह कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

## ख॰ अतीत कथा

पूर्व समय मे सिवि राष्ट्र मे अरिट्ठपुर नगर मे सिवि नाम का राजा राज्य करता था। बोधसत्व उसकी पटरानी की कोख से पैदा हुए। नाम सिवकुमार ही रखा गया। सेनापति को भी पुत्र हुआ, अहिपारक नाम रखा गया। वे दोनो साथी हो, बडे होकर, सोलह वर्ष के होने पर, तक्षशिला जा, शिल्प सीख कर आये। राजा ने अपने पुत्र को राज्य सौप दिया। वह भी अहिपारक को सेनापति पद पर प्रतिष्ठित कर धर्मानुसार राज्य करने लगा।

उसी नगर मे अस्सी करोड धन के मालिक तिरीट-वच्छ सेठ को भी एक लडकी उत्पन्न हुई, रूपवान, सौभाग्यवान् तथा उत्तम लक्षणो से युक्त। नामकरण के दिन उसका नाम उम्मदन्ति रखा गया। वह सोलह वर्ष की होते होते मानुषी-वर्ण को पार कर देवप्सरा के समान सुन्दर हो गई। जो जो अञ्जन उसे देखते, वे वे होश मे न रह सकते। सुरापान की सी बेहोशी छा जाती। काम-वासना के वशीभूत हो जाने के कारण अपने पर काबू न रहता।

उसका पिता तिरीटवच्छ राजा के पास आया और बोला—"देव! मेरे घर मे स्त्री-रत्न उत्पन्न हुआ है। वह राजा के ही योग्य है। लक्षणज्ञों को भेज, परीक्षा करा, यथारुचि करे।" राजा ने 'अच्छा' कह ब्राह्मणों को भेजा। उन्होने सेठ के घर जा, सत्कृत हो, खीर खाई। उस समय सभी अलकारों से अलकृत हो उम्मदन्ती उनके पास गई। वे उसे देखते ही हाश-हवास गँवा बैठे। काम-वासना के वशीभूत हो उन्हे इस बात का ध्यान भी न रहा कि वे भोजन कर रहे थे। कोई कौर हाथ मे ले, मुँह मे डालने गये तो सिरपर रख लिया, किसीने काँछ में फेंक दिया,

कोई दीवार से युद्ध करने लगे—सभी पगला गये। उसने 'यह मेरे लक्षणों की परीक्षा करते है। इन्हें गरदनिया दे निकाल दो' आज्ञा दी और निकलवा दिया। वे लज्जित हुए और उसमे असन्तुष्ट हो उन्होने राजभवन मे जाकर कह दिया—"देव ! वह स्त्री तो मनहूस है। आप के योग्य नही।" राजा ने उसे "मनहूस" मान नही मगवाया।

उसने यह समाचार सुना तो "मै मनहूस हूँ, इसीलिये राजा ने ग्रहण नही किया। मनहूस स्त्रियाँ ऐसी होती है !" कह, "अच्छा ,यदि राजा से भेंट होगी तो देखूंगी" निश्चय कर उसमे वैर बाँध लिया।

उसके पिता ने उसे अहिपारक को दे दिया। वह उसकी प्रिया हो गई, मन को अच्छी लगने वाली। किस कर्म के फल से वह ऐसी सुन्दरी हुई ! लाल-वस्त्र के दान-स्वरूप। पूर्व समय मे वह वाराणसी मे दरिद्र कुल मे उत्पन्न हुई। उत्सव के दिन भाग्यवान स्त्रियाँ कुसुम्ब-रक्तवर्ण पहन, अलकृत हो खेलती थी। उन्हे देख, वैसा वस्त्र पहन, खेलने की इच्छा से उसने माता पिता को कहा। उन्होंने उत्तर दिया—"हम दरिद्र है। हमे ऐसा वस्त्र कहां मिल सकता है ?"

"तो मुझे किसी धनी कुल मे नौकरी करने की अनुज्ञा दें, वे मेरा गुण देख कर देगे।"

उनकी अनुमति ले वह एक (धनी) कुल मे पहुँची और बोली—"लाल-वस्त्र के बदले मे मैं नौकरी करूँगी।"

"तीन बरस तक काम करने पर तेरा गुणागुण जान कर देगे।"

उसने 'अच्छा' कहा और काम मे लग गई। उन्होंने उसका गुण जान तीन बरस से पहले ही उसे गहरे कुसुम्ब-रक्त वर्ण कपडे के साथ दूसरा वस्त्र भी देकर भेजा—"अपनी सहेलियों के साथ जा, नहाकर पहन ले।" वह सखियो के साथ गई और लाल-वस्त्र किनारे पर रखकर नहाने लगी।

उस समय काश्यप बुद्ध का एक शिष्य उधर आ निकला। उसका चीवर जाता रहा था। इसलिये वह शाखाओ से तन ढके था। उसने उसे देख सोचा, "यह भदन्त चीवर रहित है। पूर्व-जन्म मे भी कुछ न दिया रहने से मुझे वस्त्र दुर्लभ

है। इस वस्त्र के दो हिस्से कर एक हिस्सा आर्य को दे दूं।" यह सोच, बाहर आ, अपना वस्त्र पहन, "भन्ते ! ठहरें" कह और स्थविर को प्रणाम कर, उसे एक हिस्सा दिया। वह एक छिपी जगह गया और टहनियों को छोड, उसका एक सिरा पहन तथा दूसरा ओढ बाहर आया। उस वस्त्र के प्रकाश से उसका सारा शरीर सूर्य्य की भाति चमकने लगा। उसने उसे देख, सोचा—"यह आर्य पहले इस प्रकार सुशोभित नही था, अब बाल सूर्य्य की तरह चमकता है। यह वस्त्र (खण्ड) भी इसे ही दे दूं।" उसने दूसरा (आधा) भाग भी दे प्रार्थना की, "भन्ते ! मै ससार मे जन्म ग्रहण करती हुई उत्तम रूपवान हो जाऊं। मुझे देख कोई आदमी अपने होश मे न रह सके। मुझसे बढकर सुन्दरी कोई न हो।" स्थविर अनुमोदन करके चला गया। वह देव-लोक मे सचरण करती हुई, उस समय अरिट्ठपुर मे पैदा होने पर वैसी हुई।

उस नगर मे कार्तिकोत्सव की घोषणा हुई, कार्तिक पूर्णिमा के लिये नगर सजाया गया। अहिपारक ने अपने रनिवास मे जा उसे सम्बोधन कर कहा—"भद्रे उम्मदन्ती ! आज कार्तिकोत्सव है। राजा नगर की प्रदक्षिणा करते समय सर्वप्रथम यही आयेगा। उसे अपने आप को मत दिखाना। वह तुझे देख होश ठिकाने न रख सकेगा।" जब वह जाने लगा, तो वह बोली—"मै देख लूंगी।" जब चला गया तो उसने दासी को बुलाकर कहा "राजा के इस दरवाजे पर पहुँचने पर मुझे सूचना देना।"

सूर्य्यास्त होने पर, पूर्णचन्द्रमा का उदय हो जाने पर, नगर के देव-नगर की भान्ति सजे रहने पर, चारों दिशाओं मे दीपकों के जल जाने पर, सभी अलकारो से सजा हुआ राजा, श्रेष्ठ रथ पर चढ, अमात्यों सहित बडी शान-बान के साथ नगर की प्रदक्षिणा करता हुआ सबसे पहले अहिपारक के दरवाजे पर ही पहुंचा। वह घर मनोशिलावर्ण की प्राकार से घिरा था, अलकृत था, द्वार अट्टालिकाओं वाला था, शोभा-सम्पन्न था तथा सुन्दर था। । उस समय दासी ने उम्मदन्ती को सूचना दी। उसने फूलों की मुट्ठी लिवा, किन्नर-लीला से, झरोखे की ओट मे खडी हो राजा पर फूल फेंके। उसने उसे देखा तो वासना के वशीभूत हो, होश ठिकाने न रहने के कारण, वह यह भी नही जान सका कि यह

अहिपारक का घर है। उसने सारथी को सम्बोधन कर पूछते हुए दो गाथाये कही—

**निवेसनं कस्स नुदं सुनन्द**
**पाकारेन पण्डुमयेन गुत्तं**
**का दिस्सति अग्गिसिखा व दूरे**
**वेहासयं पब्बतग्गे व अच्चि ॥१॥**

**धीता न, अयं कस्स सुनन्द होति,**
**सुणिसा न, अयं कस्स अथो पि भरिया,**
**अक्खाहि मे खिप्पं इदेव पुट्ठो**
**अवावटा, यदि वा अत्थि भत्ता ॥२॥**

[सुनन्द ! पाण्डु-वर्ण आकार से घिरा हुआ यह किसका घर है ? यह आकाश मे दूर पर्वत-शिखर पर दीपक की लौके समान, कौन दिखाई देता है ? ॥१॥ हे नन्द ! यह किसी की लडकी है ? अथवा यह किसी की पुत्र-बधु है अथवा भार्य्या है ? मै तुझे पूछता हूँ, इसलिये मुझे जल्दी बता कि यह अविवाहित है, अथवा विवाहित है ? ॥२॥]

उसने उत्तर देते हुए दो गाथाये कही—

**अहं हि जानामि जनिंद एतं**
**मत्या च पेत्या च अथो पि अस्स**
**तत्थेव सो पुरिसो भूमिपाल**
**रत्तिंदिवं अप्पमत्तो तवत्थे ॥३॥**

**इद्धो च फीतो च सुबाळिहको च**
**अमच्चो ते अञ्ञतरो जनिन्द,**
**तस्स एसा भरिया अहिपारकस्स**
**उम्मदन्ती नाम धेय्येन राज ॥४॥**

[हे जनिन्द ! मैं इसे मातृपक्ष तथा पितृपक्ष दोनो ओर से जानता हूं। और उसी प्रकार उस पुरुष को भी जो रात-दिन तेरी सेवा मे अप्रमाद रूप से निरत है ॥ ३ ॥ वह समृद्धिमान है, वह वस्त्रालकारो से युक्त है, वह धनी है, और हे जनिन्द ! वह तेरा एक अमात्य है। हे राजन् ! यह उस अहिपारक की भार्य्या है, और इसका नाम उम्मदन्ती है ॥४॥]

यह सुन राजा ने उसके नाम की प्रशसा करते हुए अगली गाथा कही—

**अम्भो अम्भो नामं इदं इमिस्सा**
**मत्या च पेत्या च कतं सुसाधु**
**तथा हि मय्हं अपलोकयन्ती**
**उम्मत्तकं उम्मदन्ती अकासि ॥५॥**

[हे भो ! हे भो ! माता-पिता ने इसका नाम ठीक रखा है। इस उम्मदन्ती ने मुझे देखकर ही उन्मत्त कर दिया ॥५॥]

उसने जब यह जान लिया कि राजा गडबडा गया तो झरोखा बन्द कर शयनागार मे ही चली गई। उसके दिखाई देने के बाद से राजा का भी चित्त नगर- प्रदक्षिणा मे नही लगा। उसने सारथि को सम्बोधन कर उसे आज्ञा दी— "मित्र सुनन्द ! रथ को रोक । यह उत्सव हमारे अनुकूल नही है। सेनापति अहिपारक के ही अनुकूल है। राज्य भी उसी के योग्य है।"

फिर रथ रुकवा, महल पर चढ, शयनागार मे जा, लेटकर विलाप करने लगा—

**सा पुण्णमासे मिगमन्दलोचना**
**उपाविसी पुण्डरिकत्तचंगी**
**द्वे पुण्णमायो तदाहू अमञ्ञा**
**दिस्वान पारापतरत्तवासिनिं ॥६॥**

आळारपम्हेहि सुभेहि वग्गुहि
पलोभयन्ती मं यदा उदिक्खति
विजम्भमाना हरतेव मे मनो
जाता वने किम्पुरिसीव पब्बते ॥७॥
तदा हि ब्रहती सामा आमुत्तमणिकुण्डला
एकच्चवसना नारी मिगी भन्ता व उदिक्खति ॥८॥
कदास्सु मं तम्बनखा सुलोमा
बाहामुदू चन्दनसारलित्ता
वट्टंगुली सन्नतबीरकुत्तिया
नारी उपञ्ञिस्सति सीसतो सुभा ॥९॥
कदास्सु मं कञ्चनमालुरच्छदा
धीता तिरीटिस्स विलाकमज्झा
मुदूहि बाहाहि पलिस्सजिस्सति
ब्रहावने जातदुमं व मालुवा ॥१०॥
कदास्सु लाखास्सरत्तसुच्छवी
बिन्दुत्थनी पुण्डरीकत्तचंगी
मुखं मुखेन उपनामयिस्सति
सोण्डो व सोण्डस्स सुराय थालं ॥११॥
यथादृमं नं तिट्ठन्तिं सब्बगत्तं मनोरमं
ततो सकस्स चित्तस्स नाबबोधामि चिञ्चनं ॥१२॥
उम्मदन्ती मया दिट्ठा आमुत्तमणिकुण्डला
न सुपामि दिवारत्तिं सहस्सं व पराजितो ॥१३॥
सक्को च मे वरं दज्जा, सो व लभेथ मे वरो
एकरत्तिं दिरत्तिं वा भवेय्यं अहिपारको
उम्मदन्त्या रमित्वान, तिविराजा ततो सिया ॥१४॥

[पूर्णिमा की रात्रि मे वह कमल-शरीरी, मृगनयनी खडी हुई। कबूतर (के पैरों) सदृश लाल-वस्त्र धारण किये उसे देखकर मुझे ऐसे लगा मानो दो चन्द्रमा

उदय हो गये ॥ ६ ॥ जब वह बड़ी बड़ी पलकों वाली, शुभ, सुन्दर आँखों से मेरी ओर देखती है, तो जुम्हाई लेती हुई वह मेरे मन को हर लेती है, जैसे वन-पर्वत में उत्पन्न किन्नरी ॥ ७ ॥ उस समय उदार, कञ्चन-वर्ण, मणि-कुण्डलों वाली, इकहरे वस्त्र वाली वह नारी चकित हिरनी की तरह देखती थी ॥ ८ ॥ वह लाल नखोंवाली, वह सुलोमों वाली, वह कोमल बाहु, वह चन्द-सार-लिप्त, वह गोल अगुलियों वाली, वह स्पर्श-चतुरा, वह सुन्दर नारी कब मुझे आमस्तक सन्तुष्ट करेगी ॥ ९ ॥ वह कञ्चन-माला-धारिणी, वह तिरीट-पुत्री, वह कृषाङ्गी कब मेरा कोमल बाहों से आलिङ्गन करेगी, जैसे बड़े वन में सालुआ-लता पेड़ का आलिङ्गन करती है ॥ १० ॥ वह लाख के समान लाल चमड़ी वाली, वह पुण्डरीक के समान त्वचा वाली, वह (जल-) बिन्दु के समान स्तनवाली कब मुँह से मुँह मिलायेगी, जैसे शराबी शराबी के पास सुरा की थाली ले जाता है ॥ ११ ॥ जब से मैंने उस मनोरम-गातवाली को देखा, तब से मुझे अपने चित्त का कुछ भी बोध नहीं रहा ॥१२॥ जब से मैंने मणि-कुण्डल युक्त उम्मदन्ती को देखा तब से मुझे उसी प्रकार रात-दिन नींद नहीं आती, जैसे हजार हारे हुए जुआरी को ॥ १३ ॥ यदि शक्र मुझे वर दें, तो उससे मैं यही वर प्राप्त करूँगा कि एक रात अथवा दो रात के लिये मैं अहिपारक हो जाऊँ और उम्मदन्ती के साथ रमण करके, फिर सिवि-राजा हो जाऊँ ॥ १४ ॥]

उन अमात्यों ने अहिपारक को भी सूचना दी, "स्वामी! राजा नगर की प्रदक्षिणा करते समय, तुम्हारे घर-द्वार तक जा, रुककर (वापिस) प्रासाद पर जा चढ़ा।" उसने अपने घर जा उम्मदन्ती को बुलाकर पूछा—"भद्रे! क्या तू ने राजा को अपने आप को दिखा दिया?"

"स्वामी! एक बड़े पेट वाला, बड़े बड़े दान्तों वाला पुरुष रथ में बैठ कर आया था। मैं नहीं जानती कि वह राजा था, अथवा रजक था। सुना कि 'राजा' है। इसलिये झरोखे में खड़े होकर फूल फेंके। वह उसी क्षण वापिस लौट गया।" यह सुना तो बोला—"तू ने सब चौपट कर दिया।" अगले दिन प्रातःकाल ही वह राजभवन पहुँचा। शयनागार के द्वार पर खड़े हो उसने सुना कि राजा उम्मदन्ती के लिये विलाप कर रहा है। उसने सोचा—"यह उम्मदन्ती पर आसक्त हो गया

है । वह न मिली तो मर जायगा। अपने और राजा के यश की रक्षा करते हुए मुझे इसके प्राण बचाने चाहिए।" अपने घर लौट उसने अपने एक अत्यन्त विश्वसनीय सेवक को बुलाकर कहा—"तात ! अमुक जगह एक खोखला वृक्ष है। तू बिना किसी को पता लगने दिये, सूर्य्यास्त के होने पर वृक्ष के अन्दर जाकर बैठ, मैं बलि-कर्म करता हुआ वहाँ पहुँच, देवता को नमस्कार करता हुआ, प्रार्थना करूँगा 'देवराज ! हमारा राजा नगर मे उत्सव रहने, बिना खेले ही शयनागार मे जा पडा विलाप कर रहा है। हम इसका कारण नही जानते। राजा देवताओ का बहुत उपकार करता है। प्रति वर्ष हजार खर्च करके बलि-कर्म करता है। हमे बता कि राजा अमुक कारण मे विलाप करता है। हमारे राजा को जीवन दान दे।' तू उस समय स्वर बदल कर कहना, "सेनापति ! तुम्हारे राजा को कोई रोग नही है। वह तुम्हारी भार्य्या उम्मदन्ती पर आसक्त है। यदि वह मिलेगी तो जीयेगा, अन्यथा मर जायेगा। यदि तू उसके प्राणो की रक्षा चाहता है तो उसे उम्मदन्ती सौप दे।" इस प्रकार सेनापति ने उसे सिखा-पढा कर भेजा। वह जाकर उसी वृक्ष मे बैठ रहा और अगले दिन जब सेनापति ने वहाँ पहुंच प्रार्थना की तो उसी प्रकार बोला। सेनापति ने 'अच्छा' कहा और देवता को प्रणाम कर, अमात्यों को सूचना दे, नगर मे प्रवेश कर राज-भवन पहुंच, शयनागार खटखटाया। राजा ने होश सभाल कर पूछा—"कौन है ?" "देव ! मै आहेपारक हूं।" उसके लिये राज-द्वार खुल गया। उसने अन्दर जा राजा को प्रणाम कर गाथा कही—

**भूतानि मे भूतपती नमस्सतो**
**आगम्म यक्खो इदं एवं अब्रवि**
**रञ्ञो मनो उम्मदन्त्या निविट्ठो,**
**ददामि ते तं, परिवारयस्सु ॥१५॥**

[हे राजन् ! मेरे भूतों को नमस्कार करते समय, यक्ष ने मुझे आकर कहा है कि राजा का मन उम्मदन्ती से उलझ गया है। मै उसे आपको देता हूँ। स्वीकार करे॥ १५ ॥]

राजा ने पूछा—"मित्र अहिपारक ! क्या यक्ष भी जान गये है कि मै उम्मदन्ती मे आसक्त मन होकर विलाप कर रहा हूँ।"

"हाँ, देव।"

उसे लज्जा आई कि सारी दुनिया पर मेरी नीचता प्रकट हो गई। उसने धर्म मे प्रतिष्ठित होने के लिये अगली गाथा कही—

**पुञ्ञा च धंसे अमरो न चम्हि**
**जनो च नो पापं इदं ति जञ्ञा,**
**भुसो च त्यस्सा मनसो विघातो**
**दत्वा पियं उम्मदन्तिं अदिट्ठा ॥१६॥**

[मेरे पुण्य का विनाश हो जायगा, और मै अमर नही हो जाऊँगा। लोग हमारे पाप को जान जायेगे। और मुझे अपनी प्रिया उम्मदन्ती दे देने से और न देखना मिलने से तेरे मन मे बहुत विघात होगा॥ १६॥]

इससे आगे की गाथायें दोनों का उत्तर प्रति-उत्तर है—

**जनिन्द नाञ्ञत्र तया मया वा**
**सब्बापि कम्मस्स कतस्स जञ्ञा**
**यं ते मया उम्मदन्ती पदिन्ना**
**भुसेहि राजा वनथं सजाहि ॥१७॥**

[राजन्। तेरे और मेरे अतिरिक्त और कोई तेरे इस कर्म को न जानेगा और कि मैंने तुझे उम्मदन्ती दी। तू अपनी वासना मे वृद्धि कर ले, और फिर यदि न चाहे तो मुझे वापिस कर देना॥ १७॥]

राजा—

**यो पापकम्मं करं मनुस्सो**
**सो मञ्ञती: मा-य-इध मञ्ञिंसु अञ्ञो**
**पस्सन्ति भूतानि करोन्तं एतं**
**युत्ता च ये होन्ति नरा पथब्या ॥१८॥**

[जो आदमी पाप-कर्म करता है, वह सोचता है कि इसे दूसरे आदमी नही जानेगे। किन्तु उस करनेवाले को देवता देखते है और पृथ्वी भी तथा दूसरे योगी-जन भी॥ १८॥]

**अञ्ञो नु ते कोध नरो पथव्या**
**सद्धेय्य लोकस्मि न सा पिपाति**
**भुसो च त्यास्स मनसा विघातो**
**दत्वा पियं उम्मदन्तिं अदिट्ठा ॥१९॥**

[लोक मे दूसरा कौन इस बात में विश्वास करेगा कि वह तुझे प्रिय नही है ? इस लिये उसे न देखने से और उम्मदन्ती को मुझे दे देने से तेरे मन मे और भी विघात होगा ॥ १९ ॥]

अहिपारक—

**अद्धा पिया मय्ह जनिन्द एसा**
**न सा मयं अप्पिया भूमिपाल**
**गच्छेव त्वं उम्मदन्तिं भदन्ते**
**सीहो व सेलस्स गुहं उपेति ॥२०॥**

[निश्चय से राजन् ! वह मुझे प्रिय है। हे भूमिपाल ! वह मेरी अप्रिया नही है। तू उम्मदन्ती के पास जा, जैसे सिह सिह-बच्ची की शैल गुफा मे चला जाता है ॥ २० ॥]

राजा—

**न पीळिता अत्तदुक्खेन धीरा**
**सुखप्फलं कम्म परिच्चजन्ति,**
**सम्मोहिता चापि सुखेन मत्ता**
**न पापकं कम्म समाचरन्ति ॥२१॥**

[आत्म-दुख से पीडित होने पर भी धीर-पुरुष सुख फल देनेवाले काम को नही छोडते है। मोहित हो जाने पर और सुख से मद-मस्त हो जाने पर भी पाप-कर्म नही करते ॥ २१ ॥]

अहिपारक—

**तुवं हि माता च पिता च मय्हं**
**भत्ता पती पोसको देवता च**

**दासो अहं तुय्ह सपुत्तदारो**
**यथासुखं सिब्ब करोहि कम्मं ॥२२॥**

[तू ही मेरा माता-पिता है, तू ही मेरा मालिक है, स्वामी है, पोषक है, देवता है और मै पुत्र तथा दारा सहित तेरा दास हूँ। हे सिवि नरेश! सुखपूर्वक कर्म करे॥ २२ ॥]

राजा—

**यो इस्सरोम्हीति करोति पापं**
**कत्वा च सो न उत्तपते परेसं**
**न तेन सो जीवति दीघं आयु**
**देवापि पापेन समेक्खरेन ॥२३॥**

[जो अपने आप को बडा समझ कर 'पाप' करता है, और जो दूसरो की परवाह नही करता, वह अपने उस पाप-कर्म के कारण दीर्घ-काल तक नही जीता और देवता भी उस 'पापी' को कुछ महत्व नही देते ॥ २३ ॥]

अहिपारक—

**अञ्ञातकं सामिकेहि यदिन्नं**
**धम्मे ठिता ये पटिच्छन्ति दान**
**परिच्छका दायका चापि तत्थ**
**सुखप्फलं जेव करोन्ति कम्मं ॥२४॥**

[राजन्! स्वामी द्वारा दी गई वस्तु तो जो धर्म मे स्थित रहकर दान-रूप ग्रहण करते हैं, वे लेने वाले तथा देने वाले दोनों सुख-फल देने वाला कर्म ही करत है॥ २४ ॥]

राजा—

**अञ्ञो नु ते कोध नरो पथव्या**
**सद्धेय लोकस्मिः न सा पिया ति**
**भुसो च त्यास्स मनसो विघातो**
**दत्वा पियं उम्मदन्तिं अदिट्ठ ॥२५॥**

[अर्थ ऊपर आ गया है—दे० १९ ]

अहिपारक—

**अद्धा पिया मय्ह जनिन्द एसा**
**न सा मयं अप्पिया भूमिपाल**
**यं ते मया उम्मदन्ती पदिन्ना**
**भुसेहि राजा वनथं सजाहि ॥२६॥**

[अर्थ ऊपर आ गया है—दे० २०]

राजा—

**यो अत्तदुखेन परस्स दुक्खं**
**सुखेन वा अत्तसुखं दहाति**
**यथेव इदं मय्ह तथा परेसं**
**सो एवं जानाति स वेदि धम्मं ॥२७॥**

[जो अपने दु ख से दूसरो के दुख की, और अपने सुख से दूसरों के सुख की समानता करता है और समझता है कि जैसे मुझे (दु.ख-सुख) होता है वैसे ही औरों को होता है, वही धर्म को जानता है ॥ २७ ॥]

**अञ्ञो नु ते को'ध नरो पथव्या**
**सद्धेय्य.....॥२८॥**

[अर्थ ऊपर आ गया है। देखे २५]

अहिपारक—

**जनिन्द जानासि पिया मम ऐसा**
**न सा ममं अप्पिया भूमिपाल**
**पियेन ते दम्मि पियं जनिन्द**
**पियदायिनो देव पियं लभन्ति ॥२९॥**

[राजन् ! आप जानते हैं कि यह मुझे प्यारी है। हे भूमिपाल ! यह मेरी अप्रिया नही है। हे जनिन्द ! प्रिय की आज्ञा से मै प्रिय का दान करता हूँ। देव ! प्रिय का दान करने वालों को ही प्रिय-वस्तु प्राप्त होती है ॥ २९ ॥]

राजा—

**सो नून अहं वधिस्सामि अत्तानं कामहेतुकं**
**न हि धम्मं अधम्मेन अहं वधितुं उस्सहे ॥३०॥**

[मैं निश्चय से काम-वासना मूलक अपने आप का बध करूँगा। मैं अधर्म धर्म का वध नहीं ही कर सकता ॥३०॥]

अहिपारक—

**सचे तु वं मय्हं सतिं जनिन्द**
**न कामयासि नरविरियसेट्ठ**
**चजामि नं सब्बजनस्स सिब्ब**
**मया पमुत्तं ततो नं अव्हयेसि ॥३१॥**

[हे जनिन्द ! हे नर वीर्य्य श्रेष्ठ ! यदि तू उसे 'मेरी' होने के कारण नहीं चाहता, तो मैं सब जनों के लिये उसे छोड दूंगा। तब आप मेरे द्वारा परित्यक्तत ग्रहण करें॥ ३१ ॥]

राजा—

**अदूसियञ्चे अहिपारक त्वं**
**चजासि कत्ते अहिताय त्यास्स**
**महा च ते उपवादो पि अस्स**
**न चापित्यास्स नगरम्हि पक्खो ॥३२॥**

[हे अहिपारक ! हे हित-कर्ता ! यदि तू उस निर्दोष को छोड़ देगा, तो तेरी बहुत निन्दा होगी और कोई भी तेरा पक्ष नहीं ग्रहण करेगा ॥३२॥]

अहिपारक—

**अहं सहिस्सं उपवादं एतं**
**निन्दं पसंसं गरहं पि सब्बं**
**मं एतं आगच्छतु भूमिपाल**
**यथासुखं सिब्ब करोहि कामं ॥३३॥**

[हे भूमिपाल ! मैं यह सब उपवाद, निन्दा, प्रशंसा तथा गरहा सब कुछ सह लूंगा। यह सब मेरे सिर आवे। हे सिवि ! आप यथासुख काम करें॥ ३३ ॥]

राजा—

**यो नेव निन्दं न पुनप्पसंसं**
**आदियती गरहं नो पि पूजं**
**सिरी च लक्खी च अपेति तम्हा**
**आपो सुवुट्ठी व यथा थलम्हा ॥३४॥**

[जो आदमी निन्दा, प्रशंसा, गरहा अथवा पूजा की ओर ध्यान नही देता, उस आदमी से श्री और लक्ष्मी उसी प्रकार दूर चली जाती है, जैसे सुवर्षा का पानी (ऊँचे) स्थल से ॥ ३४ ॥]

अहिपारक—

**यं किञ्चि दुक्खं च सुखं च एत्तो**
**धम्मातिसारं व मनोविघातं**
**उरसा अहं पच्चुपदिस्सामि सब्बं**
**पठवी यथा थावरानं तसानं ॥३५॥**

[इससे जो कुछ भी सुख-दुख होगा, धर्म का पालन न करने से अकुशल होगा और मन का अनुताप होगा मै सब उसी प्रकार सहन कर लूंगा जैसे पृथ्वी सभी जड़-चेतन को ॥३५॥]

राजा—

**धम्मातिसारं व मनो विघातं**
**दुक्खं च निच्छामि अहं परेसं**
**एको पि इमं हारयिस्सामि भारं**
**धम्मे ठितो कञ्चि न तापयन्तो ॥३६॥**

[मै नही चाहता कि कोई अकुशल करे, किसी को मनोविघात हो, किसी को दुख हो। मै धर्म मे स्थित रह कर, किसी को भी कष्ट न देता हुआ अकेला ही इस भार को वहन करूँगा ॥ ३६ ॥]

अहिपारक—

**ग्गूपगं पुञ्ञकम्मं जनिन्द**
**ग मे तुवं अन्तरायं अकासि**

**ददामि ते उम्मदन्तिं पसन्नो**
**राजा व यञ्ञे धनं ब्राह्मणानं ॥३७॥**

[हे जनिन्द्र ! आप मेरे इस स्वर्ग-दायक कर्म मे बाधक न बने। मै प्रसन्नता पूर्वक आपको वैसे ही उम्मदन्ती देता हूँ जैसे राजा यज्ञ मे ब्राह्मणों का धन देता है ॥३७॥]

राजा—

**अद्धा तुवं कत्ते हितेसि मय्हं**
**सखा ममं उम्मदन्ती तुवं च,**
**निन्देय्युं देवा पितरो च सब्बे,**
**पापञ्च पस्स अभिसम्परायं ॥३८॥**

[निश्चय से तू मेरा हित चिन्तक है, और सखा है तथा भार्य्या भी तेरी है। किन्तु इस कर्म के परलोक मे बुरे फल को देखकर देव-पितर तथा सभी निन्दा करेंगे ॥३८॥]

अहिपारक—

**न हेत अधम्मं सिविराज वज्जुं**
**सनेगमा जानपदा च सब्बे**
**यं ते मया उम्मदन्ती पदिन्ना**
**भुसेहि राज वनथं सजाहि ॥३९॥**

[हे सिविराज ! इस को निगम तथा जनपद के लोगो में से कोई भी अधर्म नही कहेगे। मै ने आप को उम्मदन्ती दे दी है। राजन् ! आप अपनी वासना को बढ़ाये और इच्छा न रहने पर छोड दें ॥३४॥]

राजा—

**अद्धा तुवं कत्ते हितेसि मय्हं**
**सखा ममं उम्मदन्ती तुवं च**
**सतं च धम्मानि सुकित्तितानि**
**समुद्दवेला व दुरच्चयानि ॥४०॥**

[हे उपकारक ! तू निश्चय से मेरा हितचिन्तक और सखा है तथा उम्मदन्ती तेरी है। किन्तु सत्पुरुषों के धर्म भी सुकीर्तित हैं और समुद्र-तट की तरह अलंघ्य हैं ॥४०॥]

अहिपारक—

**आहूनियो मे सि हितानुकम्पी**
**धाता विधाता चासि काम पालो,**
**तयी हुत्वा देव महप्फला हिमे,**
**कामेन मे उम्पदन्तिं पटिच्छ ॥४१॥**

[तू मेरा आदरणीय है। तू मेरा हित-चिंतक है। तू दाता है। तू विधाता है। तू कामनाये पूरी करनेवाला है। हे देव ! तेरे समर्पित होने से मुझे महाफल मिलेगा। आप प्रसन्नतापूर्वक उम्मदन्ती को ग्रहण करे ॥४१॥ ]

राजा—

**अद्धा हि सब्बं अहिपारका तुवं**
**धम्मं अचारि मम कत्तपुत्त,**
**अञ्ञो नु ते को इध सोत्थिकत्ता**
**दिपदो नरो अरुणे जीवलोके ॥४२॥**

[निश्चय मे हे अहिपारक ! हे उपकारक ! तू ने आजतक सब धर्म का ही आचरण किया है। इस लोक मे तेरा और कौन कल्याण-कर्ता है ? ॥४२॥]

अहिपारक—

**तुवं नु सेट्ठो, त्वं अनुत्तरो सि**
**त्वं धम्मगू धम्मविदू सुमेधो,**
**सो धम्मगुत्तो चिरं, एव जीव,**
**धम्मं च मे देसय धम्मपाल ॥४३॥**

[तू ही श्रेष्ठ है। तू अनूपम है। तू धर्म-रक्षक है। तू धर्मज्ञाता है। तू सुमेध है। हे धर्म रक्षक ! तू चिरकाल तक जी। हे धर्मपाल ! मुझे धर्म का उपदेश दे ॥४३॥]

राजा—

**तद इंघ अहिपारक सुणोहि वचनं मम,**
**धम्मं ते देसयिस्सामि सतं आसेवितं अहं ॥४४॥**

[हे अहिपारक! तू मेरी बात सुन। मै सत्पुरुष द्वारा आचरण किये गये धर्म का उपदेश करूँगा ॥४४॥]

**साधु धम्मरुचि राजा, साधु पञ्ञाणवा नरो,**
**साधु मित्तानं अदुब्भो, पापस्स अकरणं सुखं ॥४५॥**

[धर्म मे रुचि रखनेवाला राजा अच्छा है, प्रज्ञावान् आदमी अच्छा है, मित्र के साथ विश्वास-घात न करनेवाला अच्छा है तथा पाप का न करना अच्छा है ॥४६॥]

**अक्कोधनस्स विजिते ठितधम्मस्स राजिनो,**
**सुखं मनुस्सा आसेथ, सीतच्छायाय संघरे ॥४६॥**

[धर्म-स्थित क्षमावान राजा के राज्य मे आदमी सुख पूर्वक उसी प्रकार बैठ सकते है, जैसे घर की शीतल छाया मे ॥४६॥]

**न वाहं एतं अभिरोचयामि**
**कम्मं असमेक्ख कतं असाधुं,**
**ये वापि जत्वा न सयं करोन्ति,**
**उपमा इमा मय्हं तुवं सुणोहि ॥४७॥**

[मै इसे पसन्द नही करता। बिना विचारे काम करना अच्छा नही। जो जान-बूझ कर भी स्वय करते है, उनके बारे मे ये उपमायें सुनो ॥४७॥]

**गावं चे तरमानानं जिम्हं गच्छति पुंगवो,**
**सब्बा ता जिम्हं गच्छन्ति नेत्ते जिम्हगते सति ॥४८॥**
**एवमेवं मनुस्सेसु यो होति सेट्ठसम्मतो**
**सो चे अधम्मं चरति पगेव इतरा पजा**
**सब्बं रट्ठं दुक्खं सेति राजा चे होति अधम्मिको ॥४९॥**

**गावं चे तरमानानं उजुं गच्छति पुंगवो,**
**सब्बा ता उजुं गच्छति नेत्ते उजुगते सति ॥५०॥**
**एवमेवं मनुस्सेसु यो होति सेट्ठसम्मतो**
**सो चेपि धम्मं चरति पगेव इतरा पजा,**
**सब्बं रट्ठं सुखं सेति राजा चे होति धम्मिको ॥५१॥**

[तैरती हुई गौवों मे से बैल टेढे रास्ते जाता है, तो नेता के टेढे रास्ते जाने के कारण वे सभी टेढे रास्ते जाती है ॥ ४८ ॥ इस प्रकार मनुष्यो मे जो कोई श्रेष्ठ समझा जाता है, यदि वह अधर्म आचरण करता है, (अन्य लोगों का तो क्या कहना) तो राजा के अधार्मिक होने से सारा राज्य दुख सहन करता है ॥ ४९ ॥ तैरती हुई गौवों मे से यदि बैल सीधे रास्ता जाता है, तो नेता सीधे रास्ते जाने के कारण, सभी सीधे रास्ते जाती है ॥ ५० ॥ इस प्रकार मनुष्यों मे (अन्य लोगों का तो क्या कहना) जो श्रेष्ठ समझा जाता है, यदि वह धर्म-आचरण करता है, तो राजा के धार्मिक होने पर सारा राज्य सुख पूर्वक रहता है ॥५१॥]

**न चाप अहं अधम्मेन अमरत्तं पि पत्थये**
**इमं वा पठविं सब्बं विजेतुं अहिपारक ॥५२॥**
**यं हि किञ्चि मनुस्सेसु रतनं इध विज्जति**
**गावो दासो हिरञ्ञं च वत्थियं हरिचन्दनं ॥५३॥**
**[अस्सित्थियो रतनं मणिकञ्च**
**यञ्चापि इमे चन्दिम सुरिया अभिपालयन्ति]**
**न तस्स हेतु विसमं चरेय्य**
**मञ्ञे सिवीनं उसभो'म्हि जातो ॥५४॥**
**नेता पिता उग्गतो रट्ठपालो**
**धम्मं सिवीनं , अयचायमानो**
**सो धम्मं एवानुविचिन्तयन्तो**
**तस्मा सके चित्तवसे न वत्तो ॥५५॥**

[मै अधर्म से अमृतत्व की कामना नही करता, अथवा हे अहिपारक ! इस सारी पृथ्वी के जीत लेने की भी ॥ ५२ ॥ मनुष्य लोक में जितने रत्न है—गऊ,

दास, सोना, वस्त्र, पीत-वर्ण-चन्दन, घोड़े, स्त्रियाँ, मणि-काञ्चन और जिस चन्द्रमा तथा सूर्य्य से अलंकार किया जाता है,—उन मे से किसी के लिये भी मै विषम आचरण नहीं कर सकता। मै सिवि-राष्ट्र में वृषभ (के समान) हूँ ॥ ५३-५४॥ मै नेता हूँ, पिता हूँ, रट्ठपाल हूँ, और सिवि(-राष्ट्र) के परम्परागत धर्म का आदर करने वाला हूँ। उसी धर्म का विचार करने के कारण मै अपने चित्त के वशीभूत नही हुआ॥ ५५ ॥]

अहिपारक

**अद्धा तुवं महाराज निच्चं अब्यसनं सिवं**
**करिस्ससि चिरं रज्जं पञ्ञा हित व तादिसी ॥५६॥**

[हे राजन्। निश्चय से तू बिना किसी दुःख को प्राप्त हुए चिरकाल तक राज्य करेगा। तेरी प्रज्ञा ही ऐसी है ॥ ५६ ॥]

**एतं ते अनुमोदाम यं धम्मं न प्पमज्जसि**
**धम्मं पमज्ज खत्तियो रट्ठा चवति इस्सरो ॥५७॥**

[जो तू यह धर्म मे प्रमाद नही करता, हम इसका अनुमोदन करते है। धर्म मे प्रमाद करने से राजा राष्ट्र गँवा देता है॥ ५७ ॥]

**धम्मं चर महाराज मातापितुसु खत्तिय**
**इध धम्मं चरित्वान राजा सग्गं गमिस्ससि ॥५८॥**
**धम्मं चर महाराज पुत्तदारेसु खत्तिय . . .॥५९॥**
**धम्मं चर महाराज मित्तामित्तेसु खत्तिय . . .॥६०॥**
**धम्मं चर महाराज वाहनेसु बलसु च . . .॥६१॥**
**धम्मं चर महाराज गामेसु निगमेसु च . . .॥६२॥**
**धम्मं चर महाराज रट्ठे जनपदेसु च . . .॥६३॥**
**धम्मं चर महाराज समणब्राह्मणेसु च . . .॥६४॥**
**धम्मं चर महाराज मिगपक्खीसु खत्तिय . . .॥६५॥**
**धम्मं चर महाराज धम्मो चिण्णो सुखावहो**
**इध धम्मं चरित्वान राजा सग्गं गमिस्ससि ॥६६॥**

**इध धम्मं चरित्वान सेन्देवा ब्रह्मका**
**सुचिण्णेन दिवं पत्ता, मा धम्मं राज पमादो ॥६०॥**

[देखिये तेसकुण जातक (५२१) ]

इस प्रकार जब अहिपारक सेनापति ने राजा को धर्मोपदेश दिया तो राजा की उम्मदन्ती के प्रति चित्तकी आसक्ति जाती रही।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। (सत्यों के प्रकाशन के अन्त मे वह भिक्षु स्रोतापति मे प्रतिष्ठित हो गया) उस समय सुमन सारथि आनन्द था, अहिपारक सारिपुत्र, उम्मदन्ती उत्पलवर्णा, शेष परिषद बुद्ध-परिषद्, सिविराजा तो मै ही था।

# ५२८. महाबोधि जातक

"किन्नु दण्डं किभाजिनं.." यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय प्रज्ञापारमिता के बारे मे कही। कथा महाउम्मग्ग जातक[1] मे आयेगी। उस समय शास्ता ने "भिक्षुओ, न केवल अभी तथागत पहले भी प्रज्ञावान् तथा दूसरो को शास्त्रार्थ में हराने में समर्थ रहे" कह पूर्व जन्म-की कथा कही।

## ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व काशी राष्ट्र मे अस्सीकरोड धनवाले महासारवान उदीच्य ब्राह्मण-कुल मे पैदा हुए। उसका नाम रखा गया बोधिकुमार। बडे होने पर वह तक्षशिला जा, शिल्प सीख, वापिस लौट, घर में रहने लगा। आगे चलकर काम-भोग छोड हिमालय मे प्रविष्ट

---

[1] महाउम्मग्ग जातक (५४६)

हो, परिव्राजक-प्रव्रज्या ग्रहण कर वहाँ फल-मूल खाता हुआ रहने लगा। देर तक वहाँ रह, वर्षा-ऋतु के समय हिमालय से उतर, चारिका करता हुआ क्रमशः वाराणसी पहुँच, राजोद्यान मे रह, अगले दिन परिव्राजक के लिये योग्य विधि से भिक्षाटन करता हुआ राजद्वार पर पहुँचा। झरोखे मे खडे राजा ने उसे देखा तो उसकी शान्त प्रकृति पर प्रसन्न हो, उसे अपने भवन मे लिवा, राज्य सिहासन पर बिठाया। फिर कुशल-क्षेम पूछ, कुछ धर्मोपदेश ग्रहण कर नाना प्रकार का श्रेष्ठ भोजन कराया।

भोजन कर चुकने पर बोधिसत्व सोचने लगे—"राजकुल मे बहुत दोष रहते है, बहुत शत्रु रहते है। कोई आपत्ति आने पर कौन रक्षा करेगा?" उसे कुछ दूर खडा एक राज-प्रिय पिगल-वर्ण कुत्ता दिखाई दिया। उसने एक बडा सा भात का गोला लेके उसे देने की इच्छा व्यक्त की। राजा को पता लगा तो उसने कुत्ते का बरतन मगवा उसमे वह भात डलवाया। बोधिसत्व ने उसे दे, अपना भोजन समाप्त किया। राजा ने भी उससे वचन ले, नगर के भीतर, राजोद्यान मे पर्णशाला बनवा, प्रव्रजित की आवश्यकतायें उसे दे, वहाँ बसाया। प्रतिदिन दो तीन बार वह उसकी सेवा मे जाता। भोजन के समय बोधिसत्व नित्य राज-सिंहासन पर ही बैठते और राजा का भोजन ही ग्रहण करते। इसी प्रकार बारह वर्ष बीत गये।

उस राजा के पाँच अमात्य अर्थ और धर्म सम्बन्धी अनुशासन करते थे। उनमे एक अहेतुवादी था, एक ईश्वर-कारण-वादी, एक पूर्वकृत-वादी था, एक उच्छेदवादी था और एक क्षत-विधवादी। उनमे जो अहेतु वादी था वह जनता को सिखाता था कि ये प्राणी संसार मे यूँ ही उत्पन्न होते हैं; जो ईश्वर-कारण-वादी था, वह सिखाता था कि यह लोक ईश्वर-कृत है, जो पूर्वकृत वादी था, वह सिखाता था कि इस लोक मे प्राणियों को जो कुछ सुख-दुख होता है वह पूर्वकृत कर्म के कारण ही होता है; जो उच्छेदवादी था, वह सिखाता था कि यहाँ से कोई परलोक नहीं जाता, यही इस लोक का उच्छेद हो जाता है; और जो क्षत-विध वादी था उसकी शिक्षा थी कि "माता पिता को भी मारकर अपना ही स्वार्थ-साधन करना चाहिए।" वे राजा के द्वारा न्यायाधीश पदो पर नियुक्त थे। रिश्वत खा खा कर वह जो स्वामी न होता उसे स्वामी बना देते।

एक दिन एक आदमी ने जो झूठे मुकदमे मे हार गया था, बोधिसत्व को भिक्षार्थ

राजगृह में प्रवेश करते देख, प्रणाम कर रोते पीटते हुए कहा—"भन्ते! आप राजगृह में भोजन करते हैं। जब न्यायाधीश लोग रिश्वत ले लेकर संसार का विनाश कर रहे हैं, तो आप उपेक्षावान् क्यों हैं? अब पाँचों अमात्यों ने झूठे मुकदमेबाज से रिश्वत लेकर मुझे 'स्वामी' से 'अस्वामी' बना दिया।" उसने उसके प्रति करुणा दिखाई और न्यायशाला में जा, न्यायसगत फैसलाकर 'स्वामी' को ही स्वामी बनाया। जनता एक बार ही 'साधू' 'साधू' पुकार उठी।

राजा ने वह शोर सुना तो पूछा क्या शोर है? जब उसे बात मालूम हुई तो बोधिसत्व के भोजन कर चुकने पर उसने पास बैठकर पूछा—"भन्ते! क्या आज मुकदमे का फैसला किया?" "महाराज! हा।" "भन्ते! तुम्हारे फैसला करने से जनता की उन्नति होगी, अब से आप ही फैसला किया करें।"

"महाराज! हम प्रव्रजित है। यह हमारा काम नही।" "भन्ते! जनता पर कृपा करने के लिये करना उचित है। आप सारा दिन मुकद्दमों का फैसला न करें। उद्यान से यहा आते समय प्रात काल चार मुकद्दमों का फैसला कर दिया करें। भोजन करके वापिस उद्यान लौटते समय चार। इस प्रकार जनता की अभिवृद्धि होगी।"

उसके बार बार कहने से उसने 'अच्छा' कह स्वीकार कर लिया और तब से वैसे ही करने लगा। झूठे मुकद्दमे करनेवालों को अवसर हाथ न लगता। अमात्यों को भी रिश्वत मिलनी बन्द हो गई, तो वे निर्धन हो गये और सोचने लगे—"बोधि परिव्राजक के न्यायाधीश बनने के समय से हम कुछ नही मिलता। उसे राजबैरी घोषित कर और राजा के मन में फूट डलवा उसे मरवाये।" वे राजा के पास पहुँचे और बोले—"महाराज! बोधि-परिव्राजक आपका अहित चिन्तक है।" राजा ने विश्वास न कर उत्तर दिया—"यह सदाचारी है। ज्ञानी है। ऐसा नही करेगा।" वे बोले "महाराज! उसने सारे नगर वासियों को अपने में कर लिया है। केवल हम पांच जनों को अपना समर्थक नही बना सका है। यदि हमारा विश्वास न हो, तो जिस समय वह इधर आये उस समय उसके अनुयाइयों को देखना।" राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और जब वह आया तो अपने अज्ञान के कारण मुकद्दमेवालों को उसके अनुयायी मान, अपना मन मैला कर, अमात्यों को बुलाकर पूछा—"क्या करे?"

"देव! पकड़वाले।"

"बिना किसी खास अपराध के कैसे पकड़वाले?"

"तो महाराज! जो इसका स्वाभाविक आदर-सत्कार है, वह करना छोड़ दे। वह न होता देख, समझदार परिव्राजक बिना किसी को कहे स्वयं चला जायगा।"

राजा ने अच्छा कह क्रमश उसका आदर-सत्कार घटा दिया। पहले दिन ही उसे नंगे पलग पर बिठाया गया। वह पलग देख कर ही समझ गया कि राजा का मन बदल गया है। उसने उद्यान लौटते ही उसी दिन चल देने का विचार किया। फिर यह सोच कि निश्चयात्मक रूप से जानकर यहां से जाऊँगा, वह नही गया। अगले दिन जब वह नगे पलग पर बैठा था, तो राजा के लिये पके भात में दूसरा भात मिलाकर मिश्रित-भात दिया। तीसरे दिन ऊपर की मंजिल पर न चढने देकर, सीढियो पर ही मिश्रित-भात दिया। उसने उसे उद्यान मे ले जाकर खाया। चौथे दिन प्रासाद से नीचे ही रख कणाज-भात दिया। उसे भी उद्यान ले जाकर खाया। राजा ने अमात्यों से पूछा—

"महाबोधिकुमार सत्कार के घटा देने पर भी नही जाता, क्या करे?"

"देव! वह भात के लिये नही घूमता, वह 'छत्र' के लिये घूमता है। यदि 'भात' के लिये घूमता होता तो पहले दिन ही भाग जाता।"

"तो अब क्या करे?"

"महाराज! कल उसे मरवा दे।"

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और उन्ही के हाथ मे तलवार दे कहा—"कल द्वार के अन्दर रह, जिस समय वह अन्दर घुसे उसी समय उसका सिर काट कर, टुकडे टुकडे करके, बिना किसी को पता लगने दिये बच्चकुटी मे फेक, नहा-कर आओ।" वे 'अच्छा' कह कर स्वीकार कर 'कल आकर ऐसा करेंगे' परस्पर विचार करते हुए अपने अपने घर गये।

राजा को, जब वह शाम को खा पीकर शैय्यापर लेटा था बोधिसत्व के गुण याद आये। उसी समय उसके मन मे शोक उत्पन्न हुआ। शरीर से पसीना छूटने लगा। बेचैनी के मारे इधर उधर लोटपोट होने लगा। उसके पास पटरानी

आ लेटी। उसन उसके साथ बातचीत तक नही की। रानी बोली—"महाराज ! बातचीत भी नही करते, क्या मुझसे कोई अपराध हुआ है ?"

"नही देवी, बात यह है कि बोधि परिव्राजक हमारा शत्रु हो गया है। कल पाँच मन्त्रियों को उसे मार डालने की आज्ञा दे दी है। वे उसे मार टुकडे टुकडे कर पाखाने के कुँए मे डाल देगे। उसने हमे बारह वर्ष तक बहुत धर्मोपदेश दिया है। मैने उसका एक भी दोष प्रत्यक्ष नही देखा है। दूसरे के कथन पर विश्वास कर मै ने उसके वध की आज्ञा दे दी है। इस लिये सोचता हूँ।"

उसने उसे आश्वासन दिया—"देव। यदि वह शत्रु ही हो गया है, तो उसके मरवाने मे सोचना क्या ? पुत्र भी शत्रु हो जाय तो उसे मरवाकर अपना कल्याण करना ही चाहिये। सोच न करे।" वह उसकी बात से आश्वस्त हो सो गया। उसी समय श्रेष्ठ पिंगल-वर्ण कुत्ते ने वह बातचीत सुन, सोचा, "कल मै अपने बल से उसके प्राणों की रक्षा करूंगा।" अगले दिन प्रातःकाल ही वह प्रासाद से उतर बडे द्वार पर आ, देहली पर सिर रख, बोधिसत्व के आगमन की प्रतीक्षा करता हुआ लेट रहा। वे खड्गधारी अमात्य भी प्रातःकाल ही आकर द्वार के भीतर खडे हो गये। बोधिसत्व भी समय देख उद्यान से निकल राज-द्वार पर आ पहुचे। कुत्ता मुह बा, चारों दान्त निकाल, जोर से चिल्लाया, "भन्ते ! क्या जम्बुद्वीप भर मे अन्यत्र कही भिक्षा नही मिलती, हमारे राजा ने तुम्हारे मारने के लिये पाच खड्गधारी अमात्यों को द्वार के अन्दर खडा किया है। आप सिर पर अपनी मौत लेकर न आये। शीघ्र लौट जाये।" उसे सभी बोलियों का ज्ञान होने से वह बात समझ मे आ गई। वही रुक उद्यान लौट उसने चल देने के लिये अपनी आवश्यकताओं को लिया।

राजा ने भी झरोखे मे खडे खडे जब उसे आता न देखा तो सोचा, "यदि यह मेरा शत्रु होगा, तो उद्यान लौट सेना एकत्रकर युद्ध की तैयारी करेगा। अन्यथा अपनी चीजें उठा चलने की तैयारी करेगा। मै इसका पता लगाता हूं। वह उद्यान पहुंचा तो बोधिसत्व को अपनी चीजे उठा जाने के लिये पर्ण-शाला से निकल टहलने के चबूतरे के सिरे पर देखा। उसने प्रणाम कर और एक ओर खडे हो पहली गाथा कही—

**किं नु दण्डं किं अजिनं किं छत्तं किं उपाहनं**
**किं अंकुसं च पत्तं च संघाटिं चापि ब्राह्मण**
**तरमाणरूपो गण्हासि किं नु पत्थयसे दिसं ॥१॥**

[हे ब्राह्मण ! क्या डण्ड, क्या अजिन-चर्म, क्या छाता, क्या उपाहन, क्या थैली, क्या पात्र और क्या सघाटी—यह सब शीघ्रता से क्यों बटोर रहे हो ? क्या कही जा रहे हो ? ॥ १ ॥]

यह सुन बोधिसत्व ने सोचा, सम्भवतः यह अपनी करतूत नही जानता। मैं इसे बोध कराता हूँ। उन्होंने दो गाथाये कही—

**द्वादसेतानि वस्सानि वुसितानि तवन्तिके,**
**नाभिजानामि सोनेन पिंगलेन अभिनिकूजितं ॥२॥**
**स्वायं दित्तो व नदति सुक्कदाठं विदंसयं**
**तव सुत्वा समरिस्स वीतसद्धस्स मम पति ॥३॥**

[मैं बारह वर्ष तक तेरे पास रहा। मै नही जानता कि पिङ्गल कुत्ते ने कभी भौंका हो। लेकिन अब यह इस बात को जानकर कि तेरी तथा तेरी भार्य्या की मेरे प्रति श्रद्धा नही रही, क्रोध से भरकर, दाँत निकाल कर भौकता है ॥२-३ ॥]

तब राजा ने अपना दोष स्वीकार कर क्षमा मागते हुए चौथी गाथा कही—

**अहु एस कतो दोसो, यथा भाससि ब्राह्मण,**
**एस भिय्यो पसीदामि, वस ब्राह्मण मा गम ॥४॥**

[हे ब्राह्मण ! जैसा तू कहता है, वैसा मुझसे दोष हो ही गया है। अब मै और भी अधिक श्रद्धावान हूँ। यही रहे, न जायें ॥ ४ ॥]

यह सुन बोधिसत्व ने 'महाराज ! पन्डित ऐसे बिना प्रत्यक्ष देखे दूसरे की बात मान लेने वाले के साथ नही रहते' कह, उसका अनाचार प्रकाशित करते हुए गाथा कही—

**सब्बसेतो पुरे आसि, ततोपि सबलो अहु**
**सब्बलोहितको दानि, कालो पक्कितुं मम ॥५॥**
**अब्भन्तरं पुरे आसि ततो मज्झे ततो बहि**
**पुरा निद्धमना होति सयं एव चजं अहं ॥६॥**

वीतसद्धं न सेवेय्य उदमानं व अनोदकं
सचे पि नं अनुखणे वारि कद्दमगन्धिकं ॥७॥
पसन्नं एव सेवेय्य, अपसन्नं विवज्जये
पसन्नं पयिरुपासेय्य, रहदं व उदकत्थिको ॥८॥
भजे भजन्तं पुरिसं अभजन्तं न भाजये,
असप्पुरिसधम्मोसो यो भजन्तं न भाजति ॥९॥
यो भजन्तं न भजति सेवमानं न सेवति
स वे मनुस्सपापिट्ठो मिगो साखस्सितो यथा ॥१०॥
अच्चाभिक्खणसंसग्गा असभोसरणेन च
एतेन मित्ता जीरन्ति अकाले याचनाय च ॥११॥
तस्मा नाभिक्खणं गच्छे न च गच्छे चिराचिरं
कालेन याचं याचेय्य एवं मित्ता न जीररे ॥१२॥
अतिचिरंनिवासेन पियो भवति अप्पियो
आमंत खो तं गच्छाम पुरा ते होम अप्पिया ॥१३॥

[पहले भात एक दम श्वेत था, फिर मिश्रित हुआ, अब सब लाल रग का हो गया। यह मेरे चल देने का समय है ॥ ५॥ पहले मेरा निवास एक दम अन्दर था, फिर बीच की जगह और उसके बाद बाहर। अर्धचन्द्राकार देकर निकाल दिये जाने से पहले स्वयं निकल जाना ही अच्छा है ॥६॥ जल रहित कुंए के समान अश्रद्धावान के आश्रय भी न रहे। यदि बिना जल के कुँए को खने भी तो उस का पानी कीचड की गन्ध वाला ही होगा ॥७॥ श्रद्धावान के ही आश्रय रहे, अश्रद्धावान के आश्रय न रहे, । जिस प्रकार पानी की इच्छा रखनेवाला तालाब को चाहता है, उस प्रकार श्रद्धावान का ही आश्रय ले ॥ ८ ॥ संगति की इच्छा करने वाले की सगति करे, इच्छा न करने वाले की सगति न करे। सगति की इच्छा रखने वाले के साथ संगति न करना असत्पुरुष-धर्म है ॥ ९ ॥ जो संगति करने की इच्छा रखनेवाले के साथ सगति नही करता, साथ चाहने वाले का साथ नही देता, वह पापी मनुष्य बन्दर के समान होता है ।। १० ।। अत्यन्त साथ रहने से और साथ न रहने से तथा असमय माग बैठने से मित्रता नष्ट हो जाती है ॥ ११।

इसलिए न तो निरन्तर जाय, न अति बिलम्ब से जाये, और समय देख कर ही मागे, तो मित्रता नही टूटती ॥१२॥ अतिचिर काल तक साथ रहने से प्रिय मनुष्य अप्रिय हो जाता है। तेरे अप्रिय बनने से पहले हम तुझे सूचना दे कर जाते हैं॥१३॥]

राजा बोला—

**एवं चे याचमानानं अञ्जलिं नावबुज्झसि**
**परिवारकानं सत्तानं वचनं न करोसि नो**
**एवं तं अभियाचाम, पुन कयिरासि परियायं॥१४॥**

[यदि इस प्रकार प्रार्थना करने वालों की प्रार्थना स्वीकृत नही होती, यदि अपने अनुयाइयों की बात नही रखते तो यह वचन दे कि फिर आयेगे ॥१४॥]

बोधिसत्व ने उत्तर दिया—

**एवञ्चे नो विहरतं अन्तरायो न हेस्सति**
**तुय्हं चापि महाराज मय्हं च रट्ठवड्ढन**
**अप्पेव नाम पस्सेम अहोरत्तानमच्चये॥१५॥**

[हे महराज! यदि इसी प्रकार विचरते हुए मेरे अथवा तुम्हारे शरीर को हानि न हुई, तो यह सम्भव है कि (कुछ) दिनों के गुजरने पर हम फिर एक दूसरे को देखे ॥ १५ ॥]

इस प्रकार कह बोधिसत्व ने राजा को धर्मोपदेश दिया— "महाराज! अप्रमादी रहें।" फिर उद्यान से निकल अनुकूल स्थान पर भिक्षाटन कर, वाराणसी से बाहर हो, क्रमश. हिमालय पहुच, कुछ समय वहां रहा और तब नीचे आ एक प्रत्यन्त-ग्राम के आश्रय से जंगल मे रहने लगा।

उसके चले जाने के बाद से वे अमात्य फिर न्यायाधीश बन लूट मचाने लगे। और साथ ही सोचने लगे—"यदि महाबोधी परिव्राजक फिर आ गया तो हम नही बचेगे। क्या करें जिससे वह फिर न आ सके?" उन के मन में आया—"प्राणी प्रायः आसक्ति की जगह को नही छोड सकता। यहाँ उसकी किस मे आसक्ति है?" उन्होंने अनुमान किया—"पटरानी मे।" तब उन्होंने सोचा—"सम्भव है, वह इसी के कारण फिर आये। इसे पहले ही मरवा दे।" वे राजा से बोले—"देव! आजकल नगर मे एक चर्चा है?"

"क्या चर्चा है ?"

"महाबोधि परिव्राजक तथा देवी परस्पर एक दूसरे को चिट्ठी भेजते है।"

"क्या लिख कर ?"

"उसने देवी को लिखा, 'क्या तू राजा को मरवा कर मुझे छत्रपति बना सकती है,' और इसने भी उसे उत्तर दिया, 'राजा को मारने की मेरी जिम्मेदारी है, शीघ्र आओ।"

उनके बार बार कहने से राजा को विश्वास हो गया। बोला—"क्या करें।"

"देवी को मरवा डालना चाहिए।"

उसने बिना विचार किये ही आज्ञा दी—"तो तुम उसे मार, टुकडे टुकडे कर पाखाने के कुँए मे डाल दो।" उन्होंने वैसा किया। उसके मार डाले जाने की बात सारे नगर मे फैल गई। उसके चार पुत्र राजा के शत्रु हो गये—"इसने हमारी निरापराधिनी माता को मरवा डाला।" राजा बहुत भयभीत हुआ। बोधि-सत्व तक बात पहुची तो उसने सोचा—"मेरे अतिरिक्त कोई कुमारों को समझाकर राजा को क्षमा नही करवा सकता। राजा को जीवनदान दूँगा और कुमारों को पाप करने से बचाऊगा।" अगले दिन जब वह प्रत्यन्त-ग्राम मे गया तो मनुष्यों ने उसे बन्दर का मास खाने को दिया। उसने उसे खा लिया, उसका चमडा माग, आश्रम मे सुखा, गन्धहीन कर ओढा, पहना और कन्धे पर भी रक्खा। क्यों ? ताकि वह सत्य सत्य कह सके कि "बहुत उपकारी" था। वह उसका चमडा ले क्रमश. वाराणसी पहुचा और कुमारों के पास जा बोला—"पितृहत्या बडा दारुण-कर्म है। वह मत करना। कोई प्राणी अजर-अमर नही। मै तुम्हारा परस्पर मेल कराने के लिए आया हूँ। मै जब तुम्हे सन्देश भेजूं तो तुम चले आना।" इस प्रकार कुमारो को उपदेश दे, नगर के भीतर उद्यान मे जा, शिला पर बन्दर का चमडा बिछा बैठा।

माली ने यह देख शीघ्र जाकर राजा को सूचना दी। राजा सुनते ही हर्षित हुआ। उन अमात्यों के साथ वह उद्यान मे पहुचा और बोधिसत्व को प्रणाम कर, बैठ कुशल-क्षेम पूछने लगा। बोधिसत्व उसके साथ बातचीत न कर बन्दर के चमडे को ही मलते रहे। उसने पूछा—"भन्ते। आप मेरी उपेक्षा कर, बन्दर के चमडे पर ही हाथ फेर रहें हैं। क्या यह मेरी अपेक्षा बहुत उपकारी है ?"

"हां महाराज! यह बन्दर मेरा बहुत उपकारी है। मै इसकी पीठ पर बैठ कर घूमा हूँ। यह मेरे लिये पीने का घडा लाया है। इसने मेरा निवास-स्थान साफ किया है। इसने मेरी सामान्य सेवा की है। मै अपने चित्त की दुर्बलता से इस का मांस खाकर, चमडी सुखा, फैला, उस पर बैठता हूँ और उस पर लेटता हूँ। इस प्रकार यह मेरा बहुपकारी है। इस प्रकार उसने उन के मत का खण्डन करने के लिए वानर-चर्म की जगह 'वानर' शब्द का प्रयोग कर, उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वैसा कहा। क्योकि उसने उसे पहना था, इसीलिए 'पीठ पर चढ कर घूमा' कहा। उसे कन्धे पर रख कर पानी का घडा लाया था, इस लिये 'पीने का घडा लाया' कहा। उस चर्म से भूमि साफ की थी, इसलिये 'निवासस्थान साफ किया' कहा। लेटते समय पीठ का ओर उठकर चलने के समय पैरो का स्पर्श हुआ रहने से 'मेरी सामान्य सेवा की' कहा। भूख लगने पर उस का मास मिलने पर खा लेने का कारण 'अपनी दुर्बलता के कारण उसका मांस खाया' कहा। यह सुन उन अमात्यों ने यह समझ कि इसने प्राणातिपात किया, ताली पीट कर उसका उपहास किया—"प्रव्रजित के कर्म को देखो। बन्दर को मार, मांस खा, चमडी लिए घूमता है।" बोधिसत्व ने उन्हे वैसा करते देख सोचा—"यह नही जानते कि मै इनके मत का खण्डन करने के लिये ही चर्म लेकर आया हूँ। मै इन पर प्रकट न होने दूंगा।" उसने अहेतुवादी को बुलाकर पूछा—"आयुष्मान तुमने क्यों मजाक किया?" "मित्र-द्रोही कर्म तथा प्राणिहत्या के कारण।" तब बोधिसत्व ने 'जो तुझ मे और तेरे मत मे श्रद्धा रखने के कारण ऐसा करे, तो उसमें दुःख की क्या बात है?' कह उसके मत का खण्डन करते हुए गाथाये कही—

**उदीरणा चे संगत्या भावायमनुवक्तति**
**अकामा अकरणीयं वा करणीयं वापि कुब्बति**
**अकामकरणीयस्मिं, कुविध पापेन लिप्पति॥१६॥**
**सो चे अत्थो च धम्मो च कल्याणो न पापको**
**भोतो चे वचनं सच्चं सुहतो वानरो मया॥१७॥**
**अत्तनो चेहि वादस्स अपराधं विजानिय**
**न मे त्वं गरहेय्यासि, भोतो वादोहि तादिसो॥१८॥**

[यदि तुम्हारा यह कहना है कि स्वभाव से ही सब कुछ होता है, अनिच्छा से ही करणीय अथवा अकरणीय किया जाता है ।। १६ ।। यदि तुम्हारा यह मत कल्याणकारी है, अकल्याणकारी नही और यदि तुम्हारा यह कथन सत्य है तो मेरे द्वारा बान्दर की हत्या ठीक ही हुई है ।। १७ ।। यदि तुम अपने मत के दोष को समझो तो मेरी निन्दा न करो। तुम्हारा मत ही ऐसा है ।। १८ ।।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने उसका निग्रह कर उसे हत-बुद्धि कर दिया। वह राजा भी परिषद मे हत-प्रभ हो सिर नीचा किये बैठा रहा। बोधिसत्व ने भी उसके मत का खण्डन कर ईश्वर-कारण-वादी को सम्बोधन कर पूछा—"आयुष्मान! यदि तुम ईश्वर-निर्माण-वाद को यथार्थ मानते हो, तो तुमने मज़ाक क्यो किया?"

बोधिसत्व ने गाथा कही—

**इस्सरो सब्बलोकस्स सचे कप्पेति जीवितं**
**इद्धिव्यसनभावञ्च कम्मं कल्याणपापकं**
**निद्देसकारी पुरिसो इस्सरो तेन लिप्पति ॥१९॥**
**स चे अत्थो च धम्मो च कल्याणो न च पापको**
**भोतो चे वचनं सच्चं सुहतो वानरो मया ॥२०॥**
**अत्तनो चे हि वादस्स अपराधं विजानिय**
**न मं त्वं गरहेय्यासि, भोतो वादो हि तादिसो ॥२१॥**

[यदि ईश्वर ही सारे लोक की जिविका की व्यवस्था करता है, यदि उसीकी इच्छा के अनुसार मनुष्य को ऐश्वर्य्य मिलता है, उसपर विपत्ति आती है, वह भला-बुरा करता है, यदि आदमी केवल ईश्वर की आज्ञा मानने वाला है, तो ईश्वर ही दोषी ठहरता है ॥ १९ ॥ यदि तुम्हारा यह मत... तुम्हारा मत ही ऐसा है ॥ २०-२१ ॥]

इस प्रकार उसने आम की मोगरी ले, उसीसे आम गिराते हुए की तरह ईश्वर के कारण होने की बात से ही ईश्वर के कारण होने के सिद्धान्त का खण्डर कर पूर्व-कृत-वादी को सम्बोधन कर पूछा—"आयुष्मान! यदि तू 'पूर्व-कृत-वाद' को सत्य मानता है, तो तू ने क्यों मेरा मज़ाक उड़ाया?"

बोधिसत्व ने गाथा कही—

**सचे पुब्बेकतहेतु सुखदुक्खं निगच्छति,**
**पोराणकं कतं पापं तं एसो मुच्चते इणं,**
**पोराणकं इणमोक्खो, क्विध पापेन लिप्पति ॥२२॥**
**सोचे अत्थो च धम्मो च कल्याणो न च पापको**
**भोतो च वचनं सच्चं सुहतो वानरो मया ॥२३॥**
**अत्तनो चे हि वादस्स अपराधं विजानिय**
**न मं त्वं गरहेय्यासि, भोतो वादो हि तादिसो ॥२४॥**

[यदि पूर्वकृत-कर्म के कारण ही सुख-दुःख होता है, यदि यहाँ का पाप कर्म पुराने पाप कर्म से ऋणमुक्ति का कारण होता है, तो यहां पाप किसे स्पर्श करता है ? ॥ २२ ॥ यदि तुम्हारा यह मत . . . . तुम्हारा मत ही ऐसा है ॥ २३-२४ ॥]

इस प्रकार उसने उसके भी मत का खण्डन कर 'उच्छेदवादी' को सामने कर पूछा—

"आयुष्मान् ! तू कहता है कि 'देना-लेना कुछ नहीं होता, यही प्राणियों का उच्छेद हो जाता है, कोई पर-लोक नहीं जाता', तो फिर तू किस लिये मेरा मजाक उडाता है ?" इस प्रकार उसे ताडते हुए बोधिसत्व ने गाथा कही—

**चतुन्नं एव उपादाय रूपं सम्भोति पाणिनं**
**यतो च रूपं सम्भोति तत्थेव अनुपगच्छति ॥२५॥**
**इधेव जीवति जीको पेच्च पेच्च विनस्सति,**
**उच्छिज्जति अयं लोको ये बाला ये च पण्डिता**
**उच्छिज्जमाने लोकस्मिं क्विध पापेन लिप्पति ॥२६॥**
**सोचे अत्थो च धम्मो च कल्याणो न च पापको**
**भोतो चे वचनं सच्चं सुहतो वानरो मया ॥२७॥**
**अत्तनो चे हि वादस्स अपराधं विजानिय**
**न मं त्वं गरहेय्यासि, भोतो वादो हि तादिसो ॥२८॥**

[पृथ्वी आदि चार महाभूतों से ही प्राणियों के रूप की उत्पत्ति होती है।

जहाँ से 'रूप' उत्पन्न होता है, वही विलीन हो जाता है ॥ २५ ॥ जीव यही जीता है, परलोक मे विनष्ट हो जाता है। पण्डित और मूर्ख सभी का यहीं उच्छेद हो जाता है। यदि ऐसा है तो यहाँ पाप किसे स्पर्श करता है ॥ २६ ॥ यदि तुम्हारा यह मत.....तुम्हारा मत ही ऐसा है ॥ २७-२८ ॥]

इस प्रकार उसके भी मत का खण्डन कर उस ने 'क्षत-विध-वादी' को सम्बोधन किया—"आयुष्मान् ! जब तेरा यह मत है कि माता पिता को भी मारकर अपना स्वार्थ साधना चाहिये, तो तूने क्यों मेरा मजाक उडाया?" बोधिसत्व ने गाथा कही—

**अहु खत्तविधा लोके बाला पण्डितमानिनो**
**मातरं पितरं हञ्ञे अथो जेट्ठं पि भातरं**
**हनेय्य पुत्ते च दारे च अथो चे तादिसो सिया ॥२९॥**

[अपने आप को पण्डित समझने वाले मूर्ख 'क्षत-विधों' का कहना है कि माता, पिता और ज्येष्ठ भाई को मार डाले; और वैसा प्रयोजन हो तो पुत्र और स्त्री की भी हत्या कर डाले ॥ २९ ॥]

इस प्रकार उसके मत की स्थापना कर अपने मत को भी प्रकाशित करते हुए कहा—

**यस्स रुक्खस्स छायाय निसीदेय्य सयेय्य वा**
**न तस्स साखं भञ्जेय्य, मित्तदूभी हि पापको ॥३०॥**
**अथ अत्थे समुप्पन्ने समूलं अपि अब्बहे**
**अत्थो मे सब्बलेनेति सुहतो वानरो मया ॥३१॥**
**सोचे अत्थो च धम्मो च कल्याणो न च पापको**
**भोतो चे वचनं सब्बं सुहतो वानरो मया ॥३२॥**
**अत्तनो चे हि वादस्स अपरादं विजानिय**
**न मं त्वं मरहेय्यासि, भोतो वादो हि तादिसो ॥३३॥**

[ (हमारा मत तो यह है—) जिस वृक्ष की छाया में बैठे अथवा लेटे, उसकी शाखा तक न तोड़े। मित्र-द्रोह पातक है ॥ ३० ॥ (और तुम्हारा मत है—)

प्रयोजन होने पर जड से भी उखाड़ दे। मेरा पाथेय का प्रयोजन हुआ। इस लिये मेरे द्वारा वानर की हत्या ठीक ही हुई है॥ ३१ ॥ यदि तुम्हारा यह मत... तुम्हारा मत ही ऐसा है॥ ३२-३३ ॥]

इस प्रकार उसने उसके मत का भी खण्डन कर, उन पांचों जनों के हत-बुद्धि, हत-प्रभ हो जाने पर राजा को निमन्त्रण दे, "महाराज! आप इन पाच राष्ट्र के महा-लुटेरों को लिये फिरते है! आप कितने बडे मूर्ख है! ऐसे आदमियो के संसर्ग से ही आदमी इस लोक तथा परलोक मे महान् दुःख अनुभव करता है।" फिर राजा को धर्मोपदेश देते हुए कहा--

**अहेतुवादो पुरिसो यो च इस्सरकुत्तिको**
**पुब्बेकती च उच्छेदी यो च खत्तविधो नरो,**
**एते असप्पुरिसा लोके बाला पण्डितमानिनो,**
**करेय्य तादिसो पापं अथो अञ्ञं पि कारये,**
**असप्पुरिससंसग्गो दुक्खन्तो कतुकुद्रयो॥३४-३५॥**

[अहेतु वादी, ईश्वरकर्तृ वादी, पूर्वकृत वादी, उच्छेद वादी और क्षत-विघ वादी —ये दुनियाँ में असत्पुरुष है जो मूर्ख होते हुए भी अपने आपको पण्डित मानते है। यह स्वय भी वैसा पाप करते है, तथा दूसरो से भी कराते है। असत्पुरुष की सगति दु ख उत्पन्न करने वाली तथा कडुआ फल देने वाली होती है॥ ३४-३५ ॥]

यहाँ उपमा रूप से धर्म-देशना देते हुए कहा—

**उरब्भरूपेन वाकासु पुब्बे**
**असंकितो अजयूथं उपेति,**
**हन्त्वा उराणि अजियं अजं च**
**चित्रासयित्वा येन कामं पलेति॥३६॥**
**तथाविधेके समणब्राह्मणासे**
**छदनं कत्वा वञ्चयन्ती मनुस्से**
**अनासका थण्डिलसेय्यका च**
**रजोजल्लं उक्कुटिकप्पधानं**

परियायभत्तं च अपानकत्तं
पापाचरा अरहन्तो वदाना ॥३७॥
एते असप्पुरिसा लोके बाला पण्डितमानिनो,
करेय्य तादिसो पापं अथो अञ्ञंपि कारये,
असप्पुरिससंसग्गो दुक्खन्तो कटुकुद्रयो ॥३८॥
याहु नत्थि विरियं ति हेतुञ्च अपवदन्ति
[ये] परकारं अत्तकारञ्च
ये तुच्छं समवण्णयुं,
एते असप्पुरिसा लोके बाला पण्डितमानिनो,
करेय्य तादिसो पापं अथो अञ्ञंपि कारये,
असप्पुरिससंसग्गो दुक्खन्तो कटुकुद्रयो ॥३९-४०॥
सचे हि विरियं नास्स कम्मं कल्याणपापकं
न भरे वडढकिं राजा न पि यन्तानि कारये ॥४१॥
यस्मा च विरियं अत्थि कम्मं कल्याणपापकं
तस्मा यन्तानि कारेन्ति राजा भरति वडढकिं ॥४२॥
यदि वस्ससतं देवो न वस्से न हिमं पते
उच्छिज्जेय्य अयं लोको विनस्सेय्य अयं पजा ॥४३॥
यस्मा च वस्सती देवो हिमं चानुफुसीयति
तस्मा सस्सानि पच्चन्ति रट्ठं च पल्लते चिरं ॥४४॥
गवं चे तरमानानं जिम्हं गच्छति पुंगवो
सब्बा ता जिम्हं गच्छन्ति नेत्ते जिम्हगते सति ॥४५॥
एवमेवं मनुस्सेसु यो होति सेट्ठसम्मतो
सो चे अधम्मं चरति पगेव इतरा पजा
सब्बं रट्ठं दुक्खं सेति राजा चे होति अधम्मको ॥४६॥
गवं चे तरमानानं उजुं गच्छति पुंगवो
सब्बा ता उजुं गच्छन्ति नेत्ते उजुगते सति ॥४७॥

एवमेव मनुस्सेसु यो होति सेट्ठसम्मतो
सो चेपि धम्मं चरति पगेव इतरा पजा,
सब्बं रट्ठं सुखं सेति राजा चे होति धम्मिको ॥४८॥
महारुक्खस्स फलिनो आमं छिदन्ति यो फलं
रसं चस्स न जानाति बीजं चस्स विनस्सति ॥४९॥
महारुक्खूपमं रट्ठं अधम्मेन यो पसासति
रसं चस्स न जानाति रट्ठं चस्स विनस्सति ॥५०॥
महारुक्खस्स फलिनो पक्कं छिन्दति यो फलं
रसं चस्स विजानाति बीजं चस्स न नस्सति ॥५१॥
महारुक्खूपमं रट्ठं धम्मेन यो पसासति
रसं चस्स विजानाति रट्ठं चस्स न नस्सति ॥५२॥
यो च राजा जनपदं अधम्मेन पसासति
सब्बोसधीहि सो राजा विरुद्धो होति खत्तियो ॥५३॥
तत्थेव नेगमे हिंसं ये युत्ता कयविक्कये
ओजदानबलीकरे स कोसेन विरुज्झति ॥५४॥
पहारवरखेत्तञ्ञु संगामे कतनिस्समे
उस्सिते हिंसयं राजा स बलेन विरुज्झति ॥५५॥
तत्थेव इसयो हिंसं सञ्ञते ब्रह्मचारयो
अधम्मचारी खत्तियो सो सग्गेन विरुज्झति ॥५६॥
यो च राजा अधम्मट्ठो भरियं हन्ति अदूसिकं
लुद्दं पसवते ठानं पुत्तेहि च विरुज्झति ॥५७॥
धम्मं चरे जनपदे नेगमेसु बलेसु च
इसयो च न हिंसेय्य पुत्तदारे समं चरे ॥५८॥
स तादिसो भूमिपति रट्ठपालो अकोधनो
सामन्ते सम्पकम्पेति इन्दो व असुराधिपो ॥५९॥

[पूर्व समय में भेड़े में मिलता जुलता एक भेड़िया था। वह निश्शंक होकर बकरियों के झुण्डमें जा पहुँचता। वहाँ भेड़ों को, बकरियों को तथा बकरों को

मार कर और मजे से खाकर (?) जहाँ इच्छा हाती वहाँ चला जाता॥ ३६ ॥ इस प्रकार कुछ श्रमण-ब्राह्मण ढोग करके मनुष्यों को ठगते है—कोई अनाहारी बनते है, कोई कठोर धरती पर सोने वाले बनते है, कोई धूल-मेल ओढने वाले बनते है, कोई उकडू ही बैठने वाले बनते है, कोई सप्ताह अथवा पन्द्रह दिन मे एक बार भोजन करने वाले बनते है, कोई निर्जल रहने वाले बनते है, कोई पापाचरण करते हुए भी अरहत बनते है—ये अपने आप को पण्डित समझने वाले मूर्ख लोग असत्पुरुष है। ये वैसा पाप-कर्म स्वय भी करते है तथा दूसरो से भी कराते है। असत्पुरुषों की संगति दुःख उत्पन्न करने वाली तथा कडुआ फल देने वाली होती है ॥३७-३८ ॥ जो प्रयत्न को स्वीकार नही करते, जो हेतु का भी अपलाप करते है, जो स्वार्थ तथा परमार्थ सभी कुछ 'तुच्छ' कहते है—ये अपने आपको फल देने वाली होती है॥ ३९-४० ॥ यदि 'प्रयत्न' न हो तो अच्छा बुरा कर्म भी न हो, तो राजा न बढइयों का पोषण करेगा और न यन्त्र बनवायेगा। लेकिन क्योंकि 'प्रयत्न' है, और अच्छे-बुरे कर्म भी है, इसलिये राजा-गण बढइयो का पोषण करते है और यन्त्र बनवाते है॥ ४१-४२ ॥ यदि सौ वर्ष तक न देव बरसे और न शीत पडे, तो इस लोक का नाश हो जाय और यह जनता जीती रहे। लेकिन क्योंकि देव बरसता है और शीत भी पडता है इसी लिये खेत पकते है और प्रजा पलती है ॥ ४३-४४ ॥यदि शीघ्रता से जाने वाली गोओ म बैल टेढा जाता है, तो नेता के टेढा जाने के कारण वे सभी टेढी जाती है। इसी प्रकार मनुष्यों मे जो श्रेष्ठ कहलाता है, तो इतर प्रजा की तो बात ही क्या, यदि वह अधर्म करता है अर्थात् यदि राजा अधार्मिक होता है, तो सारा राष्ट्र दुखी होता है ॥ ४५-४६ ॥ यदि शीघ्रता से जाने वाली गौओं मे बैल सीधा जाता है, तो नेता के सीधा जाने के कारण सभी सीधी जाती है। इसी प्रकार मनुष्यों में जो श्रेष्ठ कहलाता है, तो इतर प्रजा की तो बात ही क्या, यदि वह धर्म करता है अर्थात् यदि राजा धार्मिक होता है, तो सारा राष्ट्र सुखी होता है ॥ ४७-४८ ॥ जो फलदार महान् वृक्ष के फलों को कच्चा तोडता है, वह उनके रस को नही जानता और उसका बीज भी नष्ट हो जाता है। उसी प्रकार महान्-वृक्ष सदृश राष्ट्र का जो अधर्म से शासन करता है, वह उसके रस को भी नही जानता और उसका राष्ट्र भी नष्ट

होता है ॥ ४९-५० ॥ जो फलदार महान् वृक्ष के फलों को पकने पर तोड़ता है, वह उसके रस को भी जानता है और उसका बीज भी नष्ट नहीं होता। उसी प्रकार महान्-वृक्ष सदृश राष्ट्र का जो धर्म से शासन करता है, वह उसके रस को भी जानता है और उसका राष्ट्र भी नष्ट नहीं होता ॥ ५१-५२ ॥ जो राजा अधर्म से जनपद का शासन करता है, वह क्षत्रिय राजा सभी औषधियों से विरुद्ध पड़ जाता है ॥ ५३ ॥ उसी प्रकार जो राजा निगम के लोगों तथा व्योपरियों को कष्ट देता हुआ शासन करता है उसे कर तथा बलि न मिलने से उसका कोष खाली हो जाता है ॥ ५४ ॥ युद्ध-भूमि के ज्ञाता, महान योधा तथा प्रसिद्ध मन्त्रियों को कष्ट पहुंचाता हुआ जो राजा शासन करता है, वह (सैन्य) बल से क्षीण हो जाता है ॥ ५५ ॥ उसी प्रकार ऋषियों को तथा संयत ब्रह्मचारियों को कष्ट पहुँचाने वाला अधार्मिक क्षात्रिय स्वर्ग का अधिकारी नहीं रहता ॥ ५६ ॥ जो अधार्मिक राजा निरपराध भार्य्या की हत्या कराता है, वह नरक में पैदा होता है और उसके पुत्र उससे विरुद्ध हो जाते हैं ॥ ५७ ॥ जन पद वासियों के साथ, निगम-वासियों के साथ तथा सेना के साथ धर्म-पूर्वक आचरण करे, ऋषियों को कष्ट न दे और स्त्री-पुत्र के साथ विषम व्यवहार न करे ॥ ५८ ॥ उस तरह का क्रोध रहित राष्ट्र-पालक भूमिपति उसी प्रकार सामन्त (-राजाओं) को कंपा देता है, जैसे असुरेन्द्र इन्द्र ॥ ५९ ॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने राजा को धर्मोपदेश दे चारों कुमारों को बुला, उपदेश दे, राजा की करतूत को प्रकाशित कर, कहा—"राजा को क्षमा कर दो।" फिर सब को उपदेश दिया—'महाराज! अब से बिना विचार किये, भेद पैदा करने वालों के कहने का विश्वास न कर, इस प्रकार का दुस्साहस का काम न कर। कुमारो! तुम भी राजा से द्वेष न रखो।" राजा बोला—"भन्ते! मैंने इनके कहने में आकर आपको तथा देवी के प्रति पापकर्म किया। इन पाँचों को मरवाता हूँ।" "महाराज! ऐसा नहीं कर सकते।" "तो इनके हाथ-पाव कटवा देता हूँ।" "नहीं महाराज! यह भी नहीं कर सकते।" राजा ने "भन्ते! अच्छा" कह स्वीकार कर उनका सब कुछ हरण कर लिया और सिर मुंडा, तोबरा बाँध तथा गोबर छिडकना आदि अपमान कर देश से निकाल दिया। बोधिसत्व भी वहां कुछ दिन रहकर राजा को अप्रमादी रहने का उपदेश दे हिमालय ही चले गये।

वहाँ ध्यान-अभिज्ञा प्राप्त कर, जीवन भर ब्रह्मविहारों की भावना कर ब्रह्मलोक-गामी हुए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला 'भिक्षुओ, न केवल अभी, शास्ता पहले भी प्रज्ञावान तथा दूसरो के सिद्धान्त का मरदन करने वाले ही रहे है' कह जातक का मेल बैठाया। उस समय के पाँच मिथ्या-दृष्टि वाले पुराण काश्यप, मक्खलि गोसाल, पबुद्ध कच्चान, अजित केस कम्बली तथा निगण्ठनाथ पुत्र हुए, पिङ्गल-वर्ण कुत्ता आनन्द था। महाबोध परिव्राजक तो मै ही था।

# साठवां परिच्छेद

## ५२९. सोनक जातक

"कस्स मुत्वा मतं दम्मि ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय नष्क्रम्य पारमिता के बारे मे कही। उस समय भिक्षु धर्मसभा मे बैठे नैष्क्रम्य पारमिता का गुण-गान कर रहे थे। शास्ता ने उनके बीच मे बैठ "भिक्षुओ, न केवल अभी तथागत ने पहले भी महानभिनिष्क्रमण किया ही है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

### ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे राजगृह मे मगध नरेश राज्य करता था। बोधिसत्व उसकी पटरानी की कोख मे उत्पन्न हुए। नाम-करण के दिन नाम रक्खा गया अरिन्द-कुमार। उसके पैदा होने के दिन ही पुरोहित का भी पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम रखा गया सोनकुमार। वे दोनों साथ साथ बढकर, बडे होने पर समान रूप से श्रीवान् हुए। रूप मे दोनो बराबर होकर तक्षशिला गये और शिल्प सीखा। वहा से निकल 'सभी मत, शिल्प तथा देश-व्यवहार जानने के लिये' क्रमशः चलते चलते वाराणसी पहुँच, राजोद्यान मे रह, अगले दिन नगर में प्रविष्ट हुए। उस दिन कुछ आदमियों ने "ब्राह्मण-पाठ" कराने के लिये खीर तैय्यार की और आसन बिछाकर जाते समय उन कुमारों को देखा। उन्होंने कुमारों को घर लिवा लाकर आसनों पर बिठाया। बोधिसत्व जिस आसन पर बैठे थे, वहाँ श्वेत वस्त्र बिछा था और सोनक के आसन पर रक्त-वर्ण कम्बल। उसी लक्षण से उसने जाना कि "आज मेरा प्रिय मित्र अरिन्दम-कुमार वाराणसी-नरेश होगा और मुझे वह सेना-पति का पद देगा।" वे दोनो भोजनानन्तर उद्यान ही लौट आये।

उस समय वाराणसी-नरेश को मरे सात दिन हुए थे। राज-कुल पुत्र-रहित था। अमात्य आदि ने सिर से स्नान किया और इकट्ठे होकर स्वयं-चालित पुष्य-रथ छोड़ा कि यह राज्य के अधिकारी के पास जाकर रुकेगा। वह नगर से निकल क्रमशः उद्यान जा, उद्यान-द्वार पर रुक, आरोहण के लिये सज्जित होकर खड़ा हो गया। बोधिसत्व मङ्गल-शिला-पट पर सिर ढके पड़ा था। सोनक कुमार उसके पास बैठा था। उसने संगीत-ध्वनि सुन सोचा—"अरिन्दम के लिये पुष्य-रथ आ रहा है। आज यह स्वयं राजा होकर मुझे सेनापति बनायेगा। मुझे ऐश्वर्य्य की आवश्यकता नहीं है। इस के चले जाने पर निकल कर प्रव्रजित होऊँगा।" इस विचार से वह छिपकर एक ओर खड़ा हो गया।

पुरोहित ने उद्यान में प्रवेश किया तो बोधिसत्व को लेटे देख बाजा रोक दिया। बोधिसत्व जगा, करवट ली, थोड़ा लेटा और फिर उठकर शिला-पट्ट पर पालथी मारकर बैठा। पुरोहित ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया—"देव! राज्य आपका है?"

"क्या राज्य-कुल पुत्र-रहित है?"

"देव! हाँ।"

"तो अच्छा।"

उन्होंने वही उसका अभिषेक किया, रथ पर बिठाया और बड़े ठाट-बाट से नगर में ले गये। उसने नगर की प्रदक्षिणा की और महल पर जा चढ़ा। ऐश्वर्य्य की महानता में उसे सोनक-कुमार याद ही नहीं आया। उसके नगर में चले जाने पर वह भी आकर शिला-पट्ट पर बैठा। उसके सामने ही बन्धन से मुक्त होकर शाल का एक सूखा पत्ता गिरा। वह उसे देखते ही सोचने लगा—"जैसे यह उसी प्रकार मेरा शरीर भी जरा को प्राप्त होकर गिर पड़ेगा।" इस प्रकार उसने अनित्यता आदि पर गहरा विचार कर प्रत्येक-बुद्धत्व लाभ किया। उसी क्षण उसका गृहस्थ-वेष अन्तर्धान हो गया। प्रव्रजित रूप प्रकट हुआ। वह "अब पुनर्जन्म नहीं है" उल्लास-वाक्य कहते हुए नन्द-मूलक पर्वत पहुँचा।

बोधिसत्व को भी चालीस वर्ष के बाद याद आया—"मेरा मित्र सोनक कहाँ है?" बार-बार याद करने पर भी जब उसे कोई यह कहने वाला नहीं मिला

कि "मैंने सुना है, वा देखा है', तो अलङ्कृत महातल्ले पर राज-सिंहासन पर बैठे बैठे; गन्धर्व, नट, नर्तकी आदि से घिरे हुए, ऐश्वर्य्य का अनुभव करते हुए उसने 'जो मुझे किसी से सुनकर कहेगा कि अमुक जगह सोनक रहता है, उसे सौ दूंगा, जो स्वय देख कर कहेगा, उसे हजार दूगा', की घोषणा करने के लिये एक उल्लास-पूर्ण गीत की रचना कर पहली गाथा कही—

**कस्स सुत्वा सतं दम्मि सहस्सं दट्ठु सोनकं,**
**कोमे सोनकं अक्खाति सहायं पेंसुकीळितं ॥१॥**

[किसी से सुनकर कहने वाले को सौ दूंगा, स्वय देखकर कहने वाले को हजार दूंगा। कौन है जो मुझे मेरे लँगोटिया-यार सोनक का समाचार देगा? ॥ १ ॥]

उसके मुँह से छीन लेते हुए की तरह एक नर्तकी उस गीत को लेकर गाने लगी। उस से दूसरी। "यह हमारे राजा का प्रिय गीत है' मान सारा रनिवास गाने लगा। क्रमशः नगरवासी तथा जनपद वासी भी उसी गीत को गाने लगे। राजा भी बार बार उसी गीत को गाता। पचास वर्ष बीतने पर उसके बहुत से बेटा-बेटी हो गये। ज्येष्ठ पुत्र का नाम दीघायु-कुमार था।

तब सोनक प्रत्येक-बुद्ध ने सोचा—"अरिन्दमराजा मुझे देखना चाहता है। जाता हूँ, इसे काम-भोगों की सदोषता और नैष्क्रम्य का माहात्म्य समझाकर प्रव्रज्या की ओर झुकाता हूँ।" वह ऋद्धि-बल से आकर उद्यान मे बैठ गया।

उस समय पाँच चोटियों वाला एक सप्तवर्षीय कुमार माता की आज्ञा से उद्यान के उपवन मे लकड़ियाँ बटोरता हुआ बारबार वही गीत गाता था। प्रत्येक-बुद्ध ने उसे बुलाकर पूछा—"कुमार! तू और गीत न गाकर केवल एक ही गाता है, क्या और भी गीत जानता है?"

"भन्ते! जानता हूँ, किन्तु हमारे राजा का यह प्रिय गीत है, इसलिये इसे ही बार बार गाता हूँ।"

"क्या तुझे इस गान के मुकाबले का गीत गाने वाला कोई मिला?"

"भन्ते! नही मिला।"

"मैं तुझे सिखा दूंगा। क्या तू राजा के सामने जाकर मुकाबले का गीत गा सकेगा?"

"भन्ते ! हाँ !"

उसने उसे मुकाबले का गीत सिखाते हुए "महच्च सुत्वा...."सिखाया। सिखा कर उसे बिदा किया—"कुमार जा ! राजा के साथ यह प्रति-गीत गा। राजा तुझे बहुत एश्वर्य्य देगा। तुझे लकड़ियों से क्या ? शीघ्र जा।"

उसने 'अच्छा' कह उस प्रति-गीत को सीखा और प्रणाम कर बोला—"भन्ते ! मैं जब तक राजा को लेकर आता हूँ, तब तक आप यही रहे।" यह कह शीघ्रता से माँ के पास पहुँचा और बोला—"माँ, मुझे शीघ्र स्नान कराकर अलकृत कर। आज मैं तुझे दरिद्रता से मुक्त करूँगा।" इस प्रकार वह स्नान कर, सजसजा कर राज-द्वार पर पहुँचा और बोला—"आर्य द्वारपाल ! राजा को जाकर सूचना दे कि एक बालक द्वार पर खड़ा है, और कहता है कि तुम्हारे साथ गाऊँगा।" उसने तुरन्त जाकर सूचित किया। राजा ने बुला भेजा और पूछा—

"तात ! तू मेरे साथ गीत गायगा।"

"देव ! हाँ।"

"तो गा।"

"देव ! यहाँ नही गाऊँगा। नगर मे मुनादी कराकर जनता को इकट्ठा करे। जनता के बीच गाऊँगा।"

राजा ने वैसाकर, अलकृत मण्डप के नीचे सिहासन पर बैठ उसके अनुरूप आसन दिला कर कहा—

"अब अपना गीत गा।"

"देव ! पहले आप गीत गाये, तब मैं प्रति-गीत गाऊँगा।"

तब राजा ने पहले गाते हुए यह गाथा कही—

**कस्स सुत्वा सतं दम्मि सहस्सं दट्ठु सोनकं,**
**को मे सोनकं अक्खाति सहायं पंसुकीळितं ॥१॥**

[अर्थ ऊपर आ गया है।]

इस प्रकार जब राजा ने पहली उदान-गाथा कही, तो पाँच चोटी वाले लड़के द्वारा कही गई प्रति-गाथा को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने अभिसम्बुद्ध हो दो पद कहे —

**अथ ब्रवी माणवको दहरो पञ्चचूळको**
**मय्हं सुत्वा सतं देहि सहस्सं दट्ठु सोनकं**
**अहं सोनकं आक्खिस्सं सहायं पंसुकीलितं ॥२॥**

[ पाँच चोटी वाला छोटा ब्रह्मचारी बोला—"मुझे सुनने वाले को सौ दे और मुझे देखने वाले को हजार दे। मैं तेरे लगोटिया-यार सोनक को तुझे बता-दूगा॥ ८ ॥ ]

आगे की सम्बन्ध गाथाये पालि-क्रमानुसार ही है। राजा बोला—

**कतरस्मिं (सो) जनपदे रट्ठेसु निगमेसु च**
**कत्थ ते सोनको दिट्ठो तं मे अक्खाहि पुच्छितो ॥३॥**

[ मैं तुझे पूछता हूं। मुझे बता कि तूने सोनक को किस जनपद मे, किस राष्ट्र मे, किस निगम मे कहाँ देखा? ॥ ३ ॥ ]

लडका—

**तवेव देव विजिते तवेव उय्यान भूमिया**
**उजुवंसा महासाला निलोभासा मनोरमा ॥४॥**
**तिट्ठन्ति मेघसमोना रम्मा अञ्ञोञ्ञनिस्सिता**
**तेसं मूलस्मिं सोनको आयति अनुपादानो**
**उपादानेसु लोकेसु उय्हमानेसु निब्बुतो ॥५॥**

[ राजन्! तेरे ही प्रदेश मे, तेरे ही उद्यान मे सीधे, बडे बडे, नील-वर्ण-मेघो के समान, परस्पर-आश्रित रमणीय मेघ खडे है। उन्ही के नीचे बैठा सोनक उपा दान-रहित हो ध्यान करता है। जलते हुए उपादान लोकों मे वह शान्त हो गया है॥ ५ ॥ ]

**ततो च राजा पायासि सेनाय चतुरंगिया**
**कारापेत्वा समं मग्गं अगमा येन सोनको ॥६॥**
**उटयानभूमिं गन्त्वान विचरन्तो ब्रहावने**
**आसीनं सोनकं दक्खि डय्हमानेसु निब्बुतं ॥७॥**

[ तब चतुरगिनी सेना सहित राजा वहाँ से निकला और रास्ता बराबर

कराकर जहाँ सोनक था वहाँ पहुँचा ॥ ६ ॥ उद्यान-भूमि मे पहुँच उस महान वन मे विचरते हुए उसने जलते हुए लोक में शान्त हुए सोनक को बैठे देखा ॥ ७ ॥ ]

राजा सोचने लगा—

**कपणो वत अयं भिक्खु मुण्डो संघाहिपारुतो**
**अमातिको अपीतिको रुक्खमूलस्मिं आयति ॥८॥**

[ यह सिरमुण्डा, सघाटी धारण किये, मातृहीन, पितृ-हीन विचारा भिक्षु पेड के नीचे ध्यान कर रहा है ॥ ८ ॥ ]

**इमं वाक्यं निसामेत्वा सोनको एतद अब्रवी**
**न राजा कपणो होति धम्मं कायेन फस्सयं ॥९॥**
**यो च धम्मं निरंकत्वा अधम्मं अनुवत्तति**
**स राजा कपणो होति पापो पापपरायनो ॥१०॥**

[ यह वाक्य सुन सोनक बोला : राजा जो धर्म को शरीर से स्पर्श करता है, वह बिचारा नही होता जो धर्म का बहिष्कार करके अधर्मानुसार चलता है, वह पाप-मार्गी 'विचारा' होता है । १० ॥ ]

इस प्रकार उसने बोधिसत्व की निन्दा की। उसने अपने निन्दा किये जाने को जानते हुए की तरह, अपना नाम-गोत्र सुना उसका कुशल-क्षेम पूछते हुए गाथा कही—

**अरिन्दमो ति ये नामं , कासिराजा ति मं विदू**
**कच्चि भोतो सुखा सेय्या इधपत्तस्स सोनक ॥११॥**

[ मेरा नाम अरिन्दम है। मुझे काशी-नरेश जाने। सोनक ! यहा रहते आप सुखपूर्वक तो रहते है ? ॥ ११ ॥ ]

तब प्रत्येक-बुद्ध ने उसे "महाराज ! न केवल यहाँ, किन्तु अन्यत्र भी रहने समय मुझे असुविधा नहीं है", कह श्रमण-भद्र गाथायें कही—

**सदापि भद्रं अधनस्स अनागारस्स भिक्खुनो**
**न तेसं कोटठे उपेन्ति न कुम्भे न कळोपिया,**
**परनिट्ठितं एसाना तेन यापेन्ति सुब्बता ॥१२॥**

दुतियं पि भद्रं अधनस्स अनागारस्स भिक्खुनो,
अनवज्जो पिण्डो भोतब्बो न च कोचुपरोधति ॥१३॥
ततियं पि भद्रं अधनस्स अनागारस्स भिक्खुनो
निब्बुतो पिण्डो भोतब्बो न च कोचुपरोधति ॥१४॥
चतुत्थं भद्रं अधनस्स अनागारस्स भिक्खुनो
मुत्तस्स रट्ठे चरतो संगो यस्स न विज्जति ॥१५॥
पंचमं भद्रं अधनस्स अनागारस्स भिक्खुनो
नगरम्हि डय्हमानम्हि नास्स किञ्चि अडय्हथ ॥१६॥
छट्ठं भद्रं अधनस्स अनागारस्स भिक्खुनो
रट्ठे विलुम्पमानम्हि नास्स किंचि अहीरथ ॥१७॥
सत्तमं भद्रं अधनस्स अनागारस्स भिक्खुनो
चोरेहि रक्खितं मग्गं ये च अञ्ञे पारिपंथिका
पत्तचीवरं आदाय सोत्थिं गच्छन्ति सुब्बता ॥१८॥
अट्ठमं भद्रं अधनस्स अनागारस्स भिक्खुनो
यं यं दिसं पक्कमति अनपेक्खो व गच्छति ॥१९॥

[अकिञ्चन अनागारिक भिक्षु को सदैव ही आनन्द रहता है। न उनके कोठों मे धन-धान्य रहता है, न घडों मे और न टोकरियों में। उनका भिक्षाचार दूसरें पर निर्भर करता है और सुब्रत लोग उसी से जीवन यापन करते है॥ १२ ॥ अकिञ्चन अनागरिक भिक्षु के लिये जो दूसरी आनन्द की बात है वह यह है कि वह निर्दोष भिक्षा ग्रहण करता है और उसे कोई चित्त-मैल कष्ट नहीं देता॥ १३ ॥ अकिञ्चन अनागरिक भिक्षु के लिये जो तीसरी आनन्द की बात है वह यह है कि वह शान्त भिक्षा ग्रहण करता है और उसे कोई चित्त-मैल कष्ट नहीं देता ॥ १४ ॥ अकिञ्चन अनागारिक भिक्षुके लिये जो चौथी आनन्द की बात है वह यह है कि वह मुक्त होकर राष्ट्र मे विचरता है और आसक्ति-रहित रहता है॥ १५ ॥ अकिञ्चन अनागारिक भिक्षु के लिये जो पाँचवीं आनन्द की बात है वह यह है कि यदि नगर में आग भी लग जाय तो उसका कुछ नही जलता ॥ १६ ॥ अकिञ्चन अनागारिक भिक्षु के लिये जो छठी आनन्द की बात है वह

यह है कि यदि सारा राष्ट्र लूटा जा रहा हो, तो भी उसका कुछ नहीं लूटा जा सकता ॥ १७ ॥ अकिञ्चन अनागारिक भिक्षु के लिये जो सातवीं आनन्द की बात है वह यह है कि चोरों तथा अन्य मार्ग चलने में बाधा डालने वाले लोगों के रहते हुए भी वह सुव्रती सकुशल जाता है ॥ १८ ॥ अकिञ्चन अनागारिक भिक्षु के लिये जो आठवीं आनन्द की बात है वह यह है कि वह जिधर जिधर चाहता है, बिना किसी अपेक्षा के जा सकता है ॥ १९ ॥]

इस प्रकार सोनक प्रत्येक बुद्ध ने आठ श्रमण-भद्र बातें कहीं। इससे आगे वह सौ भी, हजार भी अपरिमित श्रमण-भद्र बातें कह ही सकता था। राजा ने अपनी काम-भोग सम्बन्धी आसक्ति के कारण उसे बीच में से रोक दिया और बोला—"मुझे श्रमण-भद्र बातों की अपेक्षा नहीं?" वह अपनी काम-भोग सम्बन्धी आसक्ति को प्रकट करता हुआ बोला—

**बहू पि भद्रका एते यो त्वं भिक्खु पसंससि,**
**अहंच गिद्धो कामेसु कथं काहामि सोनक ॥२०॥**
**पिया मे मानुसा कामा अथवा दिव्यापि मे पिया**
**अथ केन नु वण्णेन उभो लोके लभामसे ॥२१॥**

[हे भिक्षु! जिन भद्र बातों की तू प्रशंसा करता है, वे बहुत हैं। किन्तु मैं तो काम-भोगों में आसक्त हूँ, हे सोनक! मैं क्या करूँ? ॥ २० ॥ मुझे मनुष्य लोक के काम-भोग प्रिय हैं, और मुझे दिव्य-लोक के काम-भोग भी प्रिय हैं। मैं किस प्रकार दोनों लोकों को प्राप्त करूँ? ॥ २१ ॥]

प्रत्येक-बुद्ध ने उत्तर दिया—

**कामेसु गिद्धा कामरता कामेसु अधिमुच्छिता**
**नरा पापानि कत्वान उपपज्जन्ति दुग्गतिं ॥२२॥**
**ये च कामे पहत्वान निक्खन्ता अकुतोभया**
**एकोदिभावादिगता न ते गच्छन्ति दुग्गतिं ॥२३॥**
**उपमं ते करिस्सामि, तं सुणोहि अरिन्दम,**
**उपमाय पि धीरा एकच्चे अत्थं जानन्ति पण्डिता ॥२४**

गंगाय कुणपं विस्वा वुय्हमानं महण्णवे
वायसो समचिन्तेसि अप्पपञ्ञो अचेतसो ॥२५॥
यानञ्च वत इदं लद्धं भक्खो चायं अनप्पको,
तत्थ रत्तिं तत्थ दिवा तत्थ एव निरतो मनो॥२६॥
खादं नागस्स मंसानि पियं भागीरसोदकं
सम्पस्सं वनचेत्यानि न पलित्थ विहंगमो ॥२७॥
तं व ओतरणी गंगा पमत्तं कुणपे रतं
समुद्दं अज्झगाहयि अगति यत्थ पक्खिन ॥२८॥
सो च भक्खपरिक्खीणो उदापत्वा विहंगमो
न पच्छतो न पुरतो नुत्तरं नो पि दक्खिणं ॥२९॥
दीपं सो न अज्झगच्छि अगति यत्थ पक्खिनं
सो च तथेव पापत्थ यथा दुब्बलको तथा ॥३०॥
तञ्च सामुद्दिका मच्छा कुम्भीला मकरा सुसू
पसय्हकारा खादिंसु फंदमानं विपक्खिनं ॥३१॥
एव मेव तुवं राज ये च अञ्ज कामभोगिनो
गिद्धा चे न वमिस्सन्ति काक पञ्जाय ते विदू॥३२॥
एसा ते उपमा राज अत्थसंदस्सनी कता,
त्वं च पञ्जायसे तेन यदि काहसि वा न वा ॥३३॥

[ काम-भोगों मे आसक्त, काम भोगो मे अनुरक्त तथा काम भोगों में मूर्छित प्राणी पाप-कर्म करके दुर्गति को प्राप्त होते है ॥ २२ ॥ जो काम-भोगों को त्याग, निकलकर, भय रहित तथा एकाग्रचित्त होकर विचरते हैं, वे दुर्गति को प्राप्त नहीं होते ॥ २३ ॥ हे अरिन्दम ! सुन। मैं तुझे एक उपमा देता हूँ। कुछ पण्डित लोग उपमा से भी समझ जाते हैं ॥ २४ ॥ गंगा में एक हाथी की लाश महासमुद्र की ओर बही चली जा रही थी। उसे देख एक मूर्ख बुद्धिहीन कौआ सोचने लगा ॥ २५ ॥ "यह मुझे एक यान मिल गया, और मेरे लिये यह खाना भी बहुत है।" वह रात-दिन वही रहने लगा और उसी मे उसका मन रम गया ॥२६॥ हाथी का मांस खाता हुआ और गंगा-जल पीता हुआ तथा वन-चैत्यों को देखता

हुआ वह कौआ वहाँ से उड़ा नहीं॥ २७॥ समुद्राभिमुखी गंगा (हाथी का मांस खाने में) अनुरक्त उस कौवे को समुद्र में बहा ले गई, जहां पक्षियों की कोई गति नहीं॥ २८॥ वह भोजन हीन हो गया और पानी मे गिरा। उसे न पीछे, न आगे, न पूर्व दिशा मे और न उत्तर दिशा में कही कोई द्वीप नही मिला। वह दुर्बल प्राणी की तरह वहीं गिर पडा, जहाँ पक्षियों की कोई गति नही॥ २९-३०॥ उस तड़पते हुए पक्षी को समुद्र के मच्छ, मगर-मच्छ, मकर तथा सोंस(?) काबू करके खा गये॥ ३१॥ हे राजन! इसी प्रकार तू तथा अन्य जितने भी काम-भोगी हैं, यदि वह काम-भोगों को छोडते नहीं है, तो वे उस कौवे के ही समान हैं॥ ३२॥ हे महाराज! मै ने अर्थ को प्रकाशित करने वाली उपमा कही। अब यदि तू इसके अनुसार करेगा तो तू (देव-लोक में) उत्पन्न होगा, नही करेगा तो (नरक में) उत्पन्न होगा॥ ३३॥]

इस प्रकार उसने इस उपमा से उपदेश दे, अब उसी उपदेश को स्थिर कर प्रतिष्ठित करते हुए गाथा कही—

**एक वाचं पि द्वेवाचं भणेय्य अनुकम्पको**
**तदुत्तरिं न भासेय्य दासो अयिरस्स सन्तिके॥३४॥**

[अनुकम्पक को चाहिये कि एक या दो बात कहे। उससे अधिक न बोले। (क्योंकि वैसा करने वाला) मालिक के सामने बोलने वाले दास के समान होता है॥ ३४॥]

यह सम्बुद्ध-गाथा है—

**इदं वत्वान पक्कामि सोनको अमितबुद्धिमा**
**वेहासे अन्तलिक्खस्मिं अनुसासित्वान खत्तियं॥३५॥**

[अनन्त-बुद्धिमान सोनक यह कह कर और इस प्रकार क्षत्रिय को अनुशासित कर, आकाश में, अन्तरिक्ष में चला गया॥ ३५॥]

बोधिसत्व ने भी उसे आकाश-मार्ग से जाते देख, जब तक वह दिखाई दिया तब तक खड़े देखते रहकर, उसके आँख से ओझल होने पर, मन में संवेग उत्पन्न कर सोचा—"यह ब्राह्मण-हीन जन्मा होकर भी मुझ शुद्ध क्षत्रिय-वंश के सिर पर

अपने पैरों की धूलि डालता हुआ, आकाश में उछल कर गया है। मुझे भी आज ही निकल कर प्रव्रजित होना चाहिए।" उसने राज्य सौंप प्रव्रजित होने की इच्छा से दो गाथायें कही—

**को नु मे राजकत्तारो सूता वेय्यत्ति आगता,**
**रज्जं निय्यादयिस्सामि, नाहं रज्जेन-मत्थिको ॥३६॥**
**अज्जेव पब्बजिस्सामि, को जञ्ञा मरणं सुवे,**
**माहं काको व दुम्मेधो कामानं वसं अन्नगा ॥३७॥**

[ राज्याभिषेक का संस्कार करने वाले सूत तथा अन्य मेरे लोग कहां है ? मैं राज्य सौंपूगा। मुझे राज्य की अपेक्षा नही॥ ३६ ॥ मै आज ही प्रव्रजित होऊँगा। कौन जानता है कि कल मरना हो। मै मूर्ख कौवे की तरह काम-भोगों के वशीभूत न रहूँ॥ ३७ ॥ ]

इस प्रकार जब अमात्यो ने सुना कि राजा राज्य त्याग रहा है, तो वे बोले।—

**अत्थि ते दहरो पुत्तो दीघायु रट्ठवड्ढनो**
**तं रज्जेअभिसिञ्चस्सु, सोनो राजा भविस्सति ॥३८॥**

[तेरा दीघायु नामक छोटा पुत्र राज्य की वृद्धि करने वाला है। उसका राज्याभिषेक करें। वह हमारा राजा होगा॥ ३८ ॥ ]

इससे आगे राजा द्वारा कही गई गाथा से आरम्भ करके शेष स्पष्ट-सम्बन्ध गाथायें पालिक्रम से ही जाननी चाहिये।

**खिप्पं कुमारं आनेथ दीघायुं रट्ठवड्ढनं,**
**तं रज्जे अभिसिञ्चस्सु, सो वो राजा भविस्सति ॥३९॥**

[ राष्ट्र वर्धन दीर्घायु कमार को शीघ्र लाओ। उसका राज्याभिषेक करो। वह राजा होगा॥ ३९ ॥ ]

**ततो कुमारं आनेसुं दीघायुं रट्ठवड्ढनं**
**तं दिस्वा आलपि राजा एकपुत्तं मनोरमं ॥४०॥**
**सट्ठि गाम सहस्सानि परिपुञ्जानि सब्बसो**
**ते पुत्त पटिपज्जस्सु, रज्जं नियादयामि ते ॥४१॥**

**अज्जेव पब्बजिस्सामि, को जञ्ञा मरणं सुवे ।**
**माहं काकोव दुम्मेधो कामानं वसं अन्नगा ॥४२॥**

[तब राष्ट्रवर्धन दीर्घायु कुमार को लाया गया। उसे सुन्दर इकलौते पुत्र को देख राजा बोला—"सभी दृष्टियों से परिपूर्ण साठ हजार ग्राम है। हे पुत्र! इन्हे सभाल। मै तुझे राज्य सौपता हूँ॥ ४०-४१॥ मे आज ही प्रव्रजित होऊँगा .... वशीभूत न रहूँ"॥ ४२॥]

**सट्ठिनागसहस्सानि सब्बालंकारभूसिता**
**सुवण्णकच्छा मातंगा हेमकप्पनवाससा ॥४३॥**
**आरुळहा गामणीयेहि तोमरंकुसपाणिहि**
**ते पुत्त पटिपज्जस्सु , रज्जं निय्यादयामि ते ॥४४॥**
**अज्जेव.....॥४५॥**

[सब अलकारों से विभूषित, स्वर्ण की हमेल वाले, सुनहरी वस्त्र वाले साठ हजार नाग है, जिन पर तोमर तथा अंकुशों वाले ग्रामणी चढे है। हे पुत्र! इन्हें संभाल। मै तुझे राज्य सौपता हूँ॥४३-४४॥ मै आज ही प्रव्रजित होऊँगा..... वशीभूत न रहूँ ॥४५॥]

**सट्ठिअस्ससहस्साति सब्बालंकारभूसिता**
**अजानीया व जातिया सिन्धवा सीघवाहिनो ॥४६॥**
**आरुळहा गामनीयेहि इल्लियाचापधारिहि—**
**ते पुत्त पटिपज्जस्सु, रज्जं निय्यादयामि ते ॥४७॥**
**अज्जेव..... ॥४८॥**

[सब अलंकारों से विभूषित, श्रेष्ठ, जाति से सैधव, शीघ्रगामी साठ हजार घोडे है, जिन पर इल्लिय तथा चाप-आयुध-धारी ग्रामणी चढे है। हे पुत्र! इन्हें संभाल। मै तुझे राज्य सौंपता हूँ॥४६-४७॥ मै आज ही प्रव्रजित होऊँगा.....वशीभूत न रहूँ॥४८॥]

**सट्ठि रथसहस्सानि सन्नद्धा उस्सितद्धजा**
**दीपा अथो पि वेय्यग्घा सब्बालंकारभूसिता ॥४९॥**

**आरुकळहा गामणीयेहि चापहत्थेहि वम्मिहि**
**ते पुत्त पटिपज्जस्सु, रज्जं निय्यादयामि ते ॥५०॥**
**अज्जेव .....॥५१॥**

[सज्जित, ध्वजा-युक्त, चीते और व्याघ्र के चर्म वाले, सभी अलंकारों से युक्त साठ हजार रथ हैं, जिन पर हाथों मे धनुष लिये, कवचधारी ग्रामणी बैठे है। हे पुत्र! इन्हे संभाल। मै तुझे राज्य सौंपता हूँ ॥४९-५०॥ मै आज ही प्रव्रजित होऊँगा..... वशीभूत न रहूँ ॥५१॥]

**सट्ठि धेनुसहस्सानि रोहञ्ञा पुङ्गवूसभा**
**ते पुत्त पटिपज्जस्सु, रज्जं निय्यादयामि ते ॥५२॥**
**अज्जेव.....॥५३॥**

[वृषभों के सहित, रक्तवर्ण साठ हजार गौवें हैं। हे पुत्र! इन्हें सँभाल। मैं तुझे राज्य सौंपता हूँ ॥५२॥ मैं आज ही प्रव्रजित होऊँगा....वशीभूत न रहूँ ॥५३॥]

**सोळसइत्थिसहस्सानि सब्बालंकारभूसिता**
**विचित्र हत्थाभरणा आमुत्त मणिकुण्डला—**
**ता पुत्त पटिपज्जस्सु, रज्जं निय्यादयामिते ॥५४॥**
**अज्जेव..... .....॥५५॥**

[सुन्दर हस्ताभूषणों वाली, मोतियों तथा मणि-कुण्डलों वाली, सभी अलंकारों से विभूषित साठ हजार स्त्रियाँ हैं। हे पुत्र! इन्हें संभाल। मैं तुझे राज्य सौंपता हूँ ॥५४॥ मैं आज ही प्रव्रजित होऊँगा.....वशीभूत न रहूँ ॥५५॥]

कुमार—

**दहरस्सेव मे तात माता मता ति मे सुतं,**
**तया बिना अहं तात जीवितुं हि न उस्सहे ॥५६॥**
**यथा आरञ्ञकं नागं पोतो अन्वेति पच्छतो**
**जेस्सन्तं गिरिदुग्गेसु समेसु विसमेसु च ॥५७॥**
**एवं तं अनुगच्छामि पत्तं आदाय पच्छतो**
**सुभरो ते भविस्सामि, न ते हेस्सामि दुब्भरो ॥५८॥**

[तात ! मैंने सुना था कि जब मैं बच्चा था, तभी मेरी माता मर गई। हे तात ! तेरा बिना मैं जीने की ही इच्छा नही करता ॥५६॥ जिस प्रकार जंगली हाथी का बच्चा गिरि, गुफा, सम-विषम स्थल में सभी जगह जाने पर हाथी के पीछे पीछे ही जाता है, इसी प्रकार मैं तेरा (भिक्षा-) पात्र ले कर पीछे पीछे चलूगा। मैं दूभर नही होऊँगा। सुभर ही रहूँगा ॥५७-५८॥]

राजा—

**यथा सामुद्दिकं नावं वाणिजानं धनेसिनं**
**वोहारो तत्थ गण्हेय्य वाणिजा व्यसनी सिया ॥५९॥**
**एवमेवायं पुत्तकलि अन्तरायकरो ममं**
**इमं कुमारं पापेथ पासादं रतिवद्धनं ॥६०॥**
**तत्थ कम्बुस्स हत्थायो यथा सक्कं व अच्छरा**
**ता नं तत्थ रमेस्सन्ति, ताहि मेसो रमिस्सति ॥६१॥**

[जैसे धन की खोज मे निकले व्योपारियो की, समुद्र मे जाने वाली नौका को जल-राक्षस पकड़ ले तो वे दुःख को प्राप्त हों। इस प्रकार यह पुत्र-बन्धन मेरे मार्ग में बाधक है। इस रति-वर्धन कुमार को महल पर ले जाओ। वहाँ स्वर्णाभरण युक्त हाथों वाली स्त्रियाँ वैसे ही इसका दिल बहलायेगी जैसे अप्सरायें शक्र का, और यह भी उनके साथ रमेगा ॥५९-६१॥]

**ततो कुमारं पापेसुं पासादं रतिवद्धनं**
**तं दिस्वा अवचुं कञ्ञा दीघायुं रट्ठवद्धनं ॥६२॥**

[तब उस रतिवर्धन कुमार को (अभिषेक के बाद) प्रासाद पहुंचा दिया गया। उस दीर्घायु राष्ट्रवर्धन को देख कर वे कन्यायें इस प्रकार बोली ॥६२॥]

**देवता तु सि गन्धब्बो आदू सक्को पुरिंददो**
**को वा त्वं कस्स वा पुत्तो, कथं जानेमुतंमयं ॥६३॥**

[तू देवता है, गन्धर्व है, अथवा पुरेन्द्र शक्र है ? तू कौन है और किसका पुत्र है ? हम तुझे किस प्रकार जानें ॥ ६३ ॥]

राज्याभिषिक्त कुमार—

**नम्हि देवो न गन्धब्बो न पि सक्को पुरिंदवो,**
**कासिरञ्ञो अहं पुत्तो दीघायु रट्ठवड्ढनो ॥६४॥**

[न मैं देवता हूँ, न गन्धर्व हूँ और न पुरेन्द्र शक्र हूँ। मैं काशीराज का राष्ट्र-वर्धन करने वाला दीर्घायु नाम का पुत्र हूँ॥ ६४॥]

**मम भरथ, भद्दं वो, अहं भत्ता भवामि वो**

[मेरी इच्छा करो, तुम्हारा भला हो, मैं तुम्हारा मालिक होता हूँ॥ ६५॥]

**तं तत्थ अवचुं कञ्ञा दीघायुं रट्ठवड्ढनं**

[उस राष्ट्र-वर्धन दीर्घायु से वे कन्यायें बोलीं॥ ६५॥]

**कुहिं राजा अनुपत्तो, इतो राजा कुहिं गतो ॥६५॥**

[राजा कहाँ पहुँचा, यहाँ से राजा कहाँ गया? ॥ ६५॥]

**पङ्कं राजा अतिक्कन्तो थले राजा पतिट्ठितो**
**अकण्टकं अगहनं पटिपन्नो महापथं ॥६६॥**
**अहं च पटिपन्नोस्मि मग्गं दुग्गतिगामिनं**
**सकण्टकं सगहनं येन गच्छामि दुग्गतिं ॥६७॥**

[राजा कीचड़ में से निकल कर स्थल पर प्रतिष्ठित हो गया। वह कण्टक-रहित, खुले महापन्थ का पथिक हो गया। ॥ ६६॥ मैं दुर्गम मार्ग का राही हो गया, जो कण्टकाकीर्ण है, जो गहन है, जिससे दुर्गति को प्राप्त होऊँगा॥६७॥]

कन्यायें—

**तस्स ते सागतं राज सीहस्सेव गिरिब्भजं,**
**अनुसास महाराज, त्वं नो सब्बासं इस्सरो ॥६७॥**

[राजन्! जिस प्रकार गिरि-गह्वर में सिंह का स्वागत होता है, उसी प्रकार तुम्हारा स्वागत है। हे महाराज! हमें आज्ञा करें। आप हम सबके 'ईश्वर' हैं॥६४॥]

यह कह उन सभी ने बाजों को ग्रहण किया। नाना प्रकार का नृत्य-संगीत हुआ। महान् ऐश्वर्य्य हुआ। ऐश्वर्य्य में भूलकर उसे पिता याद नहीं आया। किन्तु वह धर्मानुसार राज्यकर यथाकर्म परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, "भिक्षुओ, न केवल अभी पहले भी तथागत ने महान् अभिनिष्क्रमण किया ही है" कह जातक का मेल बैठाया।

उस समय प्रत्येक-बुद्ध का परिनिर्वाण हो गया। पुत्र राहुल-कुमार हुआ। अरिन्दम राजा तो मैं ही था।

# ५३०. संकिच्च जातक

त्वा निसिन्न राजान...."यह शास्ता ने जीवक के आम्रवन में विहार करते समय अजात शत्रु के पितृघात कर्म के बारे मे कही।

## क. वर्तमान कथा

उसने देवदत्त के लिए, उसके कहने मे आकर, पिता को मरवा दिया था। फिर उसने सुना कि देवदत्त का संघ बिखर गया; और रोग उत्पन्न हो गया, और तब वह तथागत से क्षमा माँगने के लिए डोली मे बैठकर श्रावस्ती गया। जाते समय जेत-वन द्वार पर उसका पृथ्वी प्रवेश हुआ। यह सुना तो उसके मन में भी भय उत्पन्न हुआ—"देवदत्त सम्यक्-सम्बुद्ध का प्रतिपक्षी हो गया। परिणाम स्वरूप उसका पृथ्वी-प्रवेश हुआ ओर वह अवीचो नरक मे पहुँचा। मैंने भी उसकी प्रेरणा से अपने धार्मिक धर्मराज पिता की हत्या की। मेरा भी पृथ्वी-प्रवेश होगा।" इस प्रकार सोचने से उसे राज्यश्री में कुछ आनन्द न अनुभव हुआ।, "थोडा सोऊँगा" सोच वह लेटा तो निद्रा आते ही उसे ऐसा लगा मानो नौ योजन मोटी लोहे की पृथ्वी पर गिराकर उसे लोहे की शलाखाओ से ही कूटा जा रहा है। उसे लगा जैसे उसे कुत्ते नोच नोच कर खा रहे हों। वह डर के मारे चिल्ला कर उठा। फिर एक दिन कार्तिक मास की चन्द्रिका में अमात्यों के बीच बैठे बैठे उसने अपने वैभव की ओर देख सोचा ' मेरे पिता का वैभव इससे अधिक था। मैंने वैसे धर्मराज को देवदत्त

की प्रेरणा से मार डाला।' उसके इस प्रकार सोचते समय ही उसके शरीर मे जलन होने लगी। सारा शरीर पसीना पसीना हो गया। तब उसने विचार किया कि कौन है जो मुझे इस भय से मुक्त कर सके? उसकी समझ में आया कि दस-बल के अतिरिक्त और कोई उसे इस भय से मुक्त नही कर सकता। फिर प्रश्न हुआ—"मैंने उनका बडा अपराध किया है। मुझे कौन उनके पास ले जायगा?" उसे सूझा—"जीवक के अतिरिक्त और कोई नही।" उसे लेकर चलने की तैयारी करते हुए उसने उल्लास-वाक्य कहा—"आज की रात्रि बडी रमणीय है? आज किस श्रमण अथवा ब्राह्मण की सेवा मे चले?" जब पुराण-शिष्यो ने पुराणकस्सप आदि का गुण वर्णन किया, तो उसने उनकी उपेक्षा की। किन्तु जब जीवक से पूछा और उसने तथागत का गुणानुवाद कर कहा कि देव उन भगवान् की सेवा मे चले, तो उसने हाथी-वाहन आदि तैयार करा, जीवकम्बवन में पहुँच, तथागत के समीप जा, प्रणाम किया। तथागत के कुशल-क्षेम पूछने पर उसने श्रामण्य के इह-लौकिक फल के बारे मे जिज्ञासा की। फिर तथागत से श्रामण्य-फल के बारे में मधुर धर्मोपदेश सुन, सूक्त के अन्त मे उपासक रूप से ग्रहण किये जाने की प्रार्थना की, और तथागत से क्षमा माँग चल दिया। इसके बाद से वह दान देता हुआ, शील के नियमों का पालन करता हुआ, तथागत के साथ सत्सग करता हुआ, मधुर धर्मोपदेश सुनता हुआ रहने लगा। सत्संगति के फलस्वरूप उसके चित्त का भय, लोमहर्षण जाता रहा और उसने पुनः चित्त-प्रसाद प्राप्त किया। वह सुख से उठना-बैठना आदि करने लगा।

एक दिन धर्मसभा मे भिक्षुओ ने बात चीत चलाई—"आयुष्मानो! अजातशत्रु पितृघात कर्म कर भयाकुल हुआ। राज्यश्री का सुख न भोगते हुए वह उठते-बैठते हर अवस्था मे दुखी रहने लगा। अब वह तथागत के पास पहुँच सत्संगति के प्रभाव से भय-मुक्त हो गया और ऐश्वर्य्य-सुख अनुभव करने लगा।" तथागत ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" "अमुक बातचीत" कहने पर, "भिक्षुओ, न केवल अभी, इसने पहले भी पितृ-घात कर्म किया, किन्तु बाद मे मेरे कारण सुख-पूर्वक सोया" कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

## ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी मे ब्रह्मदत्त को ब्रह्मदत्त-कुमार नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। उस समय बोधिसत्व ने पुरोहित के घर मे जन्म ग्रहण किया। पैदा होने पर उसका नाम संकिच्च-कुमार रक्खा गया। वे दोनो राज-भवन में साथ ही बढने लगे। परस्पर मित्र होते हुए, बडे होने पर तक्षशिला गये और सभी शिल्प सीख कर आये।

राजा ने पुत्र को उप-राज बनाया। बोधिसत्व भी उपराज के ही पास रहे। एक दिन उपराज ने उद्यान-क्रीडा के लिये जाते समय पिता का महान् ऐश्वर्य्य देख उसमें लोभ उत्पन्न कर सोचा—"मेरा पिता, मेरे भाई के समान है। यदि इसके मरण को प्रतीक्षा करूँगा, तो मुझे बूढे होने पर राज्य मिलेगा। उस समय राज्य मिलने से क्या लाभ? पिता को मारकर राज्य करूँगा।" उसने अपना यह विचार बोधिसत्व पर भी प्रकट किया। बोधिसत्व ने मना किया—"मित्र! पितृघात कर्म महान पातक है, नरक का रास्ता है। यह नही किया जा सकता। ऐसा मत करें।" उसने बार-बार कहा। जब तीसरी बार भी मना किया तो उसने पैरों मे बैठने वाले नौकरो से मन्त्रणा की। उन्होने स्वीकार कर, राजा के मारने के उपाय पर विचार किया। बोधिसत्व को जब यह पता लगा तो उसने सोचा—"मैं इनके साथ शामिल नही होऊँगा।" उसने माता-पिता की आज्ञा भी नही ली, और मुख्य द्वार से निकल, हिमालय मे जा, ऋषि-प्रव्रज्या ले, ध्यान अभिज्ञा प्राप्त कर, जगल के फल-मूल खाता हुआ रहने लगा। राजकुमार ने भी उसके चले जाने पर पिता को मार बहुत ऐश्वर्य्य का अनुभव किया। यह सुन कि सकिच्च-कुमार ने ऋषि-प्रव्रज्या ली है, बहुत से कुल-पुत्रो ने उसके पास जा प्रव्रज्या ली। वह अनेक ऋषि-गणों के साथ वहाँ रहने लगा गया—सभी समापत्ति-लाभी ही थे।

पिता को मारने के बाद राजा ने थोडे ही समय तक राज-सुख का अनुभव किया। उसकेबाद भयाकुल हो, चित्त की शान्ति न पा वह ऐसा हो गया जैसे नरक गामी कर्म किया हो। वह बोधिसत्व को याद कर सोचने लगा—"मेरे मित्र ने मुझे मना किया कि पितृघात कर्म महान पातक है। जब उसने देखा कि मैं उसकी बात नही सुनता,

तो अपने आप को निर्दोष रख वह कहीं चला गया। यदि वह यहाँ रहता तो मुझे पितृ-घात कर्म न करने देता। वह ही मेरे भय को दूर कर सकता है। किन्तु वह इस समय कहाँ विचरता है? यदि उसके निवासस्थान का पता लगे तो उसे बुलवा लें। कौन है जो मुझे उसके निवासस्थान का पता दे?" उसके बाद से वह अन्तः -पुर में तथा राजसभा मे बोधिसत्व के ही गुण गाता। इस प्रकार समय बीतने पर बोधिसत्व ने जब यह देखा कि राजा मुझे याद करता है, तो उसने सोचा कि मुझे वहाँ जाकर धर्मोपदेश दे, उसे निर्भय करके आना चाहिए। पचास वर्ष पर्य्यन्त हिमालय मे रहने के बाद, पाँच सौ तपस्वियों को साथ ले, दाय-पार्श्व नाम के उद्यान में उतर, ऋषि-गणों के बीच शिला पर बैठा। उद्यान-पाल ने उसे देख पूछा—"भन्ते! गणशास्ता का क्या नाम है?" जब उसने सुना कि "संकिच्च-पण्डित" है, तो स्वय भी पहचानकर निवेदन किया, "भन्ते! जब तक मै राजा को लेकर आऊँ, तब तक यही रहे। हमारा राजा तुम्हे देखने की इच्छा करता है।" यह कह कर शीघ्रता पूर्वक राज-कुल पहुंच, राजा को उसके आगमन की सूचना दी। राजा ने उसके पास पहुँच, करने योग्य सेवा कर, प्रश्न पूछा।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

**दिस्वा निसिन्नं राजानं ब्रह्मदत्तं रथेसभं**
**अथस्स पटिवेदेसि यस्ससि अनुकम्पको ॥१॥**
**संकिच्चायं अनुप्पत्तो इसीनं साधुसम्मतो,**
**तरमानरूपो निय्याहि खिप्पं पस्स महेसिनं ॥२॥**
**ततो च राजा तरमानो पुत्तं आरुय्ह संदनं**
**मित्तामच्चपरिब्यूळहो अगमासि रथेसभो ॥३॥**
**निक्खिप्प पंच ककुधानि कासीनं रट्ठवड्ढनो**
**वाळवीजीतं उण्हीसं, खग्गं छत्तं उपाहनं ॥४॥**
**ओरुय्ह राजा यानम्हा ठपयित्वा पटिच्छदं**
**आसीनं दायपस्सस्मिं संकिच्चं उपसंकमि ॥५॥**
**उपसंकमित्वा सो राजा सम्मोदि इसिना सह,**
**तं कथं वीतिसारेत्वा एकमन्तं उपाविसी॥६॥**

**एकमंतं निसिन्नो व यथाकालं अमञ्ञथ**
**ततो पापानि कम्मानि पुच्छितुं पच्चपज्जथ ॥७॥**
**इसिं पुच्छामि संकिच्चं इसीन साधुसम्मतं**
**आसीनं दायपस्सस्मिं इसिसंघपुरक्खतं ॥८॥**
**कं गतिं पेच्च गच्छन्ति नरा धम्मातिचारिनो,**
**अतिचिण्णो मया धम्मो, तं मे अक्खाहि पुच्छितो ॥९॥**

[रथेसभ ब्रह्मदत्त राजा को बैठे देख कर उद्यान-पाल ने कहा :—"राजन ! जिस पर तेरी अनुकम्पा थी, वह ऋषियों द्वारा प्रशंसित संकिच्च आया है। शीघ्रता से आकर, जल्दी से, महर्षि के दर्शन कर" ॥१-२॥ तब राजा जुते हुए रथ पर चढ़, मित्र अमात्यों को साथ ले, शीघ्र ही गया ॥ ३ ॥ काशी-नरेश ने वालीजनि, उष्णीष, खड्ग, छत्र तथा उपाहन—इन पाँचो राजकीय चिह्नो को छोड़ा और यान से उतर तथा (राजकीय-) पोशाक को (भण्डारी को) सौंप दायपार्श्व नाम के उद्यान मे बैठे हुए संकिच्च के पास पहुँचा ॥४-५॥ समीप पहुँच कर उस राजा ने ऋषी के साथ शिष्ठ बात चीत की। और पहली बात को भूलकर वह एक ओर समीप बैठा ॥ ६ ॥ एक ओर बैठ कर उसने योग्य समय देखा और पाप-कर्मों के बारे मे पूछने के लिए सज्जित हुआ ॥७॥ वह बोला "ऋषियो द्वारा प्रशंसित, ऋषि-गणो मे प्रमुख, दायपार्श्व (उद्यान) मे बैठे संकिच्च ऋषि से मै पूछता हूँ। धर्म-विरोधी कार्य्य करने वाले आदमियो की क्या गति होती है ? मैने धर्म का अतिचार किया है। इसलिये मै पूछता हूँ। मुझे बताओ" ॥ ८-९ ॥]

शास्ता ने इस अर्थ को प्रकट करते हुए कहा :—

**इसि अवच संकिच्चो कासीनं रट्ठवड्ढनं**
**आसीनं दायपस्सस्मिं, महाराज सुणोहि मे ॥१०॥**
**उप्पथेन वजन्तस्स यो मग्गं अनुसासति**
**तस्स वे वचनं कयिरा नास्स मग्गेय्य कण्टको ॥११॥**
**अधम्मं पटिपन्नस्स यो धम्मं अनुसासति**
**तस्स वे वचनं कयिरा न सो गच्छेय्य दुग्गतिं ॥१२॥**

[संकिच्च ऋषी ने दायपार्श्व मे बैठे काशी-नरेश को कहा "महाराज ! मेरी बात सुने। जो आदमी कुमार्ग से जाने वाले को मार्ग बताये, उस मार्ग बताने वाले की बात माननी चाहिये। बात मानने वाले को कांटे नही लगते। उसी प्रकार अधर्म के रास्ते चलने वाले को जो धर्म की बात बताये, उस धर्म की वात बताने वाले का कहना करना चाहिए। वैसा करने वाला दुर्गति को प्राप्त नही होता।" ॥ १०—१२॥]

इस प्रकार उसे उपदेश दे, और भी धर्मोपदश देते हुए कहा—

**धम्मो पथो महाराज अधम्मो पन उप्पथो,**
**अधम्मो निरयं नेति धम्मो पापेति सुग्गतिं ॥१३॥**
**अधम्मचारिनो राजा नरा विसमजीविनो**
**यं गतिं पेच्च गच्छन्ति निरये ते सुणोहि मे ॥१४॥**
**सञ्जीवो काळसुत्तो च संघातो द्वे च रोरुवा**
**अथापरो महावीचि तपनो च पतापनो ॥१५॥**
**इच्चेते अट्ठ निरया अक्खाता दुरतिक्कमा**
**आकिण्णा लुद्दकम्मेहि पच्चेका सोळसुस्सदा ॥१६॥**
**कदरियातपना घोरा अच्चिमन्ता महब्भया**
**लोमहंसनरूपा च सभेमा पटिभया दुखा ॥१७॥**
**चतुकण्णा चतुद्वारा विभत्ता भागसो मिता**
**अयोपाकारपरियन्ता अयसा पटिकुज्जिता ॥१८॥**
**तेसं अयोमया भूमि जलिता तेजसा युता,**
**समन्ता योजनसतं फुटा तिट्ठन्ति सब्बदा ॥१९॥**
**एते पतन्ति निरये उद्धपादा अवंसिरा**
**इसीनं अविवत्तारो समञ्ञतानं तपस्सिनं ॥२०॥**
**ते भूनहनो पच्चन्ति मच्छाभोळा कता यथा**
**संवच्छरे असंखेय्ये नरा किब्बिसकारिनो ॥२१॥**
**दह्यमानेन गत्तेन निच्चं सन्तरबाहिरं**
**निरया नाधिगच्छन्ति द्वारं निक्खमनेसिनो ॥२२॥**

पुरत्थिमेन धावन्ति ततो धावन्ति पच्छतो,
उत्तरेनपि धावन्ति ततो धावन्ति दक्खिणं,
यं यं द्वारं गच्छन्ति तं तं देवा पिथीयरे ॥२३॥
बहूनि वस्ससहस्सानि जना निरयवासिनो
बाहा पग्गय्ह कन्दन्ति पत्वा दुक्खं अनप्पकं ॥२४॥
आसीविसं व कुपितं तेजसिं दुरतिक्कमं
न साधुरूपे आसीदे न सञ्ञतानं तपस्सिनं ॥२५॥
अतिकायो महिस्सासो अज्जुनो केककाधिपो
सहस्सबाहु उच्छिन्नो इसिं आसज्ज गोतमं ॥२६॥
अरजं रजसा वच्छं किसं अवकिरिय दण्डकी
तालो व मूलतो छिन्नो, स राजा विभवं गतो ॥२७॥
उपहच्च मनं मेज्झो मातंगस्मिं यसस्सिने
सपारिसज्जो उच्छिन्नो, मेज्झारञ्ञं तदा अहु ॥२८॥
कण्हदीपायन आसज्ज इसिं अन्धकवेण्हुयो
अञ्ञमञ्ञं मुसले हन्त्वा सम्पत्ता यमसादनं ॥२९॥
अथायं इसिना सत्तो अन्तलिक्खचरो पुरे
पावेक्खि पठविं चेच्चो हीनत्तो पत्तपरियायं ॥३०॥
तस्मा हि छन्दागमनं नप्पसंसन्ति पण्डिता,
अदुट्ठचित्तो भासेय्य गिरं सच्चुपसंहितं ॥३१॥
मनसा चे पदुट्ठेन यो नरो पेक्खते मुनिं
विञ्ञाचरण सम्पन्नं गन्ता सो निरयं अधो ॥३२॥
ये बद्धे परिभासेन्ति फरुसूपक्कमा जना
अन पच्चा अदायादा तालावत्थु भवन्ति ते ॥३३॥
यो च पब्बजितं हन्ति कतकिच्चे महेसिनं
स काळसुत्ते निरये चिररत्ताय पच्चति ॥३४॥
यो च राजा अधम्मट्ठो रट्ठविद्धंसनो मगो
तापयित्वान जनपदं तपने पेच्च पच्चति ॥३५॥

सो च वस्स सहस्सानि सतं दिब्यानि पच्चति
अच्चिसंघपरेतो सो दुक्खं वेदेति वेदनं ॥३६॥
तस्स अग्गिसिखा काया निच्छरन्ति पभस्सरा
तेजोभक्खस्स गत्तानि लोमग्गेहि नखेहि च ॥३७॥
डह्यमानेन गत्तेन निच्चं सन्तरबाहिरं
दुक्खाभितुन्नो नदति नागो तुत्तद्दितो यथा ॥३८॥
यो लोभा पितरं हन्ति दोसा वा पुरिसाधमो
स काळसुत्ते निरये चिररत्तानि पच्चति ॥३९॥
स तादिसो पच्चति लोहकुम्भिया
पक्कं च सत्तीहि हनन्ति निच्चं
अन्धं करित्वा मुत्तकरीसभक्खं
खारे निमुज्जन्ति तथाविधं नरं ॥४०॥
तत्तं पकट्ठितं अयोगुलञ्च
दीघे च फाले चिररत्ततापिते
विक्खम्भं आदाय विभज्ज रज्जुहि
वत्ते मुखे संसवयन्ति रक्खसा ॥४१॥
सामा च सोणा च बला च गिज्झा
काकोलसंघा च दिजा अयोमुखा
संगम्म खादन्ति विप्फन्दमानं
जिव्हं विभज्ज विघासं सलोहितं ॥४२॥
तं दडढकोळं परिभिन्नगत्तं
निप्पोथयन्ता [अनु] विचरन्ति रक्खसा,
रतीहिनेसं, दुखिनो 'यन' ईतरे
एतादिसस्मिं निरये वसन्ति
ये केचि लोके इध पेत्तिघातिनो ॥४३॥
पुत्तो च मातरं हन्त्वा इतो गन्त्वा यमक्खयं
भुसं आपज्जते दुक्खं अत्तकम्मफलूपगो ॥४४॥

अमनुस्सा अतिबला हन्तारं जनयन्तिया
अयोमयेहि कालेहि पीळयन्ति पुनप्पुनं ॥४५॥
तं पस्सुतं सका गन्ता रुहिरं अत्तसम्भवं
तम्बलोहविलीनं व तत्तं पायेन्ति मत्तिघं ॥४६॥
जिघञ्ञं कुणपं पूति दुग्गन्धं गूथकद्दमं
पुब्बलोहितसंकासं रहदं ओगय्ह तिट्ठति ॥४७॥
तं एनं किमयो तत्थ अतिकाया अयोमुखा
छविं छेत्वान खादन्ति पगिद्धा मंसलोहिते ॥४८॥
सो च ते निरयं पत्तो निमुग्गो सत्तपोरिसं
पूतीनं कुणपं वाति समन्ता सतयोजनं ॥४९॥
चक्खुमापी हि चक्खुहि तेन गन्धेन जीयति,
एतादिसं ब्रह्मदत्त मत्तिघो लभते दुखं ॥५०॥
खुरधारं अनुक्कम्म तिक्खं दुरभिसम्भवं
पतन्ति गब्भपातिनियो दुग्गं वेतरणिं नदिं ॥५१॥
अयोमया सिम्बलियो सोळसंगुलकण्टका
दुभतो-म-अभिलम्बन्ति दुग्गं वेतरणिं नदिं ॥५२॥
ते अच्चिमन्तो तिट्ठन्ति अग्गिक्खन्धाव आरका,
आदित्ता जातवेदेन उद्धं योजनं उग्गता ॥५३॥
एते सजन्ति निरये तत्ते तिखिणकण्टके
नारियो च अतिचारिनियो नरा च परदारगू ॥५४॥
ते पतन्ति अधक्खन्धा विवत्ता विहता पुथू,
सयन्ति विनिविद्धङ्गा, दीघं जग्गन्ति संवरिं ॥५५॥
ततो रत्या विवसने महतिं पब्बतूपमं
लोहकुम्भिं पवज्जन्ति तत्तं अग्गिसमूदकं ॥५६॥
एवं दिवा च रत्तो च दुस्सीला मोहपारुता
अनुभोन्ति सकं कम्मं पुब्बे दुक्कतं अत्तनो ॥५७॥

या च भरिया धनक्कीता सामिकं अतिमञ्ञति
सस्सुं वा ससुरं वापि जेट्ठं वापि ननन्दरं
तस्सा वंकेन जिह्वग्गं निब्बहन्ति सबन्धनं ॥५८॥
स ब्याममत्तं किमिनं जिह्वं पस्सति अत्तनि,
विञापेतुं न सक्कोति, तपने पेच्च पच्चति ॥५९॥
ओरभिका सूकरिका मच्छिका मिगबन्धिका
चोरा गोघातका लुद्दा अवण्णे वण्णकारका ॥६०॥
सत्तीहि लोहकूटेहि नेत्तिंसेहि उसूहि च
हञ्ञमाना खारनदिं पपतन्ति अवंसिरा ॥६१॥
सायं पातो कूटकारी अयोकुटेहि हञ्ञति
ततो वंतं दुरत्तानं परेसं भुञ्जते सदा ॥६२॥
धंका भरंडका गिज्झा काकोळा च अयोमुखा
विप्फन्दमानं खादन्ति नरं किब्बिसकारिनं ॥६३॥
ये मिगेन मिगं हन्ति पक्खिं वा पन पक्खिना
असन्तो रजसा छन्ना गन्ता ते निरयं अधो ॥६४॥

[महाराज। धर्म तो पथ है, अधर्म कुपथ है। अधर्म नरक मे ले जाता है। धर्म सुगति लाभ कराता है ॥ १३ ॥ हे राजन् ! जिस गति को अधार्मिक जीविका चलाने वाले नर मरकर प्राप्त होते है, वह मुझ से सुन ॥ १४ ॥ सञ्जीव, कालपुत्त, सघात, ज्वाल-रोरुव तथा धूम्र-रोरुव, महावीची, तपन और पतपन—ये आठ अतिक्रमण करने मे अति दुष्कर नरक कहे गये है। ये रौद्रकर्मियो द्वारा भरे है। प्रत्येक नरक के साथ सोलह सोलह उस्सद नरक है (८+१२८ = १३६)॥१५-१६॥ ये सब पापियो को तपाने वाले हैं। घोर हैं। अचिमान हैं। महाभयानक है। रोंगट खड़े कर देने वाले है। भयानक है। त्रास पैदा करने वाले हैं। दुःखदायी है। चतुष्कोण है। चारद्वारों वाले हैं। विभक्त हैं। हिस्से है। नये है। लोहे की दीवार से घिरे हैं। लोहे से ढके हैं॥ १७-१८ ॥ उनकी लोहे की भूमि ज्वालाओ से चारों ओर सौ-सौ योजन तक सर्वदा स्पर्शित होकर जलती रहती है। सयत, तपस्वी, ऋषियो को कठोर वचन बोलने वाले सिर नीचे और

पैर ऊपर करके नरक में गिरते है ॥ १९-२० ॥ वे पापी भ्रूण-हत्यारे असख्य वर्षों तक मछलियो की तरह नरक में पकते हैं॥ २१ ॥ जलता हुआ शरीर लेकर वे नरक से बाहर जाना चाहते है, किन्तु उन्हे द्वार ही नही मिलता॥ २२ ॥ वे पूर्व द्वार की ओर दौडते है, पश्चिम द्वार की ओर दौड़ते है, उत्तर द्वार की ओर दौडते है और दक्षिण द्वार की ओर दौडते हैं—वे जिस जिस द्वार की ओर दौडते है, देवता उसी को बन्द कर देते है ॥ २३ ॥ नरक मे रहने वाले लोग महान् दु ख प्राप्त कर बहुत हजार वर्ष तक बाहों मे सिर देकर रोते है॥ २४॥ अतिक्रमण करने मे दुष्कर, तेजस्वी, कुपित, विषैले सर्प के समान जो सयत तपस्वी है, वैसे साधुरूपों को कठोर-वचनों से कष्ट न दें ॥ २५ ॥ विशाल-काय, धनुषधारी सहस्रबाहू, केकक-नरेश अर्जुन ऋषि गौतम को प्राप्त हो नष्ट हुआ॥ २६ ॥ रज-विरहित, कृष, वत्स-गोत्रीय (?) की अवमानना करने से राजा दण्डकी ताड वृक्ष के समूल नष्ट हो जाने की तरह नाश को प्राप्त हुआ[1] ॥ २७ ॥ मेज्झ ने यशस्वी मातङ्ग के प्रति मन मैला किया। वह परिषद् सहित नष्ट हो गया। वहाँ मेज्झारण्य हो गया[2] ॥ २८ ॥ अन्धक वेण्हु कृष्ण द्वीपायन ऋषि को प्राप्त हुए तो परस्पर एक दूसरे की मूसलो से हत्या कर यम लोक सिधारे[3] ॥ २९ ॥ आकाशगामी चेतिय राजा ऋषि द्वारा अभिशप्त होने के कारण मरकर पृथ्वी मे प्रविष्ट हुआ[4] ॥ ३० ॥ इसीलिये पण्डित लोग पक्षपात की प्रशसा नही करते। आदमी को चाहिए कि वह द्वेष रहित हो सच्ची बात कहे॥ ३१ ॥ जो आदमी विद्याचरण मुनि को दुष्ट मन से देखता है, वह नीचे नरक लोक मे जाता है ॥ ३२ ॥ जो आदमी कठोर वचनों से वृद्धों का मजाक उड़ाते हैं, वे सन्तान-रहित हो जाते है, वे दायाद-रहित हो जाते है और वे ताड़ वृक्ष की तरह समूल नष्ट हो जाते है ॥ ३३॥ जो कृतकृत्य, महर्षी, प्रव्रजित की हिंसा करते हैं, वह दीर्घकाल तक काल-सुत्त नरक में

---

[1] देखो सरभंग जातक (५२२)

[2] देखो मातंग जातक (४९७)

[3] देखो घट जातक (३५५)

[4] देखो चेतिय जातक (४२२)

पकते हैं ॥ ३४ ॥ जो मूर्ख अधार्मिक राजा राष्ट्र का विनाश करता हुआ, जन-पद को त्रास देता है, वह मरने पर तपन नामक नरक मे तपता है ॥ ३५ ॥ वह सौ हजार दिव्य वर्षों तक नरक में पकता है। वह ज्वालाओं से घिरा हुआ महान् दुःख अनुभव करता है ॥ ३५ ॥ उसकी अग्निमय काया से ज्वालायें निकलती हैं। उसका शरीर अग्नि-भक्ष सा होता है। उसके रोम रोम से तथा नखो से ज्वाला निकलती है ॥ ३७ ॥ भीतर बाहर जलते हुए शरीर से वह दुःखाभिभूत होकर वैसे ही चिल्लाता है जैसे अकुस से मारा जाता हुआ हाथी ॥ ३८ ॥ जो नीच आदमी लोभ अथवा द्वेष के वशीभूत हो पिता की हत्या करता है वह दीर्घकाल तक काल-सुत्त नरक मे पकता है ॥ ३९ ॥ ऐसा पुरुष लोह-कुम्भी पाक नरक मे पकता है। फिर उसकी चमडी उधेड कर उसे शक्ति आयुध से चूर्ण-विचूर्ण किया जाता है। फिर उसे अन्धा करके और उसके मुँह मे मल-मूत्र भरकर उसे क्षार मे डुबो दिया जाता है ॥ ४० ॥ तप्त-मल-मूत्र तथा लोहे का गोला लेकर उसके मुँह मे डालते हैं। जब वह मुँह बन्द करता है तो चिरकाल तक तप्त किये गये फालो से मुह खोल-कर और उसे रस्सियो से कसकर, नरक पाल लोग उसे खुले मुह मे तप्त मल-मूत्र तथा लोहे के गोले डालते हैं ॥ ४१ ॥ श्याम-वर्ण कुत्ते, चितकबरे गीध, कौवे, लोह-मुख पक्षी इकट्ठे होकर उस तड़पते हुए सारक्त मनुष्य को जीभ से बखेर बखेर कर, भुक्खडो की तरह खाते हैं ॥४२ ॥ उस जलकर कोयला हुए मनुष्य का, उस टुकडे टुकडे शरीर वाले का, नरक-पाल लोग कचूमर निकालते घूमते हैं। यह उनको क्रीडा मात्र है। दूसरे नरक-गामियों को दुःख होता है। पितृघात करने वाले लोग इस प्रकार के नरक मे रहते है ॥४३॥ मातृ-हत्या करने वाला मनुष्य यहा से यमलोक जाकर, अपने कर्म के फलस्वरूप बहुत दुःख भोगता है ॥ ४४ ॥ अति बलवान नरक-पाल मातृ हत्या करने वाले को लोहे के फलो मे बार बार पीडते है ॥ ४५ ॥ उसके अपने शरीर से निकले हुए गर्म रक्त को उसी मातृ-हत्यारे को पिलाते है ॥४६॥ वह घृणित, सड़े हुए, बदबूदार, गूंह के कीचड वाले, रक्त मिश्रित तालाब मे ठहरता है ॥ ४७ ॥ वहाँ बडी बडी अयो-मुख चीटियाँ उसकी चमडी छेद कर खाती है, जो माँस तथा रक्त की अत्यन्त लोभी है ॥४८॥ वह उस सौ पुरुसा भर गहरे नरक मे डूबता है । उसके चारों ओर सौ योजन तक दुर्गन्ध फैलती है ॥४९॥

उस दुर्गन्ध से आँख वाले की आँखे भी जाती रहती हैं ? हे ब्रह्मदत्त ! मातृ हत्यारे को इस प्रकार का दुःख मिलता है ॥५०॥ गर्भपात करने वाली स्त्रियाँ खुर-धार नरक को पार कर तेज, दुस्तर वेतरणी नदी मे गिरती है॥ ५१ ॥ वहाँ बेतरणी के तट पर सोलह अगुल लम्बे कांटो वाली शाखाओ वाले पेड है। वे उन शाखाओं को पकडती है॥ ५२ ॥ वे दूर से ही अग्नि-स्कन्ध के समान अर्चि-मान होती है। वे ऊपर योजन तक अग्नि से प्रज्वलित होती है॥५३॥ अतिचार करने वाली स्त्रियाँ तथा पर-नारी गमन करने वाले पुरुष तीखे काटो वाले नरक मे गिरते है॥ ५४॥ वे नीचे मुँह होकर गिरते है और अग-प्रत्यग विधे होकर रहते है। उन्हे रात को नीद नही आती॥ ५५॥ तब रात के बीतने पर महान् पर्वत समान, अग्नि-मुख लोह-कुम्भि-पाक नरक मे जाते है॥ ५६॥ इस प्रकार मोह-ग्रस्त दुश्शील प्राणी अपने पूर्वकृत दुष्कर्म को भोगते हुए रात-दिन दुख का अनुभव करते है॥ ५७॥ जो धन-क्रीत पत्नियाँ, स्वामी, ससुर, जेठ अथवा अपनी ननद के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन नही करती, उनकी जिह्वा टेढी-सण्डासी से खीच ली जाती है॥ ५८॥ वे अपने मुँह को कृमियो से भरा देखती है। बोलने की इच्छा रखने पर भी बोल नही सकती है। वे तपन नरक मे पकती है॥५९॥ भेडो को मारने वाले, सूअरो को मारने वाले, मछलियो को मारने वाले, हिरनो को मारने वाले, चोर, गोओ के हत्यारे, रौद्र, निन्दनीय की प्रशसा करने वाले, शक्तियो से, लोहे के हथौडो से, तलवारो से तथा बाणो से मारे जाकर सिर नीचे पैर ऊपर क्षार नदी मे गिरते है॥ ६०-६१ ॥ ठगी करने वाले साँझ- सबेरे लोहे के हथौडे से पीटे जाते है और फिर दूसरे दुर्गति प्राप्त हुओं का वमन किया हुआ खाना होता है॥ ६२॥ कोवे, शृगाल, गीध तथा लोह-मुख चीले तडपते हुए पापी आदमी को खाती है॥ ६३॥ जो पशुओ की सहायता से पशुओ का तथा पक्षियो की सहायता से पक्षियो का शिकार खेलते है, वे धूल से ढके हुए असत्पुरुष नीचे नरक मे जाने वाले होते है॥ ६४॥]

बोधिसत्व ने इतने नरक दिखा अब लोक को प्रकट कर राजा को देव-लोक दिखाते हुए कहा—

**सन्तो च उद्धं गच्छन्ति सुचिण्णेन इध कम्मना**
**सुचिण्णस्स फलं पस्स, सेन्ददेवा सब्रह्मका ॥६५॥**
**तं तं ब्रूमि महाराज धम्मं रट्ठपती चर**
**तथा तथा राज चराहि धम्मं**
**यथा तं सुचिण्णं नानुतप्पेय्य पेच्च ॥६६॥**

[सुकर्म करने से यहा सत्पुरुष लोक ऊपर जाते है । सुकर्म का फल देखो इन्द्र तथा ब्रह्मा सहित दव लोक ॥ ६५ ॥ महाराज ! यह यह कहता हूँ। हे राष्ट्रपति धर्मानुसार चल। हे राजन् ! वैसे वैसे धर्माचरण कर जैसे मरने पर पीछे अनुताप न दे ॥ ६६ ॥]

उसने बोधिसत्व का धर्मोपदेश सुनकर आश्वासन लाभ किया। बोधिसत्व भी कुछ समय वहा रह स्वकीय निवास-स्थान को हो गये।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला 'भिक्षुओ ! न केवल अभी, मेरे द्वारा यह पहले भी आश्वस्त हुआ ही है 'कह जातक का मेल बैठाया। तब राजा अजातशत्रु था। ऋषिगण बुद्ध-परिषद्। संकिच्च-पण्डित तो मै ही था।

# उन्नीसवाँ परिच्छेद

## सत्तरवाँ वर्ग

## ५३१. कुस जातक

"इदं ते रट्ठं..."यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय उद्विग्न-चित्त भिक्षु के बारे मे कही।

### क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्ती-वासी कुल-पुत्र (बुद्ध-) शासन मे बडी श्रद्धा के साथ प्रव्रजित हुआ था। एक दिन श्रावस्ती मे भिक्षाटन करते हुए, एक अलकृत स्त्री को 'शुभ' दृष्टि से देख, रागाभिभूत हो, अनिच्छुक-मन हो रहने लगा। उसके बाल और नाखून लम्बे हो गये। शरीर कृष-वर्ण हो गया। चीवर मैला पड गया। वह पाण्डु-वर्ण हो गया। गात्र धमनियो से जा लगा। देव-लोक से च्युत होने वाले प्राणियो के पाँच-पूर्व-निमित्त दिखाई देते है। मालाये कुम्हला जाती है। वस्त्र मलिन हो जाते है। शरीर दुर्वर्ण हो जाता है। दोनों काछों से पसीना बहने लगता है। देवता का देवासन पर मन नही लगता। इसी प्रकार बुद्ध-शासन से च्युत होने वाले उद्विग्न-चित्त भिक्षु के पाँच पूर्व-लक्षण दिखाई देते है; श्रद्धा रूपी पुष्प मलिन पड़ जाते है, शील रूपी वस्त्र मैला हो जाता है, निस्तेजस्विता तथा अपयश के कारण दुर्वर्ण हो जाता है, रागादि क्लेश रूपी पसीना छूटता है, तथा आरण्य, वृक्ष की क्षाया, एकान्त-वास आदि मे मन नही लगता। उसके भी यह लक्षण प्रगट हुए। उसे शास्ता के पास ले जाया गया और दिखाया गया, "भन्ते! यह उद्विग्न-चित्त है।" शास्ता ने "क्या सचमुच ?"पूछकर"हाँ सचमुच" कहने पर"भिक्षु! राग के वशीभूत न हो स्त्रियाँ पाप हैं, उनके प्रति पैदा हुई आसक्ति को जीत, बुद्ध-शासन में मन लगा,

स्त्रियों के प्रति आसक्त हो जाने के कारण पुराने समय मे तेजस्वी पण्डित भी विनाश को प्राप्त हुए" कह पूर्व-जन्म की कथा कही ।

## ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे मल्ल राष्ट्र मे कुसावती राजधानी मे ओक्काक नाम का राजा धर्मानुसार राज्य करता था। उसकी सोलह हजार स्त्रियो मे ज्येष्ठ शीलवती नामक पटरानी थी। उसे न लडका होता, न लडकी। नगर तथा राष्ट्रके अधिवासी राज-द्वार पर इकट्ठे चिल्लाने लगे" "राष्ट्र का नाश हो जायगा, विनाश हो जायगा।" राजा ने झरोखा खुलवाकर पूछा, "मेरे राज्यमे अधर्मकारी नही है, क्यो चिल्लाते हो?" "देव! सचमुच अधर्मकारी नही है, किन्तु वंश की रक्षा करने वाला पुत्र भी नही है, अन्य कोई राज्य पर अधिकार कर राष्ट्र को चौपट कर देगा। इसलिए धर्मानुकूल राज्य करने मे समर्थ पुत्र की कामना करे।"

"पुत्र की कामना करता हुआ क्या करू?"

"पहले सप्ताह भर छोटी नटी को धर्म-नटी बना कर विदा करे। यदि पुत्र हो जाय, तो अच्छा। अन्यथा मध्यम नटी को धर्म-नटी बनाकर विदा करे। इसके बाद ज्येष्ठ-नटी को विदा करे। इतनी स्त्रियो मे कोई न कोई पुण्यवान अवश्य पुत्र लाभ करेगी।"

राजा ने उसके कथनानुसार वैसाकर, सप्ताह सप्ताह भर सुख-पूर्वक रमण कर लौट आने पर पूछा,"क्या पुत्र लाभ हुआ?" सभी ने उत्तर दिया—"देव ! नही।"

राजा निराश हो गया कि मुझे पुत्र-लाभ नही होगा। नागरिको ने फिर वैसे ही शोर मचाया। राजा बोला, "क्यो शोर मचाते हो। मैने तुम्हारे कहने के मुताबिक नटियो को भेजा, एक को भी पुत्र-लाभ नही हुआ। अब क्या करू?"

"देव! ये दुश्शील होगी। अपुण्यवती। इनका इतना पुण्य नही है कि पुत्र लाभ कर सके। इनसे पुत्र-लाभ न होने पर निराश न हो। पटरानी शीलवती शील-सम्पन्न है। उसे भेजे। उससे पुत्र-लाभ होगा।"

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और मुनादी करा दी कि आज से सातवे दिन राजा पटरानी को "धर्म-नटी" बनाकर बिदा करेगा। लोग इकट्ठे हो।" सातवे दिन

देवी को अलंकृत कर महल से उतार कर बिदा कर दिया गया। उसके शील-तेजसे शक्र-भवन गरम हो गया। शक्र ने विचार किया कि क्या कारण है ? उसे पता लगा कि देवी को पुत्र की कामना है। उसने निश्चय किया कि इसे पुत्र देना चाहिये। फिर उसने इस बात का विचार करते हुए कि इसके योग्य देव-लोक में कोई है अथवा नही, बोधिसत्व को देखा। बोधिसत्व उस समय त्रयोत्रिंश देव-लोक मे आयु समाप्त कर, उससे भी ऊपर के देव-लोक मे जन्म ग्रहण करने की इच्छा कर रहे थे। शक्र ने उसके विमान-द्वार पर पहुच, उसे कहा—"मित्र ! तुझे मनुष्य लोक जाकर ओक्काक राजा की पटरानी के गर्भ में प्रवेश करना है।"उसकी स्वीकृत ले, शक्र ने एक दूसरे देव-पुत्र को भी कहा—"तुझे भी उसीका पुत्र बनना है।" फिर उस देवी के शील की रक्षा करने के लिए वह बूढे-ब्राह्मण का भेष बना उस राजा के द्वार पर पहुंचा। जनता भी नहाकर, अलकृत हो कर' देवी को ग्रहण करने के लिए' राज-द्वार पर इकट्ठी हुई। शक्र को देखकर सभी परिहास करने लगे—"तू क्यो आया है ?" शक्र ने उत्तर दिया—"निन्दा क्यो करते हो! यद्यपि शरीर बूढा हो गया है, किन्तु राग शान्त नही हुआ है। यदि शीलवती मिलेगी, तो उसे ले जाने के लिए आया हूँ।" वह अपने प्रताप से सब के आगे जाकर खडा हुआ। उसकी तेजस्विता के कारण कोई उससे आगे नही हो सका। सभी अलकारो से अलकृत हो, देवी ज्यो ही घर से निकली, वह उसी समय उसे हाथ से पकड कर ले गया। उसे लोग 'रुक, रुक' करके निन्दा करने लगे। "अरे देखो, बूढा ब्राह्मण इस प्रकार की रूपवान् देवी को लिए जा रहा है, उचित-अनुचित कुछ नही जानता।" देवी भी दुखी होती, लज्जित होती, घृणा करती कि बूढा मुझे लिए जा रहा है। राजा ने भी जब खिडकी मे खडे हो कर देखा कि देवी को कौन लिए जा रहा है, तो असन्तुष्ट हुआ। शक्र उसे ले नगर-द्वार से निकला और द्वार के समीप एक घर बनाया—खुले-द्वार वाला ओर लकडी के फरश वाला। देवी ने पूछा—"यही घर है क्या ?" उसने "भद्रे ! हाँ। पहले मै अकेला था। अब हम दो हो गए। मै भिक्षाटन कर के चावल आदि लाता हूँ। तू इस काठ की शैय्या पर लेट" कह कोमल हाथ से उसका स्पर्श किया। उसने उसे दिव्य-स्पर्श से लिटा दिया। दिव्य-स्पर्श से वह बेहोश हो गई। शक्र उसे अपने प्रभाव से त्रयोत्रिंश भवन ले गया ओर उसने उसे अलकृत विमान मे

दिव्य-शैय्या पर लिटाया। सातवे दिन उसे होश आई तो उस सम्पत्ति को देख कर देवी ने समझा कि वह ब्राह्मण मनुष्य नही होगा, वह शक्र होगा। शक्र भी उस समय पारिच्छत-वृक्ष के नीचे, दिव्य-नटियो से घिरा हुआ बैठा था। वह शयनासन से उठ उसके पास पहुँचा और प्रणाम कर एक ओर खडा हुआ। शक्र बोला—

"देवी! तुझे वर देता हूँ। माग।"

"तो देव! मुझे पुत्र दे।"

"देवी! एक नही, मै तुझे दो पुत्र दूगा। उनमे से एक प्रज्ञावान होगा, किन्तु रूपवान नही, दूसरा रूपवान होगा, किन्तु प्रज्ञावान् नही। तुझे पहले कौन चाहिए?"

"देव! प्रज्ञावान्।"

उसने 'अच्छा' कहा और उसे कुश-तृण, दिव्य-वस्त्र, दिव्य-चन्दन, पारिच्छत-पुष्प और कोकनद नाम की वीणा देकर, ले जाकर, राजा के शयनागार मे पहुचा दिया ओर वहाँ राजा के साथ एक शैय्या पर लिटा, उसकी नाभी को अगूठे से छुआ। उसी क्षण बोधिसत्व ने उसकी कोख मे जन्म ग्रहण किया। शक्र अपने निवास-स्थान चला गया। पण्डित देवी जान गई कि उसे गर्भ ठहर गया है।

राजा जागा तो उसने पूछा, तुझे कौन ले गया था?

"देव! शक्र।"

"मैंने प्रत्यक्ष देखा कि एक बूढा ब्राह्मण तुझे ले गया था। मुझे किस लिए धोखा देती है?"

"देव! विश्वास करे। मुझे शक्र ही देव-लोक ले गया था।"

"देवी! विश्वास नही करता हूँ।"

उसने उसे शक्र का दिया हुआ कुश-तृण दिखा कर कहा कि देव विश्वास करें। राजा बोला—"मुझे विश्वास नही होता। कुश-तृण कही से भी मिल सकता है।" उसने उसे दिव्य-वस्त्र दिखाये। राजा ने उन्हे देख विश्वास किया ओर पूछा। "भद्रे! शक्र ही तुझे ले गया हो, क्या पुत्र-लाभ हुआ?" "महाराज! हुआ। मुझे गर्भ ठहर गया है।" उसने सन्तुष्ट हो उसे सभी गर्भिणी की आवश्यकतायें दी। दस महीने बीतने पर उसने पुत्र को जन्म दिया। उसका कोई और दूसरा नाम न रख कुश-तृण ह, नाम रखा गया।

जब कुशकुमार पैरों चलने लग गया तो दूसरे देव-पुत्र ने भी देवी की कोख में जन्म ग्रहण किया। उसका नाम रखा गया जयम्पति। वे बडे ठाट-बाट से बढने लगे। बोधिसत्व प्रज्ञावान् थे। उसने आचार्य्य से कुछ न सीख कर अपनी प्रज्ञा से ही सभी शिल्पों मे दक्षता प्राप्त कर ली। जब उसकी आयु सोलह वर्ष की हो गई तो राज्य देने की इच्छा से राजा ने देवी को सम्बोधन कर कहा, "भद्रे। तेरे पुत्र को राज्य दे कर हम नृत्य करायेगे, जीते जी उसे राज्य पर प्रतिष्टित देखेगे। सारे जम्बुद्वीप मे जिस राजा की कन्या की इच्छा करे, उसे उसके लिए ला कर पटरानी बनायेगे। ज़रा इसके मन का पता लगा कि यह किस राज्य-कन्या को चाहता है?" उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और एक परिचारिका को भेजा कि कुमार को यह कह कर उसके चित्त की बात जान। उसने जाकर उससे वह बात कही। यह बात सुनी तो बोधिसत्व ने सोचा, "मै रूप सम्पन्न नही हूँ। रूप-वती राज्य-कन्या ले आई भी गई, तो 'मुझे इस कुरूप से गया?' कह कर भाग जायगी। इससे मुझे लज्जित होना पडेगा। मुझे गृहस्थी से क्या काम? माता-पिता के जीते जी उनकी सेवा करते रह कर, उनके बाद निकलकर प्रव्रजित होऊँगा।" वह बोला, "मुझे न राज्य चाहिए, न नर्तकियाँ। मै माता-पिता के बाद प्रव्रजित होऊँगा।" उसने जा कर उसकी यह बात देवी से कही। राजा का मन खिन्न हुआ। कुछ सप्ताह के बाद उसने फिर संदेश भिजवाया। उसे भी उसने मना कर दिया। इस प्रकार तीन बार मना कर चुकने पर चौथी बार सोचा—"माता पिता के साथ सर्वथा विरोधी भाव उचित नही। उपाय से काम लूगा।" उसने सुनारो के चौधरी को बुला कर बहुत सा सोना दिया और आज्ञा दी कि स्त्री का रूप बनाओ। उसके चले जाने पर उसने स्वय भी स्त्री की मूरत बनाई। बोधिसत्वो के सकल्प पूरे होते है। वह मूरत इतनी सुन्दर बनी कि जिसका वर्णन हो नही किया जा सकता। बोधिसत्व ने उस मूरत को रेशमी वस्त्र पहना, शयन-गृह मे रखवाया। जब सुनारो का चौधरी अपनी बनाई मूर्ति लाया, तो उसने उसे देख उसकी निन्दा की और कहा—"जा, हमारे शयनागार मे रखी मूर्ति ला।" उसने शयनागार मे प्रवेश कर जब उसे देखा तो सोचा कि कुमार के साथ रमण करने के लिए कोई देव-अप्सरा आई होगी। वह हाथ न बढा सका। तब उसने बाहर निकल कर

कहा—"देव! शयनागार मे एक आर्या देव-कन्या खडी है। मै वहाँ नही जा सकता।"

"तात! जा। यह सोने की मूरत है। ले आ।"

दुबारा भेजने पर वह ला सका। कुमार ने सुनार की बनाई हुई मूर्ति को शयनागार मे डलवा दिया ओर अपनी बनायी मूरत को सजवा कर रथ मे रखवाया और माता के पास सन्देश भेजा—"ऐसी (स्त्री) मिलने से ग्रहण करूँगा।" उसने मत्रियो को बुला कर कहा—"तात! मेरा पुत्र महापुण्यवान् है, शक्र-प्रदत्त है, अपने अनुकूल कुमारी प्राप्त करेगा। तुम इस मूरत को ढकी हुई गाडी मे रख सारे जम्बुद्वीप मे घूमो। जिस राजा की ऐसी कन्या दिखाई दे, उसे यह मूरत दे कर कहो कि ओक्काक राजा तुम्हारे साथ सम्बन्ध स्थापित करेगा। और दिन निश्चय कर के आओ।" उन्होने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। उसे ले, वह बडी शान-शौकत के साथ निकले। वे जिस जिस राजधानी मे पहुँचते वहा सध्या समय लोगो के आने-जाने की जगह पर उस मूरत को रख उसे वस्त्रो, पुष्पो तथा अलकारो से अलकृत कर उस पर सुनहरी तबु तान देते। फिर स्वय लौटकर एक ओर खडे हो, लौट कर आने वाले मनुष्यो की बातचीत सुनते। लोग उसे देख यह न जान कि यह सोने की मूरत है, कहते, "यह देव-अप्सरा मानुषी स्त्री के समान अत्यन्त सुन्दर है, यह यहां कैसे खडी है? कहा से आई है? हमारे नगर मे इस प्रकार की नही है।" इस प्रकार प्रशसा करते हुए चले जाते। यह सुन अमात्यगण सोचते कि यदि यहां ऐसी लडकी होती तो लोग कहते कि यह अमुक राजकन्या के समान है, अथवा अमुक अमात्य-कन्या के समान है। निश्चय से यहा ऐसी नही है। वे उसे ले कर दूसरे नगर चले जाते। इस प्रकार घूमते घूमते वे मद्र राष्ट्र के सागल नगर मे जा पहुचे। मद्र-राज की सात कन्याये थी, सुन्दर देवाप्सराओ सदृश। उनमे से सब से बडी का नाम था प्रभावती। उसके शरीर से बाल-सूर्य्य के समान प्रभा निकलती थी। काला अन्धेरा होने पर भी चार-हाथ के कमरे मे प्रदीप की आवश्यकता नही होती थी। सारा कमरा प्रकाशित हो जाता था। उसकी दाई कुबड़ी थी। वह प्रभावती को खाना खिला, उसका सिर नहलाने के लिए आठ वर्ण-दासियो से आठ घड़े उठवा कर शाम के समय पानी के लिए जा रही थी। उसने पनघट के रास्ते पर उस मूरत को देख समझा कि यह

'प्रभावती' है। उसने सोचा कि यह अविनीत है, हमें सिर नहाने के लिए पानी लेने भेज कर स्वय पहले से आकर पन-घट के रास्ते में खडी हो गई है। वह क्रोध में बोली, "अरी कुल को लज्जित करने वाली ! पहले से आ कर यहाँ खडी हो गई है। यदि राजा जान लेगा, तो हम सब की कुशल नही।" इतना कह उसने कनपटी पर एक थप्पड मारा। हाथ टूट सा गया। तब 'सोने की मूरत है' जान हँसती हुई वह वर्ण-दासियो के पास पहुची और बोली, "मेरा काम देखो। 'अपनी लडकी' समझ थप्पड मारा। इसका मेरी बेटी से क्या मुकाबला ? केवल अपना हाथ ही दुखा लिया।" उसे घेर राजदूतो ने पूछा—"तू किसके बारे मे कहती है कि मेरी बेटी इससे भी अधिक सुन्दर है ?"

"मद्राज की लड़की प्रभावती के बारे मे। यह रूप उसके सोलहवें हिस्से के भी बराबर नही है।"

वे प्रसन्न हुए ओर राज-द्वार पर पहुच, सूचना भिजवाई कि ओक्काक राजा के दूत द्वार पर खडे है। राजा ने आसन से उठ, खडे ही खडे कहा—"बुलाओ।" उन्होंने अन्दर प्रवेश किया और राजा को प्रणाम कर के कहा—"महाराज ! हमारे राजा ने आपका कुशल-क्षेम पूछा है ?" उनका सत्कार-सम्मान किया गया। जब उनसे पूछा गया कि कैसे आये, तो बोले, "हमारे राजा के सिह-स्वर पुत्र का नाम कुस कुमार है। राजा ने उसे राज्य देने की इच्छा से (हमे) आपके पास भेजा है। अपनी कन्या प्रभावती उसे दे और यह स्वर्ण-मूर्ति भेट स्वरूप स्वीकार करे।" इतना कह, वह मूर्ति उसे दे दी। उसने भी यह सोच कि इस प्रकार के राजा के साथ सम्बन्ध स्थापित होगा, प्रसन्न हो उसे स्वीकार किया।

तब दूत बोले—"महाराज ! हम विलम्ब नही कर सकते। हम जा कर राजा को कुमारी मिल जाने की सूचना देते है। वह आकर ले जायेगा।" उसने 'अच्छा' कह उनका सत्कार कर विदा किया। उन्होंने जाकर राजा और देवी को सूचना दी। राजा बडे ठाट-बाट से कुसावती से निकला और क्रमशः सागर नगर पहुचा। मद्र राजा ने अगवानी कर, नगर मे लिवा लाकर बडा सत्कार किया। शीलवती देवी ने अपने पाण्डित्य के कारण सोचा, "कौन जाने क्या हो ?" उसने एक दो दिन के बाद ही मद्र राज से कहा—"महाराज ! मै पुत्र-बधु को देखना चाहती हूं।"

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और उसे बुलवा भेजा। सभी अलकारो से अलकृत तथा दाइयो से घिरी हुई प्रभावती ने आकर सास को नमस्कार किया। उसने उसे देखते ही सोचा, "यह कुमारी रूपवान है। मेरा पुत्र कुरूप है। यदि यह उसे देख पायेगी, तो एक भी दिन न रह कर भाग जायेगी। मै कुछ उपाय करूगी।" उसने मद्दराज को सम्बोधित कर कहा—"महाराज! पुत्र-वधु मेरे पुत्र के अनुकूल है। लेकिन हमारे कुल का एक परम्परागत रिवाज है। यदि यह उस चारित्र का पालन कर सकेगी, तो हम इसे ले जायेगे।"

"वह चारित्र क्या है?"

"हमारे वश मे जब तक एक गर्भ नही ठहर जाता, तब तक दिन मे पति का दर्शन नही होता।"

राजा ने लडकी को पूछा, "क्या ऐसा कर सकेगी?" उसका उत्तर था, "हाँ। तात!" तब ओक्काक राजा ने मद्द नरेश को बहुत सम्पत्ति दी और उसे ले गया। मद्दराज ने भी बडी शान-शौकत के साथ लडकी को विदा किया। ओक्काक राजा ने कुसावती पहुंच, नगर को अलकृत करा, सभी को बन्धन-मुक्त कर, पुत्र का राज्याभिषेक कर, प्रभावती को पटरानी बनाया। उसने मुनादी करादी कि अब से कुसराज को आज्ञा चलेगी। जम्बुद्वीप भर मे जिन राजाओ की लडकिया थी, उन्होने अपनी अपनी लडकियाँ कुस-राजा के पास भेजी, जिनके लडके थे, उन्होने उसके साथ मैत्री-स्थापित करने के लिए, उन्हे 'सेवक' बना कर भेजा। बोधिसत्व के यहाँ बहुत सी नर्तकियाँ हो गईं, और वह बडे ठाट-बाट से राज्य करने लगा। किन्तु न वह प्रभावती को दिन मे देख सकता, न प्रभावती उसे दिन मे देख सकती। दोनो एक दूसरे से रात मे ही मिलते। उस समय प्रभावती की शरीर-प्रभा प्रभावहीन रहती। बोधिसत्व भी शयनागार से रात को ही निकल आता। कुछ दिन से उसकी इच्छा प्रभावती को दिन मे देखने की हुई। उसने मां से कहा। उसने मना किया—"तू इसकी इच्छा मत कर। जब तक एक पुत्र न हो जाय, तब तक प्रतीक्षा कर।" उसने बार बार आग्रह किया। "तो हाथी-शाला मे जा हथवान के रूप मे रह। मै उसे वहाँ ले आऊँगी। उसे आँख भर कर देख लेना। किन्तु, अपने आपको प्रकट न करना।" उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और हस्ति-शाला

गया। राज-माता ने हस्ति-मगल करा, प्रभावती को कहा, "आ तेरे स्वामी के हाथियो को देखे।" फिर उसे वहाँ ले जा कर दिखाया, "यह अमुक नाम का हाथी है, और यह अमुक नाम का।' उस समय माता के पीछे पीछे जाती हुई की पीठ पर राजा ने हाथी की लीद खीच कर मारी। वह क्रोधित हो कर देवी को उत्तेजित करती हुई बोली, "राजा से तेरे हाथ कटवाऊगी।" राज-माता ने उसे इशारा कर उसकी पीठ मली। राजा ने फिर उसे देखने की इच्छा से अश्व-शाला मे साइस की शकल बना उस पर घोडे की लीद फेकी। उस दिन भी सास ने उस क्रोधनी को शान्त किया।

फिर एक दिन प्रभावती की इच्छा हुई कि बोधिसत्व को देखे। उसने सास से कहा। सास ने मना किया—"ऐसी इच्छा न कर।' उसका बार बार आग्रह हुआ। तब वह बोली—"तो कल मेरा पुत्र प्रदक्षिणा करेगा, तू झरोखे से उसे देख लेना।" यह कह अगले दिन उसने नगर सजवाया और जयम्पति कुमार को राज-वेष पहना, हाथी पर बिठा नगर की प्रदक्षिणा कराई। फिर प्रभावती को ले जाकर झरोखे पर खडा किया और बोली, "अपने स्वामी की शरीर-शोभा देख।" वह प्रसन्न हुई कि मुझे अनुरूप स्वामी मिला।

किन्तु, उस दिन बोधिसत्व हथवान की शकल मे जयम्पति के पीछे बैठ, यथा-संकल्प प्रभावती की ओर देखता हुआ उसे हाथी-क्रीडा के बहाने अपनी मनो-वाच्छित क्रीडा दिखाने लगा। हाथी के चले जाने पर राजमाता ने प्रभावती से पूछा—"तूने अपना स्वामी देखा?"

"आर्ये! हां। किन्तु उसके पीछे बैठा हुआ हथवान बडा दुर्विनीत है। मुझे हस्ति-विकार दिखाता था। इस प्रकार के अभागे आदमीको राजा के पीछे क्यो बिठाया है?"

"पीछे की ओर से राजा की रक्षा अपेक्षित रहती है।"

वह सोचने लगी, "यह हथवान अत्यन्त निर्भय है। राजा को राजा भी नही मानता है। कही यही कुसराजा न हो? निश्चय से वह कुरूप होगा। इसीलिए मुझे नही दिखाते।"

उसने कुबडी के कान मे कहा—"जा देख! अगले आसन पर बैठा हुआ 'राजा' है, अथवा पिछले आसन पर बैठा हुआ 'राजा' है?"

"मैं कैसे जानूंगी ?"

"यदि वह 'राजा' होगा तो हाथी की पीठ से पहले उतरेगा। इस निशानी से पहचान लेना।"

वह जा कर एक ओर खडी हो गई। उसने बोधिसत्व को पहले उतरते देखा और जयम्पति को बाद मे। बोधिसत्व ने भी इधर-उधर देखते हुए जब कुबडी को देखा तो समझ लिया कि इस कारण आई होगी। उसने उसे बुला कर दृढता-पूर्वक कहा कि यह भेद न कहे और विदा किया। उसनेजाकर कहा—'अगले आसनपर बैठा पहले उतरा।' प्रभावती ने उसके कहने का विश्वास कर लिया।

राजा ने फिर उसे देखने की इच्छा से मा से कहा। जब वह उसे न रोक सकी तो बोली, "अच्छा, भेस बदल कर उद्यान मे जाना।" वह उद्यान पहुंच, पुष्करिणी मे गले तक पानी मे उतरा और पद्मनी के पत्तो से सिर ढक लिया तथा खिले पद्मो से मुह को ढक कर खडा हुआ। उसकी माता भी प्रभावती को उद्यान मे ले गई और उसने उसे 'यह वृक्ष देख, पक्षी देख, मृग देख'इस प्रकार प्रलुब्धकर पुष्करिणी-तट पर भेजा। उसने पाँच प्रकार के पद्मों से ढकी पुष्करिणी देखी तो उसकी स्नान करने की इच्छा हुई। वह परिचारिकाओ के साथ पुष्करिणी मे उतरी और खेलते खेलते उस पद्म को देख लेने की इच्छा से हाथ बढाया। उस समय राजा ने पद्मनी-पत्र को हटा 'मै कुसराजा हूँ' कह कर उसे हाथ से पकडा। उसने उसकी शकल देखी तो चिल्लाई कि यक्ष मुझे पकड रहा है और वही बेहोश हो गई। राजा ने उसका हाथ छोड दिया। उसे होश आया, तो उसने सोचा, "मुझे कुसराजा ने हाथ से पकडा। उसी ने हस्तिशाला और अश्वशाला मे मुझ पर लीद फेकी थी। इसी ने हाथी के पीछ बैठ कर मुझसे मजाक किया था। मुझे ऐसे कुरूप दुर्मुख पति से क्या ? मैं जीती रह कर दूसरा पति प्राप्त करूंगी।" यह सोच उसने अपने साथ आये हुए अमात्यो को बुला कर कहा—"मेरा यान-वाहन तैयार कराओ। आज ही जाऊँगी।" उन्होंने राजा को कहा। राजा ने सोचा, "यदि जाना न मिलेगा, तो इसका हृदय फट जायगा। यह चली जाय। इसे फिर अपने बल से ले आयेंगे।" उसने उसे जाने की अनुज्ञा दे दी। वह पिता के नगर ही गई। बोधिसत्व भी उद्यान से नगर में पहुच अलकृत प्रासाद पर चढे। उसने बोधिसत्व की पूर्व जन्म की प्रार्थना के

कारण कामना नही की और बोधिसत्व भी पूर्व जन्म के कर्म के फलस्वरूप कुरूप हुआ।

## ग. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी-द्वार-ग्राम में ऊपर की गली मे और नीचे की गली मे दो परिवार रहते थे। एक परिवार मे दो लडके थे, किन्तु एक मे थी एक ही लडकी। दोनो लड़को मे बोधिसत्व छोटा-भाई था। वह लडकी बडे से ब्याह दी गई। छोटा भाई बच्चे की तरह बडे भाई के पास ही रहता था। एक दिन उस घर मे बहुत स्वादिष्ट पूए पके। बोधिसत्व जगल मे गया था। उसके हिस्से का पूआ रख कर शेष बाँट कर खा गये। उसी क्षण प्रत्येक बुद्ध भिक्षा के लिए घर पर पधारे। बोधिसत्व की भाबी ने 'देवर के लिए और पूआ पकाऊँगी' सोच, वह ले कर प्रत्येक-बुद्ध को दे दिया। वह भी उसी क्षण जगल से लौट आया। उसने उसे कहा, "स्वामी! प्रसन्न हों। तुम्हारा हिस्सा प्रत्येक-बुद्ध को दिया है।" उसने उत्तर दिया, "अपना हिस्सा खा कर, मेरा हिस्सा देती है, और क्या करेगी?" क्रोधाभिभूत हो जा कर उसने (भिक्षा-) पात्र मे से पूआ ले लिया। उसने मा के घर से नया ला कर ताजे चम्पक पुष्प सदृश घी से पात्र भर दिया। उसमे से प्रकाश निकला। उसने उसे देख प्रार्थना की, "भन्ते! जहाँ जहाँ मेरा जन्म हो, मेरा शरीर प्रकाश-युक्त हो, मै श्रेष्ठ रूपवान् हो जाऊ, इस असत्पुरुष के साथ मेरा एक जगह रहना न हो।" अपनी इस पूर्व-प्रार्थना के कारण ही उसने उसे नही चाहा। बोधिसत्व ने भी वह पूआ उस पात्र मे डाल प्रार्थना की, "भन्ते! चाहे यह सौ योजन पर हो, मै इसे ला कर अपनी चरण-सेविका बना सकू।" उस समय उसने क्रोधाभिभूत हो जो पात्र मे से पूआ ले लिया था, उस पूर्व-कर्म के प्रभाव से वह कुरूप हुआ। प्रभावती के चले जाने से वह शोकाकुल हो गया। नाना प्रकार से परिचर्य्या कर के भी शेष स्त्रियाँ उसकी ओर निहार तक न सकी। उसे प्रभावती-विहीन सारा घर शून्य सा प्रतीत हुआ। यह समझ कि अब वह सागल नगर पहुच गई होगी, उसने प्रातःकाल ही मा के पास पहुंच "मा, मै प्रभावती को लाऊँगा, आप राज्य का अनुशासन करे" कह पहली गाथा कही—

**इदं ते रट्ठं सधनं सयोग्गं**
**सकायुरं सब्बकामूपपन्नं**
**इदं ते रज्जं अनुसास अम्म,**
**गच्छाम अहं यत्थ पिया पभावति ॥१॥**

[यह तेरा हस्ति-योग आदि सहित तथा पञ्च राज-चिह्नो सहित सभी काम्य वस्तुओ से परिपूर्ण राष्ट्र है। मां ! तू इसका अनुशासन कर। मै जहा प्रिया प्रभावती है, वहां जाऊँगा ॥१॥]

उसने उसकी बात सुनी तो बोली, "तात ! अप्रमादी रहना। स्त्रियाँ बहुत अशुद्धाशय होती है।" फिर उसने एक सोने की चंगेर को नाना प्रकार के श्रेष्ठ भोजनों से भर, "यह रास्ते मे खाना" कह विदा किया। वह ले, उसने माता को प्रणाम किया और तीन बार प्रदक्षिणा की। फिर "जीता रहा तो दर्शन करूगा" कह, शयनागार मे जा, पाच-आयुध बांधे, और भोजन की चँगेर के साथ हजार कार्षापण थैली मे डाल, कोकनद वीणा ले, नगर से निकल मार्गारूढ हुआ। उस महाबलवान्, महाशक्तिशाली ने दोपहर तक पचास-योजन समाप्त कर भोजन किया और फिर दिन के शेष हिस्से मे पचास योजन जा एक ही दिन मे सौ योजन रास्ता तैकर डाला। शाम को स्नान करके उसने सागल नगर मे प्रवेश किया। उसके प्रवेश करते ही उसके तेज के प्रभाव से प्रभावती शैय्या पर न लेटी रह सकी, उतर कर भूमि पर लेट रही। थकावट से चूर बोधिसत्व को गली मे जाते देख एक स्त्री ने बुला कर बैठाया, पैर धुलवाये और शैय्या पर लिटा दिया। उसके सो जाने पर भोजन बनाया और जगाकर खिलाया। उसने प्रसन्न हो उसे चंगेर सहित हजार कार्षापण दे दिये। फिर पांच-आयुध वही रख 'हमे एक जगह जाना है' कह, वीणा लेकर हस्ति-शाला पहुचा। वहां उसने हथवान्नों से कहा, "आज मुझे यहा रहने दो, मैं गन्धर्व करूंगा।" हथवानों की स्वीकृति ले वह एक ओर लेट रहा और जब थकावट दूर हो गई तो उठकर वीणा निकाल 'सारे नगर वासी सुनें' संकल्प से वीणा बजाते हुए गाने लगा। प्रभावती ने भूमि पर पड़े पडे वह शब्द सुना तो जान गई कि यह किसी दूसरे की वीणा का शब्द नही है, निस्सन्देह कुसराजा मेरे लिए आया है।

मद्दराजा ने भी वह स्वर सुन कर सोचा, "अत्यन्त मधुर स्वर है। कल इसे बुला कर गन्धर्व कराऊँगा।"

बोधिसत्वने सोचा, "यहाँ रहते प्रभावती से भेंट नही हो सकती, यह स्थान ठीक नही।" वह प्रात काल ही वहाँ से उठा और जहाँ शाम को भोजन किया था, वही प्रातराश कर, वीणा रख, राजा के कुम्हार के पास पहुंच, उसका शिष्य बन गया। वहाँ उसने एक ही दिन मे घर मिट्टी से भर दिया। फिर बोला—

"आचार्य्य! बरतन बनाऊं।"

"तात! बना।"

उसने मिट्टी का एक लोदा चाक पर रख घुमाया। एक बार घुमाया हुआ चाक मध्याह्न तक बिना रुके घूमता ही रहा। उसने नाना प्रकार के छोटे-बडे बरतन बनाये और प्रभावती के लिए बरतन बनाते हुए उन पर नाना प्रकार के चित्र बना दिये। बोधिसत्वो के अभिप्राय सफल होते है। उसने संकल्प किया कि उन चित्रो को केवल प्रभावती ही देख सके। सभी बरतन सुखाकर, पका कर घर भर दिया गया। कुम्हार नाना प्रकार के बरतन ले राज-कुल मे पहुचा। राजा ने देख कर पूछा—"इन्हे किसने बनाया ?"

"देव! मैने।"

"मै यह जानाता हूँ कि ये तेरे बनाये नही है, बता किसने बनाये ?"

"देव! मेरे शिष्य ने।"

"वह तेरा शिष्य नही है। तेरा आचार्य्य है। उससे हुनर सीख। अब से वह मेरी लडकियो के लिए बरतन बनाये। उसे यह हज़ार देना।"

इस प्रकार हज़ार दिला, उसने आज्ञा दी कि ये छोटे-छोटे बरतन मेरी लडकियो को देना। वह उन्हे उनके पास ले गया और बोला कि ये खेलने के छोटे छोटे बरतन है। वे सभी आगई। कुम्भकार ने प्रभावती के लिये बनाये गये बरतन ही उसे दिये। उसने बरतन ले, उन पर अपना और कुबडी का चित्र देख जाना कि ये किसी और ने नही बनाये, ये कुसराजा ने ही बनाये है। वह क्रोधित हो बोली—"मुझे नही चाहिए, जो चाहे उसे दे दो।" उसकी बहनों ने मज़ाक किया—"शायद तू समझती है कि ये कुसराजा ने बनाये है। ये कुसराजा ने नहीं, ये कुम्हार ने ही बनाये हैं।

इन्हे ले ले ।" उसने उसके द्वारा निर्मित होने की बात और उसके आया हुआ होने की बात उन्हे नही कही । कुम्हार ने बोधिसत्व को हजार दिये और कहा—"तात ! राजा तुझ पर प्रसन्न है । अब से तू राजकन्याओ के लिए बरतन बनाया कर । मै उनके लिए ले जाऊगा ।"

उसने समझ लिया कि यहाँ रहते भी प्रभावती को न देख सकूगा । वह हजार उसने उसी को दिये और राजा के बसफोड के यहा जा, उसका शिष्य बना । उसने प्रभावती के लिए पखा बनाया और उसी पर स्वेत-छत्र लिये, पानागार तथा वस्तु सहित खडी प्रभावती के चित्र के साथ अन्य नाना प्रकार के रूप बनाये । बस-फोड वह पखा और उसका बनाया हुआ अन्य सामान लेकर राजकुल गया । राजा ने देखकर पूछा—"इन्ह किसने बनाया?"! फिर पूर्वोक्त-क्रम के अनुसार ही हजार दे कहा "ये बास का समान मेरी लडकियो को दे ।"

उसने भी बोधिसत्व द्वारा प्रभावती के लिए बनाया गया पखा उसे ही दिया । उस पर बने हुए चित्रो को भी और कोई न देख सकता था । प्रभावती ने देखा तो यह जान कर कि ये राजा के बनाये है, उन्हे क्रोध से जमीन पर फेक दिया, "जिन्हे लेना हो, ले ले ।" शेष (बहिने) उस पर हसी । बंस-फोड ने हजार ले जाकर बोधिसत्व को दिये ।

उसने यह स्थान भी मेरे अयोग्य है, समझ हजार उसी को दे वहाँ से भी चल दिया । वह राजा के माली के पास पहुचा और उसका शिष्य बन कर नाना प्रकार के गजरे आदि बना, प्रभावती के लिए नाना प्रकार के चित्रो से युक्त एक गजरा बनाया । माली वे सब लेकर राज-कुल पहुचा । राजा ने देख कर पूछा—

"इन फूलो को किसने गूथा है?"

"देव! मैने ।"

"मै जानता हूँ कि तूने नही गूथे है, बता किसने गूथे है ।"

"देव! मेरे शिष्य ने ।"

"वह तेरा शिष्य नही है । वह तेरा आचार्य्य है । उससे हुनर सीख । अब से वह मेरी लडकियो के लिए फूल गूथे । उसे ये हजार दे ।"

तब उसने कहा, 'ये पुष्प मेरी बेटियो को दे । बोधिसत्व द्वारा प्रभावती के लिये

बनाया गया फूलों का गजरा उसे ही दिया गया। उसने उसी प्रकार अपने तथा राजा के रूप के साथ अन्य नाना प्रकार के चित्र देख और यह जान कि यह राजा का ही बनाया है, क्रोधित हो उसे जमीन पर फेंक दिया। शेष बहनें उस पर उसी तरह हँसी। माली ने भी हजार ले जाकर बोधिसत्व को दे, वह सामाचार कहा।

उसने यह स्थान भी मेरे अयोग्य है, समझ, हजार उसी को दिये और राजा के रसोइये के पास जा उसका शिष्य बना। एक दिन रसोइये ने राजा के लिए भोजन सामग्री ले जाते समय बोधिसत्व को अपने लिये भोजन पकाने को हड्डी-माँस दिया। उसने उसे ऐसा पकाया कि उस की गन्ध सकल नगर में फैल गई। राजा ने उसकी गन्ध पा, पूछा—'क्या रसोई घर में और भी माँस पकाता है?"

"देव! नहीं। हाँ मैंने अपने शिष्य को हड्डी-माँस पकाने के लिए दिया। यह उसी की गन्ध होगी।"

राजा ने उसे मंगवा, उसमें से कुछ जिह्वा पर रखा। उसी समय जिह्वा इन्द्रिय को हजार गुणा रस आया। राजा ने रस-तृष्णा के वशीभूत हो हजार दिया और आज्ञा दी कि अब से अपने शिष्य से मेरे तथा मेरी बेटियों के लिए भोजन बनवा, तू मेरे लिए लायाकर, और वह मेरी बेटियों के लिये ले जाये।" रसोइये ने जाकर कहा। उसने सुना तो प्रसन्न हुआ कि अब मेरा संकल्प पूरा हुआ। अब मैं प्रभावती को देख सकूंगा। उसने संतुष्ट हो, वह हजार उसी को दे दिया और अगले दिन भोजन बना राजा के भोजन के बरतन भेज, राज-कन्याओं के भोजन की बैहँगी स्वयं ले, प्रभावती के निवास-स्थान पर जा चढा। उसने जब उसे बैहगी लिये प्रासाद पर चढ़ते देखा तो सोचा, "यह अपने लिये अयोग्य दासों तथा नौकरों द्वारा किया जाने वाला काम करता है, यदि मैं चुप रहूगी, तो यह समझेगा कि अब मुझे चाहती है, और अन्यत्र कहीं न जा कर मुझे देखता हुआ, यही रहेगा। अभी इसे गाली दे, बुरा-भला कह, मुहूर्त भर भी यहाँ न ठहरने दे कर भगाऊँगी।" उसने द्वार को आधा खोला और एक हाथ को दरवाज़े पर तथा दूसरे को अर्गल पर रख दूसरी गाथा कही—

**अनुज्जु भूतेन हरं महन्तं**
**दिवा च रत्तो च निसीथकाले**

**पटिगच्छ त्वं खिप्पं कुसावतिं कुस**
**न इच्छामि दुब्बण्णं अहं वसन्तं ॥२॥**

[महाराज ! तू वक्र-चित्त से दिन रात इस भारी वैहँगी को ढोता हुआ बहुत कष्ट भोगता है। हे कुसराज ! तू शीघ्र कुसावती को लौट जा। मैं तुझ कुरूप का यहाँ रहना पसन्द नही करती ॥२॥]

वह प्रसन्न हुआ कि प्रभावती की बात तो सुनने को मिली। उसने तीन गाथायें कही—

**नाहं गमिस्सामि इतो कुसावतिं,**
**पभावती वण्णपलोभितो तव**
**रमामि मद्दस्स निकेतरम्मे**
**हित्वान रट्ठं तव दस्सने रतो ॥३॥**
**पभावती वण्णपलोभितो तव**
**सम्मूलहरूपो विचरामि मेदिनिं,**
**दिसं जानामि कुतोम्हि आगतो,**
**तयम्हि मत्तो मिगमन्दलोचने ॥४॥**
**सुवण्णचीरवसने जातरूपसुमेखले**
**सुस्सोणि तव कामाहि नाहं रज्जेन-म-त्थिको ॥५॥**

[मैं यहाँ से कुसावती नही जाऊगा। हे प्रभावती ! मैं तेरे वर्ण पर मुग्ध हूँ। मैं तुझे देखने के लिए अनुरक्त होने के कारण (अपना) राष्ट्र छोड कर रमणीय मद्द राष्ट्र मे रहूँगा ॥३॥ हे प्रभावती ! मैं तेरे वर्ण पर मुग्ध हो मूढ बना पृथ्वी पर घूमता हूँ। मैं कहाँ से आया हूँ, दिशा (नही) जानता हूँ। हे मृगनयनी ! तूने मुझे पागल बना दिया है ॥४॥ हे स्वर्णपत्र वस्त्र धारण करने वाली ! हे सुनहरी मेखला वाली ! हे सुश्रेणी ! तेरी कामना के कारण मुझे राज्य की अपेक्षा नही रही ॥५॥]

ऐसा कहने पर उसने सोचा, 'मैं इसको भला-बुरा कहती हूँ कि यह पश्चाताप करेगा, किन्तु यह तो अनुराग की भाषा ही बोलता है। यदि 'मैं कुसराजा हूँ' कह कर यह हाथ पकड़ ले तो इसे कौन रोकेगा। कोई यह बातचीत न सुन ले।' यह विचार कर उसने द्वार बन्द कर लिया और कुण्डी लगा कर अन्दर खड़ी हुई। उसने भी

भोजन की बैंहगी ले जा राज-कन्याओं को भोजन कराया। प्रभावती ने कुबड़ी को भेजा, "जा कुसराज का पकाया भात ला।" वह ले आई और बोली, "खा।" उसने कहा, "मैं उसका पकाया भात नहीं खाऊंगी। तू खाकर अपने लिए मिले सीधे से भात पका कर ला। कुसराज के आने की बात किसी से मत कहना।" इसके बाद से कुबड़ी उसका हिस्सा ला कर स्वयं खाती, अपना हिस्सा (पका) ले जा कर उसे देती। कुसराजा को भी जब उसके बाद से वह देखने को न मिली तो उसने सोचा, "मैं परीक्षा करूंगा कि प्रभावती के मन में मेरे प्रति स्नेह है अथवा नहीं?" उसने राज-कन्याओं को भोजन कराया और भोजन की बैंहगी लिये जाते समय उसके द्वार पर, प्रासाद-तल पर पैर पीट, बरतनों को लड़ा, आह करके नीचे मुँह गिर पड़ा। उसने उसके कराहने की आवाज सुन द्वार खोला और उसकी भोजन की बैंहगी को बिखरा देख सोचा, "यह सारे जम्बुद्वीप का श्रेष्ठ राजा है। मेरे कारण दुःख भोगता है। सुकुमार होने के कारण भोजन की बैंहगी के भार से गिर पड़ा। यह जीता भी है वा नहीं?" उसने कमर से निकल उसकी सांस का पता लगाने के लिए, गरदन निकाल कर मुंह देखा। उसने मुंह-भर थूक ले, उसके बदन पर गिरा दिया। वह उसे भला-बुरा कह, घर में घुसी और द्वार आधा बन्द कर के खड़ी हुई, तथा यह गाथा कही—

**अब्भु हि तस्स भो होति यो अनिच्छन्तं इच्छति,**
**अकामं राज कामेहि अकन्तो कन्तं इच्छसि ॥६॥**

[हे महाराज! जो न चाहने वाले का चाहता है, उसकी परिहानि ही होती है। हे राजन्! तू कामना के कारण स्वयं कुरूप होता हुआ भी अपनी कामना न करने वाली सुन्दरी को चाहता है ॥६॥]

उसने अनुरक्त रहने के कारण, भला-बुरा कहे जाने पर, परिहास किये जाने पर भी पश्चाताप न कर अगली गाथा कही—

**अकामं वा सकामं वा यो नरो लभते पियं**
**लाभं एत्थ पसंसाम अलाभो तत्थ पापको ॥७॥**

[कामना करने वाला हो चाहे न हो, जिस आदमी को उसका प्रिय प्राप्त हो जाता है, वह प्राप्ति प्रशंसनीय है। अप्राप्ति ही बुरी है ॥७॥]

उसके ऐसा कहने पर भी, उसने बिना पीछे हटे, कठोर वचन बोलकर उसे भगाने की इच्छा से गाथा कही—

**पासाणसारं खणसि कणिकारस्स दारूना**
**वातं जालेन बाधेसि यो अनिच्छन्तं इच्छसि ॥८॥**

[जो न चाहने वाले को चाहता है, वह कणिकार लकड़ी से पत्थर खोदता है अथवा जाल से हवा को बाधता है ॥८॥]

यह सुन राजा ने तीन गाथायें कहीं—

**पासाणो नून ते हृदये ओहितो मुदुलक्खणे,**
**यो ते सातं न विन्दामि तिरो जनपदं गतो ॥९॥**
**यदा मं भकुटिं कत्वा राजपुत्ति उदिक्खसि**
**आळारिको तदा होमि रञ्ञो महस्स थीपुरे ॥१०॥**
**यदा उम्हयमाना यं राजपुत्ति उदिक्खसि**
**नाळारिको तदा होमि राजा होमि तदा कुसो ॥११॥**

[हे मृदुलक्षणे ! निश्चय से तेरे हृदय में पाषाण है, तभी तो मैं इस सुदूर जनपद में आया हुआ भी आनन्द का अनुभव नहीं करता हूँ ॥९॥ हे राजपुत्री ! जब तू मुझे भृकुटी टेढ़ी कर के देखती है, उस समय मैं महाराज के रनिवास का रसोइया हो जाता हूँ ॥१०॥ हे राजपुत्री ! जब मुझे प्रसन्न-वदन हो देखती है, उस समय मैं रसोइया नहीं रहता। उस समय मैं कुमराज हो जाता हूँ ॥११॥]

उसने उसकी बात सुन सोचा, "यह अत्यन्त अनुरक्त होकर बोल रहा है। इसे झूठ बोल कर यहाँ से उपाय से भगाऊँगी।" उसने यह गाथा कही—

**सचेहि वचनं सच्चं नेमित्तानं भविस्सति**
**नेव मे त्वं पति अस्सु कामं छिन्दन्तु सत्तधा ॥१२॥**

[यदि ज्योतिषियों का कहना सत्य है, तो तू मेरा पति कभी नहीं हो सकता, चाहे मेरे सात टुकड़े कर दिये जायें ॥१२॥]

राजा ने उसकी बात सुन उसका विरोध करते हुए कहा—"भद्रे ! मैंने भी अपने राष्ट्र में ज्योतिषियों से पूछा है। उनका कहना है कि सिंह-स्वर कुमराज के

अतिरिक्त तेरा दूसरा पति नही है। मै भी अपने ज्ञान-बल से यही बात कहता हूँ।" यह कह अगली गाथा कही—

**सच्चे हि वचनं सच्चं अञ्ञेसं यदि वा मयं**
**न चेव ते पति अत्थि अञ्ञो सीहसरा कुसा ॥१३॥**

[यदि दूसरो का अथवा मेरा ही कहना सत्य है, तो सिह-स्वर कुसराज को छोड तेरा और कोई पति नही है ॥१३॥]

उसने उसकी बात सुनी, तो सोचा,"इसे लज्जित नही कर सकती। जाये चाहे रहे।" अपना द्वार बन्द कर उसने अपने आप को छिपा लिया। वह भी बेहगी लिये उतर आया। उसके बाद से वह उसे देख भी न पाता था। रसोइये का काम करता बहुत कष्ट पाता। प्रातराश करके लकडियाँ चीरता, बरतन धोता, बेंहगी से पानी लाता और सोना होता तो बोरी (?) पर ही सोता। प्रातःकाल उठकर यवागु आदि पकाता, लेजाता, खिलाता। काम-राग के कारण असीम कष्ट सहन करता। एक दिन उसने भोजन-शाला के द्वार परसे गुजरती हुई कुबडी को देखकर पुकारा। वह प्रभावती के भय से उसके पास जाने का साहस न कर शीघ्र-गति से गुजरी। उसने तेजी से आगे बढकर कहा,"कुबडी।" उसने रुककर 'कौन है' कहा और फिर बोली, "तुम्हारी आवाज सुनाई नही दी।" वह बोला, "हे कुबडी! तू भी और तेरी स्वामिनी भी बहुत कठोर है। इतने समय से तुम्हारे पास रहता हूं। कुशल-क्षेम भी नही पूछी जाती। देने को तो क्या दोगे? अच्छा, इसे छोड़। यह बता कि क्या प्रभावती का चित्त कोमल करके दिखा सकेगी?" उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। उसने उसे 'यदि तू उसे दिखा सकेगी, तो तेरा कुबड़ापन दूर कर, तुझे कण्ठा दूंगा" कह, लुभा पाच गाथाये कही—

**नेक्खं गीवं ते कारेस्सं पत्वा खुज्जे कुसावतिं**
**सचे मं नागनासूरु ओलोकेय्य पभावती ॥१४॥**
**नेक्खं गीवं ते कारेस्सं.....**
**सचे.....आलपेय्य पभावती ॥१५॥**
**नेक्खं गीवं ते कारेस्सं.....**
**सचे.....पम्हापेय्य पभावती ॥१६॥**

**नेक्खं गीवं ते कारेस्सं.....**
**सचे.....पम्हापेय्य पभावती ॥१७॥**
**नेक्खं गीवं ते कारेस्सं पत्वा खुज्जे कुसावतिं**
**सचे मं नागनासूरु पाणिहि उपसम्फसे ॥१८॥**

[हे कुबडी ! यदि हाथी की सूण्ड के समान जांघों वाली प्रभावती मेरी ओर देख लेगी, तो मैं कुसावति पहुंचने पर तेरे लिये सोने का कण्ठा बनवाऊँगा.. यदि बात कर लेगी,...यदि मुस्कुरा देगी,.. यदि खिलखिला कर हँस लेगी, और यदि हाथ से मेरा स्पर्श कर लेगी ॥ १४–४८ ॥]

उसकी बात सुन वह बोली, "देव ! आप जायें। मैं कुछ ही दिनों मे उसे आपके वश मे कर दूंगी। मेरा पराक्रम देखे।" इतना कह उसने अपना निश्चय किया और प्रभावती के पास जाकर उसके रहने का कमरा साफ करती हुई सी होकर प्रहार देने योग्य मिट्टी का ढेला भी वहाँ न रहने दिया। यहाँ तक कि खडाऊं भी निकाल डाली। फिर सार कमरा साफ कर, कमरे के द्वार पर, देहली को बीच में करके ऊंचा आसन बनाया और प्रभावती के लिये एक नीची जगह तैयार करके बोली, "आ, तेरे सिर मे जुंए देखू।" उसने उसे वैसे बिठा, अपनी जांघों के बीच उसका सिर रख, थोडा खुजला कर कहा, "ओह ! इसके सिर मे बहुत जुएँ हैं।" फिर अपने सिर में से जुएँ निकाल कर उसके हाथ पर रख कर बोली, "देख ! तेरे सिर मे कितनी जुएँ है।" इस प्रकार के प्यारे वचन कह, उसने बोधिसत्व की प्रशंसा करते हुए गाथा कही—

**न हि नूनायं राजपुत्ती कुसे सातं पि विन्दति,**
**आळारिके भते पोसे वेतनेन अनत्थिके ॥१९॥**

[निश्चय से यह राजपुत्री बेतन न चाहने वाले, रसोइये कुसराज से आनन्दित नहीं होती है ॥ १९ ॥]

वह कुबडी पर क्रोधित हुई। कुबड़ी ने उसे गर्दन से पकड अन्दर धकेल कर बाहर का दरवाजा बन्द कर दिया और लटकती हुई रस्सी के सहारे खड़ी हुई। प्रभावती उसे पकडने मे असमर्थ थी। वह दरवाजे के पीछे खडी हो उसे अपशब्द कहती हुई गाथा कहने लगी—

**न हि नुनायं सा खुज्जा लभति जिह्वाय छेदनं**
**सुनिसितेन सत्थेन एवं दुब्भासितं भणं ॥२०॥**

[यह इस प्रकार का दुर्भाषित करने वाली कुबडी को जिह्वा (क्यों) तेज शस्त्र से नहीं काट ली जाती ॥ २० ॥ ]

कुब्जा ने उस लज्जती हुई स्त्री को पकड़े ही पकड़े कहा, "हे अपुण्यवान् ! हे दुर्विनीत ! तेरा रूप किसी के क्या काम आयेगा ? क्या हम तेरा रूप खाकर जियेंगे ?" यह कह तेरह गाथाओं में बोधिसत्व का गुण प्रकाशित करते हुए उसने कुबडी की गर्जना की—

**मा नं रूपेन पामेसि आरोहेन पभावति**
**महायसोति कत्वान करस्सु रुचिरे पियं ॥२१॥**
**मा नं रूपेन पामेसि आरोहेन पभावति**
**महद्धनोति कत्वान... .पियं ॥२२॥**
**मा.....महब्बलो.....पियं ॥२३॥**
**मा.....महारट्ठो.....पियं ॥२४॥**
**मा.....महाराजा.....पियं ॥२५॥**
**मा .....सीहसरो.....पियं ॥२६॥**
**मा.....वग्गुसरो.....पियं ॥२७॥**
**मा.....बिन्दस्सरो.....पियं ॥२८॥**
**मा .....मञ्जुस्सरो.....पियं ॥२९॥**
**मा.....मधुस्सरो.....पियं ॥३०॥**
**मा.....वसिप्पो.....पियं ॥३१॥**
**मा.....खत्तियो.....पियं ॥३२॥**
**मा नं रूपेन पामेसि आरोहेन पभावति**
**कुसराजाति कत्वान करस्सु रुचिरे पियं ॥३३॥**

(हे प्रभावती ! इसे रूपके मोह में मत मोह। इसे महायशस्वी जानकर इसे प्रेम कर महाबलशाली जानकर महान् राष्ट्रवाला जानकर .

महान् राजा जानकर.. सिंह-स्वर जानकर लीला युक्त-स्वर जानकर...
गोल-स्वर जानकर... सुन्दर-स्वर जानकर मधुर -स्वर जानकर....
सौ शिल्पों का जानकर जानकार....क्षत्रिय जानकर तथा कुसराजा जानकर प्रेम कर [२१–३३॥]

उसने कुबडी को धमकाया, "कुबडी बहुत गरजती है। हाथ आ जाय तो तुझे स्वामी की बात समझाऊं।" उसने उसे डराया, "मैंने तुझे बचाने के लिए, तेरे पिता को कुस-राज के आगमन की बात नही कही, अच्छा आज राजा को कहूगी।" उसने कुबडी को इशारा किया," कोई सुन न ले।" बोधिसत्व को जब वह देखने को नही ही मिली तो सात महीने तक भोजन और सोने का दु ख सहते रहने के बाद वह भी सोचने लगा, "मुझे इससे क्या प्रयोजन ! सात महीने रहने पर भी दिखाई तक नही देती। यह अत्यन्त कठोर है। दुस्साहसिक है। मै जाकर अपने माता-पिता को देखूगा।"

उस समय शक्र ने ध्यान लगा कर देखा तो उसे उसके उद्वेग की बात का पता लगा। उसने सोचा, "सात महीने रहने पर भी राजा को प्रभावती का देखना तक नही मिला। मै ऐसा करूगा कि जिससे इसे देखना मिले।" उसने मद्र-राज के दूतो की शकल बना सातो राजाओं के पास पृथक पृथक दूत भेज कर कहलाया कि "प्रभावती कुसराज को छोडकर चली आई है, आकर ले जाये।" वे बडे ठाट-बाट से नगर मे पहुचे। वे परस्पर एक दूसरे के आने की बात नही जानते थे। उन्होंने एक दूसरे से पूछा, "तू क्यो आया है ?" जब ज्ञात हुआ तो सभी क्रोधित हुए, "एक लडकी सात जनो को देगा। इसका अनाचार देखो। हमे ठगता है। इसे पकड़ो।" उन्होने नगर घेर लिया और सदेश भिजवाया, "या तो हम सभी को प्रभावती दे, अन्यथा युद्ध करे।" मद्रराज ने सदेश सुना तो भय-भीत हुआ और आमात्यों को बुलाकर पूछा–"क्या करे ?"

"देव ! ये सात के सात प्रभावती के लिये ही आये है। ये कहते है, 'यदि नही देगा, तो प्राकार तोड नगर मे प्रवेश कर, जान मार, राज्य ले लेगे।' चहार-दिवारी को बिना टूटने दिये ही उनके पास प्रभावती को भेज दें।"

यह कह कर उन्होने गाथा कही—

**एते नागा उपत्थद्धा सब्बे तिट्ठन्ति वम्मिता,**
**पुरा मद्दन्ति पाकारं आनेन्तेतं पभावतिं ॥३४॥**

[ये योधा अति दारुण है। सभी कवच पहने खडे है। इससे पहले कि ये प्राकार तोड़े, इन्हे प्रभावती ला दी जाय ॥ ३४ ॥]

राजा ने यह बात सुनी तो, "यदि मै एक को प्रभावती भेज दूंगा, तो शेष राजागण युद्ध करेगे। मै एक को नही दे सकता हूं। सारे जम्बुद्वीप के चक्रवर्ती राजा को छोड आने का फल भोगे। इसे मार सात टुकडे कर सातो के पास भेजूगा," कह अगली गाथा कही—

**सत्त खण्डे करित्वान अहं एतं पभावतिं**
**खत्तियानं पदस्सामि ये मं हन्तुं इधागता ॥३५॥**

[मै इस प्रभावती के सात टुकडे करके उन सातो राजाओ को दे दूंगा, जो मुझे मारने के लिये यहाँ आये है ॥ ३५ ॥]

उसकी यह बात सारे घर मे फैल गई। सेविकाओ ने जाकर प्रभावती से कहा, "राजा तेरे सात टुकडे करके सातो राजाओ के पास भेजेगा।" वह मृत्यु से भयभीत हो, आसन से उठ, बहनो को साथ ले माता के शयनागार मे पहुची।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

**अपुट्ठहि राजपुत्ती सामा कोसेय्यवासिनी**
**अस्सुपुण्णेहि नेत्तेहि दासिगणपुरक्खता ॥३६॥**

[कोषेय-वस्त्र धारिणी, स्वर्ण-वर्णा, अश्रुपूर्ण नेत्रो वाली राज पुत्री, दासिगणो को साथ लिये, (माता के पास) पहुची ॥ ३६ ॥]

वह माता के पास पहुंची और माता को नमस्कार कर रोते-पीटते हुए बोली—

**तं नून कक्कूपनिसेवितं मुखं**
**आदासदन्तायरुपच्चवेक्खितं**
**सुभं सुनेत्तं विरजं अननंगणं**
**छुद्धं वने ठस्सति खत्तियेहि ॥३७॥**

ते नून मे असिते वेल्लितग्गे
केसे मुदु चन्दनसारलित्ते
समाकुले सीवथिकाय मज्झे
पादेहि गिज्झा परिकड्ढयन्ति ॥३८॥
ता नून मे तम्बनखा सुलोभा
बाहा मुदू चन्दनसारलित्ता
छिन्ना वने उज्झिता खत्तियेहि
गय्ह वको गच्छति येनकामं ॥३९॥
ते नून तालूपनिभे अलम्बे
निसेविसे कासिकचन्दनेन
थनेसु मे लम्बहीति सिगालो
मातू व पुत्तो तरुणो तनूजो ॥४०॥
तं नून सोणिं पुथुलं सुकोट्ठितं
निसेवितं कञ्चनमेखलाहि
छिन्नं वने खत्तियेहि अवत्थं
गय्हा वको गच्छति येनकामं ॥४१॥
सोणा वका सिगाला च ये च अञ्ञे सन्ति दाठिनो
अजरा नून हेस्सन्ति भक्खयित्वा पभावतिं ॥४२॥
सचे मंसा हरीयिसुं खत्तिया दूरगामिनो
अट्ठीनि अम्म याचित्वा अनुपथे दहाथ-नं ॥४३॥
खेत्तानि अम्म कारेत्वा कणिकार एत्थ रोपय
यदा ते पुप्फिता अस्सु हेमन्तानं हिमच्चये
सरेय्याथ मम अम्मः एवं वण्णा पभावति ॥४४॥

[अब मेरा वह मुँह, जिस पर पाउडर लगा है, जिसे हाथी दात वाले शीशे में देख देख कर सँवारा गया है, जो शुभ है, जो सुनेत्र-युक्त है, जो रज-विरहित है तथा जो दोष-युक्त है, क्षत्रियो द्वारा वन मे फेक दिया जायगा ॥३७॥ अब निश्चय से मेरे काले, घुघराले, कोमल, चन्दन-लिप्त आकुल केशो को श्मशान भूमि मे

गीध पैरों से मलेगें ।। ३८ ।। अब निश्चय से ताम्रवर्ण नखों वाली, सुलोम, कोमल, चन्दन-लिप्त बाहों को, जिन्हे क्षत्रियों ने वन मे फेक दिया, भेडिये यथेच्छ लिये घूमेगे ।। ३८ ।। अब निश्चय से मेरे ताडफल सदृश, काशी चन्दन लिप्त स्तनो मे शृगाल ऐसे लटकेंगे जैसे तरुण बच्चा माता के स्तन से ।। ४० ।। अब निश्चय से मेरे पृथुल, सुकोटित, श्रोणी भाग को जो स्वर्ण मेखला से अलकृत रहा है और जिसे क्षत्रियो ने छिन्न-भिन्न करके वन मे फेक दिया है, भेडिये यथेच्छ लिये घूमेगे ।। ४१ ।। कुत्ते, भेडिये, गीदड तथा अन्य जगली-पशु प्रभावती को खाकर अजर हो जायेगे ।। ४२ ।। यदि दूरगामी क्षत्रिय मेरा माँस ले जॉय तो माँ तू उन से हडिड्यो को माग कर चौरस्ते पर धर देना ।। ४३ ।। फिर उस जगह खेत करवा कर वहाँ कणिकार-पुष्प के पौदे लगवा देना। जब शरद ऋतु के बाद हेमन्त ऋतु आने पर वे पुष्पित हों तो मा याद करना प्रभावती इस वर्ण की थी ।। ४४ ।।]

इस प्रकार मृत्यु डर से उसने माता के पास विलाप किया। मद्दराजा ने आज्ञा दी कि कुल्हाडी और गण्डिका लेकर चोर-घातक यही आये। उसके आने की बात सारे राज भवन मे प्रकट हो गई। उसका आगमन सुनकर प्रभावती की माँ आसन से उठ शोक-विह्वल हो, राजा के पास पहुची।

इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने—

**तस्सा माता उदट्ठासि खत्तिया देववण्णिनी**
**दिस्वा असिं च सूणञ्च रञ्ञो मद्दस्स थीपुरे ।।४५।।**

[देव-वर्ण वाली उसकी क्षत्रिय माता राजा मद्द के रनिवास मे तलवार और हत्यारे को देखकर (वहाँ) खडी थी।। ४५ ।।]

उसने विलाप करते हुए गाथा कही—

**इमिना नून असिना सुसञ्ञं तनुमज्झिमं**
**धीतरं मद्दो हन्त्वान खत्तियानं पवस्सति ।।४६।।**

[इस कुल्हाडी से मद्द राजा अपनी लड़की को अच्छी तरह बीच से कटवाकर राजाओं को देगा ।। ४६ ।।]

राजा ने उसे समझाते हुए कहा—"देवी! क्या कहती है; तेरी लडकी

ने सारे जम्बुद्वीप के राजा को 'कुरूप' मानकर छोड़ दिया और चलने के चरण-चिह्नों के मिटने से भी पहले मृत्यु को सिर पर ले कर आई। अब अपने 'रूप' के कारण बाण से बध हो।" उसकी बात सुन माँ बेटी के पास पहुच विलाप करने लगी—

**न मे अकासि वचनं अत्थकामाय पुत्तकि**
**साज्ज लोहितसञ्छन्ना गञ्छिसि यमसादनं ॥४७॥**
**एवं आपज्जती पोसो पापियं च निगच्छति**
**यो वे हितानं वचनं न करोति अत्थदस्सिनं ॥४८॥**
**सचे त्वं अज्ज वारेसि कुमारं चारूदस्सनं**
**कुसेन जातं खत्तियं सुवण्णमणिमेखलं**
**पूजिता ञातिसंघेहि न गञ्छिसि यमक्खयं ॥४९॥**
**यत्थ अस्सु भेरि नदति कुञ्जरो च निकुञ्जति**
**खत्तियानं कुले भद्दे, किं नु सुखतरं ततो ॥५०॥**
**अस्सो च सिंसति द्वारे कुमारो च उपरोदति**
**खत्तियानं कुले भद्दे, किं नु सुखतरं ततो ॥५१॥**
**मयूरकोञ्चाभिरुदे कोकिलाभिनिकुञ्जिते**
**खत्तियानं.....ततो ॥५२॥**

[बेटी तूने मुझ हित-चिन्तक का कहना नही किया। सो आज तू रक्ताच्छादित हो कर यमराज के पास जायगी।। ४७।। जो पुरुष अर्थदर्शी हितेच्छुओं का कहना नही करता, वह इसी प्रकार दुःख को प्राप्त होता है।। ४८।। यदि तूने चारु-दर्शन स्वर्ण-मेखला-युक्त क्षत्रिय कुमराज को वरा होता तो तू रिश्तेदारो के द्वारा पूजित हुई होती और विनाश को न प्राप्त होती।। ४९।। जहाँ क्षत्रियों के कुल में भेरी नाद होता हो और हाथी चिंघाड़ता हो, भद्रे! उससे अधिक सुखकर क्या है?।। ५०।। जिस क्षत्रिय-कुल के द्वार पर घोड़ा हिनहिनाता हो और [गन्धर्व-पटु] कुमार वाद्य बजाता हो उस से अधिक सुखकर क्या है ॥५१॥ जहाँ मोर शब्द करते हो और कोयल गूजती हो, उससे अधिक सुखकर क्या है?।। ५२।।]

इस प्रकार इतनी गाथाओ से उसके साथ सलाप कर उसने "यदि आज कुस-राज यहाँ होता तो इन सात राजाओ को भगाकर मेरी लडकी को दु ख से मुक्तकर ले जाता," सोचते हुए गाथा कही—

**कहं नु सत्तुदमनो पर रट्ठप्पमद्दनो**
**कुसो सोळारपञ्ञाणो, सो नो दुक्खा पमोचये ॥५३॥**

[वह शत्रुओ का दमन करने वाला, वह परराष्ट्र जीतने वाला, वह विशाल-प्रज्ञ कुस-राज कहाँ है ? वह हो तो हमे दु.ख से छुडाये ।। ५३ ।।]

तब प्रभावती ने यह देख कि मेरी मा कुस-राज की प्रशसा करने मे थकती नही है सोचा कि मै इसे यह बता दू कि वह रसोइये का काम करता हुआ यही रहता है। उसने गाथा कही—

**इधेव नो सत्तुदमनो पररट्ठप्पमद्दनो**
**कुसो सोळारपञ्ञानो, सो नो सब्बे वधिस्सति ॥५४॥**

[वह शत्रुओ का दमन करने वाला यही है, वह परराष्ट्र मर्दन करने वाला यही है, वह विशाल-प्रज्ञ यही है, वह हम सब का बध करेगा ।। ५४ ।। ]

उसकी माँ ने 'यह मृत्यु भय से बोलती है' सोच गाथा कही—

**उम्मत्तिका नु भणसि आदु बाला व भाससि,**
**कुसो च आगतो अस्स किं न जानेमु तं मयं ॥५५॥**

[क्या तू पागल हो गई है ? अथवा मूर्ख की तरह बोलती है ? यदि कुस-राज यहाँ आया होता, तो क्या हम न पहचान पाते ? ।। ५५ । ]

ऐसा कहने पर उसने सोचा, "मेरी माता विश्वास नही करती। यह नही जानती कि उसे यहाँ आकर रहते सात महीने हो गये है। मै उसे दिखाऊगी।" उसने माता का हाथ पकडा और खिडकी खोलकर हाथ फैलाकर दिखाते हुए गाथा कही—

**एसो आळारिको पोसो कुमारी पुरमन्तरे**
**वळहं कत्वान संवेल्लिं कुम्भी धोवति ओनतो ॥५६॥**

[यह कुमारियो के रहने की जगह मे जो रसोइया काछ को अच्छी तरह बाधे, झुककर बरतन धोता है; (यही वह है)।। ५६ ।।]

राजा ने सुना तो सोचा, "आज मेरा उद्देश्य पूरा होगा। निश्चय से मृत्यु-भय से प्रभावती मेरे आने की बात कहेगी, मैं बरतनों को धोकर ठीक-ठाक रख दूं।" वह पानी लाया और बरतनो को धोना आरम्भ किया। उसकी माता ने प्रभावती की निन्दा करते हुए गाथा कही—

**वेणी त्वं असि चण्डाली अदूंसि कुलघातिनी,**
**कथं मद्दकुले जाता दासं कयिरासि कामुकं ॥५७॥**

[तू बॅस-फोडनी है, चाण्डालनी है अथवा कुलघातिनी है ? तू ने मद्दकुल मे जन्म लेकर दास को कैसे किया है ?।। ५७ ।। ]

प्रभावती ने यह सोच कि मेरी माँ इसका यहाँ मेरे कारण रहना नही जानती प्रतीत होती है, अगली गाथा कही—

**न अम्हि वेणी न चण्डाली, न चम्हि कुलघातिनी**
**ओक्काकपुत्तो भद्दं ते त्वं नु दासो ति मञ्ञसि ॥५८॥**

[न मैं बस-फोडनी हूँ, न चण्डालनी हूँ और न कुलघातिनी ही हूँ। तेरा भला हो, तू ओक्काक-पुत्र को दास समझ रही है ।। ५८ ।।]

अब उसकी प्रशसा करते हुए बोली—

**यो ब्राह्मण सहस्सानि सदा भोजेति वीसतिं**
**ओक्काकपुत्तो भद्दंते त्वंनु दासो ति मञ्ञसि ॥५९॥**
**यस्स नागसहस्सानि सदा योजेन्ति वीसतिं**
**ओक्काकपुत्तो भद्दंते त्वं नु दासो ति मञ्ञसि.....॥६०॥**
**यस्स अस्ससहस्सानि सदा योजेन्ति वीसतिं....॥६१॥**
**यस्स रथसहस्सानि सदा योजेन्ति वीसतिं ....॥६२॥**
**यस्स उसभसहस्सानि सदा योजेन्ति वीसतिं ....॥६३॥**
**यस्स धेनुसहस्सानि सदा दुय्हन्ति वीसतिं ... ॥६४॥**

[जो सदा बीस-हजार ब्राह्मणो को भोजन कराता है, तेरा भला हो, तू उस ओक्काक पुत्र को दास समझती है ।। ५९ ।। जिसके यहाँ सदा बीस हजार हाथी जुतते है, तेरा भला हो, तू उस ओक्काक-पुत्र को दास समझती है ।। ६० ।।

जिसके यहाँ सदा बीस हजार घोड़े जुतते है,...जिसके यहाँ सदा बीस हजार रथ जुतते है, . . जिसके यहाँ सदा बीस हजार बैल जुतते है, ....जिसके यहाँ सदा बीस हजार गौवें दुही जाती है, तेरा भला हो, तू उस ओक्काक-पुत्र को दास समझती है ।। ६१–६४ ।।]

इस प्रकार उसने छ गाथाओं से बोधिसत्व का गुणानुवाद किया। तब उसकी माता को विश्वास हुआ, "यह निर्भय होकर बोल रही है, संभव है ऐसा ही हो।" उसने जाकर राजा से यह बात कही। उसने जल्दी से प्रभावती के पास पहुंच पूछा–

"सचमुच क्या कुसराज यहाँ आया है ?"

"हाँ तात ! उसे तेरी लडकियो का रसोइयापन करते हुए सात महीने हो गये।"

उसने उसका विश्वास न किया। तब कुबडी से पूछा और यथार्थ बात जानकर लडकी को फटकारते हुए गाथा कही—

**तग्घ ते दुक्कतं बाले यं खत्तियं महब्बलं**
**नागं मण्डूकवण्णेन न तं अक्खासिधागतं ॥६५॥**

[हे मूर्खे ! तूने बहुत बुरा किया जो यह नही बताया कि महाबलवान् क्षत्रिय हाथी मेण्डक के रूप मे यहाँ आया है ।। ६५ ।। ]

इस प्रकार बेटी को फटकार, वह जल्दी से उसके पास पहुंचा और स्वागत किये जाने पर, हाथ जोड अपना दोष प्रकट करते हुए बोला—

**अपराधं महाराज त्वं नो खम रथेसभ**
**यं तं अञ्ञातवेसेन न आसिम्ह इधागतं ॥६६॥**

[हे महाराज ! हमारे अपराध को क्षमा करें। हमने अप्रकट वेश में यहाँ आने के कारण नही पहचाना ।। ६६ ।।]

यह सुन बोधिसत्व ने, "यदि मै कठोर बोलूंगा, तो यहीं इसका हृदय फट जायगा, मैं इसे आश्वस्त करूंगा" सोच बरतनों के बीच में खडे ही खड़े गाथा कही—

**मादिसस्स न तं छन्नं यो हं आळारिको भवे**
**त्वञ्जेव मे पसीदस्सु, नत्थि ते देव दुक्कतं ॥६७॥**

मेरे जैसे के लिये यह योग्य नही है कि मै रसोइया बनू। किन्तु देव! आप प्रसन्न हों। आप का कोई दोष नही है।।६७।।]

राजा ने उससे आद्दत हो, प्रासाद पर चढ, प्रभावती को बुला, क्षमा मागने के लिये भेजते हुए कहा—

**गच्छ बाले खमापेहि कुसराजं महब्बलं,**
**खमापितो कुसराजा सो ते दस्सति जीवितं ॥६८॥**

[मूर्खे! जा महाबलवान् कुसराज से क्षमा माँग। क्षमा कर देने पर कुसराजा तुझे जीवन दान देगा।। ६८।।]

पिता के ऐसा कहने पर वह बहनो तथा सेविकाओ सहित उसके पास गई। उसने कमकर वेष मे खडे ही खडे जब यह जाना कि वह उसके पास आ रही है, तो तै किया कि आज प्रभावती के अभिमान को चूर कर उसे कीचड मे पैरो पर गिराऊंगा। वह जितना पानी लाया था उसको गिराकर खलिहान-मात्र जगह मे कीचड ही कीचड कर दिया। वह उसके पास पहुची और कीचड मे उसके पाँवो पर पड क्षमा मांगी।

इस अर्थ को प्रकट करते हुए शास्ता ने—

**पितुस्स वचनं सुत्वा देववण्णी प्रभावती**
**सिरसा अग्गाहि पादे कुसराजं महब्बलं ॥६९॥**

[देव-वर्णी प्रभावती ने पिता का कहना मान महाबलशाली कुसराज के पैरो पर सिर रखा।। ६९।।]

उसने तीन गाथाये कही—

**या इमा रत्या अतिक्कन्ता इमा देव तया विना,**
**वन्दे ते सिरसा पादे, मा मे कुज्झि रथेसभ ॥७०॥**
**सच्चं ते पटिजानामि, महाराज सुणोहि मे,**
**न चापि अप्पियं तुय्हं करेय्यामि अहं पुन ॥७१॥**
**एवञ्चे याचमानाय वचनं मे न काहसि**
**इदानि मं ततो हन्त्वा खत्तियानं पदस्सति ॥७२॥**

[हे देव ! ये जो इतनी राते तेरे बिना बीती, मै तेरे पैरों मे सिर रखती हूँ, तू मुझपर क्रोध न कर।। ७०।। हे महाराज ! मै आपको वचन देती हूँ। मेरी बात सुने। मै अब फिर कभी आपको 'अप्रिय' नही करूगी।। ७१ ।। यदि इस प्रकार प्रार्थना करने वाली का मेरा कहना नही करेगे, तो मुझे अभी मार कर राजाओ को दे दिया जायगा।। ७२।।]

यह सुन राजा ने "यदि मै इसे कहूगा कि 'तू ही जान' तो इसका हृदय फट जायगा। मै इसे आश्वस्त करूगा" सोच कहा—

**एवं ते याचमानाय किं न काहामि ते वचो**
**वि-कुद्धो त्यास्मि कल्याणि, मा त्वं भायि पभावति ।।७३।।**
**सच्चं ते पटिजानामि राजपुत्ति सुणोहि मे**
**न चापि अप्पियं तुय्हं करेय्यामि अहं पुन ।।७४।।**
**तव कामाहि सुस्सोणि बहुं दुक्खं तितिक्खिस्सं**
**बहू मद्दकुले हन्त्वा नयितुं तं पभावति ।।७५।।**

[इस प्रकार याचना करने पर मै तेरा कहना क्यों न करूगा ? हे कल्याणी! मेरे मन मे तेरे प्रति क्रोध नही है। भयभीत न हो।। ७३।। हे राजपुत्री ! मेरी बात सुन। मै तुझे सच्चा वचन देता हूँ कि अब फिर तुझे "अप्रिय" नही करूगा।। ७४।। हे सुश्रोणी ! तेरी कामना से मै ने मद्दकुल को मारकर तुझे ले जाने मे समर्थ होते हुए भी बहुत दु ख सहन किया।। ७५।।]

देवराज शक्र के परिवार की तरह उसने अपना परिवार देख, क्षत्रिय-मान से अभिभूत हो, राजागन मे सिह की तरह गर्जना की—"मेरे जीते जी, दूसरे मेरी भार्य्या ले जायेगे ! सारे नगर वासी जान ले कि मै आ गया हूं।" इस प्रकार घोषणा करता हुआ, चिल्लाता हुआ और ताली पीटता हुआ बोला, "अब उन्हे जीते जी पकडूंगा। रथादि जोडे जाय।" यह कह कर उसने गाथा कही—

**योजयन्तु रथे अस्से नानाचित्रे समाहिते,**
**अथ दक्खथ मे वेगं विधमेन्तस्स सत्तवो ।।७४।।**

[नाना प्रकार के अलकृत, सुशिक्षित अश्वों को रथ मे जोतो और तब शत्रुओं को विध्वस करने मे मेरा वेग देखो।।७५।।]

उसने उसे विदा किया, "शत्रुओ को पकडना मेरा काम है। तू जा स्नान कर अलकृत हो, प्रासाद पर चढ।" मद्दराजा ने भी उसे ठीक-ठाक करने के लिये आमात्यों को भेजा। उन्होने रसोई-घर के सामने ही कनात तनवा कर नाइयो की व्यवस्था की। हजामत बनवा चुकने पर उसने सिर से स्नान किया और सब अलकारो से अलकृत हो, अमात्यो को साथ ले 'प्रासाद पर चढ़ूगा" कह चारो ओर देख ताली बजाई। जहाँ जहाँ उसकी नजर पडी, सब काँप उठे। वह बोला, "अब मेरा पराक्रम देखो।"

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने आगे की गाथा कही—

**तञ्च तत्थ उदिक्खिंसु रञ्ञो मद्दस्स थीपुरे**
**विजम्भमानं सीहं व पोथेन्तं दिगुणं भुजं ॥७७॥**

[मद्द नरेश क रनिवास की स्त्रियो ने उसे सिह की तरह गरजते और दोनों बाहो को ठोकते हुए देखा॥ ७७॥]

मद्द राजा ने उसके पास स्थिर, अलकृत हाथी भेजा। उसने श्वेत-छत्र युक्त हाथी के कन्धे पर चढ प्रभावती को भी मगाकर पीछे बैठाया और चारो प्रकार की सेना ले, पूर्व द्वार से निकल शत्रु-सेना की ओर देख "मैं कुसराज हूँ, जो जान बचाना चाहे, पेट के बल लेट जायँ" तीन बार सिह-नाद कर शत्रु-मर्दन किया।

[इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—]

**हत्थिक्खन्धं च आरुय्ह आरोपेत्वा पभावतिं**
**संगामं ओतरित्वान सीहनादं नदी कुसो ॥७८॥**
**तस्स तं नदतो सुत्वा सीहस्सेव इतरे मिगा**
**खत्तियापि पलायिंसु कुससद्दभयट्ठिता ॥७९॥**
**हत्थारुहा अनीकट्ठा रथिका पत्तिकारिका**
**अञ्ञमञ्ञस्स खुद्दन्ति कुससद्दभयट्ठिता ॥८०॥**
**तस्मिं संगामसीसस्मिं पस्सित्वा हट्ठमानसो**
**कुसस्स रञ्ञो देविन्दो अदा वेरोचनं मणिं ॥८१॥**
**सो तं विजित्वा संगामं लद्धा वेरोचनं मणिं**
**हत्थिक्खन्धगतो राजा पावेक्खि नगरं पुरं ॥८२॥**

**जीवगाहं गहेत्वान वन्धित्वा सत्तुखत्तिये**
**ससुरस्स उपनायेसि इमे ते देव सत्तवो ॥८३॥**
**सब्बे व ते वसं गता अमित्ता विहता तव,**
**कामं करोहि ते तया, मुञ्च वा ते हनस्सु वा ॥८४॥**

[प्रभावती के साथ हाथी के कन्ध पर बैठकर कुस-राज ने सग्राम मे उतर सिह-नाद किया॥ ७८॥ जिस प्रकार सिह की गर्जना को सुनकर दूसरे जानवर, उसी प्रकार उसकी आवाज सुनकर, कुस-राज की आवाज से भयभीत क्षत्रिय भी भाग गये॥ ७९॥ कुस-राज के शब्द से भयभीत हस्तिआरोही, अश्वारोही, रथारोही तथा पैदल चलने वाले आपस मे एक दूसरे को छेडने लगे। उसी सग्राम-भूमि मे सन्तुष्ट-चित्त देवेन्द्र ने (उसका पराक्रम) देख कुस राजा को वेरोचन मणि दी॥ ८०-८१॥ उसने उस सग्राम को जीतकर वेरोचन मणि प्राप्त की और हाथी पर चढे राजा ने नगर मे प्रवेश किया॥ ८२॥ शत्रु राजाओ को जीते जी पकडकर श्वसुर के सामने ले आया। देव! ये तेरे शत्रु है॥ ८३॥ ये सब वशीभूत हो गये है। अब जो तुम्हारी इच्छा हो करे—मारे चाहे छोडे॥ ८४॥]

राजा बोला—

**तुय्ह एव सत्तवो एते, न हेते मय्हं सत्तवो,**
**त्वञ्ञेव नो महाराज, मुञ्च वा ते हनस्सुवा ॥८५॥**

[ये तेरे ही शत्रु है। ये मेरे शत्रु नही। तू ही हमारा महाराज है, चाहे छोड चाहे मार॥ ८५॥]

ऐसा कहने पर बोधिसत्व ने सोचा, "इन्हे मारने से क्या लाभ! इनका आगमन निरर्थक न हो, प्रभावती से छोटी मद्दराजा की सात कन्याये है। वे इन्हे दिलाऊँगा।" यह सोच यह गाथा कही—

**इमा ते धीतरो सत्त देवकञ्ञासमा सुभा**
**ददाहि तेसं एकेकं, होन्तु जामातरो तवं ॥८६॥**

[ये देवकन्याओ के समान तेरी सात सुन्दर कन्याये है। इन्हे एक एक दे दे। ये तेरे जामाता हो जायँ॥ ८६॥]

राजा ने उत्तर दिया—

**अम्हाकञ्चेव तासं च त्वं नो सब्बेसं इस्सरो,**
**त्वञ्ञेव नो महाराजा, देहि नेसं यदिच्छसि ॥८७॥**

[हमारा और इन सब का तू ही 'ईश्वर' है। तू ही हमारा महाराज है। जो देना चाहे दे॥ ८७॥]

उसने उन सबको अलंकृत करा एक एक राजा को एक एक दिलवाई।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने पाँच गाथायें कहीं—

**एकमेकस्स एकेकं अदा सीहस्सरो कुसो**
**खत्तियानं तदा तेसं रञ्ञो मद्दस्स धीतरो ॥८८॥**
**पीणिता तेन लाभेन तुट्ठा सीहस्सरे कुसे**
**सकरट्ठानि पायिंसु खत्तिया सत्त तावदे ॥८९॥**
**पभावतिं च आदाय मणि वेरोचनं तदा**
**कुसावतिं कुसो राजा अगमासि महब्बलो ॥९०॥**
**त्यस्सु एकरथे यन्ता पविसन्ता कुसावतिं**
**समानवण्णरूपेन न अञ्ञमञ्ञातिरोचिसुं ॥९१॥**
**माता पुत्तेन संगञ्छि उभयो च जयम्पती**
**समग्गा ते तदा आसुं, फीतं धरणिं आवसुं ॥९२॥**

[सिंहस्वर कुसराज ने उन राजाओं में से एक एक को मद्र राजा की एक एक कन्या दी॥ ८८॥ उस लाभ से प्रसन्न हो सिंहस्वर कुसराज के प्रति प्रसन्न चित्त सातों राजा उसी समय अपने अपने राज्य चले गये॥ ८९॥ उस समय महाबलवान कुसराज प्रभावती और वेरोचन मणि को लेकर कुसावती पहुँचा॥ ९०॥ वे एक रथमें बैठकर जाते हुए और कुशावती में प्रविष्ट होते हुए वर्ण और रूपमें समान होनेसे परस्पर एक दूसरे से अधिक नहीं चमक रहे थे॥ ९०॥ माता पुत्र से मिली और तब से वे दोनों पति-पत्नि मिलकर रहे और पृथ्वी धनधान्य पूर्ण रही॥ ९१॥

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यों का प्रकाशन कर जातक का मेल बैठाया।

सत्यों के अन्त मे उद्विग्न-चित्त भिक्षु स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ। उस समय माता पिता महाराज कुल थे। छोटा (भाई) आनन्द था। कुवडी खुज्जुत्तरा थी। प्रभावती राहुल-माता। परिषद् बुद्ध-परिषद। कुस-राज तो मैं ही था।

# ५३२. सोन-नन्द जातक

"देवता नु मि " यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय मातृसेवक भिक्षु के बारे मे कही। कथा साम जातक[1] के समान ही है। उस समय शास्ता ने 'भिक्षुओ, इस भिक्षु को हैरान मत करो। पुराने पण्डितो ने सारे जम्बुद्वीप के राज्य को भी अस्वीकार कर माता-पिता का पोषण किया है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

## क. अतीतकथा

पूर्व समय मे वाराणसी ब्रह्मवर्धन नाम का नगर था। वहाँ मनोज नाम का राजा राज्य करता था। वहाँ एक अस्सी करोड धन वाला महासारवान ब्राह्मण था—पुत्र विहीन। उसकी ब्राह्मणी ने उसी के कहने पर कि "पुत्र की प्रार्थना कर", पुत्र की प्रार्थना की। तब बोधिसत्व ने ब्रह्म-लोक मे च्युत होकर उसकी कोख मे जन्म ग्रहण किया। पैदा होने पर उसका सोनकुमार नाम रखा गया। उसके पैरों से चलने लगने के समय दूसरे प्राणी ने भी ब्रह्म-लोक से च्युत हो उसी की कोख में जन्म ग्रहण किया। पैदा होने पर उसका नाम नन्द कुमार रखा गया। उनके वेद सीख चुकने पर और सब शिल्पो मे पारगत हो जाने पर, उनकी रूप-सम्पत्ति देख ब्राह्मण ने ब्राह्मणी को बुलाकर कहा—"भवति! पुत्र सोन-कुमार को गृहस्थी

---

१. साम जातक (५४०)

के बन्धन मे बाँधे।" उसने 'अच्छा' कह स्वीकार कर पुत्र को यह बात कही। वह बोला--"मुझे गृहस्थी नही चाहिए। मे जीवन भर तुम्हारी सेवा कर, तुम्हारे बाद हिमालय मे प्रविष्ट हो प्रव्रजित होऊंगा।" उसने ब्राह्मण को वह बात कही। बार बार कह कर भी जब वे उसे नही मना सके तो उन्होने नन्द कुमार को बुलाकर कहा--"तो तात! तू ही वश-परम्परा को चालू कर।" वह बोला--"मै भाई द्वारा त्यागे काम-भोगो को सिर पर धारण नही करूँगा। मै भी तुम्हारे न रहने पर भाई के साथ प्रव्रजित होऊंगा।" तब वे सोचने लगे, "ये तरुण होकर भी इस प्रकार काम-भोगो का त्याग करते है। हमारी क्या बात है। हम सभी प्रव्रजित होगे।" उन्होने "तात! हमारे बाद प्रव्रजित होने से क्या, हम सभी अभी प्रव्रजित होगे" कह राजा को सूचना दे, सारा धन दान कर, दासो को मुक्त कर, रिश्तेदारो को देने योग्य दिया। फिर चारो जने ब्रह्मवर्धन नगर से निकल, हिमालय-प्रदेश मे, पाञ्च-पद्मो से ढके तालाब के पास रमणीय वन-षण्ड मे आश्रम बना, प्रव्रजित हो वही रहने लगे। दोनो भाई माता-पिता की सेवा करते। प्रात काल ही उन्हे दातुन और मुह धोने का जल देते। पर्णशाला तथा आँगन साफ करते। पानी लाते। जगल से मीठे फल लाकर माता-पिता को खिलाते। गरम या ठण्डे जल से स्नान कराते। जटाओ को साफ करते। पैर दबाना आदि करते।

इस प्रकार समय के बीतने पर नन्द पण्डित ने अपने ही लाये हुए फलाफल माता पिता को खिलाने के इरादे से, कल और परसो जहाँ से फल इकट्ठे किये थे, उसी स्थान से प्रातःकाल ही जैसे-तैसे फल ला कर माता-पिता को खिलाने आरम्भ किये। वे उन्हे खाकर मुख-प्रक्षालन कर उपोसथ-व्रतधारी हो जाते। सोन पण्डित दूर जाकर मधुर पके फल लेकर आता। वे कहते, "तात! तेरे छोटे भाई द्वारा लाये गये फल प्रात काल ही खाकर हम ने व्रत ग्रहण कर लिया। अब हमे इनकी आवश्यकता नही।" इस प्रकार उसके लाये फलाफल काम में न आते। खराब हो जाते। आगे भी यही होता रहा। वह अपने पाँच प्रकार के ज्ञान के कारण दूर जाकर भी लाता। वे फिर न खाते

तब बोधिसत्व ने सोचा--"मेरे माता पिता सुकुमार है। नन्द जैसे-तैसे कच्चे-पक्के फल लाकर खिला देता है। इस प्रकार तो यह अधिक काल तक न जीने

रह सकेंगे। इसे रोकता हूँ।" उसने कहा—"नन्द! अब से फलाफल लाकर मेरे आने तक प्रतीक्षा किया कर। दोनो मिलकर खिलाया करेंगे।" ऐसा कहने पर भी अपने लिये ही पुण्य की आकाक्षा करने के कारण, उसने वैसा नही किया। बोधिसत्व ने 'नन्द मेरा कहना न मानकर ठीक नही कर रहा है', सोच निश्चय किया, 'इसे भगाऊँगा।" फिर यह सोच कि अकेला ही माता-पिता की सेवा करूँगा, उसने कहा, "नन्द! तुझे उपदेश देना बेकार है। तू पण्डितो का कहना नही करता है। मै ज्येष्ठ हूँ। मेरे ऊपर ही माता-पिता की जिम्मेवारी है। मै ही इनकी सेवा करूँगा। तुझे यहाँ रहना नही मिलेगा। अन्यत्र जा।" यह कह उसे थप्पड (?) मारा। वहाँ से भगा दिये जाने के कारण वह वहाँ न ठहर सका। भाई को प्रणाम करके वह माता-पिता के पास गया और वह बात कह अपनी पर्णशाला मे प्रवेश किया। उसने ध्यान-विधि का अभ्यास कर उसी दिन पाँच अभिज्ञा तथा आठ समापत्तियाँ प्राप्त कर सोचा, "मै सुमेरु-पर्वत के नीचे से रतन-वालु लाकर अपने अपने भाई की पर्णशाला के आगन मे बिखेर कर भाई से क्षमा याचना करने मे समर्थ हूँ। लेकिन यह बहुत शोभनीय नही होगा। अनोतप्त (सर) से जल लाकर क्षमा-याचना करूँगा। यह भी शोभनीय न होगा। यदि मेरा भाई देवताओ से वशीभूत हो क्षमा न करे तो चारो महाराज तथा शक्र को लाकर क्षमा कराऊँगा। यह भी मेरे लिये शोभनीय न होगा। सारे जम्बुद्वीप के महाराज मनोज के साथ अन्य राजाओ को लाकर क्षमा कराऊँगा। ऐसा होने पर मेरे भाई का गुण सारे जम्बुद्वीप मे फैल जायगा। चान्द सूर्य की तरह प्रकट हो जायगा।" वह उसी समय ऋद्धि-बल से ब्रह्म-वर्धन नगर मे उस राजा के दरवाजे पर उतरा और सूचना भिजवाई कि एक तपस्वी भेट करना चाहता है। राजा ने भात भिजवा दिया—"प्रव्रजित मुझसे भेट करके क्या करेगा? आहार के लिये आया होगा।" उसने भात नही लिया। चावल भिजवाया। वस्त्र भिजवाया। नक़द भिजवाया। नक़द की भी इच्छा नही की। तब उसके पास दूत भेजा. "किस लिये आया है?" उसने दूत को उत्तर दिया—"राजा की सेवा करने आया हू।" राजा ने उत्तर भिजवाया—"मेरे सेवक बहुत है। अपना तपस्वी-धर्म करे।" उसने यह बात सुन, कहलाया, 'मै तुम्हारे राजा को अपने बल से सारे जम्बुद्वीप का राज्य लेकर दूँगा।" राजा ने

यह सुना तो सोचा, "प्रव्रजित पण्डित होते है। कोई उपाय जानते होगे।" उसने उसे बुलवाया, आसन दिलवाया और नमस्कार करके पूछा, "भन्ते! आप मुझे सारे जम्बुद्वीप का राज्य लेकर देगे?"

"महाराज! हाँ।"

"कैसे लेगे?"

"महाराज! छोटी मक्खी जितना रक्त पीती है, उतना रक्त भी बिना बहाये, बिना तेरे धन की हानि किये, अपने ऋद्धि-बल से ही लेकर दूगा। केवल बिना विलम्ब किये आज ही निकलने की आवश्यकता है।"

वह उसका विश्वास कर सेना को साथ ले निकला। यदि सेना को गरमी लगती तो नन्द अपने ऋद्धि-बल से छाया करके ठण्डक कर देता, वर्षा होती तो सेना के ऊपर बरसने न देता, गरम हवा को रोक लेता, मार्ग की काँटे, ठूँठ आदि सभी बाधाये हर लेता, रास्ते को कसिण-मण्डल की तरह समतल बना स्वयं आकाश म चर्म बिछा, पालथी मार सेना के आगे आगे जाता। इस प्रकार सेना ले चलकर पहले पहले कोशल राष्ट्र पहुंचा। वहाँ नगर से कुछ ही दूर पर छावनी डाल कोशल-नरेश के पास दूत भिजवाया, "या युद्ध करो, या अधीनता स्वीकार करो।" वह गुस्से हुआ और सेना लेकर आगे बढा, "क्या मै राजा नही हूँ, युद्ध करूँगा।" दोनो सेनाओ मे युद्ध होना आरम्भ हुआ। नन्द ने दोनो सेनाओ के बीच मे जिस अजिन-चर्म पर वह बैठा था, उसे बडा करके फैला दिया। दोनों सेनाओं के फेकें तीरों को चमडे से ही रोक लिया। किसी एक सेना मे से भी किसी एक को भी तीर नही लगा। हाथ के तीर समाप्त होने पर दोनों सेनायें निरुपाय हो गई। नन्द ने कोशल-नरेश के पास जाकर आश्वासन दिया, "महाराज। डरे नही। आप को कोई खतरा नही। आप का राज्य आप का ही रहेगा। केवल मनोज राजा के अधीन हो जाना होगा।" उसने उसका विश्वास कर 'अच्छा' कह स्वीकार किया। उसने उसे मनोज के पास ले जाकर कहा, "महाराज! कोशल-नरेश आप की अधीनता स्वीकार करता है। इसका राज्य इसका ही रहे।" उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। तब दोनों सेनाओ को ले अग राष्ट्र जाकर, अंग को अधीन बनाया और मगध राष्ट्र जाकर मगध को। इस प्रकार सारे जम्बुद्वीप के राजाओं को अपने वश में कर

उन्हें साथ ले ब्रह्मवर्धन नगर ही पहुँचा। राज्य लेने में उसे सात वर्ष, सात महीने और सात दिन लग गये। एक एक राजधानी में उसने नाना प्रकार का खाद्य-भोज्य मगवाया और सौ राजाओं को ले उनके साथ सप्ताह भर तक महापान किया। नन्द ने सोचा, "जब तक राजा सप्ताह भर ऐश्वर्य्य-सुख में मस्त है, तब तक मैं इसे अपने आप को न दिखऊँगा।" वह उत्तर-कुरु में भिक्षा माँग हिमालय में कञ्चन-गुप्त द्वार पर सप्ताह भर रहा। मनोज ने भी सातवें दिन अपने वैभव की ओर देखते हुए सोचा, "यह ऐश्वर्य्य मुझे न माता-पिता से और न अन्य किसी से मिला है। यह नन्द तपस्वी से ही मिला है। किन्तु उसे न देखे आज सातवाँ दिन हो गया है। मेरा वह ऐश्वर्य्य-दायक मित्र कहाँ चला गया ?" जब उसे मालूम हुआ कि राजा उसे याद कर रहा है तो वह सामने आकर आकाश में खड़ा हो गया। राजा ने सोचा, "मैं नहीं जानता कि यह तपस्वी मनुष्य है, अथवा देवता है। यदि यह मनुष्य होगा तो सारे जम्बुद्वीप का राज्य इसे ही दे दूगा। यदि देवता होगा तो इसका देवता-सत्कार करूँगा।" उसने इसकी जाच करने के लिये पहली गाथा कही—

**देवता नु सि गन्धब्बो अदु सक्को पुरिंददो**
**मनुस्सभूतो इद्धिमा कथं जानेमु तं मयं ॥१॥**

[तू देवता है ? तू गन्धर्व है ? तू शक्र है ? अथवा तू ऋद्धिवान् पुरुष है ? हम तुझे क्या समझे ? ॥ १ ॥]

उसकी बात सुन यथार्थ बात कहते हुए उसने दूसरी गाथा कही—

**नम्हि देवो न गन्धब्बो न पि सक्को पुरिंददो**
**मनुस्सभूतो इधिमा, एवं जानाहि भारत ॥२॥**

[न मैं देवता हूँ, न गन्धर्व हूँ और न शक्र ही हूँ। मैं ऋद्धि-प्राप्त मनुष्य हूँ। हे भारत ! तू मुझे ऐसा जान ॥ २ ॥]

यह सुन राजा ने, "यह मनुष्य है, इसने मुझ पर बहुत उपकार किया है, मैं इसे भारी ऐश्वर्य्य से सन्तुष्ट करूँगा" सोच, कहा—

**कतरुपं इधं भोता वेय्यावच्चं अनप्पकं**
**देवम्हि वस्समानम्हि अन्वावस्सं भवं अका ॥३॥**

**ततो वातातपे घोरे सीतच्छायं भवं अका**
**ततो अमित्तमज्झेसु सुरतानं भवं अका ॥४॥**
**ततो फीतानि रट्ठानि वसिनो ते भवं अका**
**ततो एकसतं खत्ते अनुयुत्ते भवं अका ॥५॥**
**पतीत अस्सु मयं भोतो, वर तं भञ्ञं इच्छसि,**
**हत्थियानं अस्सरथं नारियो च अलंकता**
**निवेसनानि रम्मानि मयं भोतो ददामसे ॥६॥**
**अथ [वा] अंगे वा मगधे [वा] मयं भोतो ददामसे,**
**अथ वा अस्सकावन्ति सुमना दम्म ते मयं ॥७॥**
**उपडढं वापि रज्जस्स मयं भोतो ददामसे**
**सचे ते अत्थो रज्जेन, अनुसास यद इच्छसि ॥८॥**

[आपका यह कार्य्य कैसा है कि देव के बरसने होने पर आपने वर्षा रोक दी ॥ ३ ॥ तब आप ने घोर धूप में शीतल छाया कर दी। तब शत्रुओं तथा मध्यस्थों को अपना प्रेमी बना लिया ॥ ४ ॥ तब समृद्धशाली राष्ट्रों को अपने आधीन कर लिया। तब एक सौ राजाओं को अपना अनुयाई बना लिया ॥ ५ ॥ हम आप पर प्रसन्न हैं। जिस वर की इच्छा हो, वह मांगें—हाथी, अश्व, अलंकृत नारियाँ और रमणीय घर। हम आप को सब देंगे ॥ ६ ॥ हम आप को अंग, मगध, अश्मक अथवा अवन्ती राष्ट्र भी देंगे। हम आपको आधा राज्य भी देंगे ॥ ७ ॥ यदि आप को राज्य की इच्छा हो तो कहें ॥ ८ ॥]

यह सुन नन्द ने अपना अभिप्राय प्रकट करते हुए कहा—

**न मे अत्थो हि रज्जेन नगरेन धनेन वा**
**अथो हि जनपदेन अत्थो मय्हं न विज्जति ॥९॥**

[न मुझे राज्य की आवश्यकता है, न नगर की, न धन की और न मुझे जनपद ही चाहिए ॥ ९ ॥]

"यदि तेरे मन में मेरे लिये स्नेह है तो मुझे एक वचन दे" कह गाथायें कहीं—

**भोतो च रट्ठे विजिते अरञ्ञे अत्थि अस्समो,**
**पिता मय्हं जनेत्ती च उभो सम्मन्ति अस्समे ॥१०॥**
**तेसहं पुब्बचरियेसु पुञ्ञं न लभामि कातवे**
**भवन्तं अज्झाचरं कत्वा**
**सोनं याचामु संवरं ॥११॥**

[आप के राज्य मे, आरण्य मे एक आश्रम है। उस आश्रम में मेरा पिता और माता दोनो रहते है। मै अपने एक अपराध के कारण उनकी सेवा नही कर सकता। आप को साथ करके मै उन से क्षमा माँगना चाहता हूँ॥ ११॥]

राजा बोला—

**करोमि ते तं वचनं यं मं भणसि ब्राह्मण**
**एतञ्च खो नो अक्खाहि कीवन्तो भोन्तु याचका ॥१२॥**

[हे ब्राह्मण! जो तू कहता है, मै तेरा वचन करूँगा। यह तू हमें कह। कितने याचक अपेक्षित है? ॥ १२॥]

नन्द पण्डित बोला—

**परोसतं जानपदा महासाला च ब्राह्मणा**
**इमे च खत्तिया सब्बे अभिजाता यसस्सिनो**
**भवं च राजा मनोजो अलं हेस्सन्ति याचका ॥१३॥**

[शताधिक जानपद, शताधिक महासारवान् ब्राह्मण, ये सब यशस्वी अभिजात क्षत्रिय तथा आप भवान राजा मनोज पर्य्याप्त याचक होगे॥ १३॥]

राजा बोला—

**हत्थी अस्से च योजेन्तु रथं सन्नय्ह नं रथि**
**आबन्धनानि गण्हाथ पादासुस्सारयं धजे,**
**अस्समं तं गमिस्सामि यत्थ सम्मति कोसियो ॥१४॥**

[हाथी, घोडों को तैयार करे। रथी! रथ को तैयार करो। हाथी, घोडों आदि के साज-समान लो तथा रथो पर ध्वजा चढ़ाओ। जहाँ कोसिय-गोत्र रहता है, हम उस आश्रम मे जायेगे॥ १४॥]

यह सम्बुद्ध गाथा है—

**ततो च राजा पायासि सेनाय चतुरंगिनी**
**अगमा अस्समं रम्मं यत्थ सम्मति कोसियो ॥१५॥**

[तब चतुरंगिनी सेना के साथ राजा पायासी कोसिय के निवास-स्थान रमणीक आश्रम को गया॥ १५॥]

उस के आश्रम पहुंचने के दिन सोन ने सोचा, "मेरे भाई को निकले सात वर्ष, सात महीने और सात दिन हो गये। वह इस समय कहाँ है?" उसे दिव्य-चक्षु से दिखाई दिया। "चौबीस अक्षोहिणी सेना तथा सौ राजाओं के साथ मुझ से ही क्षमा माँगने के लिये चला आ रहा है।" तब उसने सोचा, "इस परिषद तथा इन राजाओं ने मेरे छोटे भाई द्वारा प्रदर्शित बहुत सी प्रातिहारियाँ देखी होंगी। मेरे प्रताप को न जानने के कारण यह सोच सकते हैं कि यह ढोंगी जटिल अपनी सामर्थ्य नहीं जानता, हमारे आर्य के साथ झगड़ा करता है। इस प्रकार यह मेरी निन्दा करने से नरक-गामी हो सकते हैं। इसलिये मैं इन्हें अपना ऋद्धि-बल दिखाऊंगा।" उसने बैहंगी को कन्धे से बिना स्पर्श किये, चार अंगुल ऊपर रखकर उठाया और अनोतप्त (सर) से पानी लाने के लिये राजा से थोड़ी दूर रह चला। नन्द ने उसे आता देखा तो सामने न हो सकने के कारण, जहां बैठा था वहीं अन्तर-ध्यान हो, भाग कर हिमालय पहुंचा। मनोज राजा ने सुन्दर ऋषी-वेश में उसे आते देखा तो गाथा कही—

**कस्स कादम्बयो काचो वेहासं चतुरंगुलं**
**अंसं असम्फुसं एति उदहारस्स गच्छतो ॥१६॥**

[यह किसकी बैहंगी है, जो पानी लेने जा रहा है और जिसके कन्धे को बिना स्पर्श किये बैहंगी आकाश में चार अंगुल ऊपर ऊपर जा रही है?॥ १६॥]

ऐसा कहने पर बोधिसत्व ने दो गाथायें कहीं—

**अहं सोनो महाराज तापसो सहितंबतो**
**भरामि मातापितरो रत्तिंदिवं अतंदितो ॥१७॥**

**वने फलञ्च मूलञ्च आहरित्वा दिसम्पति**
**पोसेमि मातापितरो पुब्बेकतं अनुस्सरं ॥१८॥**

[महाराज ! मैं व्रती तपस्वी हूं। आलस्य रहित होकर रात दिन माता पिता की सेवा करता हूँ॥ १७॥ हे राजन् ! मैं माता-पिता के पूर्व-उपकार को याद करके वन से फल-मूल लाकर उनका पोषण करता हूं॥ १८॥]

यह सुन राजा ने उसके मन में विश्वास पैदा करने के लिए अगली गाथा कही—

**इच्छाम अस्समं गन्तुं यत्थ सम्मति कोसियो**
**मग्गं नो सोन अक्खाहि येन गच्छेमु अस्समं ॥१९॥**

[मैं उस आश्रम में जाना चाहता हूँ, जहाँ कोसिय रहता है। हे सोन ! मुझे मार्ग बता जिससे आश्रम चलें॥ १९॥]

बोधिसत्व ने अपने प्रताप से आश्रम जाने का रास्ता बना गाथा कही—

**अयं एकपदी राजा येनेतं मेघसन्निभं**
**कोविळारेहि सञ्छन्नं एत्थ सम्मति कोसिय ॥२०॥**

[राजा ! यह पगडण्डी जिस मेघवर्ण कोविळार-पुष्प से आच्छादित कानन को जाती है, वहीं कोसिय रहता है॥ २०॥]

ये अभिसम्बुद्ध गाथायें हैं—

**इदं वत्वान पक्कामि तरमानो महाइसि**
**वेहासे अन्तलिक्खस्मिं अनुसासित्वान खत्तिये ॥२१॥**
**अस्सम परिमज्जित्वा पञ्ञापेत्वान आसनं**
**पण्णसालं पविसित्वा पितरं पटिबोधयि :**
**इमे आयन्ति राजानो अभिजाता यस्सिनो**
**अस्समा निक्खमित्वान निसीद त्वं महा इसे**
**तस्स त्वं वचनं सुत्वा तरमानो महा इसि**
**अस्समा निक्खमित्वान पण्णद्वारम्हि उपाविसि ॥२२-२४॥**

[यह कह कर महान् ऋषि राजा को अनुशासित कर शीघ्रता से आकाश-मार्ग से अन्तरिक्ष में चला गया॥ २१॥उसने आश्रम साफ करके, आसन बिछाकर

पर्णशाला में प्रवेश कर पिता को सूचना दी . हे महान् ऋषि ! ये यशस्वी अभिजात राजागण चले आ रहे है। आप आश्रम से बाहर निकल कर बैठें। उसकी यह बात सुन महान् ऋषि शीघ्रता से आश्रम से निकल पर्णशाला के द्वार पर बैठा ॥२२-२४॥

बोधिसत्व के अनोतप्त (सरोवर) से पानी लेकर आश्रम लौट आने पर नन्द ने भी राजा के पास आ आश्रम से कुछ ही दूर पर छावनी डाली। राजा न स्नान कर, सब अलंकारों से अलंकृत हो, नन्द तपस्वी को साथ ले, बड़े ऐश्वर्य्य के साथ, बोधिसत्व से क्षमा कराने के लिये, आश्रम में प्रवेश किया। उसे वैसे आता देख, बोधिसत्व के पिता ने पूछा। उसने भी उत्तर दिया।

[ इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—]

**तञ्च दिस्वान आयंतं जलन्तरिव तेजसा**
**खत्तसङ्घ परिब्बूळहं कोसियो एतद् अब्रवि ॥२५॥**
**कस्स भेरी मुतिंगा च संखा पणवडेण्डिमा**
**पुरतो पटिपन्नान हासयन्ता रथेसभं ॥२६॥**
**कस्स कञ्चनपट्टेन पुथुना विज्जुवण्णिना**
**युवा कलापसन्नद्धो, को एति सिरिया जलं ॥२७॥**
**उक्कामुखे पहट्ठं व खदिरंगार सन्निभं**
**मुखं चारुरिवाभाति को एति सिरिया जलं ॥२८॥**
**कस्स पग्गहितं छत्तं ससलाकं मनोरमं**
**आदिच्चरंसावरणं, को एति सिरिया जलं ॥२९॥**
**कस्स अंकं परिग्गय्ह वालवीजनिं उत्तमं**
**चरति वरपञ्ञस्स हत्थिक्खन्धेन आयतो ॥३०॥**
**कस्स सेतानि छत्तानि आजानीया च वम्मिता**
**समन्ता परिकिरन्ति, को एति सिरिया जलं ॥३१॥**
**कस्स एकसतं खत्या अनुयुत्ता यस्ससिनो**
**समन्ता अनुपरियन्ति, को एति सिरिया जलं ॥३२॥**
**हत्थि अस्सरथपत्ति सेनाय, चतुरंगिनी**
**समन्ता अनुपरियाति, को एति सिरिया जलं ॥३३॥**

**कस्स एसा महती सेना, पिट्ठितो अनुवत्तति**
**अक्खोभणी अपरियन्ता सागरस्सेव ऊमियो ॥३४॥**

[उसे तेज से प्रकाशमान् की तरह क्षत्रिय-संघ सहित आते हुए देख कोसिय यह बोला॥ २५॥ यह किस राजा को सन्तुष्ट करते हुए भेरी, मृदंग, शंख, ढोल तथा दुन्दुभि आगे आगे बज रहे है ?॥ २६॥ किस तरुण का तूणीर बिजली-समान, विशाल सुनहरी पट्टे से बधा है ? कौन श्री० से प्रकाशित चला आता है ? ॥२७॥ सुनार की अगीठी मे डाले हुए सोने की तरह अथवा खदिरङ्गार की तरह किस का मुँह चमकता है ? कौन श्री० से प्रकाशित चला आता है ? ॥ २८॥ सूर्य्य की रश्मियो से ढका हुआ, मनोरम डण्डी सहित, यह छत्र किस के सिर पर धारण किया हुआ है ? कौन श्री० से प्रकाशित चला आता है ?॥ २९॥ हाथी-कन्धे पर बैठे आते समय, किस श्रेष्ठ प्रज्ञावान् के सिर पर उत्तम पखा झला जाता है ?॥ ३०॥ यह श्वेत छत्र और श्रेष्ठ कवचधारी किसे चारों ओर से घेरे है ? कौन श्री० से प्रकाशित चला आता है ?॥ ३१॥ यह एक सौ यशस्वी क्षत्रिय किसे चारो ओर से घेरे है ? कौन श्री० से प्रकाशित चला आता है ?॥ ३२॥ हाथी, अश्व, रथ तथा पैदल यह चतुरगिनी सेना किसे लिये चली आती है ? कौन श्री० से प्रकाशित चला आता है ?॥ ३३॥ समुद्र की लहरों की तरह यह असीम अक्षोहिणी सेना किसके पीछे पीछे चली आती है ?॥ ३४॥]

सोन ने उत्तर दिया—

**राजाभिराजा मनोजो, इन्दो व जयं-पति**
**नन्दस्स अज्झावारं एति अस्समं ब्रह्मचारिनं ॥३५॥**
**तस्सेसा महती सेना पिट्ठितो अनुवत्तति**
**अक्खोभणी अपरियन्ता सागरस्सेव ऊमियो ॥३६॥**

[इन्द्र के समान विजयी राजाभिराजा मनोज नन्द को मुझ से क्षमा दिलाने के लिये सब्रह्मचारियो के आश्रम आता है॥ ३५॥ समुद्र की लहरो की तरह यह असीम अक्षोहिणी सेना उसी के पीछे पीछे चलती है॥ ३६॥]

शास्ता ने कहा—

**अनुलित्ता चन्दनेन कासिकवत्थधारिनो**
**सब्बे पञ्जलिका हुत्वा इसीनं अज्झुपागमुं ॥३७॥**

[चन्दन अनुलिप्त, काशी वस्त्र धारी वे सभी राजा हाथ जोड़े हुए, ऋषियों के पास आये ॥ ३७ ॥]

तब मनोज राजाने नमस्कार किया और एक ओर खड़े हो कुशल-क्षेम पूछते हुए दो गाथाये कही—

**कच्चि नु भोतो कुसलं, कच्चि भोतो अनामयं**
**कच्चि उञ्छेन यापेथ, कच्चि मूलफला बहू ॥३८॥**
**कच्चि डंसा च मकसा च अप्पं एव सिरिंसपा**
**वने वाळमिगाकिण्णे कच्चि हिंसा न विज्जति ॥३९॥**

[आप सकुशल तो हैं ? आप निरोग तो हैं ? क्या उञ्छाचर्या से जीविका चलती है ? और क्या फलमूल खूब है ? ॥ ३८ ॥ क्या डास, मच्छर और सर्पादि कम है ? क्या मृगो से आकीर्ण जगल मे हिसा नही होती ? ॥ ३९ ॥]

**कुसलं चेव नो राजा अथो राजा अनामयं**
**अथो उञ्छेन यापेम, अथो मूलफला बहू ॥४०॥**
**अथो डंसा च मकसा च अप्पं एव सिरिंसपा**
**वने वाळमिगाकिण्णे हिंसा अम्हं न विज्जति ॥४१॥**
**बहुनि चस्स पूगानि अस्समे सम्मतं इध**
**नाभिजानामि उप्पन्नं आबाधं अमनोरमं ॥४२॥**
**स्वागतं ते महाराज अथो ते अदुरागतं,**
**इस्सरो सि अनुप्पत्तो, यं इध अत्थि पवेदय ॥४३॥**
**तिण्डुकानि पियालानि मधुके कासुमारियो**
**फलानि खुद्दकप्पानि, भुञ्ज राज वरं वरं ॥४४॥**
**इदं पि पानीयं सीतं आभतं गिरिगब्भरा**
**ततो पिव महाराजा सचे त्वं अभिकंखसि ॥४५॥**

[हम सकुशल हैं। हम निरोग है। हम उञ्छा-चर्य्या से काम चलाते है। बहुत फल-मूल है ॥ ४० ॥ और डांस, मच्छर तथा रेंगने वाले जानवर थोडे ही है। मृगाकीर्ण वन मे भी हम मे हिंसा नही है ॥ ४१ ॥ यहाँ आश्रम मे बहुत से आदृत पुरुष है। कभी कोई अमनोज्ञ बाधा उत्पन्न नही हुई है ॥ ४२ ॥ महाराज ! आप का स्वागत है। आप का शुभागमन है। आप हमारे 'ईश्वर' आये है। जो यहाँ करणीय हो, कहे ॥ ४३ ॥ तिन्दुक, पियाल, मधुक तथा कासु-मारिय आदि छोटे कुछ फल है। राजन् अच्छे अच्छे खायें ॥ ४४ ॥ यह गिरि-गह्वर से लाया हुआ शीतल पानी भी है। हे राजन् ! यदि इच्छा हो तो इसका पान करे ॥ ४५ ॥]

राजा बोला—

**पटिग्गहीतं यं दिन्नं च सब्बस्स अग्घियं कतं,**
**नन्दस्सापि निसामेथ वचनं यं सो पवक्खति ॥४६॥**
**अञ्ञावर अम्ह नंदस्स भोतो सेतिकं आगता,**
**सुणातु भवं वचनं नन्दस्स परिसाय च ॥४७॥**

[जो कुछ आपने दिया, वह सब हमने स्वीकार किया। आपने सब के प्रति अमूल्य व्यवहार किया। अब नन्द की बात भी सुने कि यह क्या कहता है ? ॥ ४७ ॥ हम नन्द के साथी होकर आप के पास आये है। आप नन्द और परिषद् का कहना सुने ॥ ४७ ॥]

ऐसा कहे जाने पर नन्द ने भी आसन से उठ माता-पिता तथा भाई को नमस्कार कर, परिषद् के साथ बात चीत करते हुए कहा—

**परोसतं जनपदा महासाला च ब्राह्मणा**
**इमे च खत्तिया सब्बे अभिजाता यसस्सिनो**
**भवं च राजा मनोजो अनुमञ्ञन्तु मे वचो ॥४८॥**
**ये हि सन्ति समीतारो यक्खानि, इध अस्समे**
**अरञ्ञे भूत भव्यानि सुणन्तु वचनं मम ॥४९॥**
**नमो कत्वान भूतानं इसिं वक्खामि सुब्बतं**
**सो त्याहं दक्खिणो बाहु तव कोसिय सम्मतो ॥५०॥**

**पितरं मे जनेतिञ्च भत्तुकामस्स मे सतो**
**वीर पुञ्ञं इदं ठानं, मा मं कोसिय वारय ॥५१॥**
**सब्भि हेतं उपञ्ञातं, यं एतं उपनिस्सज**
**उट्ठानपारिचरियाय दीघरत्तं तया कतं,**
**मातापितुसु पुञ्ञानि मम लोकददो भव ॥५२॥**
**तत्थेव सन्ति मनुजा धम्मे धम्मपदं विदू**
**मग्गो सग्गस्स लोकस्स यथा जानासि त्वं इसे ॥५३॥**
**उट्ठानपारिचरियाय मातापितु सुखावहं**
**तं मं पुञ्ञाभिवारेति अरियमग्गवरो नरो ॥५४॥**

[शताधिक जानपद और महा सारवान् ब्राह्मण, ये सभी यशस्वी अभिजात क्षत्रिय तथा आप राजा मनोज मेरे कथन का समर्थन करें ॥ ४८ ॥ इस आश्रम में जितने यक्ष आये हैं और आरण्य में जितने भव्य भूत हैं, वे भी मेरा कहना सुनें ॥४९॥ मैं भूतों को नमस्कार करके सुव्रती ऋषि से निवेदन करता हूँ : हे कोसिय ! मैं उसकी दाहिनी भुजा हूँ ॥ ५० ॥ पिता तथा माता की सेवा करने की इच्छा रखने वाले मुझ को हे कोसिय ! वैसा करने से न रोकें, क्योंकि यह पुण्य-लाभ का मार्ग है ॥ ५१ ॥ सभी ने इसकी प्रशंसा की है। तू (माता पिता की सेवा का कार्य) मुझे सौंप दे। तू ने दीर्घ काल तक माता-पिता की सेवा की। माता पिता की सेवा पुण्य-लाभ कराती है। इस प्रकार तू मेरा (स्वर्ग) लोक का दाता हो जा ॥ ५८ ॥ हे ऋषि ! जैसे तू स्वर्ग के मार्ग को जानता है, उसी प्रकार दूसरे भी लोग धर्म में धर्म-स्थान को जानने वाले हैं ॥ ५३ ॥ माता पिता की सेवा सुखावह होती है। उस पुण्य से तू मुझे रोकता है। तू आर्य-मार्ग में बाधक होता है ॥५४॥]

इस प्रकार नन्द के कहने पर बोधिसत्व ने कहा 'तुमने इसका कहना सुन लिया, अब मेरा भी कहना सुनें' कह सुनाते हुए कहा—

**सुणन्तु भोन्तो वचनं भातुर अञ्ञावरा ममः**
**कुलवंसं महाराज पोराणं परिहापयं**
**अधम्मचारि जेट्ठेसु निरयं सो उपपज्जति ॥५५॥**

**यो च धम्मस्स कुसला पोराणसस्स दिसम्पति**
**चारित्तेन च सम्पन्ना न ते गच्छन्ति दुग्गतिं ॥५६॥**
**माता पिता च भाता च भगिनी ञाति बन्धवा**
**सब्बे जेट्ठस्स ते भारा, एवं जानाहि भारत ॥५७॥**
**आदियित्वा गरूं भारं नाविको विय उस्सहे,**
**धम्मं च नप्पमज्जामि, जेट्ठो चस्मि रथेसभ ॥५८॥**

[आप सब लोग जो मेरे भाई के समर्थक हैं, मेरा कहना सुनें। महाराज ! जो पुरानी परम्परा को तोड़ अपने से ज्येष्ठ के प्रति अधर्माचरण करता है, वह नरक में उत्पन्न होता है ॥ ५५ ॥ हे राजन् ! जो परम्परागत धर्म में कुशल हैं और आचारवान् हैं वे दुर्गति को प्राप्त नहीं होते ॥ ५६ ॥ हे भारत ! यह समझ कि माता-पिता, भाई बहन तथा ज्ञाति-बन्धु सभी ज्येष्ठ पर ही भार होते हैं ॥ ५७ ॥ जिस प्रकार नाविक भारी नौका को ढोने का प्रयत्न करता है, उसी प्रकार मैं धर्म में प्रमाद नहीं करता हूं। हे रथेसभ ! मैं ज्येष्ठ हूं ॥ ५८ ॥]

यह सुन सभी राजा सन्तुष्ट हुए और बोले कि आज हमने जाना कि बड़े भाई पर सभी का भार होता है। उन्होंने नन्द का पक्ष छोड़ बोधिसत्व के आश्रित हो उसकी प्रशंसा करते हुए दो गाथायें कहीं—

**अधितम्ह तमे ञानं जालं व जातवेदतो**
**एवमेव नो भवं धम्मं कोसियो पविदंसयि ॥५९॥**
**यथा उदधिं आदिच्चो वासुदेवो पभंकरो**
**पाणिनं पविदंसेति रूपं कल्याणपापकं**
**एवमेव नो भवं धम्मं कोसियो पविदंसयीति ॥६०॥**

[आज हम ने अन्धकार में ज्ञान को इस प्रकार प्राप्त कर लिया जैसे अग्नि की ज्वाला को। इसी प्रकार आप कोसिय ने हमें धर्म का ज्ञान कराया ॥ ५९ ॥ जैसे समुद्र में से उत्पन्न होने वाला प्रभास्वर वासुदेव सूर्य्य प्राणियों को सभी अच्छे-बुरे रूपों का दर्शन कराता है, उसी प्रकार आप कोसिय ने हमें धर्म का ज्ञान कराया ॥ ६० ॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने उन सभी राजाओ को जो नन्द की प्रातिहारी देख अभी तक उसके प्रति श्रद्धावान् थे, ज्ञान-बल से, उस की ओर से विमुख कर, अपनी ओर कर लिया। तब नन्द ने यह समझ कि "मेरा भाई पण्डित है, व्यक्त है, धर्मकथिक है, इसने सभी राजाओ को अपनी ओर कर लिया है, इसे छोड और कोई मेरा शरण दाता नही है, मै उसी से प्रार्थना करूंगा" गाथा कही—

**एवं मे याचमानस्स अज्जलिं नावबुज्झसि,**
**तव बद्धञ्चरो हेस्सं वुट्ठितो परिचारको ॥६१॥**

[इस प्रकार मेरे क्षमा याचना करने पर भी यदि आप मुझे क्षमा नही करते है, तो मै आपका ही आज्ञाकारी सेवक बनूगा ॥ ६१ ॥]

बोधिसत्व के मन मे स्वभाव से भी नन्द के प्रति वैर अथवा रोष नही था। अति कठोर वाणी उस का मान मर्दन करने के लिए तथा उसका निग्रह करने के लिये ही थी। वैसा करके, अब उसका कहना सुन, प्रसन्न-चित्त हो, उसके प्रति स्नेह उत्पन्न कर "अब तुझे क्षमा करता हूँ, अब तू माता-पिता की सेवा भी कर सकेगा" कह, उसका गुण प्रकाशित करते हुए कहा—

**अद्धा नन्द विजानासि सद्धम्मं सब्भि देसितं,**
**अरियो अरियसमाचारो, बाळहं त्वं मम रुच्चसि ॥६२॥**
**भवन्तं वदामि भोतिञ्च सुणोथ वचनं मम**
**नायं भारो भारमतो अहु मय्हं कुदाचनं ॥६३॥**
**तं मं उपट्ठितं संतं मातापितुसुखावहं**
**नन्दो अञ्ञावरं कत्वा उपट्ठानाय याचति ॥४॥**
**यो वे इच्छति कामेन सन्तानं ब्रह्मचारिनं**
**नन्दं वो वदथ एके कं नन्दो उपतिट्ठतु ॥६५॥**

[निश्चय से नन्द तू सत्पुरुषो द्वारा उपदिष्ट धर्म को पहचानता है। तू श्रेष्ठ है। तेरा आचरण श्रेष्ठ है। तू मुझे और भी रुचता है॥ ६२ ॥ मै पिता-श्री तथा माता-श्री से निवेदन करता हूँ। मेरा कहना सुने। आप की सेवा मुझे कभी भार नही हुई॥ ६३ ॥ माता-पिता की सुखदायक सेवा करते हुए मुझ से

नन्द सिफारिश लाकर सेवा कर सकने की याचना करता है ॥ ६४ ॥ हम दोनों ब्रह्मचारियों में से आप कहें कि नन्द आप दोनों में से किस एक की सेवा करे ॥६५॥]

तब माता ने आसन से उठ कहा, "तात सोन! छोटा भाई चिरकाल से बाहर रहा है। तो भी मैं उससे याचना नहीं कर सकती। हम तेरे भरोसे ही रहे हैं। अब तू ने आज्ञा दे दी है। मैं चाहती हूँ कि मैं इस ब्रह्मचारी को बाहों में लेकर इस का सिर सूघूं।" इस अर्थ को प्रकाशित करती हुई वह बोली—

**तया तात अनुञ्ञाता सोन तं निस्सितामयं,**
**उपघातुं लभे नन्दं मुद्धनि ब्रह्मचारिनं ॥६६॥**

[तात सोन! तेरी अनुज्ञा हो गई है। हम तेरे ही भरोसे हैं। हमें ब्रह्मचारी नन्द के सिर को सूघना मिले ॥ ६६ ॥]

बोधिसत्व ने कहा, "तो माँ! अनुज्ञा है। तू जाकर पुत्र नन्द का आलिंगन कर, सिर को सूंघ, चूम, अपने हृदय के शोक को शांत कर।" वह उसके पास पहुँची और नन्द का सभा के बीच में ही आलिंगन कर, सिर सूघ तथा चुम्बन ले उसने अपने हृदय के शोक को शान्त कर बोधिसत्व के साथ, बातचीत करते हुए गाथायें कहीं—

**अस्सत्थस्सेव तरुणं पवाळं मालुचेतेरितं**
**चिरस्सं नन्दं दिस्वान हृदयं मे पवेधति ॥६७॥**
**यदा सुत्तापि सुप्पन्ते नन्द् पस्सामि आगतं**
**उदग्गा सुमदा होमि नन्दो नो आगतो अयं ॥६८॥**
**यदा च पटिबुज्झित्वा नन्दं पस्सामि नागतं**
**भिय्यो आविसती सोको दोमनस्सञ्चानप्पकं ॥६९॥**
**साहं अज्ज चिरस्सं पि नन्दं पस्सामि आगतं,**
**भत्तुच्च मय्यंञ्च पियो नन्दो नो पाविसी घरं ॥७०॥**
**पितु पि नन्दो सुप्पियो, यं नन्दो पाविसी घरं**
**लभतु तात नन्दो तं यं नन्दो उपतिट्ठतु ॥७१॥**

[जैसे हवा से चालित तरुण अश्वत्थ की कोपल काँपती है, उसी प्रकार आज चिरकाल के बाद नन्द को देखकर मेरा हृदय काँप रहा है ॥ ६७ ॥ जब सोते समय

स्वप्न में भी नन्द को आया हुआ देख लेती थी तो मैं प्रसन्नता से व्यग्र होकर उठ जाती थी। यह हमारा नन्द आ गया ॥ ६८ ॥ जब जागकर नन्द को आया हुआ नहीं देखती थी, तो शोक और भी बढ जाता था तथा बहुत दुःख होता था ॥ ६९ ॥ आज मैं चिरकाल के बाद नन्द को घर मे आया हुआ देखती हूँ। स्वामी का तथा मेरा प्रिय नन्द आज घर आया है ॥७०॥ जो नन्द घर आ गया है, वह पिता को भी सुप्रिय है। हे तात ! नन्द जो चाहता है उसे मिले और नन्द मेरी सेवा करे ॥७१॥]

बोधिसत्व ने "ऐसा हो" कह माता की आज्ञा शिरोधार्य की और नन्द को उपदेश देते हुए कहा, "नन्द ! तुझे बडा हिस्सा मिल गया है। माता के अनन्त गुण हैं। अप्रमादी होकर सेवा करना।" फिर माता के गुणो को प्रकाशित करते हुए दो गाथायें कहीं—

**अनुकम्पका पतिट्ठा च पुब्बे रस ददी च नो**
**मग्गो सग्गस्स लोकस्स माता ते वरते इसे ॥७२॥**
**पुब्बे रसददी गोत्ती माता पुञ्ञयूपसंहिता**
**मग्गो सग्गस्स लोकस्स माता तं वरते इसे ॥७३॥**

[हे ऋषी ! जो अनुकम्पा करने वाली है, जो प्रतिष्ठा है, तो (क्षीर रूपी) रस की प्रथम दायिका है तथा जो स्वर्ग-लोक का मार्ग है, वह माता तेरा चुनाव करती है ॥ ७२ ॥ प्रथम (क्षीर रूपी) रस का पान कराने वाली, रक्षा करने वाली पुण्य-दायिका तथा स्वर्ग-लोक का मार्ग जो माता है, वह हे ऋषि तेरा चुनाव करती है ॥ ७३ ॥]

इस प्रकार दो गाथाओ मे माता का गुण प्रकाशित कर, फिर उसके आकर आसन पर बैठने पर, कहा—"नन्द ! तुझे बडी दुष्कर क्रिया करने वाली माता का लाभ मिला है। हम दोनो को ही मा ने बडे कष्ट से पाला है। अब तू अप्रमादी होकर उसकी सेवा कर। उसे अमधुर फलाफल मत खिलाना।" यह कह सभा के ही माता की दुष्कर-क्रिया का प्रकाशन किया—

**आकंखमाना पुत्तफलं देवताय नमस्सति**
**नक्खत्तानि च पुच्छति उतुसंवच्छरानि च ॥७४॥**

तस्सा उतुसिनाताय होति गब्भस्स अवक्कमो
तेन दोहळिनी होति, सुहदा तेन वुच्चति ॥७५॥
संवच्छरं वा ऊनंवा परिहरित्वा विजायति,
तेन सा जनयन्ती जनेत्ती तेन वुच्चति ॥७६॥
थनखीरेन गीतेन अंगपापुरणेन च,
रोदन्तं एव तोसेति, तोसेन्ती तेन वुच्चति ॥७७॥
ततो वातातपे घोरे मामिकत्वाव दारकं
अप्पजानन्तं पोसेति, पोसेन्ती, तेन वुच्चति ॥७८॥
यंच मातु धनं होति, यं च होति पितू धनं
उभयं एतस्स गोपेति, अपि पुतस्स नो सिया ॥७९॥
एवं पुत्त अदू पुत्त इति माता विहञ्ञति
पमत्तं परदारेसु निसीथे पत्तयोब्बने
सायं पुत्तं अनायन्तं इति माता विहञ्ञति ॥८०॥
एवं किच्छा भतो, पोसो, मातु अपरिचारको
मातरि मिच्छा चरित्वान निरयं सो उपपज्जति ॥८१॥
एवं किच्छा भतो पोसो पितु अपरिचारको
पितरि मिच्छा चरित्वान निरयं सो उपपज्जति ॥८२॥
धनापि धनकायानं नस्सति इति मे सुतं,
मातरं अपरिचरित्वान किच्छं वा सोनिगच्छति ॥८३॥
धनंपि धनका यानं नस्सति, इत मे सुत
पितरं अपरिचरित्वान किच्छं वा सोनिगच्छति ॥८४॥
आनन्दो च पमादो च सदा हसितं कीळितं
मातरं परिचरित्वान लब्भं एतं विजानतो ॥८५॥
आनन्दो च पमादो च सदा हासित कीलितं
पितरं परिचरित्वान लब्भं एतं विजानतो ॥८६॥
दानं च पेय्यवासं च अत्थचर्या च या इध
समानत्ताच धम्मेसु तत्थ तत्थ यथारहं

**एते खो संगहा लोके रथस्साणीव यायतो,**
**एतेव संगहा नास्सु न माता पुत्त कारणा ॥८७-८८॥**
**लभेथ मानं पूजं च पितावं पुत्तकारणा**
**यस्माच संगहा एते समवेक्खन्ति पंडिता ॥८९॥**
**तस्मा महन्तं पप्पोन्ति पासंसा च भवन्तिते,**
**ब्रह्मा हो माता पितरो पुब्बाचरियानि वुच्चरे ॥९०॥**
**आहुनेय्या च पुत्तानं पजाय अनुकम्पका**
**तस्मा हि ते नमस्सेय्य सक्करेय्याथ पंडितो ॥९१॥**
**अनेन मथोपानेन वत्थेन सयनेन च**
**उच्छादनेन नहापनेन पादानं धोवनेन च**
**ताय नं परिचरियाय मातापितुसु पंडिता**
**इधचेव नं पसंसंति पेच्च सग्गे च मोदति ॥९२-९३॥**

[पुत्र की इच्छा करती हुई वह देवताओ को नमस्कार करती है, नक्षत्रो के बारे मे, ऋतु के बारे मे तथा वर्ष के बारे मे पूछती है ॥ ७४ ॥ उसके ऋतुनी होने पर गर्भस्थापित होता है। उसमे वह दोहद-वाली और सुहृदा कहलाती है ॥ ७५ ॥ वर्ष भर या कम, गर्भ धारण किये रहकर वह जन्म देती है, उसी से वह जननी है, और इसी कारण से जननी कहलाती है ॥ ७६ ॥ स्तन-पान कराके, गाकर तथा अग सचालन द्वारा वह रोते हुए को सतुष्ट करती है, इसीलिये वह सतुष्ट करने वाली कहलाती है ॥ ७७ तब ममत्व के साथ भोले बच्चे की घोर हवा-धूप से रक्षा करती हुई उसका पोषण करती है, इसलिये पोषण करने वाली कहलाती है ॥ ७८ ॥ जो माता का धन होता है, और जो पिता का धन होता है, वह दोनो की रक्षा करती है कि यह मेरे पुत्र का धन होगा ॥ ७९ ॥ इस प्रकार पुत्र को अमुक अमुक कर्म करने की शिक्षा देती हुई माता कष्ट पाती है, यौवन-प्राप्त होने पर रात्रि को पर-स्त्री गमन करने वाले पुत्र के, शाम को घर लौट कर न आने पर माता कष्ट पाती है ॥ ८० ॥ इस तरह कठिनाई से पोषण किया हुआ पुरुष जब माता की सेवा नही करता तो वह नरक मे उत्पन्न होता है ॥ ८१ ॥ इस तरह कठिनाई से पोषण किया गया पुरुष जब पिता की सेवा नही करता, तो वह नरक मे उत्पन्न

होता है ॥ ८२ ॥ मैंने सुना है कि माता की सेवा न करने वाले धन-कामियों का धन भी चला जाता है, अथवा वे कष्ट को प्राप्त होते है ॥ ८३ ॥ मैंने सुना है कि पिता की सेवा न करने वाले धन-कामियों का धन भी चला जाता है, अथवा वे कष्ट को प्राप्त होते हैं ॥ ८४ ॥ माता की सेवा करने वाले बुद्धिमान आदमियों को आनन्द, मस्ती और हसना-खेलना सदा मिलता है ॥ ८५ ॥ पिता की सेवा करने वाले बुद्धिमान आदमियों को आनन्द, मस्ती और हसना खेलना सदा मिलता है ॥ ८६ ॥ दान, प्रियवचन, परोपकार तथा यथायोग्य समानता का व्यवहार ये चलते रथ की अणी की तरह सग्रह-वस्तुये है। यदि ये सग्रह-वस्तुये न हो तो न माता को पुत्र के कारण सम्मान अथवा पूजा की प्राप्ति हो सकती है और न पिता को पुत्र के कारण से। क्योंकि ये सग्रह-वस्तुये है, इसीलिये पण्डित जन अच्छी तरह देखते है ॥ ८९ ॥ इसलिये माता पिता महत्व को प्राप्त होते है, प्रशसनीय होते है, वे ब्रह्मा है और वे ही प्रथम-आचार्य्य कहलाते है ॥ ९० ॥वे पुत्रो द्वारा आदरणीय होते है, सन्तान पर अनुकम्पा करने वाले होते है, इसलिये पण्डित को चाहिये कि उन्हे नमस्कार करे तथा उनका आदर करे ॥ ९१ ॥ जो पण्डित-जन अन्न से पान से, वस्त्र से, शयनासन से, मालिश से, स्नान से, और पाव धोने आदि से माता-पिता की सेवा करता है। यहा उसकी प्रशसा होती है और वह स्वर्ग मे जाने पर आनन्द को प्राप्त होता है ॥ ९२-९३ ॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने सुमेरु पर्वत उलटने के समान धर्मोपदेश को समाप्त किया। यह सुन सभी राजा तथा सारी सेनाये प्रसन्न हुई। उन्हे पाच शीलो मे प्रतिष्ठित कर प्रेरित किया कि दानादि मे अप्रमादी रहे। उन सभी ने धर्मानुसार राज्य कर आयु पूरी होने पर स्वर्ग लाभ किया। सोन तथा नन्द आयु भर माता-पिता की सेवा करते रह कर ब्रह्मलोक-गामी हुए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यो को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यो का प्रकाशन हो जाने पर मातृ-सेवक भिक्षु स्रोतापत्ति फल मे प्रतिष्ठित हुआ। उस समय के माता-पिता महाराज-कुल ही थे, नन्द आनन्द था, मनोजराजा सारि-पुत्र, एक सौ राजा अस्सी महास्थविरगण तथा दूसरे स्थविर थे, चौबीस अक्षोहिणी सेना बुद्ध-परिषद। सोन पण्डित तो मै ही था।

# इक्कीसवाँ परिच्छेद

## अस्सीवाँ वर्ग

### ५३३. चुल्लहंस जातक

"सुमुखा "यह शास्ता ने वेळुवन मे विहार करते समय आयुष्मान आनन्द के आत्म-बलिदान के बारे मे कही।

### क. वर्तमान कथा

देवदत्त ने जिस धनुर्धारी को पहली बार, तथागत की जान लेने के लिये भेजा था उसने लौटकर कहा, "भन्ते! मै भगवान् की जान नही ले सकता। वह भगवान् महान् ऋद्धिवान् है, महान् प्रताप वाले है।" देवदत्त बोला, "आवुस! रहने दे। तू श्रमण गोतम की जान मत ले, मै ही उसकी जान लूगा।" इतना कह, उसने जिस समय तथागत गृध्र-कूट पर्वत के पीछे छाया मे चन्क्रमण कर रहे थे, गृध्र-कूट पर्वत पर चढ पूरे जोर से एक बडी भारी शिला गिरा दी—'इस शिला से मै श्रमण गोतम की जान लूगा।" दो-पर्वत-शिखरो ने आकर उस शिला को रोक लिया। उस शिला मे से एक पपटिका उछलकर, जाकर, भगवान् के पैरो मे लगी। उसने खून निकाल दिया। बडी पीडा हुई। जीवक ने तथागत के पाँव की शल्य-चिकित्सा कर, खराब खून निकाल, सडा हुआ मास काट, दवाई लगा, उसे निरोग किया। शास्ता पूर्ववत् भिक्षु सघ सहित महान् बुद्ध-लीला के साथ विचरने लगे।

यह देवदत्त ने सोचा, "श्रमण गोतम के शरीर के सौन्दर्य्य के कारण कोई मनुष्य उनके पास नही फटक सकता। राजा का नालागिरि नामक हाथी चण्ड-स्वभाव का है। वह बुद्ध, धर्म तथा सघ के गुणो से अपरिचित होने के कारण श्रमण गोतम

को जान से मार देगा।" उसने जाकर वह बात राजा से कही। राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और हथवान को बुलाकर आज्ञा दी, "सौम्य, कल नाळागिरि को मद-मस्त करके प्रातःकाल ही श्रमण-गौतम के आन जाने की गली मे छोड देना।" देवदत्त ने भी उसे पूछा, "और दिनो मे हाथी कितने घडे सुरा पीता है?" उत्तर मिला, "आठ घडे।" देवदत्त बोला—"कल सोलह घडे पिलाकर श्रमण-गोतम की गली मे सामने करना।" उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। राजा ने नगर मे मुनादी करा दी, "कल नाळागिरि को मद-मत्त करके नगर मे छोडा जायगा। नागरिक प्रातःकाल ही सब काम कर निपटा ले। कोई गली मे न निकले।"

देवदत्त न भी राज-भवन से उतर हस्ति-शाला जा हाथी रक्षको को बुलाकर कहा—"हम उच्च पदस्थ को नीचे कर देने मे समर्थ है। यदि तुम्हे ऐश्वर्य्य चाहिये तो कल प्रातःकाल ही नाळागिरि को तेज शराब के सोलह घडे पिलाकर, श्रमण गोतम के आने के समय तीक्ष्ण अंकुश से बीध कर, क्रोधित कर हस्ति-शाला तुडवा, श्रमण-गोतम के जाने की गली मे सामने कर, श्रमण गोतम को जान से मरवा डालो।" उन्होने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। यह समाचार सारे नगर मे फैल गया। बुद्ध धर्म तथा सघ के प्रति ममत्व की भावना रखने वाले उपासको ने जब यह समाचार सुना तो शास्ता के पास जा निवेदन किया—"भन्ते! देवदत्त राजा के साथ मिल-कर कल आपके आने जाने की गली मे नालागिरि को छोडेगा। कल भिक्षाटन के लिये न जा यही रहे। हम विहार ही मे बुद्ध-प्रमुख भिक्षुसघ को भिक्षा देगे।" शास्ता ने "कल भिक्षाटन के लिये जाऊँगा" न कह, और यह सोचा कि "मै कल नाळागिरि का दमन कर, प्रातिहारि दिखा, तैथिको का मर्दन कर, बिना राजगृह मे भिक्षाटन किये ही, भिक्षु-सघ सहित नगर से निकल वेळुवन जाऊँगा। राजगृह वासी भी बहुत से भात-के-बरतन ले वेळुवन ही जायेगे। कल विहार मे भोज होगा" उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। वे यह जान कि तथागत ने उनकी प्रार्थना मान ली है, भात के बरतन लिवा विहार मे ही दान देने के इरादे से चले गये।

शास्ता ने भी (रात्रि के) प्रथम याम मे धर्मोपदेश दे, दूसरे याम मे प्रश्नो का उत्तर दे, तीसरे याम के पहले हिस्से मे सिह-शैय्या मे लेट, दूसरे हिस्से मे समाधिस्थ रह, तीसरे हिस्से मे महा-करुण-भावना से अभिभूत हो विचार किया कि आज

किन किन प्राणियो को बोध करा सकूगा। उन्होंने देखा कि नाळागिरि का दमन करने से चौरासी हजार प्राणियो की धर्म की आँख खुल जायगी। रात्रि की समाप्ति पर प्रभात होते ही प्रातःकृत्य कर चुकने के अनन्तर उन्होने आयुष्मान् आनन्द को बुलाकर आज्ञा दी—"आज राजगृह की सीमा मे सभी अठारह विहारों के भिक्षु मेरे साथ राजगृह मे प्रवेश करे।" स्थविर ने वैसी सूचना दे दी। सभी भिक्षु वेळुवन मे इकट्ठे हो गये। महान् भिक्षु सघ सहित शास्ता ने राजगृह मे प्रवेश किया। हाथियो के झुण्ड योजनानुसार आ पहुँचे। बडी भीड़ हो गई। जो श्रद्धावान थे, वे यह सोच, "आज बुद्ध-नाग का पशु-नाग के साथ मुकाबला है। अनुपम बुद्ध-लीला से नाळागिरि का दमन देखेगे" प्रासाद, हर्म तथा घरो की छत पर चढ़ बैठे। जो अश्रद्धावान् मिथ्या-दृष्टि वाले थे, उन्होने सोचा,"नाळागिरि चण्ड है, कठोर है, वह बुद्ध आदि का गुण नही जानता। वह आज श्रमण-गोतम के स्वर्ण-वर्ण का नाश कर उसे जान से मार डालेगा। आज शत्रु की पीठ देखने को मिलेगी।" वे भी प्रासाद आदि पर चढ़ बैठे। हाथी ने भी जब भगवान् को आते देखा तो मनुष्यो को त्रास दे, घरों को उजाड, गाडियों को चूर्ण-विचूर्ण कर, सूण्ड को ऊपर उठा, कान तथा पूँछ को खडा किया और पर्वत के समान बढता आता हुआ जहाँ भगवान् बुद्ध थे वहाँ पहुँचा। यह देख भिक्षु भगवान् से बोले—"भन्ते! यह नाळागिरि, चण्ड है, कठोर है, मनुष्यो की हत्या करने वाला है, यह इस रास्ते आ रहा है। यह बुद्ध आदि के गुण से अपरिचित है, भन्ते भगवान लौट पडे, सुगत लौट पड़े।"

"भिक्षुओ, डरो मत। मै नाळागिरि का दमन करने मे समर्थ हूँ।"

तब आयुष्मान् सारिपुत्र ने शास्ता से प्रार्थना की—

"भन्ते! पिता के काम का भार बडे लडके पर आकर पडता है। मै इसका दमन करता हूँ।"

शास्ता ने मना किया—

"सारिपुत्र! तू रुक। बुद्ध-बल दूसरी चीज है। श्रावक-बल दूसरी चीज है।"

इस प्रकार सभी अस्सी महास्थविरो ने प्रार्थना की। शास्ता ने सभी को मना किया। शास्ता के प्रति अत्यन्त स्नेह होने के कारण आयुष्मान् आनन्द सहन नही कर सके। 'यह हाथी पहले मुझे मार डाले,' इस प्रकार तथागत के लिये जीवन-

त्याग कर शास्ता के आगे जाकर खडे हो गये। शास्ता ने मना किया—"आनन्द! हट मेरे सामने न खडा हो।"

"भन्ते! यह हाथी चण्ड है, कठोर है, मनुष्य-हत्यारा है, कल्प के अन्त मे उठने वाली आग के समान है, पहले यह मुझे मार डाले, तब आप के पास आये।"

तीन बार मना करने पर भी उसी जगह खडे रहे। वहाँ से हिले नही। भगवान् ने आनन्द को ऋद्धि-बल से हटाकर और भिक्षुओ के बीच पहुँचा दिया।

उसी समय नाळागिरि को देख मृत्यु-भय से भीत एक स्त्री भागती भागती आई और गोदी के बच्चे को हाथी तथा तथागत के बीच छोड भाग गई। हाथी उसका पीछा करते हुए बच्चे के समीप आया। बच्चा जोर से चिल्लाया। शास्ता ने नाळागिरि को मैत्री-भावना से अभिभूत कर सुमधुर ब्रह्म-स्वर से बुलाया—"भो! नाळागिरी! तुझे सोलह घडे सुरा पिलाकर मद-मत्त करने वालो ने यही सोचकर मदमत्त किया कि तू किसी और को नही धरेगा, मुझे ही धरेगा। व्यर्थ जाघो को कष्ट देता हुआ मत विचर। यहाँ आ।" वह शास्ता की वाणी सुन, आँखे खोलकर, भगवान् का रूप-सौन्दर्य्य देख, सवेग को प्राप्त हुआ। बुद्ध तेज से उसका नशा जाता रहा। वह सूण्ड लटका कर, कानो को चलाकर, जाकर तथागत के चरणों मे गिर पडा। शास्ता ने उसे कहा—"नाळागिरी! तू पशु-हाथी है। मैं बुद्ध-हाथी हूँ। अब से तू चण्ड मत रह। कठोर मत रह। मनुष्य-घातक मत रह। मैत्री-चित्त का लाभ कर।" फिर दाहिना हाथ बढा सूण्ड पर फेरते हुए धर्मोपदेश दिया—

**मा कुञ्जर नागं आसदो**
**दुक्खो हि कुञ्जर नागमासदो**
**न हि नागहतस्स कुञ्जर**
**सुगती होति इतो परायनो**
**मा च मदो मा च पमादो**
**न हि पमत्ता सुगतिं वजन्ति,**
**तेन त्वञ्ञेव तथा करिस्ससि**
**येन त्वं सुगतिं गमिस्ससि॥**

[ हे कुञ्जर नाग ! इस चक्कर में मत पड। हे कुञ्जर नाग ! इस चक्र मे पड़ने से दुःख होता है । हे कुञ्जर ! नाग से मारे गये की परलोक मे सुगति नही होती । मद मत कर । प्रमाद मत कर । प्रमादी सुगति-प्राप्त नही होते । इसलिए तुझे ही वैसा आचरण करना होगा जिससे तू सुगति लाभ कर सके ॥ ]

उसका सारा शरीर नित्य-प्रीति से स्पर्श हो रहा था । यदि नाळागिरि पशु न होता तो स्रोतापत्ति फल को प्राप्त हो गया होता । मनुष्यो ने यह प्रातिहारी देखी तो निनाद किया, ताली बजाई, सौमनस्य के मारे नाना प्रकार के आभरण उछाले । उनसे हाथी का शरीर ढक गया । तब से नाळागिरि का नाम धन-पालक हो गया । इस धन-पालक के समागम में चौरासी हजार प्राणियों ने अमृत लाभ किया । शास्ता ने धन-पालक को पाञ्च शीलो मे प्रतिष्ठित किया । धन-पालक ने तथागत के चरणो की धूल सुण्ड मे लेकर अपने सिर पर बिखेरी, झुका और मुड़कर दर्शन करने की मुद्रा मे खडे हो, उस वल को प्रणाम किया और रुक कर हस्ति-शाला मे ही चला गया । उसके बाद से वह शात तथा सयत हो गया और किसी को भी कष्ट नही पहुँचाता था । सिद्ध-मनोरथ शास्ता ने सकल्प किया, "जिन्होने जो धन फेंका, वह उनका ही हो गया ।" फिर यह सोच कि 'आज मैंने महान् प्रातिहारी की है, इस नगर मे भिक्षाटन करना योग्य नही', तैंथिको का मर्दन कर, जय-प्राप्त क्षत्रिय की तरह, भिक्षु-सघ सहित नगर से निकल वेळुवन मे ही प्रवेश किया । नगर वासियो ने बहुत सा अन्न पान ले जाकर विहार मे ही महादान दिया । उस दिन शाम के समय धर्म-सभा मे बैठे भिक्षुओ ने बात चीत चलाई—"आयुष्मानो ! आयुष्मान आनन्द ने तथागत के लिये प्राण-त्याग करके बडी दुष्कर बात की थी, नाळागिरि को देख तथागत द्वारा तीन बार मना किये जाने पर भी नही हटे ! ओह ! आयुष्मान स्थविर दुष्कर-कर्म करने वाले है !" शास्ता ने यह देख कि आनन्द का गुणानुवाद हो रहा है, मुझे वहाँ पहुँचना चाहिये, गन्धकुटी से निकल, वहाँ पहुँच, पूछा—

"भिक्षुओ, बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो ?"

"अमुक बात चीत ।"

"भिक्षुओ, आनन्द ने केवल अभी मेरे लिये जीवन परित्याग नही किया है, उसने पशु-योनि में उत्पन्न होने पर भी किया ही है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

## ख॰ अतीत कथा

पूर्व समय में महिंसक राष्ट्र में सकुळ नगर में सकुळ नाम का राजा धर्मानुसार राज्य करता था। उस समय नगर से थोडी ही दूर पर एक निषाद-ग्राम मे एक निषाद पक्षियों को जाल में फंसा, उन्हें नगर में बेच जीविका चलाता था। नगर के पास ही बारह योजन घेरे वाला मानुसिय नाम का पद्म-सरोवर था, पाँच प्रकार के कमलों से आच्छादित। वहाँ नाना प्रकार के पक्षीगण आते थे। वह शिकारी जब-तब वहाँ जाल फैलाता था।

उस समय धृतराष्ट्र नामक हंस-राज छयानबे हज़ार हंसो के साथ चित्र-कूट पर्वत पर स्वर्ण-गुफा में वास करता था। सुमुख उसके सेनापति का नाम था। एक दिन उस हंससमूह में से कुछ स्वर्ण-वर्ण हंस मानुसिय-सर आये और उस भर-पूर-गोचर स्थान में सुख पूर्वक चुग कर उन्होंने जाकर धृतराष्ट्र से कहा—"महा-राज! मनुष्य पथ में मानुसिय नामका पद्म-तालाब है। वहाँ चुगने को बहुत है हम वहाँ चुगने जाते हैं।" उसने मना किया, "मनुष्य-पथ में खतरा है. वहाँ न चले।" उनके बार बार कहने पर बोला—"यदि तुम्हें अच्छा लगता है तो चले।" वह सबके साथ उस सरोवर पर पहुँचा। आकाश से उतरते समय ही उसका पांव जाल में फस गया। जाल ने उसके पांव को ऐसे ग्रस लिया मानो सडासी ने धर लिया हो। जाल तुडाने के प्रयत्न में पहली बार उस का चर्म छिल गया, दूसरी बार मांस, तीसरी बार नसें और इस प्रकार जाल हड्डी से जा चिपटा। लहू बहने लगा। बड़ा ज़ोर का दर्द हुआ। उसने सोचा "यदि मै बन्ध जाने की आवाज लगाता हूँ, तो मेरे सम्बन्धी त्रास के मारे बिना कुछ चुगे भूखे ही उड जायेगे और दुर्बलता के कारण समुद्र में जा पडेंगे।" उसने वेदना को सहन किया और जब जाति वाले यथेच्छ चुगने के बाद हंस-क्रीड़ा करने लगे तब उसने जोर से बंध जाने की आवाज़ लगाई। वह आवाज़ सुनते ही मृत्यु-भय से भीत हंस चित्र-कूट की ओर चले गये। उनके चले जाने पर सुमुख नामक

हंस-सेनापति ने सोचा, "पता लगाऊँगा, कही महाराज ही तो नही फँस गये है ?" उसने बड़े वेग से उडकर आगे जाने वाले हंस-समूह मे महाराज को ढूंढा। जब वहाँ न देखा तो बीच मे उड़ने वाले समूह मे ढूढा। वहाँ भी दिखाई न देने पर निश्चय हो गया कि निस्सन्देह यह भय महाराज को ही उत्पन्न हुआ है। वह रुका और लौट आया। उसने देखा कि बोधिसत्व जाल मे फसे है, लहू मे भीगे है, दुखित हैं, और कीचड मे पडे है। वह उतर कर कीचड मे जा बैठा और बोधिसत्व को आश्वासन देता हुआ बोला—"महाराज ! डरें न। मै अपनी जान देकर भी तुम्हे बन्धन से मुक्त करूँगा।" उससे बात करते हुए बोधिसत्व ने पहली गाथा कही—

**सुमुख अनुपचिनन्ता पक्कमन्ति विहंगमा,**
**गच्छ त्वं पि, मा कञ्चि, अत्थि बद्धे सहायता ॥१॥**

[हे सुमुख ! दूसरे सारे पक्षी बिना मेरी ओर देखे ही चले जा रहे है। तू भी जा। चिन्ता न कर। जाल मे फसे की सहायता नही हो सकती॥ १॥]

उससे आगे (वह) बोला—

**गच्छेवाहं न वा गच्छे न तेन अमरो सियं,**
**सुखितं तं उपासित्वा दुक्खितं तं कथं जहे ॥२॥**

[चाहे मै यहाँ से जाऊँ, चाहे न जाऊँ, उससे मै अमर नही हो जाऊँगा। सुख मे तेरी सेवा करते रहकर, अब दुख मे तुझे कैसे छोडं ? ॥ २॥]

**मरणं वा तया सद्धिं जीवितं वा तया बिना**
**तत्थेव मरणं सेय्यो यञ्चे जीवे तया बिना ॥३॥**
**नेस धम्मो महाराज यं तं एवं गतं जहे,**
**या गति तुय्हं सा मय्हं रुच्चते विहंगाधिप ॥४॥**

[तेरे बिना जीने से तेरे साथ मरना ही श्रेष्ठ है॥ ३॥ हे महाराज ! यह धर्म नही है कि तुम्हे इस अवस्था मे छोड दिया जाय। हे पक्षीराज ! जो तुम्हारी गति सो मेरी गति॥ ४॥]

**बोधिसत्व—**

**का नु पासेन बद्धस्स गति अञ्ञा महानसा,**
**सा कथं चेतयानस्स मुत्तस्स तव रुच्चति ॥५॥**
**कं वा त्वं पस्ससे अत्थं मम तुय्हं च पक्खिम**
**ञातीनं वावसिट्ठानं उभिन्नं जीवितक्खये ॥६॥**
**यं न कञ्चनदेपिच्छ अन्धेन तमसा गतं**
**तादिसे सञ्चजं पाणं कं अत्थं अभिजोतये ॥७॥**

[हे पक्षी ! जाल में फसे हुए की दूसरी कौन सी गति होगी ! वह तुझ मुक्त, चेतना-युक्त को कैसे अच्छी लगती है ? ॥ ५ ॥ हे पक्षी ! दोनों की जान जाने मे तुझे मेरा, अपना अथवा जातिवालों का कौन सा प्रयोजन सिद्ध होता दिखाई देता है ? ॥ ६ ॥ हम दोनों स्वर्ण-पंख वालों के अन्धकार से अन्धकार में चले जाने पर और इस प्रकार के प्राण-त्याग होने पर क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ? ॥ ७ ॥]

सुमुख बोला—

**कथं नु पततं सेट्ठ धम्मे अत्थं न बुज्झसि,**
**धम्मो अपचितो सन्तो अत्थं दस्सेति पाणिनं ॥८॥**
**सोहं धम्मं अपेक्खानो धम्मा चत्थं समुट्ठितं**
**भत्तिञ्च तयि सम्पस्सं नावकंखामि जीवितं ॥९॥**

[हे पक्षियो मे श्रेष्ठ ! तू धर्म में अर्थ कैसे नहीं देखता है ? आचरित धर्म प्राणियों के लिये अर्थ सिद्ध करने वाला होता है ॥ ८ ॥ मैं धर्म द्रष्टा होने के कारण और यह जानने के कारण कि धर्म से अर्थ सिद्ध होता है तथा तेरे प्रति भक्ति होने के कारण तुझे छोडना नहीं चाहता ॥ ९ ॥]

बोधिसत्व—

**अद्धा एसो सतं धम्मो यो मित्तो मित्तं आपदे**
**न चजे जीवितस्सापि हेतु धम्मं अनुस्सरं ॥१०॥**
**स्वायं धम्मो च ते चिण्णो, भत्ती च विदिता मयि,**
**कामं करस्स मय्हेतं, गच्छेवानुमतो मया ॥११॥**

[निश्चय से विपत्ति आ पडने पर मित्र का मित्र को न छोडना सत्पुरुषो का धर्म है। धर्म का स्मरण कर प्राणो को बचाने के लिये भी मित्र को न छोडे ॥ १० ॥ तू ने अपना यह धर्म किया। मैने तेरी भक्ति भी जान ली। अब तू मेरी इच्छा पूरी कर। मै अनुमति देता हूँ, जा ॥ ११ ॥

**अपि त्व एवं गते काले यं बंधं ञातिनं मया**
**तया तं बुद्धिसम्पन्नं अस्स परमसंवुतं ॥१२॥**

[ऐसा अवसर आ जाने पर, मेरा जाति वालो के साथ जो बन्धन है, उसे हे बुद्धिमान ! तूने परिपूर्ण कर दिया ॥ १२ ॥]

**उच्चेव मंतयन्तानं अरियानं अरियवुत्तिनं**
**पच्चादिस्सथ नेसादो आतुरानं इव अन्तको ॥१३॥**

[इस प्रकार उन श्रेष्ठ आचरण वाले आर्यो के आपस मे विचार-विनिमय करने के समय रोगी को यमराज दिखाई देने की तरह निषाद दिखाई दिया ॥ १३ ॥]

**ते सत्तुं अभिसमिक्ख दीघरत्तं हिता दिजा**
**तुण्हीं आसित्थ उभयो न च सञ्चेसुं आसना ॥१४॥**

[दीर्घकाल से परस्पर एक दूसरे का हित करने वाले उन पक्षियों ने जब शत्रु को सामने देखा तो वे दोनो चुपचाप बैठ गये। वे अपने आसन से हिले नही ॥ १४॥]

**धतरट्ठे च दिस्वान समुड्डेन्ते ततो ततो**
**अभिक्कमथ वेगेन दिजसत्तु दिजाधिपे ॥१५॥**

[हंसो को जहाँ-तहाँ उडते देख कर पक्षियों का शत्रु पक्षि-राज के पास शीघ्रता से आया ॥ १५ ॥]

**सो च वेगेन अभिक्कम्म आसज्ज परमे दिजे**
**पच्चक्काम्पित्थ नेसादो बद्धाति विचिन्तयं ॥१६॥**

[उन से शीघ्रता से आकर जब उन द्विजों को देखा तो 'वे फंसे है अथवा नही ?' सन्देह होने के कारण उसके पैर काँपे ॥ १६ ॥]

**एकञ्च बद्धं आसीनं अबद्धञ्च पुनापरं**
**आसज्ज बद्धं आसीनं पेक्खमानं आदीनवं ॥१७॥**

[एक को फँसा हुआ तथा दूसरे को मुक्त देखा। दुष्परिणाम देखते हुए भी फँसे के पास बैठा हुआ ! ॥ १७ ॥]

**ततो सो विमतो येव पण्डरे अज्झभासथ**
**पवद्धकाये आसीने दिजसंघगणाधिपे ॥१८॥**

[तब उसने संदेह-निवारण के लिये महाशरीर वाले पक्षिराज हंस को सम्बोधन किया ॥ १८ ॥]

**यं नु पासेन महता बद्धो न कुरुते दसं**
**अथ कस्मा अबद्धो त्वं बली पक्खी न गच्छसि ॥१९॥**

[जो यह बडे जाल में फंसा है, वह तो नही जा सकता। लेकिन हे बलवान् पक्षी ! तू मुक्त होकर भी क्यो नही जाता है ? ॥ १९ ॥]

**किं नु तायं दिजो होति, मुत्तो बद्धं उपाससि,**
**ओहाय सकुणा यन्ति, किं एको अवहीयसि ॥२०॥**

[यह पक्षी तेरा क्या लगता है ? तू मुक्त होकर भी इस जाल मे फसे हुए के पास बैठा है। (दूसरे) पक्षी छोड कर जा रहे है। तू अकेला ही क्यो पीछे रहता है ? ॥ २० ।]

सुमुख बोला—

**राजा मे सो दिजा मित्त सखा पाणसमो च मे**
**नेव नं विजहिस्सामि याव कालस्स परियायं ॥२१॥**

[हे शिकारी ! यह हमारा राजा है और प्राण के समान प्रिय सखा है। मै प्राण रहते इसे नही छोडूगा ॥ २१ ॥]

**कथं पनायं विहगो, नाद्दस पासं ओड्डितं,**
**पदं हेतं महन्तानं, बोधं अरहन्ति आपदं ॥२२॥**

[इस पक्षी ने फैले हुए जाल को क्यो नही देखा ? बडो के लिये यह योग्य है कि वह आने वाली विपत्ति को देख ले ॥ २२ ॥]

**यदा पराभवो होति पोसो जीवितसंखये**
**अथ जालञ्च पासञ्च आसज्जापि न बुज्झति ॥२३॥**

[जब आदमी की अवनति होने को होती है, तो वह पास के जाल को भी नहीं देख पाता है ॥ २३ ॥[

**अपि त्वेव महापुञ्ञ पासा बहुविधा तता**
**गूळहं आसज्ज बज्झन्ति अथ एवं जीवितक्खये ॥२४॥**

[हे महापुण्य ! तूने अनेक प्रकार का जाल फैलाया है। जीवन पर संकट आने पर जो छिपा हुआ जाल है, उसमे फस ही जाते है ॥ २४ ॥]

इस प्रकार बात-चीत करके उसका हृदय कुछ मृदु कर बोधिसत्व के जीवन की प्रार्थना करते हुए आगे कहा—

**अपि नायं तया सद्धिं सम्भासस्स सुखुद्रयो**
**अपि नु अनुमञ्ञसि, अपि नो जीवितं ददे ॥२५॥**

[तेरे साथ भाषण का यह सुख-दायक फल हो सकता है कि तू हमे चित्र-कूट लौटने की अनुमति भी दे सकता है और शायद जीवन दान भी दे सकता है ॥ २५ ॥]

उसने उसकी मधुर वाणी से प्रभावित होकर गाथा कही—

**न चेव मे त्वं वद्धोसि, न पि इच्छामि ते वधं**
**कामं खिप्पं इतो गन्त्वा जीव त्वं अनिघो चिरं ॥२६॥**

[न तू मेरे बन्धन मे है और न मै तेरा बध ही करना चाहता हूँ। तू जब चाहे यहाँ से शीघ्र ही जाकर सुखपूर्वक चिर काल तक जी सकता है ॥ २६ ॥]

तब सुमुख ने चार गाथाये कही—

**नेवाहं एतं इच्छामि अञ्ञत्र एतस्स जीविता,**
**सचे एकेन तुट्ठोसि मुञ्च एतं मंच भक्खय ॥२७॥**
**आरोहपरिणाहेन तुल्यस्मा वयसा उभो**
**न ते लाभेनजीन अत्थि, एतेन निमिता तुवं ॥२८॥**
**तद इङ्घ समवेक्खस्सु, होतु गिद्धि तवास्मसु,**
**मं पुब्बे बन्ध पासेन, पच्छा मुञ्च दिजाधिपं ॥२९॥**
**तावदेव च ते लाभो कतस्सा याचनाय च**
**मेत्ती च धतरट्ठेहि यावजीवाय ते सिया ॥३०॥**

[मैं बिना इसके जीवन के अपनी मुक्ति की कामना कही करता। यदि एक से सतुष्ट है तो इसे छोड दे और मुझे खा ले ॥ २७ ॥ लम्बाई और गोलाई तथा आयु मे हम दोनों समान हैं। यदि तू मुझसे इसका बदला कर ले तो तेरे लाभ की हानि नही है ॥ २८ ॥ इस लिये थोडा देख और मुझ मे लोभ उत्पन्न कर। मुझे पहले जाल मे बाध ले और पक्षिराज को बाद मे छोड ॥ २९ ॥ हमारी प्रार्थना स्वीकार करने से तुझे इतना लाभ होगा कि याव जीवन हंसो से मैत्री रहेगी ॥ ३० ॥]

इस प्रकार उसकी धर्म-देशना से तेल म डाले गये रुई के फाहे की तरह मृदु-चित्त हो उसने बोधिसत्व को उसका दास (?) करके देते हुए कहा—

**पस्सन्तु नो महासंघा तया मुत्तं इतो गतं**
**मित्तामच्चा च भच्चा च पुत्तदारा च बन्धवा ॥३१॥**
**न च ते तादिसा मित्ता बहुम्पं इध विज्जति**
**यथा त्वं धतरट्ठस्स पाणसाधारणो सखा ॥३२॥**
**सो ते सहायं मुञ्चामि, होतु राजा तवानुगो,**
**कामं खिप्पं इतो गन्त्वा जातिमज्झे विरोचथ ॥३३॥**

[सारे मित्र-अमात्य, भृत्य, पुत्र-दारा तथा बान्धव सारा महान् पक्षि-संघ यहाँ से जाने पर, तेरे द्वारा मुक्त इसे देखे ॥ ३१ ॥ यहाँ तेरे जैसे ऐसे मित्र नही है, जैसे तुझे धृतराष्ट्र प्राणो से भी अधिक प्यारा है ॥ ३२ ॥ इस लिये तेरे मित्र को छोड़ता हूँ। यह राजा तेरा अनुयायी हो। अब तुम चाहे जितनी जल्दी यहाँ से जाकर जातियों के बीच मे सुशोभित हो सकते हो ॥ ३३ ॥]

इतना कह निषाद-पुत्र ने प्रेम-भरे चित्त से बोधिसत्व के पास पहुँच, बन्धन खोल, छाती से लगा, तालाब के पास ले जा, तालाब के किनारे कोमल दूब पर बिछा पैरो मे बंधे बंधन को कोमल-चित्त से थोडा खोल, उसे दूर फेक दिया। फिर बोधिसत्व के प्रति प्रगाढ़ स्नेह की भावना को मन में स्थान दे, मैत्री-चित्त से पानी ला, रक्त को धो बार बार साफ किया। उसके मैत्री-पूर्ण चित्त क प्रताप से बोधिसत्व के पांवों की शिरा शिराओं से, मांस मास से तथा चर्म चर्म से जा मिला। उसी समय उसका पाँव ठीक हो गया, चमड़ी आ गई, बाल उग आये। वैसे ही हो गया जैसा

जाल में फंसने से पहले था। बोधिसत्व सुखपूर्वक स्वाभाविक ढग से बैठे। तब सुमुख ने अपने कारण बोधिसत्व को सुखी हुआ देख, प्रसन्न हो, निषाद की स्तुति की।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

**सो पतीतो पमुत्तेन भत्तुना भत्तुगारवो**
**अज्झभासथ वक्कंगो वाचं कण्ण सुखं भणं ॥३४॥**
**एवं लुद्दक नन्दस्सु सह सब्बेहि ञातिभि**
**यथाहं अज्ज नन्दामि मुत्तं दिस्वा दिजाधिपं ॥३५॥**

[उसने स्वामी के प्रति गौरव-युक्त होने से, स्वामी को मुक्त हुआ देख, प्रसन्न हो, कानों को सुख देने वाली बात कही "हे शिकारी! जिस प्रकार मैं पक्षि-राज को मुक्त देख आज आनन्दित हो रहा हूं, उसी प्रकार सभी रिश्तेदारो के साथ तू भी आनन्दित हो" ॥ ३४-३५ ॥]

इस प्रकार 'हे शिकारी!' यह स्तुति कर सुमुख ने बोधिसत्व को सम्बोधित किया, "महाराज! इसने हम पर बहुत उपकार किया है, यदि यह हमारा कहना न मान हमको क्रीडा हंस बनाकर श्रीमानो को दे देता, तो इसे बहुत धन मिलता मारकर मास बेचने से भी मिलता। इसने अपनी जीविका की ओर न देख, हमारा, कहना किया है, इसे राजा के पास ले जाकर जीविका की ओर से निश्चिन्त करें।" बोधिसत्व ने स्वीकार किया। सुमुख ने अपनी भाषा में बोधिसत्व के साथ बात-चीत कर, फिर मनुष्य-भाषा मे शिकारी को सम्बोधित किया—"मित्र! तू ने जाल किस लिये फैलाया था?"

"धन के लिये।"

"यदि ऐसा है, तो तू हमे लेकर, नगर मे जा, राजा को दिखा। हम तुझे बहुत धन दिलायेगे।"—

**एहि तं अनुसिक्खामि यथा त्वं पि लच्छसे**
**लाभं यथायं धतरट्ठो पापं किञ्चि न दक्खति ॥३६॥**
**खिप्पं अन्तेपुरं नेत्वा रञ्ञो दस्सेहि नो उभो**
**अबद्धे पकतिभूते काचे उभयतो ठिते ॥३७॥**

**धतरट्ठा महाराज हंसाधिपतिनो इमे,**
**अयं हि राजा हंसानं, अयं सेनापतीतरो ॥३८॥**
**असंसयं इमं दिस्वा हंसराजं नराधिपो**
**पतीतो सुमनो वित्तो बहुं दस्सति ते धनं ॥३९॥**

[इस प्रकार तुझे सिखाता हूँ, जिससे तुझे लाभ हो सके। इस धृतराष्ट्र मे कुछ बुराई नही है॥ ३६॥ तू शीघ्र ही हमे दोनो को अन्त पुर मे ले जाकर राजा को दिखा—खुले हुए, यथापूर्व, बहगी पर बैठे हुए॥ ३७॥ (और राजा से कहना—) महाराज! ये हसाधिप धृतराष्ट्र कुल के है। यह हंसो का राजा है। दूसरा सेनापति है॥ ३८॥ निस्सन्देह इस हस-राज को देखकर प्रसन्न हुआ राजा तुझे बहुत धन देगा॥ ३९॥]

ऐसा कहने पर शिकारी ने निवेदन किया—"स्वामी! राज दर्शन की इच्छा न करे। राजा चचल होते है। वे तुम्हे क्रीडा-हस भी बना सकते है और मरवा भी डाल सकते है।"

"मित्र! डर मत। मैने तेरे सदृश कठोर, रक्त-हस्त शिकारी को धर्म-कथा से कोमल बना अपने पाव मे गिराया, राजा लोग तो पुण्यात्मा होते है, प्रज्ञावान होते है तथा सुभाषित उभाषि को पहचानने वाले होते है। शीघ्र ही हमें राजा के पास ले चल।"

"अच्छा! तो मुझ पर क्रोधित न होना। मै आपकी इच्छा से ही ले चलता हूँ", कह, दोनो को बंहगी पर बिठा, राजकुल पहुँच, राजा के पूछने पर यथार्थ बात कही।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

**तस्स तं वचनं सुत्वा कम्मना उपपादयि,**
**खिप्पं अन्तेपुरं गन्त्वा रञ्ञो हंसे अदस्सयि**
**अबद्धे पकतिभूते काचे उभयतो ठिते ॥४०॥**
**धतरट्ठा महाराज हंसाधिपतिनो इमे,**
**अयं हि राजा हंसानं, अयं सेनापतीतरो ॥४१॥**

[उसका यह कहना सुन, उसने उसे कार्य-रूप मे परिणत किया। शीघ्रता से अन्तःपुर पहुँच राजा को हस दिखाये गये—खुले हुए, स्वाभाविक दशा में, दोनों बैहगी पर बैठे हुए॥ ४०॥ महाराज! ये हसाधिप धृतराष्ट्र कुल के है। यह हसों का राजा है, और यह उनका सेनापति है॥ ४१॥]

राजा—

**कथं पन इमे विहगा तव हत्थत्थं आगता**
**कथं लुद्दो महन्तानं इस्सरे-मिध-मज्झगा ॥४२॥**

[हे शिकारी! ये पक्षी तेरे हाथ मे कैसे आये? तू इन महान् ऐश्वर्य्यवानों को कैसे प्राप्त हुआ?॥ ४२॥]

शिकारी—

**विहिता सन्त इमे पासा पल्ललेसु जनाधिप**
**यं यदा यतनं मञ्ञे दिजानं पाणरोधनं॥४३॥**
**तादिसं पासं आसज्ज हंसराजा अवज्झथ,**
**तं अबद्धो उपासीनो ममायं अज्झभासथ ॥४४॥**
**सुदुक्करं अनरियेहि दहते भावं उत्तमं**
**भत्तुरत्थे परक्कन्तो धम्मे युत्तो विहंगमो ॥४५॥**
**अत्तानायं चजित्वान जीवितं जीवितारहो**
**अनुत्थनन्तो आसीनो भत्तु याचित्थ जीवितं ॥४६॥**
**तस्स तं वचनं सुत्वा पसादं अहं अज्झगं**
**ततो तं पामुञ्चिं पासा अनुञ्ञासिं सुखेन च ॥४७॥**
**सो पतीतो पमुत्तेन भत्तुना भत्तुगारवो**
**अज्झभासथ वक्कंगो वाचं कण्णसुखं भणं ॥४८॥**
**एवं लुद्दक नन्दस्सु सहसब्बेहि ञातिभि**
**यथाहं अज्ज नन्दामि मुत्तं दिस्वा दिजाधिपं ॥४९॥**
**एहि तं अनुसिक्खामि यथा त्वं पि लच्छसे,**
**लाभं यथायं धतरट्ठो पापं किञ्चि न दक्खति ॥५०॥**

खिप्पं अन्तेपुरं गन्त्वा रञ्ञो दस्सेहि नो उभो
अबद्धे पकतिभूते काचे उभयतो ठिते ॥५१॥
धतरट्ठा महाराज हंसाधिपतिनो इमे
अयं हि राजा हंसानं अयं सेनापतीतरो ॥५२॥
असंसयं इमं दिस्वा हंसराजं नराधिपो
पतीतो सुमनो वित्तो बुं दस्सति ते धनं ॥५३॥
एवं एतस्स वचना आनीता मे उभो मया,
एत्थ एव हि इमे अस्सु उभो अनुमता मया ॥५४॥
सो यं एवं गतो पक्खी विजो परमधम्मिको
मादिसस्स हि लुद्दस्स जने प्याथ मद्दवं ॥५५॥
उपायनं हि ते देव नाञ्ञं पस्सामि एदिसं
सब्बसाकुणिक गामे, तं पस्स मनुजाधिप ॥५६॥

[हे जनाधिप! मैने ऐसी सब जगहो पर कीचड मे जाल फैला दिया था, जहाँ से भी पक्षियो के प्राण बचाने की सभावना मानता था॥ ४३ ॥ हस राजा उस प्रकार के जाल में फस गया। उसके पास मुक्त बैठे (हस) ने मुझे इस प्रकार कहा॥ ४४॥ उस समय उसने हमारे सदृश अनार्यो के सम्मुख अपना उत्तम-भाव प्रकाशित करके बडा दुष्कर कार्य्य किया। वह पक्षी अपने स्वामी के हित पराक्रम करता हुआ, धर्म मे युक्त था॥ ४५ ॥ इस जीने के योग्य ने अपने जीवन का त्याग करके, बैठकर प्रशंसा करते हुए, स्वामी के जीवन की कामना की॥ ४६ ॥ उसका यह कथन सुनकर मै प्रसन्न हुआ और उसे छोड दिया तथा सुख पूर्वक जाने को कहा॥ ४७॥ स्वामी के प्रति गौरव-वान इसने स्वामी की मुक्ति से प्रसन्न हो मुझसे मीठी वाणी बोली॥ ४७॥ अर्थ ऊपर आ गया है॥ ४९-५३॥ इस प्रकार इसके कहने के अनुसार मै दोनों को ले आया। यही (मानुसिय) सरोवर पर ही यह मुझे दोनो मिले॥ ५४॥ इस प्रकार इस परंधार्मिक पक्षी ने मेरे जैसे शिकारी के मन मे भी कोमलता पैदा कर दी॥ ५५॥ हे देव! ये आप की भेट है। मुझे तमाम पक्षियों मे और कोई ऐसे नही दिखाई दिये। हे राजन्। आप इन्हें देखें॥ ५६॥]

इस प्रकार उसने खडे ही खडे सुमुख के गुणों का वर्णन किया। तब राजा ने हंस-राज के लिये बहुत मूल्यवान आसन और सुमुख के लिये सोने का श्रेष्ठ पीढा दिलवाया। फिर उनके वहाँ बैठ जाने पर सोने के बरतनो मे खील, मधु, खाण्ड आदि दिलवाई। खाना समाप्त होने पर हाथ जोड बोधिसत्व से धर्मोपदेश देने की प्रार्थना करता हुआ स्वयं सोने के पीढे पर बैठा। उसके प्रार्थना करने पर उसने पहले कुशल-क्षेम पूछा।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

**दिस्वा निसिन्नं राजानं पीठे सोवण्णये सुभे**
**अज्झभासथ वक्कंगो वाचं कण्णसुखं भणं ॥५७॥**
**कच्चि नु भोतो कुसलं, कच्चि भोतो अनामयं**
**कच्चि रट्ठं इदं फीतं धम्मेन-म-नुसिस्सति ॥५८॥**
**कुसलञ्चेव मे हंस, अथो हंस अनामयं**
**अथो रट्ठं इदं फीतं धम्मेन-मनुसिस्सति ॥५९॥**
**कच्चि भोतो अमच्चेसु दोसो कोचि न विज्जति,**
**कच्चिं नु ते तवत्थेसु नावकंखन्ति जीवितं ॥६०॥**
**अथो पि मे अमच्चेसु दोसो कोचि न विज्जति**
**अथो पिमे मं अत्थेसु नावकंखन्ति जीवितं ॥६१॥**
**कच्चि ते सादिसी भरिया अस्सवा पियभाणिनी**
**पुत्तरुपयसूपेता तवच्छन्दवसानुगा ॥६२॥**
**अथो पि मे सादिसी भरिया अस्सवा पियभाणिनी**
**पुत्तरुपयसूपेता ममच्छन्दवसानुगा ॥६३॥**

[राजा को सुन्दर सुनहले पीढ़े पर बैठे देखकर पक्षी ने प्रिय वाणी बोली ॥ ५७ ॥ पक्षी—"क्या आप सकुशल है? क्या आप निरोग हैं? क्या यह राष्ट्र स्मृद्धि-शाली है? क्या यहाँ धर्मानुसार शासन होता है?" ॥ ५८ ॥ राजा—"हस! मै सकुशल हूँ। मै निरोग हूँ। यह राष्ट्र स्मृद्धिशाली है। यहाँ धर्मानुसार राज्य होता है।" पक्षी—"क्या तुम्हारे अमात्यों मे कोई दोष तो नही है? क्या अवसर

आ पडने पर ये प्राणों का मोह तो नही करते ?" ॥ ६० ॥ राजा —"मेरे अमात्यो मे कोई दोष नही है। और अवसर आ पडने पर ये प्राणो का मोह नही करते" ॥६१॥ हस—"क्या तेरी भार्य्या तेरे समान है ? कहना मानने वाली है ? प्रियभाषिणी है ? पुत्र, रूप तथा ऐश्वर्य्य से युक्त है ? तथा तेरे वश मे है ?" ॥ ६२ ॥ राजा —"मेरी भार्य्या मेरे समान है। कहना मानने वाली है। प्रिय भाणिनी है। पुत्र, रूप तथा ऐश्वर्य्य से युक्त है। तथा मेरे वश मे है" ॥ ६३ ॥]

इस प्रकार बोधिसत्व के कुशल-क्षेम पूछने पर, फिर राजा ने उसके साथ बात-चीत की—

**भवं तु कच्चि नु महासत्तुहत्थत्थतं गतो**
**दुक्खं आपज्जि विपुलं तस्मिं पठममापदे ॥६४॥**
**कच्चि यं नापतित्वान दण्डेन समपोथयि,**
**एवं एतेसं जम्मानं पाकतिकं भवति तावदे ॥६५॥**

[आप तो महान् शत्रु के हाथ मे पड गये थे। उस पहली आपत्ति के आ पडने पर ही विपुल दुःख अनुभव किया ! ॥ ६४ ॥ इस ने आकर उसी समय दण्ड से नही पीटा ? इन दुष्टों का यही स्वाभाविक धर्म है ॥ ६५ ॥]

**खेमं आसि महाराज एवं आपदि संसति**
**न चायं किञ्चिरअस्मासु सत्तु व समपज्जथ ॥६६॥**

[महाराज ! इस प्रकार की आपत्ति आ पड़ने पर भी कुशल ही रहा। यह शत्रु की भान्ति हम पर नही टूटा ॥ ६६ ॥]

**पच्चकम्पित्थ नेसादो, पुब्बें अज्झभासथ,**
**तदायं सुमुखो येव पण्डितो पच्चभासथ ॥६७॥**

[यह निषाद हिचका। यही पहले बोला। तब यह पण्डित सुमुख बोला ॥६७॥]

**तस्स तं वचनं सुत्वा पसादं अयं अज्झगा,**
**ततो मं पामुञ्चि पासा अनुञ्ञासि सुखेन च ॥६८॥**

[उस का कहना सुन कर यह (शिकारी) प्रसन्न हुआ। तब इसने मुझे बंधन से मुक्त कर दिया और सुख पूर्वक चले जाने की अनुज्ञा दी॥ ६८॥]

**इदं पि सुमुखेनेव एतदत्थाय चिन्तितं**
**भोतो सकासे आगमनं एतस्स धनं इच्छता ॥६९॥**

[यह आप के पास आने की बात भी इसके लिये धन की इच्छा करने वाले सुमुख ने ही सोची॥ ६९॥]

राजा—

**स्वागतं चेव इदं भवतं पतीतो चस्मि दस्सना,**
**एसो अपि बहु वित्तं लभतं यावत इच्छि ॥७०॥**

[आप का स्वागत है। आपके दर्शन से मै बहुत प्रसन्न हूँ। यह भी यथेच्छ धन ले॥ ७०॥]

यह कह राजा ने एक अमात्य की ओर देखा। वह बोला—"देव! क्या आज्ञा है?" "इस शिकारी की हजामत बनवा, स्नान करा, चन्दन का लेप करा, सब अलकारो से अलकृत करा कर लाओ।" जब वह यह सब कराकर ले आया तो उसने प्रतिवर्ष लाख की आय का गाँव, दो गलियो को घेर कर बना हुआ घर, रथ तथा और बहुत सा सोना दिया।

इस अर्थ को प्रकट करते हुए शास्ता ने—

**संतप्पयित्वा नेसादं भोगेहि मनुजाधिपो**
**अज्झभासथ वक्कंगं वाचं कण्णं सुखं भणं ॥७१॥**

[राजा ने शिकारी को भोग्यवस्तुओ से सतुष्ट कर पक्षी से मधुर वाणी बोलो॥ ७१॥]

तब बोधिसत्व ने राजा को धर्मोपदेश दिया। उसने धर्म-कथा सुन, प्रसन्न हो, धर्म-कथिक का सत्कार करने के लिये उसे श्वेत-छत्र चढा, राज्य सौपते हुए कहा—

**यं खलु धम्मं आधीनं वसो वत्तति किञ्चनं**
**सब्ब अत्थ इस्सरियं भवतं पसासथ यदिच्छथ ॥७२॥**
**दानत्थं उपभोत्थुं वा यं चञ्ञं उपकप्पति**
**एतं ददामि वो वित्तं इस्सरं विस्सजामि वो ॥७३॥**

[जो कुछ है धर्म के आधीन है। जहाँ तक मेरा वश है, वहाँ तक सारा ऐश्वर्य्य आपका है। जो चाहें आज्ञा करे॥ ७२ ॥ दान देने के लिये अथवा उपभोग करने के लिये अथवा और जो भी कुछ योग्य हो, मै यह धन आप को देता हूँ, मै आपके लिये ऐश्वर्य्य का त्याग करता हूँ॥ ७३ ॥]

तब बोधिसत्व ने राजा का दिया हुआ श्वेत-छत्र फिर उसे ही वापिस कर दिया। राजा ने भी सोचा: 'इस राजा से तो मैने धर्म कथा सुनी। किन्तु शिकारी ने इस सुमुख की बडी प्रशंसा की है कि यह अत्यन्त मधुर-भाषी है, इससे भी धर्म-कथा सुनूंगा।' उससे बात चीत करते हुए उसने अगली गाथा कही—

**यथा च म्यायं सुमुखो अज्झभासेय्य पण्डितो**
**कामसा बुद्धिसम्पन्नो तं म्या-स्स परमप्पियं ॥७४॥**

[जैसे भी अपनी रुचि के अनुसार यह पण्डित सुमुख मुझे उपदेश देगा, वह मेरे लिये परं प्रिय होगा॥ ७४॥]

तब सुमुख बोला—

**अहं खलु महाराज नागराजारिव अन्तरं**
**पतिवत्तुं न सक्कोमि, न मे सो विनयो सिया ॥७५॥**
**अम्हाकं एवं यो सेट्ठो त्वञ्च उत्तमसत्तवो**
**भूमिपालो मनुस्सिन्दो पूजा बहुहि हेतुभि ॥७६॥**
**तेसं उभिन्नं भणतं वत्तमाने विनिच्छये**
**नान्तरं पतिवत्तब्बं पेसेन मनुजाधिप ॥७७॥**

[मै नाग-राज की तरह (आपके) बीच मे नही बोल सकता। यदि बोलू तो वह मेरा विनय नही होगा॥ ७५ ॥ यह हमारा श्रेष्ठ है, और तू भी श्रेष्ठ प्राणी है, भूमिपाल है, मानवेन्द्र है और अनेक तरह से पूज्य है॥ ७६ ॥ हे राजन्! आप दोनों के बोलते हुए बीच मे मेरा बोलना ठीक नही॥ ७७ ॥]

राजा उसकी बात सुन प्रसन्न हुआ। शिकारी ने, "तुम्हारे जैसा दूसरा धर्म-कथिक नही है", कहा है, कह आगे बोला—

**धम्मेन किर नेसादो पण्डितो अण्डजो इति,**
**न हेव अकतत्तस्स नयो एतादिसो सिया ॥७८॥**

**एवं अग्गपकतिमा एवं उत्तमसत्तवो**
**यावत अत्थि मया दिट्ठा नाञ्ञं पस्सामि एदिसं ॥७९॥**
**तुट्ठोस्मि वो पकतिया वाक्येन मधुरेन च,**
**एसो चापि मम छन्दो चिरं पस्सेय्य वो उभो ॥८०॥**

[शिकारी ने यह ठीक कहा कि पक्षी पण्डित है। जिसने आत्म-विकास नही किया उसकी ऐसी प्रज्ञा नही ही होती॥ ७८॥ मैंने जितने अग्र-स्वभाव तथा श्रेष्ठ प्राणी देखे उनमे से कोई दूसरा ऐसा नही दिखाई दिया ॥ ७९॥ मै तुम्हारे स्वभाव से प्रसन्न हूँ तथा मधुर वाक्य से। मेरी यही इच्छा है कि दोनो को चिरकाल तक देखता रहूँ॥ ८०॥]

तब बोधिसत्व ने राजा की प्रशंसा करते हुए कहा—

**यं किञ्चि परमे मित्ते कतरस्मासु तं तया,**
**पत्ता निस्संसयं त्यम्हा भत्तिरस्मासु या तव ॥८१॥**
**अदुञ्च नून सुमहा ञातिसंघस्स-म-न्तरं,**
**अदस्सनेन अम्हाकं दुक्खं बाहूसु पक्खिसु ॥८२॥**
**तेसं सोकविघाताय तया अनुमता मयं**
**तं पदक्खिणत्तो कत्वा ञाती पस्सेम अरिंदम ॥८३॥**
**अद्धाहं विपुलं पीतिं भवनं विन्दामि दस्सना,**
**एसो चापि महा अत्थो ञातिविस्सासना सिया ॥८४॥**

[जो कुछ परं मित्रो द्वारा करणीय होता है, वह तूने हमारे लिये किया। निस्सन्देह हमारे प्रति जो तेरी भक्ति है, उसे हम प्राप्त हुए॥ ८१॥ यह निश्चय से हमारे और रिश्तेदारो के बीच मे महान् अन्तर पड़ गया। हमे न देखने से बहुत से पक्षियो को बहुत दुःख होता होगा॥ ८५॥ उनका शोक दूर करने के लिये तू ने (जाने की) अनुमति दे दी। हे नरेन्द्र! हम तेरी प्रदक्षिणा करके रिश्तेदारो से जा मिले॥ ८३॥ निश्चय से आप के दर्शन से हमें बहुत आनन्द मिला है। किन्तु यह भी बडी बात है कि रिश्तेदारों का विश्वास मिले॥ ८४॥]

ऐसा कहने पर राजा ने उन्हे जाने की अनुज्ञा दी। बोधिसत्व ने भी राजा को

पाँच प्रकार की दुश्शीलता मे दोष और शील पालन का सुपरिणाम कह कर, 'इस शील की रक्षा कर, धर्मानुसार राज्य कर, चारों संग्रह-वस्तुओं से आदमियों का सग्रह कर' उपदेश दे चित्रकूट की ओर प्रयाण किया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

**इदं वत्वा धतरट्ठो हंसराजा नराधिपं**
**उत्तमजवमत्ताय ञातिसंघं उपागमुं ॥८५॥**
**ते अरोगे अनुप्पत्ते दिस्वान परमे दिजे**
**केका तिम-अकरुं हंसा, पुथुसद्दो अजायथ ॥८६॥**
**ते पतीता पमुत्तेन भत्तुना भत्तुगारवा**
**समन्ता परिकिरिंसु अण्डजा लद्धपच्चया ॥८७॥**

[हंस-राज धृतराष्ट्र ने राजा को यह कहा और उत्तम चाल से ज्ञाति-संघ में आ पहुँचा॥ ८५॥ उनको निरोग वापिस लौटा देख कर मोरों ने शब्द किया। बहुत आवाज हुई॥ ८६॥स्वामी के प्रति गौरव का भाव होने से, स्वामी को मुक्त देखकर प्रतिष्ठा-प्राप्त सभी पक्षियो ने उसे चारो ओर से घेर लिया॥ ८७। ]

उन हसो ने इस प्रकार घेर कर "महाराज! कैसे मुक्त हुए?" पूछा। बोधि-सत्व ने सुमुख के कारण मुक्त होने की बात, सागल-राजा तथा शिकारी की करनी कही। यह सुन हस-समूह ने "सेनापति सुमुख, राजा तथा शिकारी सभी सुखी हो, दु ख-विहीन हो और चिरकाल तक जियें" कह स्तुति की।

इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने अंतिम गाथा कही—

**एवं मित्तवतं अत्था सब्बे होन्ति पदक्खिणा**
**हंसा यथा धतरट्ठा ञातिसंघ उपागमुं ॥८८॥**

[इस प्रकार मित्रो की सहायता से सभी अर्थ इष्ट हो जाते है, जिस प्रकार धृतराष्ट्र-हंस जातियो के समूह मे वापिस चले आये॥ ८८॥]

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला "भिक्षुओ, न केवल अभी, पहले भी आनन्द ने मेरे लिये जीवन-परित्याग किया है" कह जातक का मेल बैठाया। उस समय शिकारी छन्न था, राजा सारिपुत्र, सुमुख आनन्द, नौवे हजार हंस बुद्ध-परिषद, हंस-राजा तो मै ही था।

# ५३४. महाहंस जातक

'एते हंसा पक्कमन्ति. ' यह शास्ता ने वेळुवन मे विहार करते समय स्थविर के जीवन-परित्याग के ही बारे मे कही। (वर्तमान) कथा उक्त प्रकार से ही है। यहाँ शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात कहते हुए इस प्रकार कहा।

## ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे सेय्य नाम के वाराणसी नरेश की खेमा नाम की पटरानी थी। उस समय नौवे हजार हंसो सहित बोधिसत्व चित्रकूट पर्वत पर रहते थे। एक दिन खेमा देवी ने प्रात काल स्वप्न देखा. स्वर्ण-वर्ण हंसों ने आकर राज सिहासन पर बैठ मधुर-स्वर से धर्मोपदेश दिया। देवी के 'साधु-साधु' कहते हुए, धर्म-श्रवण से अतृप्त रहते हुए ही रात बीत गई। हंस धर्म-कथा कह झरोखे से निकल चले गये। वह जल्दी से उठी और हाथ पसार कर चिल्लाने लगी, "भागे जा रहे हसो को पकडो, पकडो।" तभी उसकी आँख खुल गई। उसकी बात सुनकर परिचारिकाये थोडी हसी—"हस कहाँ है?" उस समय उसने उसे स्वप्न जान सोचा, "मैंने अविद्यमान वस्तुओ को नही देखा होगा। निश्चय से इस लोक मे स्वर्ण-हस होगे। यदि मै राजा से यह कहूँगी कि 'मै स्वर्ण-हस से धर्म सुनना चाहती हूँ' तो राजा विशष प्रयत्न नही करेगा, कहेगा, 'हमने स्वर्ण-हस नही देखे है। हसो की कथा मिथ्या ही है।' यदि कहूँगी, 'दोहद उत्पन्न हुआ है', तो जैसे तैसे खोजेगा। इस प्रकार मेरा मनोरथ पूरा होगा। वह रोगी की सूरत बना, सेविकाओ को इशारा कर, जा लेट रही। राजा ने सिंहासन पर बैठे हुए उसके दिखाई देने के समय जब उसे नही देखा, तो पूछा—"खेमा देवी कहाँ है?" जब सुना कि "रोगिणी" है, तो उसके पास पहुँचा, और शैय्या के एक किनारे बैठ पीठ मलते हुए पूछा—"कष्ट है?" "कष्ट नही है, मुझे दोहद उत्पन्न हुआ है", देवी ने उत्तर दिया। "देवी कह, जिस

चीज की इच्छा हो, शीघ्र मगवाऊँ।" "महाराज, मैं एक स्वर्ण-हंस को श्वेत छत्र के नीचे सिहासन पर बिठा, गन्धमाला आदि से पूजन कर, 'साधु साधु' कहते हुए, उससे धर्म सुनना चाहती हूँ। यदि यह होता है तो ठीक, अन्यथा मै जीती नही रह सकती।"

राजा ने आश्वासन दिया, "चिन्ता न कर, यदि मनुष्य लोक मे होगा तो मिलेगा।" शयनागार से बाहर आ, उसने मन्त्रियो से पूछा—"भो, खेमा देवी का कहना है कि स्वर्ण-हस से धर्म-कथा सुनने को मिलेगी, तो जीऊँगी; नही मिलेगी तो नही जीऊँगी। क्या स्वर्ण-वर्ण हंस होते है?"

"देव! न हमने देखे, न सुने।"

"तो कौन जानते होगे?"

"देव! ब्राह्मण।"

राजा ने ब्राह्मणों को बुलाकर पूछा—"आचार्यों! क्या स्वर्ण-हंस होते है?"

"हाँ महाराज! हमारे यहाँ यह आया है कि मच्छ, केकडे, कछुवे, मृग, मोर तथा हस ये तिरश्चीन प्राणी स्वर्ण-वर्ण होते है। धृतराष्ट्र कुल के हस पण्डित तथा ज्ञानी होते है। इस प्रकार मनुष्यो को शामिल करके ये सात स्वर्ण-वर्ण होते है।"

राजा ने सन्तुष्ट हो पूछा, "आचार्यो! यह धृतराष्ट्र हंस कहाँ रहते है?"

"महाराज, नही जानते है।"

"तो कौन जानते होगे?"

"शिकारी।"

राजा ने अपने राज्य के सभी शिकारियों को बुलवाकर पूछा—"तात! धृतराष्ट्र कुल के स्वर्ण-हंस कहां रहते है?" एक बोला, "देव! परम्परा से सुनते आये है कि हिमालय मे चित्रकूट पर्वत पर।"

"उनके पकडने की विधि जानते हो?"

"देव! नही जानता हूँ।"

उसने ब्राह्मण-पण्डितो को बुलवा भेजा और उन्हे यह बताकर कि चित्रकूट पर्वत पर स्वर्ण-हस है, पूछा—

"क्या उनके पकड़ने का तरीका जानते हो ?"

"महाराज ! उन्हें जाकर पकड़ने से क्या ! उपाय से उन्हें नगर के समीप लाकर पकड़ेंगे।"

"क्या उपाय है ?"

"महाराज ! नगर से उत्तर की ओर तीन गव्यूति तालाब खनवाकर, उसे पानी से भर, नाना प्रकार के धान्य बो, पाँच वर्णों के कमलों से ढक, एक हुश्यार शिकारी को छिपा, मनुष्यों के जाने पर प्रतिबन्ध लगा घोषणा कराये कि चारों कोनों पर स्थित प्राणियों के लिये अभय है। ये सुन नाना प्रकार के पक्षी उतरेंगे। वे हम भी परम्परा से उस तालाब के क्षेमकर होने की बात सुन वहाँ आयेंगे। तब उन्हें जाल में फंसा कर पकड़वा लेना।"

यह सुन राजा ने उनके कहे स्थान पर यथोक्त तालाब खुदवाया और हुश्यार शिकारी को बुला उसे हजार दे खेम तालाब सौंपते हुए उसे आश्वस्त करते हुए कहा —"अब से तू अपना काम मत कर। मैं तेरे पुत्र-स्त्री का पालन करूँगा। तू अप्रमादी होकर खेम तालाब की रक्षा कर। मनुष्यों को न आने दे। चारों कोनों पर 'अभय' की घोषणा कर जो जो पक्षी आये, उनकी मुझे सूचना दे। स्वर्ण-हंसों के आगमन पर बहुत ऐश्वर्य्य मिलेगा।" तब से वह राजा के कहे अनुसार ही करने लगा। 'खेम तालाब का पहरा देता है', इसलिये उसका नाम ही खेम निसाद पड़ गया। तब से नाना प्रकार के पक्षी-गण उतरे। 'खेम निर्भय-सरोवर है' परम्परा से यह बात सुन नाना प्रकार के हंस भी आये। पहले तृण-हँस आये, उनकी बात सुन पाण्डु-वर्ण हंस, उनकी बात सुन मनोशिला-हंस, उनकी बात सुन श्वेत-हँस, और उनकी बात सुन पाक-हँस आये। उनके आने पर खेमक ने राजा से कहा, "देव ! पाँच वर्ण के हंस आकर तालाब पर चोगा चुनते हैं। चिन्ता न करें। पाक-हंसों के आने के बाद अब कुछ दिन में स्वर्ण-हंस आयेंगे।" यह सुन राजा ने नगर में मुनादी करा दी, "कोई दूसरा वहाँ न जाय, जो जायगा हाथ-पांव कटवा दिये जायेंगे और घर लुटवा दिया जायगा।" तब से वहाँ कोई न जाता था।

चित्रकूट के पास ही कञ्चन-गुफा में पाक हँस रहते थे। वे बहुत बलवान थे। धृतराष्ट्र कुल के हंसों से उनका शरीर-वर्ण विशेष था। पाक-हंस राजा की लड़की

स्वर्ण-वर्णा थी। वह 'उस धृतराष्ट्र महाराज के अनुरूप है' सोच उसकी चरण-सेविका बनाकर भेजी गई। वह उसकी प्रिया हुई, उसके मन को अच्छी लगने वाली। इसी कारण से वे दोनो हंस-कुल परस्पर बहुत विश्वासी हो गये।

एक दिन बोधिसत्व के परिवार के हंसो ने पाक-हँसो को पूछा—"तुम इन दिनो कहाँ चुगने जाते हो?"

"हम यहाँ से कुछ ही दूर पर खेम सर पर चोगा चुगते है। और तुम कहाँ घूमते हो?"

"अमुक जगह।"

"खेम तालाब किस लिये नही जाते?" पूछते हुए उन्होने खेम-सरोवर की प्रशंसा की—"वह सरोवर रमणीय है, नाना प्रकार के पक्षियो से युक्त है, पाञ्च-वर्ण के तालाबो से आच्छादित है, नाना धान्यो तथा फलो से युक्त है, नाना प्रकार के भ्रमर गूंजते है और चारों कोनों मे नित्य अभय-घोषणा होती है। कोई दूसरा उपद्रव करने की तो क्या बात, कोई वहाँ पहुँच ही नही सकता। ऐसा है वह सरोवर।"

उन्होने उसकी बात सुन सुमुख को कहा, "वाराणसी के पास इस प्रकार का खेम-सरोवर है। पाक-हँस वहाँ जाकर चोगा चुगते है। आप भी धृतराष्ट्र महाराज से कहे। यदि अनुज्ञा हो तो हम भी वहाँ जाकर चोगा चुगे।" सुमुख ने राजा से कहा। उसने सोचा: "मनुष्य बहुत मायावी तथा उपाय-कुशल होते है। यहाँ कोई बात होगी। अभी तक वहाँ कोई तालाब नही था। अब हमे पकडने के लिये बनाया होगा।" उसने सुमुख से कहा—'तुझे वहाँ जाना अच्छा नही लगना चाहिये। उन्होंने वह तालाब धार्मिक भावना से नही बनाया है। हमारे पकडने के लिये बनाया है। मनुष्य कठोर-मन वाले तथा उपाय कुशल होते है। तुम अपनी चुगने की जगह पर ही चुगो।" स्वर्ण-हंसो ने दूसरी बार भी अपनी खेम-सरोवर जाने की इच्छा व्यक्त की। उसने उनकी वहाँ जाने की इच्छा बोधिसत्व से व्यक्त की।

तब बोधिसत्व ने सोचा, "मेरे सम्बन्धी मेरे कारण कष्ट न पाये, तो चले।" नौवे हज़ार हंसो के साथ वह यहाँ पहुँचा और चोगा चुगकर तथा हंस-क्रीडा करके

चित्र-कूट ही लौट आया। खेमक ने उनके चुगकर चले जाने पर, उनके आने की बात राजा से कही। राजा ने प्रसन्न हो, उसे खर्चा देकर प्रेरणा की—"सौम्य खेमक, एक या दो हँसो को पकड़ने का यत्न कर। तुझे बहुत ऐश्वर्य्य दूंगा।"

वह वहाँ जा मिट्टी के बरतन के झरोखे (?) मे बैठ हंसो के विचरने की जगह का विचार करने लगा। बोधिसत्वो की चर्य्या लोभ-रहित होती है। इसलिये बोधिसत्व जिस जगह उतरे, वहाँ से क्रमश. धान चुगते हुए आगे बढे। शेष जहाँ-तहाँ खाने लगे।

तब शिकारी ने सोचा, "इस हंस की लोभरहित-गति है। इसे पकड़ना चाहिए।" अगले दिन हंसो के सरोवर पर उतरने से पहले ही वह मिट्टी के बरतन के झरोखे में बैठा ही बैठा वहाँ पहुचा और झरोखे के समीप ही अपने को छिपा कर, बैठकर छेद मे से देखने लगा। तब जिस जगह कल उतरना हुआ था, उसी जगह उतर कर बोधिसत्व सीमा पर बैठ चुगता हुआ आगे बढा। शिकारी ने झरोखे के छेद मे से उसका सौन्दर्य्य देखा—शकट जितना बडा शरीर, स्वर्ण-वर्ण, गर्दन पर लाल रग की तीन धारियाँ, गले से उतर कर पेट के बीच तक गई हुई तीन धारियाँ, तीन पिछली ओर गई हुई धारियाँ, लाल कम्बल के धागो के सिरो पर लटकने वाले कञ्चन की तरह प्रज्वलित। उसने सोचा, "यही इनका राजा होगा। इसे ही पकड़ूगा।" हस-राजा भी बहुत देर तक चोगा चुग, जल-क्रीडा कर, हसो के साथ चित्र-कूट ही लौट गया। इस प्रकार छ. दिन तक चोगा चुगता रहा। सातवें दिन खेमक ने काले-घोड़े के बालो की मजबूत रस्सी बाँट, लकडी का जाल बना, 'कल हम राजा यहाँ उतरेगा,' इसका सही सही अन्दाजा कर, पानी के भीतर लकडी का जाल फैलाया।

अगले दिन हस-राज उतरता हुआ पाँव जाल मे फसाता हुआ ही उतरा। जाल ने उसके पैर को ऐसे जकड लिया, जैसे लोहे के पट्टे ने। उसने उसे काटने के लिये जोर से झटका मारा। पहली बार मे स्वर्ण-वर्ण चमडी कट गई, दूसरी बार मे कम्बल-वर्ण माँस कट गया, तीसरी बार मे नसे कट गई, चौथी बार ऐसा हुआ कि पाँव ही कट जायगा। 'अंग-विहीन' हो जाना राजाओ के लिये अशोभन है', सोच उसने प्रयत्न नही किया। तीव्र वेदना होने लगी। उसने सोचा. "यदि मै फँस

जाने की आवाज लगाता हूँ, तो मेरे सम्बन्धी त्रस्त होकर बिना चुगे, भूखे ही उड जायेगे और (निर्बलता के कारण) समुद्र मे जा गिरेगे।" वह पीडा को सहते हुए, पासा पलट कर धान चुगते हुए की तरह बना रहा। फिर जब वे यथेच्छ चुग कर हस-क्रीडा करने लगे तो जोर से फँस जाने की आवाज लगाई। यह सुन हँस पूर्वोक्त प्रकार ही भाग गये। सुमुख ने भी उक्त प्रकार से ही सोचकर, खोजकर, तीनों हिस्सो मे बोधिसत्व को न देख, स्थिर किया, कि निश्चय से "बोधिसत्व पर ही यह विपत्ति आई होगी।" वह रुका और उसने उतर कर बोधिसत्व को आश्वासन दिया, "महाराज! मत डरे। मै अपनी जान देकर भी तुम्हे छुडाऊँगा।" यह कहते हुए वह बोधिसत्व को आश्वस्त करता हुआ कीचड पर बैठा। बोधिसत्व ने लहु लगे लगे, जाल की लाठी मे लटके ही लटके, इस बात की परीक्षा करनी चाही कि 'नौवे हजार हसो मे जब सभी मुझे छोडकर चले गये है, और यही एक आया है, तो क्या यह भी शिकारी के आगमन पर मुझे छोडकर चला जायेगा अथवा नही?' उसने तीन गाथाये कही—

**एते हंसा पक्कमन्ति वक्कंखा भयमेरिता,**
**हरित्तचा हेमवण्णा कामं सुमुख पक्कम ॥१॥**
**ओहाय मं ञातिगणा एकं पासवसं गते**
**अनपेक्खमाना गच्छन्ति, किं एको अवहिय्यसि ॥२॥**
**पतेव पततं सेट्ठ, नत्थि बद्धे सहायता,**
**मा अनीघाय हापेसि, कामं सुमुख पक्कम ॥३॥**

[भय के मारे ये स्वर्ण-वर्ण पक्षी उडे जाते है। हे सुमुख! तू भी जा॥ १ ॥ मुझे जाल मे अकेला फसा देखकर सभी रिश्तेदार मुझे अकेला छोड निरपेक्ष भाव से चले जा रहे है। तू अकेला क्यो रहता है? ॥ २॥ पक्षी के लिये उड जाना ही श्रेष्ठ है। जाल मे फसे की सहायता नही हो सकती। सुख को मत छोड। सुमुख! चाहे तो चला जा॥ ३॥]

यह सुन सुमुख ने सोचा. "यह राजा मेरा भाव नही जानता। मुझे केवल मीठी मीठी बात करने वाला मित्र समझता है। मै इसे अपना स्नेही होना प्रकट करूँगा।" उसने चार गाथायें कही--

**नाहं दुक्खपरेतो पि धतरट्ठ तवं जहे,**
**जीवितं मरणं वा मे तया सद्धिं भविस्सति ॥४॥**
**नाहं दुक्खपरेतोपि धतरट्ठ तवं जहे,**
**न मं अनीरय संयुत्ते कम्मे योजेतुं अरहसि ॥५॥**
**सकुमारो सखा त्य-अस्मि सचित्ते समिते ठितो,**
**ञातो सेनापति त्याहं हंसानं पवरुत्तम ॥६॥**
**कथं अहं विकत्तिस्सं ञातिमज्झे इतो गतो,**
**तं हित्वा पततं सेट्ठ किं ते वक्खामितो गतो,**
**इध पाणं चजिस्सामि न अनरियं कत्तुं उस्सहे ॥७॥**

[दु.ख आ पडने पर भी, हे धृतराष्ट्र मै तुझे नही छोडूंगा। मेरा जीना या मरना तेरे साथ ही होगा॥ ४॥ दु ख आ पडने पर भी हे धृतराष्ट्र, मै तुझे नही छोडूगा। मुझे अनार्य-कर्म मे लगाना उचित नही ॥५॥ मै बालकाल से तेरा सखा हूँ। तेरे वश मे हूँ। हे हसो मे श्रेष्ठ ! मै तेरा ज्ञात सेनापति हूँ ॥६॥ यहाँ से जाकर मै जाति-वालों को क्या कहूंगा ? हे पक्षियो मे श्रेष्ठ! यहाँ तुझे छोड जाकर क्या कहूँगा। मै यही प्राण त्याग कर दूगा। मै अनार्य-कर्म नही करूंगा ॥७॥]

इस प्रकार सुमुख के चार गाथाओ द्वारा सिह-नाद करने पर उसके गुण का प्रकाशन करते हुए बोधिसत्व ने कहा—

**एसो हि धम्मो सुमुख यं त्वं अरियपथे ठितो**
**यो भत्तारं सखारं मं न परिचत्तुं उस्सहे ॥८॥**
**तं हि मे पेक्खमानस्स भयं न त्वेव जायति**
**अधिगच्छसि त्वं मय्हं एवंभूतस्स जीवितं ॥९॥**

[हे सुमुख! यह जो तेरा आर्य-आचरण है, यही धर्म है। तू मुझे स्वामी तथा सखा को छोड़ना नही चाहता है ॥८॥ तुझे देखते हुए मेरे मन मे भय पैदा नही होता। तू मेरे जीवन की रक्षा कर सकेगा ॥४॥]

इस प्रकार उनके बात चीत करते समय सरोवर के किनारे पर खडे शिकारी ने हसो को तीन हिस्सो मे भागे जाते देखा तो जाल की जगह को देखकर सोचा—**क्या**

बात है? फिर बोधिसत्व को जाल की लकडी मे फँसा देखा तो उसे हर्ष हुआ। उसने काछ मारी और हाथ मे मुग्दर ले, वह कल्प के अन्त मे उठने वाली आग की तरह उतरा। वह एडी तक के कीचड मे ऊपर ऊपर जा, शीघ्रता से आगे जा पहुँचा।

इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिये शास्ता ने कहा—

**इच्चेव मन्तयन्तानं अरियानं अरियवत्तिनं**
**दण्डं आदाय नेसादो आपादी तुरितो भुसं ॥१०॥**
**तं आपतंतं दिस्वान सुमुखो अपरिब्रूहयि**
**अट्ठासि पुरतो रञ्ञो हंसो विस्सासयं व्यथं ॥११॥**
**मा भायि पततं सेट्ठ, न हि भायन्ति तादिसा**
**अहं योगं पयुञ्जिस्सं युत्तं धम्मूपसंहितं**
**तेन परियापदानेन खिप्पं पासा पमोक्खसि ॥१२॥**

[इस प्रकार उन आर्याचरण आर्यो के बात-चीत करते समय शिकारी डण्डा लेकर शीघ्र वहाँ पहुच गया ॥१०॥ उसे आता देख सुमुख जोर से बोला। वह हस को आश्वस्त करता हुआ राजा के सामने खडा हुआ ॥११॥ हे पक्षी-राज! भयभीत मत हो। तेरे जैसे डरते नही है। मै धर्मानुकूल उपाय करूगा। मेरे उस उपाय से तू शीघ्र बन्धन से मुक्त हो जायगा ॥१२॥]

इस प्रकार सुमुख ने बोधिसत्व को आश्वस्त कर शिकारी के पास जा मधुर मानुषी-वाणी मे पूछा—

"सौम्य! तेरा क्या नाम है ?"

"स्वर्ण हसराज! मेरा नाम खेमक है" कहने पर कहा, "सौम्य खेम! यह मत समझ कि तूने जो जाल फैलाया था उसमे यू ही कोई जैसा-तैसा आ फँसा है। नौवे हजार हंसों मे श्रेष्ठ धृतराष्ट्र हस-राज तेरे जाल मे बँधा है। वह ज्ञानी है, सदाचारी है तथा दयावान है, इसे मार डालना उचित नही। जो कुछ यह तेरे लिए कर सकता है, वह सब मै करूगा। यह भी स्वर्ण-वर्ण है, और मै भी। इसके लिए मै अपनी जान दूंगा। यदि तू इसके पंख लेना चाहता है, तो मेरे पंख ले। यदि चर्म, मास,

नसों तथा हड्डी मे से कोई चीज लेना चाहता है, तो मेरे ही शरीर से ले। यदि इसे क्रीडा-हस बनाना चाहता है, तो मुझे ही बना। जीते जी यदि बेचकर धन कमाना चाहता है, तो मुझे ही बेच। इस ज्ञानादि गुणो से युक्त (पक्षी) का वध मत कर। यदि बध करेगा तो नरक आदि से मुक्त नही होगा।" इस प्रकार उसे नरक का भय दिखा और अपनी मधुर-वाणी स्वीकार करा सुमुख न बोधिसत्व के पास पहुच उसे आश्वस्त किया। शिकारी ने उसकी बात सुनी तो सोचने लगा "यह तिरश्चीन होकर भी वह बात कर रहा है, जो मनुष्य भी नही कर सकते। मनुष्य भी इस प्रकार मित्र-धर्म को नही निभा सकते। ओह! यह कितना ज्ञानी है, मधुर-भाषी है तथा धार्मिक है।"उसका सारा शरीर प्रीति सौमनस्य से भर गया। उसे रोमाच हो आया। उसने दण्ड छोड दिया और सिर पर हाथ जोड सूर्य को नमस्कार करते हुए की तरह, खडे होकर सुमुख का गुण कहने लगा।

उस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

**तस्स तं वचनं सुत्वा सुमुखस्स सुभासितं**
**पहट्ठलोमो नेसादो अञ्जलिस्स पणामयि ॥१३॥**
**न मे सुतं वा दिट्ठं वा भासन्तो मानुसिं दिजो**
**अरियं ब्रुवानो वक्कङ्गो चजन्तो मानुसिं गिरं ॥१४॥**
**किं नु तायं दिजो होति मुत्तो बद्धं उपासयि**
**ओहाय सकुणा यन्ति, किं एको अवहिय्यसि ॥१५॥**

[सुमुख के उस सुभाषित को सुनकर, रोमाचित शिकारी ने उसे हाथ जोड कर नमस्कार किया ॥१३॥ मैं ने कभी किसी पक्षी को निर्दोष मानुषी-वाणी बोलते न देखा, न सुना ॥१४॥यह पक्षी तेरा क्या लगता है कि तू (स्वयं) मुक्त होकर भी उस (जाल मे) फसे हुए के पास खडा है। और सभी पक्षी उसे छोडे चले जा रहे है। अकेला तू ही क्यो पीछे रहता है? ॥१५॥]

इस प्रकार उस सतुष्ट चित्त शिकारी द्वारा पूछे जाने पर सुमुख ने सोचा, "यह कोमल पड गया है। अब इसे और भी अधिक प्रसन्न करने तथा मृदु बनाने के लिए अपना गुण प्रकट करूगा।" वह बोला—

**राजा मे सो दिजामित्त, सनापच्चस्स कारिये,**
**तं आपदे परिच्चत्तुं, न उस्सहे विहगाधिपं ॥१६॥**
**महागणाय भत्ता मे मा एको व्यसनं अगा,**
**तथा तं सम्म नेसाद भत्तायं अभितो रमे ॥१७॥**

[हे शिकारी! यह मेरे राजा है, मै इनका सेनापति(?) हूँ। इस पक्षी-राज को मै आपत्ति मे छोडकर नही जा सकता ॥१६॥ यह महान् पक्षी सघ का स्वामी है। यह किसी आपत्ति मे न पडे। सौम्य शिकारी! तू ऐसा (कर) जिस से यह स्वामी सुख से रहे ॥१७॥)

उसकी धर्म-युक्त मधुरवाणी सुनकर सौमनस्य-प्राप्त रोमाचित शिकारी ने सोचा, "यदि मै इस शीलादि गुणो से युक्त हस-राज का बधकर दूगा, तो मै चारो-नरकों से मुक्त न हो सकूगा। राजा मेरा जो चाहे सो करे। मै उसे सुमुख को भेट कर के छोड देता हू।" उसने गाथा कही—

**अरियवत्तासि वक्कंग यो पिण्डं अपचायसि,**
**चजामि ते तं भत्तारं, गच्छतु भो यथासुखं ॥१८॥**

[हे पक्षी ! तू आर्य्य-कर्मा है। तू(स्वामी से मिले) पिण्ड की पूजा करता है। मै तुझे और तेरे स्वामी को मुक्त करता हूँ। तुम दोनो सुख से जाओ ॥१८॥]

ऐसा कह कर शिकारी कोमल-चित्त से बोधिसत्व के पास पहुंचा, लकडी झुकायी और कीचड पर बैठ, उसने जाल की लकडी खोली। फिर (बोधिसत्व को) उठा, सरोवर से निकाल, कोमल दूब पर बिठा, पाँव मे बधे हुए बधन को धीरे-धीरे खोला। फिर बोधिसत्व के प्रति प्रगाढ स्नेह पैदा कर, मैत्री-चित्त से पानी ला लहू पोंछा और बार बार हाथ फेरा। उसकी मैत्री से शिरा से शिरा, मॉस से मॉस तथा चर्म से चर्म मिल गया। पैर पूर्ववत् हो गया, ठीक दूसरे के हो समान। बोधिसत्व सुखी हो स्वाभाविक-रूप से बैठा। सुमुख ने जब यह देखा कि राजा उसके कारण सुखी हो गया है, तो वह प्रसन्न हो, सोचने लगा, "इस (शिकारी) ने हमारा बहुत उपकार किया है। हमने इसका कुछ उपकार नही किया है। यदि इसने हमे राजा-महामात्य आदि के लिये हमे पकडा तो उनके पास ले जाने से बहुत

न प्राप्त कर सकता था, यदि अपने लिये पकडा तो हमे बेचकर धन लाभ कर ही कता था। मै इससे पूछूगा।" उसने उसका उपकार करने की इच्छा से कहा—

**सचे अत्तप्पयोगेन ओहितो हंसपक्खिनं**
**पतिगण्हाय ते सम्म एतं अभयदक्खिणं ॥१९॥**
**नोचे अत्तप्पयोगेन ओहितो हंसपक्खिनं**
**अनिस्सरो मुञ्चं अम्हे थेय्यं कयिरासि लुद्दक ॥२०॥**

[सौम्य ! यदि तू ने अपने प्रयोजन के लिये, पक्षियो के लिये जाल फैलाया, ो हम तेरे इस उपकार को अभय-दक्षिणा मान कर ग्रहण करते है ॥ १९ ॥ यदि ू ने अपने प्रयोजन के लिये जाल नही फैलाया, तो तू स्वयं स्वामी न होने के कारण मे छोडकर चौर-कर्म कर रहा है ॥ २० ॥]

यह सुन शिकारी ने, "मै ने तुम्हे अपने लिये नही पकडा। वाराणसी राजा की ाज्ञा से पकडा है", कह, देवी द्वारा देखे गये स्वप्न से लेकर, राजा द्वारा उनके ाने की बात, और "सौम्य ! एक या दो हम पकडने का प्रयत्न कर, बहुत ऐश्वर्य्य मिलेगा", कह, खर्च देकर प्रेरित करने की बात आदि तमाम बाते कह सुनाई। यह सुन सुमुख ने सोचा "इस शिकारी ने अपनी जान की परवाह न कर हमे मुक्त करके दुष्कर कार्य्य किया है। यदि हम यहाँ से चित्र-कूट जायेगे तो न धृतराष्ट्र की प्रज्ञा और न मेरी मैत्री ही प्रकट होगी, न शिकारी को ऐश्वर्य्य मिलेगा, न राजा ाञ्च शीलो मे प्रतिष्ठित होगा और न देवी का मनोरथ ही पूरा होगा।" इसलिये उसने कहा, "मित्र ! यदि ऐसा है तो हमे मुक्त नही कर सकेगा, हमे राजा के पास ले चल। वह हमारे साथ जो चाहेगा, करेगा।"

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए—

**यस्स त्वं भतको रञ्ञो कामं तस्सेव पापय**
**तत्थ संयमानो राजा यथाभिन्नं करिस्सति ॥२१॥**

[जिसका तू नौकर है, वही ले चल। वहाँ वह सयमी (?) राजा यथा-रुचि करेगा ॥ २१ ॥]

यह सुन शिकारी बोला, "भन्ते। राज-दर्शन की इच्छा न करे। राजा लोग

खतरनाक होते हैं। वे क्रीडा-हस भी बना सकते हैं, और मार भी डाल सकते हैं।" सुमुख ने उत्तर दिया, "सौम्य शिकारी! हमारी चिन्ता मत कर। मैंने धर्म-कथा से तेरे सदृश कठोर-स्वभाव को भी मृदु बना लिया। राजा को क्या नहीं जानूगा? राजा लोग पण्डित होते हैं, सुभाषित के जानने वाले। हमें शीघ्र राजा के पास ले चल। ले चलते समय बान्ध कर मत ले चल। फूल के पिञ्जरे मे बिठाकर ले चल। फूलो का पिञ्जरा बनाते हुए धृतराष्ट्र के लिये बडा, श्वेत पद्मो से ढका हुआ बना। मेरे लिये छोटा, लाल कमलो से ढका हुआ बना। धृतराष्ट्र को आगे और मुझे पीछे, नीचे करके, ले जाकर यथाशीघ्र राजा को दिखा।" उसने उसका कहना सुन सोचा, "सुमुख राजा को देख, मुझे बहुत ऐश्वर्य्य दिलाना चाहता होगा।" वह प्रसन्न हुआ और कोमल लताओ से पिञ्जरे बना, कमलो से ढक यथोक्त प्रकार से ही (उन्हे) ले गया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

**इच्चेव वुत्तो नेसादो हेमवण्णे हरित्तचे**
**उभो हत्थेहि संगय्ह पञ्जरे अज्झवोदहि॥२२॥**
**ते पञ्जर गते पक्खी उभो भस्सर वण्णिने**
**सुमुखं धतरट्ठं च लुद्दो आदाय पक्कमि॥२३॥**

[इस प्रकार कहे गये शिकारी ने स्वर्ण-वर्ण पक्षियो को दोनो हाथो से पकड पिञ्जरे मे रखा॥ २२॥ उन दोनो प्रभा-पूर्ण पक्षियो को धृतराष्ट्र तथा सुमुख को लेकर शिकारी गया॥ २३॥]

जिस समय शिकारी उन्हे लिये जा रहा था, उस समय धृतराष्ट्र को पाक राज हस-कुमारी अपनी भार्य्या याद आ गई और वह सुमुख को सम्बोधित कर रागाभिभूत हो रो पडा।

इस अर्थ को प्रकट करते हुए शास्ता ने कहा—

**हरिय्यमानो धतरट्ठो सुमुखं एतद अब्रवि**
**बाळहं भायामि सुमुख सामाय लक्खणूरूपा।**
**अस्माकं वधं अञ्ञाय अथ अत्तानं वधिस्सति॥२४॥**

**पाकहंसा च सुमुख सुहेमा हेमसुत्तचा**
**कोञ्ची समुद्दतीरे व कपणा नून रुच्छति ॥२५॥**

[ले जाया जाता हुआ धृतराष्ट्र सुमुख से इस प्रकार बोला "सुमुख ! मुझे स्वर्ण-वर्ण, लक्षण-जाघ वाली अपनी भार्य्या से बहुत डर लगता है कि हमारे वध किये जाने की बात सुनकर वह अपने आप को मार डालेगी ॥ २४ ॥ हे सुमुख ! वह स्वर्ण-वर्ण, स्वर्ण-त्वचा-वाली (मेरी भार्य्या) उसी प्रकार रोयेगी जैसे समुद्र तीर पर विचारी क्रोञ्ची" ॥ २५ ॥]

यह सुन सुमुख ने सोचा, "यह हम औरों को उपदेश देने योग्य है, किन्तु स्त्री के लिये (स्वय) रागाभिभूत हो गेता है। पानी मे आग लगने जैसा हो गया। बाढ ही उठकर खेत को खाने लग गई हो—ऐसा हो गया। मै अपने बल से स्त्रियो के दोष प्रकट कर इसे होश मे लाऊं।" वह बोला—

**एवं महन्तो लोकस्स अप्पमेय्यो महागणी**
**एकित्थिं अनुसोचेय्य, न इदं पञ्ञवतो-मिव ॥२६॥**
**वातो व गन्धं आदेति उभयं छेकपापकं**
**बालो आमकपक्कं व लोलो अन्धो व आमिसं ॥२७॥**
**अविनिच्छयञ्ञू अत्थेसु मन्दो व पटिभासि मं**
**किच्चा किच्चं न जानासि सम्पत्तो कालपरियायं ॥२८॥**
**अडढुम्मत्तो उदीरेसि यो सेय्या मञ्ञसित्थियो**
**बहूसाधारणा हेता सोण्डानं व सुराघरं ॥२९॥**
**माया चेसा मरीचि च सोको रोगो चुपद्दवो,**
**खरा च बन्धना चेता मच्चुपासो गुहासयो,**
**तासु यो विस्ससे पोसो सो नरेसु नराधमो ॥३०॥**

[इस प्रकार का महान्, (हस) लोक मे अप्रमाण गुणो वाला, महान् गुणी इस प्रकार एक स्त्री की चिन्ता करे, यह प्रज्ञावानो का लक्षण नही ॥ २६ ॥ जैसे प्रकार हवा अच्छी-बुरी सब तरह की गन्ध को ग्रहण करती है, मूर्ख कच्चे-पक्के फल को ग्रहण करता है, अन्धा रस-लोभी भले-बुरे भोजनको ग्रहण करता है।

(उसी प्रकार स्त्रियाँ सभी को ग्रहण करती है ) ॥ २७ ॥ मुझे लगता है कि तू मन्द-बुद्धि है, क्योंकि तू निर्णय नहीं कर सकता, क्योंकि मरण-काल उपस्थित होने पर भी तू कृत्याकृत्य नहीं जानता ॥ २८ ॥ जो स्त्रियों को श्रेष्ठ मानता है, वह आधे पगले की तरह प्रलाप करता है। जिस प्रकार शराबियों का प्याऊ उसी प्रकार स्त्रियाँ अत्यन्त सर्व-सुलभ हैं ॥ २९ ॥ ये माया हैं, ये मृग-तृष्णा हैं, ये शोक हैं, ये रोग हैं ये उपद्रव हैं, ये कठोर हैं, ये बन्धन हैं, ये मृत्यु-पाश हैं और ये गुह्याशय हैं। जो आदमी इनका विश्वास करे वह नरों में अधम नर है ॥ ३० ॥]

तब धृतराष्ट्र ने स्त्रियों के प्रति आसक्ति रहने के कारण—"तू स्त्रियों के गुण से अपरिचित है, पंडित जानते हैं, इनकी निन्दा नहीं करनी चाहिए।" बात को प्रगट करने के लिए गाथायें कहीं—

यं बुद्धेहि उपञ्ञातं को तं निन्दितुं अरहति,
महाभूतित्थियो नाम लोकस्मिं उप्पज्जिंसु ॥३१॥
खिड्डा पणिहिता त्यासु, रतो त्यासु पतिट्ठिता,
बीजानि त्यासु रूहन्ति यदिदं सत्ता पजायरे,
तासु को निब्बिदे पासो पाण आसज्ज पण्डिभि ॥३२॥
त्वं एव नञ्ञा सुमुख थोन अत्थेसु युञ्जसि,
तस्स त्यज्ज भये जाते भीतेन जायते रति ॥३३॥
सब्बोहि संसयं पत्तो भयं भीरु तितिक्खति,
पंडिता च महंता नो अत्थे युञ्जन्ति दुय्युजे ॥३४॥
एतदत्थाय राजानो सूर इच्छन्ति मंतिन,
पटिबाहति यं सूरो आपदं अत्तपरियाय ॥३५॥
मा नो अज्ज विकंतिंसु रञ्ञो सूदा महानसे,
तथा हि वण्णो पत्तानं फलं वेगुं व तं वधि ॥३६॥
सुतापि न इच्छि उड्डेतुं, सय बन्ध उपागमि,
सो पञ्ज ससय पत्तो अत्थं गण्हाहि मा मुख ॥३७॥

[ज्ञानवृद्धों ने जिनके गुण को जाना है उन स्त्रियों को कौन निन्दा कर सकता

है? स्त्रियों में अनेक गुण हैं। संसार में उन्हीं की प्रथम उत्पत्ति हुई है ॥३१॥ उन्हीं में क्रीड़ा प्रतिष्ठित है, वे ही रति का आधार हैं, उन्हीं में बीज अंकुरित होते हैं तथा उन्हीं से प्राणी उत्पन्न होते हैं। अपने प्राण दे कर भी उन्हें प्राप्त होने वाला कौन मनुष्य उनसे विरक्त होगा? ॥३२॥ हे सुमुख! दूसरा नहीं, तू ही स्त्रियों के काम में लगता है। आज भय उपस्थित होने पर भय के कारण ही तेरी ऐसी मति हो गई है ॥३३॥ भयभीत मनुष्य भय के कारण सभी बातों में संशय करता है। जो पण्डित हैं, जो महान हैं वे कठिन कार्यों का सम्पादन करते हैं ॥३४॥ इसीलिए राजागण शूर मंत्री की कामना करते हैं, क्योंकि शूर पुरुष आई हुई आपत्ति का निवारण कर सकता है और रक्षा भी कर सकता है। जिस प्रकार फल के उत्पन्न होने पर बाँस का वध होता है उसी प्रकार राजा का रसोइया आज रसोई घर में हमारा वध न करे ॥३६॥ मुक्त हो कर भी तूने उड़ना नहीं चाहा, स्वयं बंध गया। इसी से आज संशय-ग्रस्त हुआ। अब मतलब की बात कर (स्त्री-निन्दा के लिए) मुँह मत खोल ॥३७॥]

इस प्रकार स्त्रियों की प्रशंसा कर सुमुख को अप्रतिहत किया। फिर यह जान कि वह असंतुष्ट हो गया, उसे उत्साहित करने के लिए गाथा कही—

**सो त्वं योगं पयुञ्जस्सु युत्तं धम्मूपसंहितं,**
**तव परियायपदानेन मम पाणेसनं चर ॥३८॥**

[तू योग्य धर्मानुसार कार्य में रत हो। तेरे शुद्ध आचरण से मेरे प्राणों की रक्षा हो ॥३८॥]

फिर सुमुख ने 'यह मृत्यु से अत्यन्त भयभीत हो गया है, यह मेरा बल नहीं जानता राजा को देखकर थोड़ी बात-चीत करके देखूंगा, अभी इसे आश्वस्त करूँ' सोच, गाथा कही—

**मा भायि पततं सेट्ठ, न हि भायन्ति तादिसा,**
**अहं योगं पयुञ्जिस्सं युत्तं धम्मूपसंहितं,**
**मम परियायपदानेन खिप्पं पासा पमोक्खसि ॥३९॥**

[हे पक्षि-श्रेष्ठ! डर मत। तेरे जैसे डरा नही करते। मै धार्मिक उपाय करूंगा। मेरे उपाय से तू शीघ्र ही बन्धन से मुक्त हो जायगा॥ ३९॥]

वे अपनी पक्षि-बोली बोल रहे थे। इसलिये शिकारी कुछ नही समझा। वह उन्हे बैहगी पर लिये लिये वाराणसी पहुँचा। आश्चर्य्य के मारे हाथ जोड़े हुए लोग पीछे लग गये। उसने राजद्वार पर पहुँच, अपने आने की सूचना राजा को भिजवाई।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

**सो लुद्दो हंसकाचेन राजद्वारं उपागमि,**
**पटिवेदेथं मं रञ्ञो धतरट्ठायं आगतो॥४०॥**

[हस को बैहगी पर उठाय वह शिकारी राज-द्वार पर आन पहुँचा। उसने सूचना भिजवाई—राजा से निवेदन करो कि धृतराष्ट्र आ गया है॥ ४०॥]

द्वारपाल ने जाकर निवेदन किया। प्रसन्न-मन राजा ने आज्ञा दी, "शीघ्र चला आये।" फिर अमात्यो से घिरे, श्वेत-छत्र के नीचे राज-सिंहासन पर बैठे राजा ने हसो की बैहगी लेकर खेमक को महल के ऊपर आते देख तथा स्वर्ण-वर्ण हसो को देख सोचा, 'मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ।" उसने अमात्यो को आज्ञा दी कि उसके प्रति योग्य कृत्य करे।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

**ते दिस्वा पुञ्ञसंकासे उभोलक्खञ्ञसम्मते**
**खलु सञ्ञमानो राजा अमच्चे अज्झभासथ॥४१॥**
**देथ लुद्दस्स वत्थानि अन्नपानञ्च भोजनं**
**कामं करो हिरञ्ञस्स यावन्तो एव इच्छति॥४२॥**

[उन पुण्यवान्, श्रेष्ठ, प्रसिद्ध दोनों को देखकर राजा ने अमात्यो को कहा: शिकारी को वस्त्र दो। खाना पीना तथा भोजन दो। जितना चाहे उतना सोना लेकर यह अपना काम करे॥ ४१-४२॥]

इस प्रकार प्रसन्न हो, प्रीति तथा सौमनस्य से उत्साहित हो वह बोला, "जाओ, इसे अलंकृत करके लाओ।" तब अमात्यों ने उसे महल से उतार, हजामत बनवा,

स्नान करा, लेप करा, सब अलंकारों से अलंकृत कर राजा को दिखाया। राजा ने लाख की वार्षिक आय वाले बारह गाँव, श्रेष्ठ घोड़ों वाला रथ और अलंकृत बड़ा भारी घर, इस प्रकार बहुत ऐश्वर्य्य दिया। उसने बहुत ऐश्वर्य्य पा अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिये कहा, "देव! मैं आपके लिये यूँ ही कोई जैसा-तैसा हंस नहीं ले आया हूँ। यह नौवे हजार हंसों का धृतराष्ट्र नामक राजा है, और यह सुमुख नामक सेनापति है।" तब राजा ने पूछा, "सौम्य! इन्हें कैसे पकड़ा?"

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

**दिस्वा लुद्दं पसन्नत्तं कासीराजा तदाब्रवी**
**यदायं सम्म खेमक पुण्णा हंसेहि तिट्ठति ॥४३॥**
**कथं रुचिं मज्झगतं पासहत्थो उपागमि**
**ओकिण्णं जातिसंघेहि निमज्झिमं कथं गही ॥४४॥**

[उस समय शिकारी को प्रसन्न देख काशी-राज बोला कि सौम्य खेमक! जब यह (पुष्करिणी) हंसों से भरी थी, तो यह बीच में का हंस कैसे जाल में फंस गया? रिश्तेदारों से घिरे हुए को कैसे पकड़ा? ॥४४॥]

उसने उसे उत्तर देते हुए कहा—

**अज्ज मे सत्तमा रत्ति आदानानि उपासतो**
**पदं एतेस्स अन्वेसं अप्पमत्तो भवस्सितो ॥४५॥**
**अथ अस्स पदं अद्दक्खिं चरतो आदनेसनं,**
**तत्थाहं ओदहं पासं, एवेतं दिजं अग्गहि ॥४६॥**

[इसके चुगने की जगह का अध्ययन करते हुए आज मेरी यह सातवीं रात है। मैं इसके पद-चिह्न को खोजता हुआ अप्रमादी रहा। मैं ने चर-भूमि में चरते हुए इसके पैरों को देखा। वहाँ मैंने जाल फैलाया। इसी प्रकार इस पक्षी को पकड़ा ॥४६॥

यह सुन राजा ने, "यह दरवाजे पर खड़ा होकर भी धृतराष्ट्र के ही आगमन की सूचना देता है, और अब भी 'इस एक को ही पकड़ा' कहता है। यह क्या बात है?" सोचते हुए गाथा कही—

**लुद्द द्वे इमे सकुणा, अथ एकोति भाससि,**
**चित्तं नु ते विपरियत्थं आदु किं नु जिगिंसति ॥४७॥**

[ शिकारी ! ये दो पक्षी है, किन्तु तू एक ही कहता है। तेरा चित्त कुछ गडबड है, अथवा तू कुछ सोच रहा है ? ॥ ४७ ॥ ]

तब शिकारी ने 'देव ! न तो मेरा चित्त गडबड है, और न मै एक किसी दूसरे का देन की सोच रहा हूं, किन्तु मेरे फैलाये जाल मे एक ही फसा था', प्रकट करते हुए कहा—

**यस्स लोहितका ताला तापनेय्यनिभा सुभा**
**उरं संहच्च तिट्ठन्ति सो मे बन्धं उपागमि ॥४८॥**
**अथायं भस्सरो पक्खी अबद्धो बद्धं आतुरं**
**अरियं ब्रुवानो अट्ठासि चजन्तो मानुसिं गिरं ॥४९॥**

[ जिसके (गले मे से होकर) छाती तक ये तपे स्वर्णाभावाला लाल धारियां गई है, वही मेरे बन्धन मे फसा था ॥ ४८ ॥ यह दूसरा प्रभास्वर पक्षी स्वय मुक्त होता हुआ भी मानुषी आर्य-वाणी बोलता हुआ (दूसरे) फँसे हुए के पास खडा था ॥ ४९ ॥ ]

"धृतराष्ट्र के बन्धे होने की खबर जान, रुककर, इसे आश्वस्त कर, मेरे आगमन की प्रतीक्षा कर, आकाश मे (उडते हुए ही) मेरे साथ मधुर वार्तालाप कर, मनुष्य-भाषा मे धृतराष्ट्र के गुण कहता रहा। इस प्रकार मेरे चित्त को कोमल बना फिर इनो के पास खडा हुआ। तब हे देव ! मैंने सुमुख का सुभाषित सुन प्रसन्न हो धृतराष्ट्र को छोड दिया। इस प्रकार धृतराष्ट्र की बधन-मुक्ति और इन हमो को लेकर मेरा यहाँ आना सुमुख के ही कारण, हुआ।" इस प्रकार उसने सुमुख के गुण कहे। यह सुन राजा की इच्छा हुई कि वह सुमुख से धर्म सुने। शिकारी का सत्कार करते-कराते ही सूर्यास्त हो गया। द्वीप जल गये। बहुत से क्षत्रिय आदि इकट्ठे हो गये। नाना प्रकार की नारियो के साथ देवी भी राजा के दाहिनी ओर बैठी। उस समय राजा ने सुमुख को बुलवाने की इच्छा से गाथा कही—

**अथ किं नु दानि सुमुख हनू संहच्च तिट्ठसि**
**अदु मे परिसं पत्तो भया भीतो नो भासति ॥५०॥**

[ हे सुमुख ! अब तेरा मुह क्यो बन्द है ? क्या मेरी परिषद् मे आकर भय के मारे नही बोल पाता है ? ॥ ५० ॥ ]

यह सुन सुमुख ने अपनी निर्भयता प्रकट करते हुए कहा—

**नाहं कासिपति भीतो ओगच्छ परिसं तव,**
**नाहं भया न भासिस्सं वाक्यं अत्थस्मिं तादिसे ॥५१॥**

[ हे काशीराज ! मै तेरी परिषद् को देखकर भयभीत नही हूँ। वैसी अवस्था होने पर मै भय के मारे चुप नही रहूगा ॥ ५१ ॥ ]

यह सुन राजा ने बात चीत बढाने की इच्छा से उसकी हसी उडाते हुए कहा--

**न ते अभिसरं पस्से न रथे नापि पत्तिके**
**नास्स चम्मं वा कोटं वा वम्मिने च धनुग्गहे ॥५२॥**
**न हिरञ्ञं सुवण्णं वा नगरं वा सुमापितं**
**ओतिण्ण परिखं दुग्गं दळहं अट्टालकोट्ठकं**
**यत्थ पविट्ठो सुमुख भायितब्बं न भायसि ॥५३॥**

[ न तू अपने चारो ओर पहरा देखता है, न रथ, न पैदल, न चर्म, ढाल (?) तथा कवच पहने धनुर्धारी, न सोना, न सुनिर्मित नगर, जिसके गिर्द खाई है जिसमे दुर्ग हो, जहाँ दृढ अटारी और कोठे हैं—ऐसा सब कुछ है—जहाँ सुमुख डर लगने वाले को भी डर न लगे ॥ ५३ ॥ ]

इस प्रकार राजा के "तेरे भय का क्या कारण है ?" पूछने पर उसे कहते हुए उत्तर दिया—

**न मे अभिसरेन अत्थो नगरेन धनेन वा,**
**अपथेन पथं याम अन्तलिक्खेचरा मयं ॥५४॥**
**सुता च पण्डिता त्यम्हा निपुणा अत्थचिन्तका**
**भासिम अत्थवतिं वाचं सच्चे चस्स पतिट्ठितो ॥५५॥**

**किं च तुय्हं असच्चस्स अनरियस्स करिस्सति**
**मुसावादिस्स लुद्दस्स भणितं पि सुभासितं ॥५६॥**

[ न मुझे पहरेदारों की अपेक्षा है, न धन की और न नगर की। हम पथ-रहित जगह मे पथ बनाने वाले है। हम आकाश-चारी है ॥ ५८ ॥ तू ने सुना कि हम पण्डित है, दक्ष है, अर्थ चिंतक है। हम तुझे सार्थक बात कहेंगे, यदि तू सत्य पर प्रतिष्ठित हो ॥ ५५ ॥ लेकिन इससे तुझ मृषावादी अनार्य का क्या भला होगा ? तेरे लिये मृषावादी शिकारी का कथन भी सुभाषित ही है ॥ ५६ ॥ ]

तब राजा ने पूछा, "मुझे अनार्य तथा मृषावादी क्यो कहता है, मैंने क्या किया है ?" सुमुख बोला, तो सुन—

**तं ब्राह्मणानं वाचना इमं खेमि अकारयि**
**अभयं च तया घुट्ठं इमायो दसधा दिसा ॥५७॥**
**ओगय्ह ते पोक्खरणिं विप्पसन्नोदकं सुचिं**
**पहूतं चादनं तत्थ अहिंसा चेत्थ पक्खिनं ॥५८॥**
**इदं सुत्वान निग्घोसं आगम्मा तव अंतिके,**
**ते ते बद्धस्मा पासेन, एतं ते भासितं मुसा ॥५९॥**
**मुसावादं पुरक्खत्वा इच्छालोभं च पापकं**
**उभो सन्धिं अतिक्कम्म असातं उपपज्जति ॥६०॥**

[ तू ने ब्राह्मणो के कहने से यह खेमी नाम का सरोवर बनवाया। तू ने दसों दिशाओ मे अभय की घोषणा कराई। उस साफ, स्वच्छ जल वाली पुष्करिणी पर उतरने से पक्षियो को चुगने को बहुत मिलता है और वहाँ पक्षियो के प्रति अहिसा का व्यवहार है ॥ ५८ ॥ इस घोषणा को सुन कर हम तेरे पास आये। हमे जाल मे फास लिया गया। यह तेरा कथन "मिथ्या" रहा ॥ ५९ ॥ इच्छा-लोभ से युक्त पापी मनुष्य मृषावाद को आगे करने से देव-लोक तथा मनुष्य-लोक मे जन्म ग्रहण न कर नरक मे पैदा होता है ॥ ६० ॥ ]

इस प्रकार परिषद के बीच मे ही राजा को लज्जित किया। तब राजा ने

"सुमुख ! मैंने तुम्हे मरवाकर मास खाने की नीयत से नही पकडवाया। तुम्हारे पण्डित्य की बात सुन सुभाषित सुनने की इच्छा से ही पकडवाया है" कह गाथा कही—

**ना परज्झाम सुमुख, न पि लोभा वं अग्गहि,**
**सुता च पण्डिता त्यत्थ निपुणा अत्थचिन्तका ॥६१॥**
**अप्पेव अत्थवति वाचं व्याकरेय्युं इधागता,**
**तथा तं सम्म नेसादो वुत्तो सुमुख-म-अग्गहि ॥६२॥**

[हे सुमुख ! हमने अपराध नही किया है, और न हा लोभ से पकडवाया है। सुना कि तुम पण्डित हो, दक्ष हो तथा अर्थ-चिनक हो। यह समझा कि यहाँ आने पर सार्थक बात कहोगे। इसीलिये हमारे कहने से हे सौम्य ! शिकारी न तुम्हे पकडा ॥ ६२ ॥]

यह सुन सुमुख ने "महाराज ! आप ने अनुचित किया" कह गाथा कही—

**नेव भीता कासिपति उपनीतस्मिं जीविते,**
**भासेम अत्थवतिं वाचं सम्पत्ता कालपरियायं ॥६३॥**
**यो मिगेन मिगं हन्ति पक्खिं वा पन पक्खिना**
**सुतेन वा सुतं किणे किं अनरियतरं ततो ॥६४॥**
**यो च अयरिरूदं भासे अनरियधम्म' अत्रस्सितो**
**उभो सो धंसते लोका इध चेव परत्थ च ॥६५॥**
**न मज्जेय यसं पत्तो, न व्यथे पत्तसंसयं,**
**वायमेथेव किच्चेसु, संवरे विवरानि च ॥६६॥**
**ये बद्धा अब्भतिक्कन्ता सम्पत्ता कालपरियायं**
**इध धम्मं चरित्वान एव ऐते तिदिवं गता ॥६७॥**
**इदं सुत्वा कासिपति धम्मं अत्तनि पालय**
**धतरट्ठञ्च मुञ्चाहि हंसानं पवरुत्तमं ॥६८॥**

[हे काशी पति ! मृत्यु के समीप पहुँचे हुए, भयभीत हुए हुए, अर्थ-वाली वाणी नही बोला करते ॥ ६३ ॥जो पशु के द्वारा पशु को, पक्षी के द्वारा पक्षी

की हिंसा करता है, अथवा श्रुत के द्वारा बहुत-श्रुत को जाल में फंसवाये, क्या इससे बढ़कर कुछ अनार्य-कर्म हो सकता है ? ॥ ६४ ॥ जो अनार्याचरण करता हुआ आर्य-वाणी बोलता है, वह देव-लोक तथा मनुष्य-लोक से वंचित होकर यहाँ तथा परलोक में (कष्ट पाता है) ॥ ६५ ॥ ऐश्वर्य्य मिलने पर प्रमाद न करे, विपत्ति आ पड़ने पर दुखी न हो, (शुभ) कर्मों में प्रयत्न करे और अपने इन्द्रियों में संयम रखे ॥ ६६ ॥ जो पण्डित-जन यहाँ विपत्ति आ पड़ने पर भी धर्माचरण करते हैं वे देव लोक को प्राप्त होते हैं ॥ ६७ ॥ यह सुनकर हे काशीराज ! आप धर्म का पालन करें और हमों में श्रेष्ठ धृतराष्ट्र को छोड़ दें ॥ ६८ ॥]

यह सुन कर राजा बोला—

**आहरन्त उदकं पज्जं आसनं च महारहं**
**पञ्जरतो पमोक्खामि धतरट्ठं यसस्सिनं ॥६९॥**
**तञ्च सेनापतिं धीरं निपुणं अत्थचिन्तकं**
**यो सुखे सुखितो रञ्ञो दुक्खिते होति दुक्खितो ॥७०॥**
**एतादिसो खो अरहति पिण्डं अस्नातु भत्तुनो**
**यथायं सुमुखो रञ्ञो पाणसाधारणो सखा ॥७१॥**

[पानी और पाद-अभ्यञ्जन लाओ। महा मूल्यवान आसन भी लाओ। मैं यशस्वी धृतराष्ट्र को पिञ्जरे से निकालता हूं ॥ ६९ ॥ और धीर, दक्ष, अर्थ-चिन्तक सेनापति को भी, जो (राजा के) सुखी होने पर सुखी होता है और दुखी होने पर दुखी ॥ ७० ॥ इसी प्रकार का प्राणी अपने स्वामी का अन्न खाने के योग्य है, जैसा यह सुमुख, जो राजा का प्राण-प्रिय सखा है ॥ ७१ ॥]

राजा का कहना सुन, उनके लिये आसन लाये गये, उन पर बैठने पर सुगन्धित जल से उनके पाँव धोये गये और सौ-पाक तेल से माखे गये।

शास्ता ने यह अर्थ प्रकाशित करते हुए कहा—

**पिट्ठं च सब्बसोवण्णं अट्ठपादं मनोरमं**
**मट्ठं कासिकवत्थिनं धतरट्ठो उपाविसि ॥७२॥**

**कोच्छञ्च सब्बसोवण्णं वेय्यग्घपरिसिब्बितं**
**सुमुखो अज्ज पावेक्खि धतरट्ठस्स अनन्तरा ॥७३॥**
**तेसं कञ्चनपत्तोहि पुथू आदाय कासियो**
**हंसानं अभिहारेय्युं अग्गरञ्ञो पवासितं ॥७४॥**

[स्वर्ण-मय आठ पांवो वाले सुन्दर पीढे पर जिस पर काशी का चिकना वस्त्र बिछा था धृतराष्ट्र बैठा ॥ ७२ ॥ व्याघ्रचर्म से ढके हुए, स्वर्णमय आसन पर धृतराष्ट्र के बाद, सुमुख (बैठा) दिखाई दिया ॥ ७३ ॥ काशी के लोग चक्रवर्ती राजा द्वारा भेजे गये बहुत से खाद्य सामान, स्वर्ण-पात्रो मे उन हंसो के लिये लाये ॥ ७४ ॥]

इस प्रकार पात्रो के लाये जाने पर काशी-राज ने उनका आतिथ्य करने के लिये स्वय स्वर्ण-पात्र ले आगे धरा। उन्होंने उसमे से मधुर-खीले खा मीठा पानी पिया। जब बोधिसत्व ने राजा को भेट और श्रद्धा देखी तो उससे कुशल समाचार पूछा।

इसे प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

**दिस्वा अभिहटं अग्गं कासिराजेन पेसितं**
**कुसलो खत्तधम्मानं ततो पुच्छि अनन्तरा ॥७५॥**
**कच्चिं नु भोतो कुसलं कच्चि भोतो अनामयं**
**कच्चि रट्ठं इदं धम्मेन-म-नुसिस्सति ॥७६॥**
**कुसलं चेव मे हंस अथो हंस अनामयं**
**अथो रट्ठं इदं फीतं धम्मेन-म-नुसिस्सति ॥७७॥**

[काशी-राज द्वारा प्रेषित तथा सम्मुख आनीत श्रेष्ठ भोजन को देख कर कुशल-क्षेम पूछने मे कुशल बोधिसत्व ने पूछा ॥ ७५ ॥ आप सकुशल है न ? आप निरोग है न ? यह राष्ट्र समृद्ध है न ? और धर्म से अनुशासित है ? ॥७६॥ हस ! मै सकुशल हूं। मै निरोग हूं। यह राष्ट्र समृद्ध है। यह धर्म से अनुशासित है ॥ ७७ ॥]

बोधिसत्व—**कच्चि भोतो अमच्चेसु दोसो कोचि न विज्जति**
**कच्चिं नु ते तव अत्थेसु नावकंखन्ति जीवितं ॥७८॥**

राजा—**अथो पि मे अमच्चेसु दोसो कोचि न विज्जति**
**अथो पि ते मं अत्थेसु नावकंखन्ति जीवितं ॥७९॥**

बोधिसत्व—**कच्चि ते सादिसी भरिया अस्सवा पियभाणिनी**
**पुत्तरूपयसूपेता तव छन्दवसानुगा ॥८०॥**
**अथो मे सादिसी भरिया अस्सवा पियभाणिनी**
**पुत्तरूपयसूपेता मम छन्दवसनानुगा ॥८१॥**

[अर्थ ऊपर जातक (५३३) मे आ हो गया है ॥ ७८-८१ ॥]

बोधिसत्व—**कच्चि रट्ठं अनुप्पीळं अकुतोचि उपद्दवं**
**असाहसेन धम्मेन समेन-म-नुसिस्सति ॥८२॥**

राजा—**अथो रट्ठं अनुप्पीलं अकुतोचि उपद्दवं**
**असाहसेन धम्मेन समेन-म-अनुसिस्सति ॥८३॥**

[क्या राष्ट्र उत्पीडन-रहित है? क्या वह उपद्रव-रहित है? क्या बिना जबर्दस्ती के समता पूर्वक शासन होता है ॥ ८२ ॥ राष्ट्र उत्पीडन रहित है। वह उपद्रव-रहित है। बिना जबर्दस्ती के समतापूर्वक शासन होता है ॥ ८३ ॥]

बोधिसत्व—**कच्चि सन्तो अपचिता असन्तो परिवज्जिता**
**नोचे धम्मं निरंकत्वा अधम्मं अनुवत्तसि ॥८४॥**

राजा—**सन्तो च मे अपचिता असन्तो परिवज्जिता**
**धम्मे चेवानुवत्तामि अधम्मो मे निरंकतो ॥८५॥**

[क्या सत्पुरुष आदृत होते है? क्या असत्पुरुष दूर रखे जाते है? क्या धर्म को छोडकर अधर्माचरण तो नही होता ॥ ८४ ॥ मैने सत्पुरुषो की पूजा की है। असत्पुरुष दूर रखे जाते है। मैने अधर्म को छोडकर धर्माचरण किया है ॥ ८५ ॥]

बोधिसत्व—**कच्चि नानागतं दीघं समवेक्खसि खत्तिय**
**कच्चि मत्तो मदनीये परलोकं न सन्तसि ॥८६॥**

राजा—**नाहं अनागतं दीघं समवेक्खामि पक्खिम**
**ठितो दससु धम्मेसु परलोकं न सन्तसे ॥८७॥**

[हे क्षत्रिय ! कहो भावी जीवन को (बहुत) लम्बा तो नही समझते कहो प्रमादकारी-बातो मे प्रमाद करके परलोक से तो नही डरते ॥ ८६ ॥ हे पक्षी मै भावी जीवन को (बहुत) लम्बा तो नही समझता । मै दस धर्मो मे स्थित हो के कारण पर-लोक से नही डरता ॥ ८७ ॥]

**दानं सीलं परिच्चागं अज्जवं मद्दवं तपं**
**अक्कोधं अविहिंसं च खन्तिं च अविरोधनं ॥८८॥**

[दान, शील, त्याग, आर्जव, मृदुता, तप, अक्रोध, अविहिंसा, क्षमा तथ अविरोध ॥ ८८ ॥]

**इच्चेते कुसले धम्मे ठिते पस्सामि अत्तनि**
**ततो मे जायते पीति सोमनस्सञ्च अनप्पकं ॥८९॥**

[इन कुशल-धर्मो को अपने मे स्थित देखने के कारण मेरे मन मे प्रीति तथ असीम आनन्द पैदा होता है ॥ ८९ ॥]

**सुमुखो च अचिन्तेत्वा विस्सजि फरुसं गिरं**
**भावदोसं अनञ्ञाय अस्माकायं विहंगमो ॥९०॥**
**सो कुद्धो फरुसं वाचं निच्छारेसि अयोनिसो**
**यान अस्मासु न विज्जन्ति न इदं पञ्ञवतामिव ॥९१॥**

[ सुमुख ने बिना विचारे, कठोर वाणी बोली । इस पक्षी ने हममें बिना दो देखे (कठोर वाणी बोली) ॥९०॥ उसने क्रोध के मारे अनुचित रूप से कठोर बा मुह से निकाली । जो दोष हममे नही है, (वह उसने कहा) ; यह प्रज्ञावान जैस बात नही की ॥९१॥ ]

यह सुन कर सुमुख ने 'मैने गुणवान राजा को अप्रसन्न किया, वह मुझसे क्रोधि हो गया , मै उससे क्षमा मागता हूँ' सोचकर कहा—

**अत्थि मे तं अतिसारं वेगेन मनुजाधिप,**
**धतरट्ठे च बद्धस्मिं दुक्खं मे विपुलं अहु ॥९२॥**
**त्वं पिता विय पुत्तानं भूतानं धरणी-रिव**
**अस्माकं अधिपन्नानं खमस्सु राजकुञ्जर ॥९३॥**

[ राजन्! यह जल्दी मे मेरी भूल हो गई। धृतराट्र के जाल मे फस जाने मे मुझे बहुत दु ख हुआ ॥९२॥ तू पुत्रो के लिए पिता के समान है, प्राणियो के लिए धरणी के समान है। हे राज कुञ्जर! हम अपराधियो का अपराध क्षमा कर ॥९३॥ ]

तब राजा ने उसका आलिगन कर, स्वर्ण-पीढे पर बिठा, उसकी अपराध-स्वीकृति स्वीकार कर गाथा कही—

**एतं ते अनुमोदाम यं भावं न निगूहसि,**
**खिलं पभिन्दसि पक्खी, उजुकोसि विहंगम ॥९४॥**

[ जो तू अपने भाव को छिपाता नही है, हम उसका अनुमोदन करते है। हे पक्षी! तू चित्त-मैल को दूर करता है। हे पक्षी! तू ऋजु-स्वभाव है ॥९४॥ ]

यह कह कर राजा ने बोधिसत्व की धर्म-कथा तथा सुमुख की सरलतासे प्रसन्न हो, 'प्रसन्न को प्रसन्न का सा व्यवहार करना चाहिए' सोच उन दोनो को अपनी राज्य-लक्ष्मी सौंपते हुए कहा—

**यं किञ्चि रतनं अत्थि कासिराज निवेसने**
**रजतं जातरूपञ्च मुत्ता वेळुरिया बहु ॥९५॥**
**मणयो संखमुत्तञ्च वत्थकं हरिचन्दनं**
**अजिनं दन्तभण्डञ्च लोहं काळायसं बहुं**
**एतं ददामि वो वित्तं, इस्सरं विस्सजामि वो ॥९६॥**

[जो भी काशी-राज के घर मे रतन है, चान्दी है, सोना है, मोती है, बहु। फिलौर है, मणि है, सख है, मोती है, वस्त्र है, हरित वर्ण चन्दन है, मृग-चम है, (हाथी) दान्त के बरतन है, ताम्बा है, तथा लोहा है—मै यह धन देता हूँ। मै तुम्हारे लिए ऐशवर्य्य का त्याग करता हूँ ॥९५-९६॥]

ऐसा कह उन दोनों की श्वेत-छत्र से पूजा की और राज्य सौंप दिया। तब बोधिसत्व ने राजा से बातचीत करते हुए कहा—

**अद्धा अपचिता त्यम्हा सक्कता च रथेसभ**
**धम्मेसु वत्तमानानं त्वं नो आचरियो भव ॥९७॥**
**आचरियसमनुञ्ञाता तया अनुमता मयं**
**तं पदक्खिणतो कत्वा ञाती पस्सेम अरिंदम ॥९८॥**

[राजन! निश्चय से तूने हमारी पूजा और आदर किया है। लेकिन धर्मारूढ होने के कारण तू हमारा आचार्य्य है ॥९८॥ हे राजन्! तुझ आचार्य्य की अनुमति से, तुम्हारी प्रदक्षिणा करके हम हे राजन्! अपने रिश्तेदारों को देखें ॥९९॥]

उसने उन्हें जाने की अनुज्ञा दी। बोधिसत्व को भी धर्मोपदेश देते रहते अरुणोदय हो गया।

इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिए शास्ता ने कहा—

**सब्बरत्तिं चिन्तयित्वा मन्तयित्वा यथातथं**
**कासिराजा अनुञ्ञासि हंसानं पवरुत्तमं ॥९९॥**

[सारी रात विचार करके तथा मन्त्रणा करके काशी राज ने हंसों के सरदार को जाने की अनुमति दे दी ॥९९॥]

इस प्रकार उससे अनुज्ञा मिलने से बोधिसत्व ने राजा को "अप्रमादी रहकर धर्मानुसार राज करो" कह पाञ्च शीलों में प्रतिष्ठित किया। राजा ने भी उनके स्वर्ण-पात्रों में मीठी-खील तथा शरबत लाकर, उनके खाना समाप्त कर लेने पर, गन्ध माला आदि से पूजा कर, बोधिसत्व को स्वर्ण-वर्ण पेटी में स्वयं उठाया। खेमा देवी ने सुमुख को उठाया। फिर उन्हें खिड़की खोल सूर्य्योदय के समय "स्वामी जाँय" कह बिदा किया।

इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिए शास्ता ने कहा—

**ततो रत्या विवसने सुरियुग्गमनं पति**
**पेक्खतो कासिराजस्स भवता ते विगाहिसुं ॥१००॥**

[तब रात के बीतने पर सूर्योदय को देखते हुए काशी-राज के भवन से वे आकाश में उड़ गये ॥१००॥]

उन दोनों में से बोधिसत्व ने स्वर्ण-पिटारी में से ऊपर उछल, आकाश में खड़े हो "महाराज, चिन्ता न करें। अप्रमादी होकर हमारे उपदेशानुसार चलें।" इस प्रकार राजाओं को आश्वस्त कर सुमुख सहित चित्रकूट पर ही पहुचा। वे नौवे हजार पक्षी भी कचन-गुफा में निकल पर्वत के नीचे बैठे। उन्हे आता देख आगे जा कर घेर लिया। रिश्तेदारों के समूह-सहित वे चित्र-कूट तल पर पहुचे।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

**ते अरोगे अनुप्पत्ते दिस्वान परमे द्विजे**
**केके ति-म-अकरूं हंसा-पुथु सद्दो अजायथ ॥१०१॥**
**ते पतीता पमुत्तेन भत्तुना भत्तुगारवा**
**समन्ता परिकरिसुं अण्डजा लद्धपच्चया ॥१०२॥**

[अर्थ—देखो जातक (५३३) की गाथायें सख्या ८६ तथा ८७॥१०१।१०२॥]

इस प्रकार घेर कर उन हसों ने पूछा, "महाराज, कैसे मुक्त हुए?" बोधिसत्व ने सुमुख को अपनी मुक्ति का श्रेय दिया और सयम राज पुत्र की करनी कही। यह सुन प्रसन्न-चित्त हसों ने आशिर्वाद दिया—"सुमुख सेनापति, राजा और शिकारी, सुखी हो और चिरकाल तक जीते रहे।"

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

**एवं मित्तवतं अत्था सब्बे होन्ति पदक्खिणा**
**हंसा यथा धतरट्ठा ञातिसंघं उपागमुं ॥१०३॥**

[अर्थ—देखो जातक (५३३) की गाथा सख्या ८८॥१०३॥]

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय शिकारी छन्न था। खेमा देवी खेमा भिक्षुणी थी। राजा सारिपुत्र। परिषद बुद्ध-परिषद। सुमुख आनन्द। धृतराष्ट तो मैं ही था।

# ५३५. सुधा भोजन जातक

"नगुत्तमे " यह शास्ता न जतवन मे विहार करते समय एक दानी-स्वभाव भिक्षु के बारे मे कही।

## क. वर्तमान कथा

वह श्रवस्ती का एक तरुण, शास्ता से धर्म सुन, श्रद्धावान् हो, प्रव्रजित हुआ। वह सदाचार के नियमो का पालन करता था, धुताग-नियमो से युक्त था, सब्रह्मचारियो के प्रति मैत्री-भाव रखता था और दिन मे तीन बार बुद्ध, धर्म, सघ की सेवा मे उपस्थित हो, अप्रमाद-सहित आचार का पालन करता तथा दान देता। वह स्मरण-रखने योग्य धर्म की पूर्ति करता। जो कुछ उसे मिलता, लेने वाले के उपस्थित रहने पर वह बिना स्वय खाये भी उसे देता ही था। उसका वह दानी-स्वभाव होना भिक्षु-सघ मे प्रकट हो गया।

तब एक दिन धर्म-सभा मे बात चली,"आयुष्मानो, अमुक भिक्षु दानी स्वभाव का है। उसे यदि चुल्लू भर पनी भी मिलता है तो भी उसमे लाभ न कर सब्रह्मचारियो को देता ही है। इसका आशय बोधिसत्व का आशय है।" शास्ता ने दिव्य-श्रवण शक्ति से वह कथा सुनी और गन्धकुटी से निकल, आकर पूछा, "भिक्षुको, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?"

'अमुक बातचीत," कहने पर "भिक्षुओ, यह भिक्षु पहले अदाता था, कजूस था, तिनके के सिरे पर लगाने वाली तेल की बून्द तक न दे सकता था। मैने इसका दमन कर, इसे नम्र बना, दान-फल की महिमा कह, दान मे प्रतिष्ठित किया है। इसने मुझसे वर लिया है कि 'चुल्लू भर पानी भी बिना दिये न पीऊ'। उसी के फल स्वरूप दानी-स्वभाव, दान देने की नीयत वाला हो गया है" कह पूर्व जन्म की कथा कही।

## ख॰ अतीत कथा

पूर्व समय मे वाराणसत्री मे ब्रह्मदत्त के राज्य के समय एक ग्रहपति धनी था, अस्सी करोड धन वाला। उसे राजा ने 'श्रेष्ठी' का पद दिया। उसने राज्य-पूजित, नगर-जनपद-पूजित हो तथा एक दिन अपनी सम्पति की ओर देखते हुए सोचा "यह सम्पत्ति मै ने पूर्व-जन्म मे सोते पडे रहकर, कायिक दुष्कर्म आदि कर के प्राप्त नही की है, सुकर्म कर के ही प्राप्त की है। मुझे अपने भविष्य जीवन के लिए निश्चित व्यवस्था करनी चाहिए।" उसने राजा से जाकर कहा—"देव ! मेरे घर मे अस्सी करोड धन है, उसे ग्रहण करे।"

"मुझे धन नही चाहिए। मेरे पास बहुत धन है। तुम्हे ही जितना अपेक्षित हो लो।"

राजा के यह उत्तर देने पर उसने पूछा, "देव! तो क्या मे अपने धन का दान कर सकता हूँ?" राजा ने कहा, "जो चाहो करो।" उसने चारो नगर -द्वारो पर, नगर के बीच मे तथा प्रवेश-द्वार पर छ दान शालाये बनवाई और वह प्रति दिन छः लाख का त्याग कर महादान देने लगा। वह जन्म भर दान देता रहा और पुत्रो को आदेश दिया कि मेरी यह दान-परम्परा न टूटने पावे। मरने पर वह शक्र होकर उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र भी उसी प्रकार दान दे चन्द्र होकर पैदा हुआ। उसका पुत्र सूर्य्य होकर, उसका पुत्र मातली होकर और उसका पुत्र पचशिख होकर उत्पन्न हुआ। उसका पिता छठा सेठ मात्सर्य्य-कोष नाम का हुआ। धन उसके पास भी अस्सी करोड ही था। उसने सोचा, "मेरे पिता-पितामह मूर्ख थे। दु ख से प्राप्त धन का परित्याग किया। किन्तु मै धन को सुरक्षित रखूगा। किसी को कुछ न दूगा।" यह निश्चय कर उसने दानशालाये उजडवा दी, उन्हे जलवा दिया और कजूस मक्खीचूस बन बैठा।

उसके द्वार पर भीख मागने वाले हाथ पीट पीट कर जोर से रोते चिल्लाते, "महासेठ, अपने पिता-पितामह की वश-परम्परा को नष्ट मत कर। दान दे।" यह सुन जनता उसकी निन्दा करने लगी, "मात्सर्य-कोष ने अपना वश उजाड दिया।" उसने लज्जित हो प्रवेश-द्वार पर भिखमगो का आगमन रोकने के लिये पहरा बिठा

दिया। निराश्रित हो जाने के कारण उन्हो ने फिर उसके घर की ओर मुड कर नही देखा। इसके बाद वह सेठ एकमात्र धन के सग्रह मे ही लग गया। वह न अपने खाता, न पुत्र-पत्नि आदि को देता, काञ्जी तथा सकुण्डक (?) भात खाता, जडो जैसे धागो वाले मोटे वस्त्र पहनता, पत्तो का छाता सिर पर ले, बूढे बैल जुते पुराने रथ मे बैठ कर जाता। इस प्रकार उस असत्पुरुष का इतना धन कुत्ते को मिले नारियल के समान हो गया।

एक दिन वह राजा की सेवा मे जा रहा था। उसने सोचा, 'अनु-श्रेष्ठी को लेकर जाऊगा।" वह उस के घर पहुचा। उस समय बेटा-बेटी से घिरा हुआ अनु-श्रेष्ठी नवीन घी, शक्कर पडी हुई खीर खाने बैठा था। उसने मात्सर्य-कोष को देखा तो आसन से उठकर बोला, "महा सेठ! आ, इस पलंग पर बैठ, खीर खाये।" उसकी खीर देखते ही उसके मुह मे पानी आ गया। खाने की इच्छा हुई। किन्तु उसने सोचा, "यदि मै खाऊगा, तो श्रेष्ठी के अपने घर आने पर उसका भी सत्कार करना होगा। इस प्रकार मेरा धन नष्ट होगा। नही खाऊगा।" उसके वार बार कहने पर भी, "मैंने अभी खाया है। पेट भरा है" कह उसने नही ही खाया। किन्तु अनु-श्रेष्ठी को बैठे खाते देखते समय उसके मुह मे पानी आता रहा। उसके खा चुकने पर उसके साथ राज-भवन गया। फिर अपने घर आ खीर-तृष्णा मे पीडित होने के कारण सोचने लगा "यदि मै कहूगा कि मै खीर खाना चाहता हू, तो बहुत से लोग खीर खाने की इच्छा वाले हो जायेगे। बहुत सा चावल आदि खराब होगा। मै किसी को नही कहूगा।" वह रात दिन खीर की चिन्ता करता रहा। किन्तु धन नाश के भय से उसने किसी को नही कहा और अपनी उस प्यास को सहता ही रहा। क्रमश. सहन न कर सकने के कारण उसका रग पीला पड गया। इतना होने पर भी उसने धन-नाश के भय से किसी को कुछ नही कहा। आगे चलकर दुर्बल हो उसने चारपाई पकड ली।

उसकी भार्य्या ने उसके पास जा पीठ मलते हुए पूछा—"स्वामी! क्या रोग है?"

"रोग तेरे ही शरीर मे हो, मेरे शरीर मे रोग नही है।"

"स्वामी! पोले पड गये है। कोई चिन्ता है? राजा क्रुद्ध हो गया है, पुत्रो ने अपमान किया है? कोई तृष्णा उत्पन्न हुई है?"

"हाँ, तृष्णा उत्पन्न हुई है।"

"स्वामी ! कहे।"

"पूरी कर सकेगी ?"

"पूरी की जा सकने वाली कामना को पूरा करूंगी।"

तब भी वह धन-नाश के भय से अपनी इच्छा व्यक्त न कर सका। उसके बारबा तग करने पर बोला। "भद्रे! मैंने एक दिन अनु-श्रेष्ठी को घी-शक्कर पडी हुई खी खाते देखा। तब से वैसी खीर खाने की इच्छा पैदा हो गई।"

"असत्पुरुष ! क्या तू दरिद्र है। इतनी खीर पका दूगी कि सारो वाराणस के लोग खाये।"

उसे ऐसा लगा जैसे उसके सिर मे किसी ने डण्डा मार दिया हो। वह उस प क्रोधित हो बोला! "जानता हूँ कि तू बडी धनवान् है। यदि तू अपने घर से लाई तो खीर पकाकर नगर के लोगो को खिला।"

"तो उतनी ही पकाऊगी कि एक गली के लोगो के लिए पर्याप्त हो।"

"उन्हे इससे क्या, अपने पास का खाये।"

" तो यहाँ से यहाँ तक सात घरो के लिए पर्याप्त भर।"

"उन्हे इससे क्या ?"

"तो इसी घर के लोगों के लिए।"

"तुझे उनसे क्या ?"

"तो केवल बन्धु-जनो के लिये।"

"तुझे इससे क्या ?"

"तो स्वामी ! केवल तेरे लिये और अपने लिये पकाऊगी।"

"तू कौन है। तुझे नही चाहिये।"

"स्वामी ! अकेले तेरे ही लिये पकाऊगी।"

"मेरे लिये भी मत पका। घर मे पकाने पर बहुत लोग आशा लगायेगे। मुझे प्रस्थ भर चावल, चार हिस्से दूध, चुटकी भर शक्कर, करण्डकी (?) भ मधु और एक पकाने का बरतन दे। मै जगल मे जा, वहाँ पकाकर खाऊगा।"

उसने वैसा ही किया। सेठ ने वह सब सामान नौकर से उठवाया और कहा, "उ

तू अमुक जगह खड़ा रह।" इस प्रकार उसे आगे भेज, (बाद में) स्वय अकेले ही सिर ढक, अप्रकट वेश मे वहाँ जा, नदी-तट पर एक वृक्ष की छाया मे चूल्हा बना, लकडियाँ तथा पानी मगवा उसे आज्ञा दी, "तू जा, रास्ते पर खडा रह। किसी को देखे तो मुझे इशारा करना। मेरे बुलाने पर आना।" उसे विदा कर, आग बना, खीर पकाई।

उस समय देवेन्द्र शक्र-राजा ने अपने दस हजार योजन के अलकृत देवनगर वाले, साठ योजन की स्वर्ण-गली वाले, हजार योजन ऊचे वैजयन्त वाले, पाँच सौ योजन के सुधर्मा वाले, साठ योजन के पाण्डु-वर्ण कम्बल शिला वाले, पाँच योजन गोलाई के स्वर्ण-माला युक्त श्वेत छत्र वाले, ढाई करोड अप्सराओ मे अलकृत अपने आप के ऐश्वर्य्य को देख सोचा, "मुझे यह ऐश्वर्य्य किस प्रकार मिला?" उसे इस का कारण अपना वाराणासी के सेठ होने के समय का दिया हुआ दान ही दिखाइ दिया। तब उसने देखा कि मेरे पुत्रादि कहाँ पैदा हुए। उसे दिखाई दिया कि उसका एक पुत्र चन्द्र देव-पुत्र होकर पैदा हुआ, उसका पुत्र सूर्य्य . । इस प्रकार सब का उत्पत्ति-स्थान देख उसने जानना चाहा कि पञ्चशिख पुत्र कैसा है? उसे दिखाई दिया कि उस की परम्परा उजड गई है। उसने सोचा, "यह असत्युरुष कजूस होने के कारण न स्वय खाता है, न दूसरो को देता है, इसने मेरा वश उजाड दिया है। यह मरने पर नरक मे पैदा होगा। इसे उपदेश दे, अपने वश की स्थापना कर, ऐसा करुगा कि जिसमे यह इस देव-नगर मे पैदा हो सके। उसने चन्द्रादि को बुलाकर कहा—"आओ, मनुष्यो के रास्ते पर चले। मात्सर्य्य-कोष ने हमारा वश उजाड दिया। दान-शाला जला दी। न अपने खाता है और न दूसरो को देता है। अब खीर खाने की इच्छा हुई। घर मे पकाने से दूसरे को भी देना होगा, इसलिए जगल मे जा अकेला ही पका रहा है। इसका दमन कर, दान-फल प्रकट कर आये। सम्भव है हम सब के एक साथ मागने लगने पर वह वही मर जाय। मैं पहले जाकर खीर मागूगा। उसके बाद क्रमश: तुम भी ब्राह्मण-वेष बना आकर मागना।" यह कह स्वय ब्राह्मण-वेष बना और उसके पास पहुच पूछा —

"भो! वाराणसी का कौन-सा मार्ग है"

मात्सर्य्य-कोष बोला, "अरे क्या पगला है। वाराणसी का रास्ता भी नही जानता! इधर क्या आता है। उधर जा।"

शक्र को जैसे उसका कहना सुनाई ही नही दिया। वह आगे बढ़ता चला गया—"क्या कहता है ?" वह भी चिल्लाया—"अरे बहरे ब्राह्मण ! इधर क्या आता है, उधर जा।"

"चिल्लाता किस लिए है ? धुआ दिखाई देता है। आग दिखाई देती है। खीर पकती है। ब्राह्मण-निमंत्रण स्थान होगा। मै भी ब्राह्मणों को भोजन मिलने के समय कुछ पा जाऊगा। भगाता क्यो है ?"

"यहाँ ब्राह्मण-निमंत्रण नही है। दूर हट।"

"तो क्रुद्ध क्यो होता है। तेरे ही भोजन करने के समय कुछ पा जाऊँगा।"

"मै तुझे एक छिलका भर न दूगा। यहाँ थोडी-सी मेरे लिए ही है। मुझे भी यह मागने से ही मिली है। तू अन्यत्र अपना भोजन खोज।"

यह बात उसने भार्य्या से माग कर प्राप्त करने के कारण ही कही। वह बोला—

**नेव किणामि नपि विक्किणामि**
**न चापि मे सन्निचयो च अत्थि,**
**सुकिच्छरूपं वत इदं परित्तं,**
**पत्थोदनो नालं अयं दुविन्नं ॥१॥**

[न खरीदता हूँ, न बेचता हूँ और न मेरे पास संग्रह ही है। यह प्रस्थ भर भात बहुत थोडा सा है। यह दोनो के लिये पर्य्याप्त नही है ॥?॥]

यह सुन शक्र ने 'मै भी तुझे मधुर-वाणी से एक श्लोक कहता हूँ, सुन' कहा। वह मना ही करता रह गया कि मुझे तेरे श्लोक से प्रयोजन नही, तो भी शक्र ने दो गाथाये कही—

**अप्पम्हा अप्पकं दज्जा अनुमज्झतो मज्झकं,**
**बहुम्हा बहुकं दज्जा, अदानं न उपपज्जति ॥२॥**
**तं तं वदामि कोसिय देहि दानानि भुञ्ज च**
**अरियं मग्गं समारूह नेकासी लभते सुखं ॥३॥**

[थोडी मात्रा मे से थोड़ा दे। बीच की मात्रा में से बीच का दे। बहुत में से बहुत दे। न देना उचित नहीं॥ २॥ हे कोसिय ! मैं तुझे कहता हूँ—दान दे

और खा-पी। आर्य-मार्ग का अनुगामी हो। अकेले खाने से सुख नही प्राप्त होता ॥ ३ ॥]

उसकी बात सुनी तो वह बोला—"ब्राह्मण! तू ठीक कहता है। खीर के पकने पर कुछ पायेगा, बैठ।" शक्र एक ओर बैठा। उसके बैठने पर चन्द्र उसी प्रकार पहुँचा, और उसी प्रकार की बात चीत के बाद उसके मना करते रहने पर भी गाथा कही—

**मोघञ्चस्सहुतं होति मोघञ्चापि समीहितं**
**अतिथिस्मिं यो निसिन्नस्मिं एको भुञ्जति भोजनं ॥४॥**
**तं तं वदामि कोसिय देहि दानानि भुञ्ज च,**
**अरियमग्गं समारूह नेकासी लभते सुखं ॥५॥**

[उसका यज्ञ व्यर्थ है, उसका प्रयत्न व्यर्थ है, जो अतिथि के बैठे रहने पर अकेला भोजन करता है ॥ ४ ॥ अर्थ ऊपर आ चुका ॥ ५ ॥]

उसने उसकी बात सुन बडी कठिनाई से कहा, "तो बैठ, कुछ मिलेगा।" वह जाकर शक्र के पास बैठा। इसके बाद सूर्य्य उसी प्रकार उसके पास पहुँचा और उसी प्रकार बात चला, उसके मना करते रहने पर भी उसने दो गाथाये कही—

**सच्चं तस्स हुतं होति सच्चं चापि समीहितं**
**अतिथिस्मिं यो निसिन्नस्मिं नेको भुञ्जति भोजनं ॥६॥**
**तं तं वदामि..... .....॥७॥**

[अर्थ स्पष्ट है ॥ ६-७ ॥]

उसकी भी बात सुन वह बडी ही कठिनाई से बोला, "तो बैठ, थोडा मिलेगा।" वह जाकर चन्द्र के पास बैठ गया। तब मातली उसी प्रकार पास पहुँचा, उसी प्रकार बात बनाई और उसी प्रकार उसके मना करने पर भी गाथाये कही—

**सरसञ्च यो जुहति बहुकाय गयाय च**
**दोणे तिम्बरुतित्थस्मिं सीधसोते महावहे ॥८॥**
**अत्र चस्स हुतं होति अत्र चस्स समीहितं**
**अतिथिस्मिं यो.....सुखं ॥९-१०॥**

[जो सरोवर मे यज्ञ करता है, बहुका तथा गया मे और शीघ्र श्रोत महान् प्रवाह वाले द्रोण तथा तिम्बरू तीर्थ मे। उसकी अपेक्षा यही यज्ञ अच्छा है— अतिथि के बैठे रहने पर अकेले भोजन न करना। अकेले खाने से सुख नही प्राप्त होता ॥ ८-१० ॥]

उसकी भी बात सुन, पर्वत से दब गये की तरह बडी ही कठिनाई से बोला— "तो बैठ, कुछ मिलेगा।" मातली जाकर सुय्यं के पास बैठा। तब पञ्चशिख उसी प्रकार पहुँचा, उसी प्रकार बात चलाई और उसी प्रकार उसके मना करने पर भी उसने दो गाथाये कही—

**वलिसं हि सो निग्गिलति दीघसुत्तं सबन्धनं**
**अतिथिस्मिं यो.....सुखं॥११-१२॥**

[वह बन्धन-सहित, लम्बी डोरी वाला मछली का काँटा ही निगलता है, जो अतिथि के बैठे रहने पर . होता ॥ ११ ॥]

मात्सर्य-कोष ने यह सुना तो सभी दुखो के एक साथ इकट्ठे हो जाने से दुखी होते हुए कहा—"तो बैठ, कुछ मिलेगा।" पञ्चशिख जाकर मातली के पास बैठ गया। उन पांचो ब्राह्मणो के बैठते ही खीर पक कर तैयार हो गई। कोसिय ने उसे चूल्हे से उतारा और बोला, "अपने अपने पत्ते लाओ।" उन्होने बैठे बैठे ही हाथ फैलाये और हिमालय से मालुवा-लता के पत्ते मगवा लिये। कोसिय ने उन्हे देखा तो बोला, "तुम्हे इतने बडे-बड पत्तो मे देने लायक खीर नही है। खदिर आदि केपत्ते ले आओ।" वे वैसे ले आये। एक एक पत्ता योधाओ के फलक के समान था। उसने सभी को कडछी से खीर दी। सब से अन्तिम को देते समय भी खीर के बरतन मे किसी प्रकार की कमी नही दिखाई दी। पाचो को देकर स्वय खीर का बरतन लेकर बैठा। उसी समय पञ्चशिख उठा और अपना रूप बदल, कुत्ता बनकर उनके सामने पेशाब करता हुआ आया। ब्राह्मणो ने अपनी अपनी खीर पत्तो से ढक ली। कोसिय के हाथ पर पेशाब की बूद गिर पडी। ब्राह्मणो ने कुण्डी मे से पानी लिया और खीर पर छीटे दे खाने की तैयारी की। कोसिय बोला, "मुझे भी पानी दें, हाथ धोकर खाऊँगा।"

"अपना पानी लाकर हाथ धोवो।"

"मैंने तुम्हें खीर दी। मुझे कुछ पानी दो।"

"हम दान के बदले में दान नहीं देते।"

"तो इस बरतन को देखें, मैं हाथ धोकर आता हूँ" कह वह नदी पर गया।

उस समय कुत्ते ने खीर के बरतन में पेशाब कर दिया। जब उसने उसे पेशाब करते देखा तो बड़ा डण्डा ले, धमकाता हुआ आया। वह श्रेष्ठ घोड़े जितना बड़ा हो उसका पीछा करने लगा और नाना वर्ण बदले—काला भी, श्वेत भी, स्वर्ण-वर्ण भी, चितकबरा भी, ऊँचा भी और नीचा भी। इस प्रकार नाना शकले बना मात्सर्य-कोष का पीछा किया। वह मृत्यु-भय से ब्राह्मणों के पास पहुँचा। वे भी उछल कर आकाश में जा पहुंचे। उसने उनका यह ऋद्धि-बल देखा तो बोला—

**उळारवण्णा वत ब्राह्मणा इमे,**
**अयं च वो सुनखो किस्स हेतु**
**उच्चावचं वण्णनिभं विकुब्बति.**
**अक्खाथ नो ब्राह्मणा को नु तुम्हे ॥१३॥**

[ये सभी ब्राह्मण श्रेष्ठ-वर्ण के हैं, किन्तु यह कुत्ता किस लिये तरह तरह की शकलें बनाता है। हे ब्राह्मणो, मुझे कहो कि तुम कौन हो? ॥ १३ ॥]

यह सुन देवेन्द्र शक्र बोला—

**चन्दो च सुरियो च उभो इधागता,**
**अयं पन मातलि देवसारथि**
**सक्को हमस्मि तिदसानं इन्दो,**
**एसो च खो पञ्चसिखोति बुच्चति ॥१४॥**

[चन्द्र तथा सूर्य्य दोनों यहाँ आये हैं। यह देवसारथी मातलि है। मैं देवेन्द्र शक्र हूँ, तथा यह पञ्चशिख कहलाता है॥ १४॥]

फिर उसके ऐश्वर्य्य की बड़ाई करता हुआ बोला—

**पाणिस्सरा मुतिंगा च मुरजालम्बरानि च**
**सुत्तं एतं पबोधेन्ति. पटिबुद्धो च नन्दति ॥१५॥**

[पाणि-स्वर, मृदग, मुरज तथा आलम्बर (वाद्य-यन्त्र) इसे सोते को जगाते है; जागने पर यह आनन्दित होता है॥ १५॥]

उसकी बात सुन उसने प्रश्न किया, "इस प्रकार की दिव्य-सम्पत्ति क्या करने से मिलती है?" "जो दानी नही है, जो पापी है, जो कंजूस है, वे देव लोक नही जाते है। वे नरक मे पैदा होते है" प्रकट करने के लिये यह गाथा कही—

**ये केचिमे मच्छरिनो कदरिया**
**परिभासका समणब्राह्मणानं**
**इधेव निक्खिप्प सरीरदेहं**
**कायस्स भेदा निरयं वजन्ति॥१६॥**

[जो कजूस है, जो स्वार्थी है और जो श्रमण ब्राह्मणो की हंसी उडाने वाले है, वे शरीर को यही छोडकर, मरने पर नरक गामी होते है॥ १६॥]

फिर धर्म मे स्थित रहने वालो का देव-लोक-लाभ प्रकट करने के लिये—

**ये केचिमे सुग्गतिं आससाना**
**धम्मे ठिता संयमे संविभागे,**
**इधेव निक्खिप्प सरीरदेहं**
**कायस्स भेदा सुगतिं वजन्ति॥१७॥**

[जो लोग सुगति की आशा करते है, वे धर्माचरण करते है, संयमी होते है तथा दानी होते है। वे यही शरीर को छोडकर, मृत्यु होने पर सुगति लाभ करते है॥ १७॥]

यह कह 'कोसिय! हम तेरे पास खीर के लिये नही आये। तुझ पर करुणा करने के लिये ही आये है' कह, इस बात को प्रकाशित किया—

**त्वं नो सि ञाती पुरिमासु जातिसु**
**सो मच्छरी रोसको पापधम्मो,**
**तवेव अत्थाय इधागतम्हा**
**मा पापधम्मो निरयं अपत्थ॥१८॥**

[तू हमारा पूर्व-जन्म का सम्बन्धी है। तू कजूस, क्रोधी तथा पापी हो गया है।हम तेरे ही लिये यहाँ आये हे। यह पापी नरक न जाये॥ १८॥]

यह सुन कोसिय 'ये मेरा भला चाहने वाले है, मुझे नरक से निकाल स्वर्ग मे प्रतिष्ठित करना चाहते है' सोच प्रसन्न हुआ और बोला—

**अद्धा (हि) मं वो हितकामा यं मं समनुसासथ**
**सोहं तथा करिस्सामि सब्बं वुत्तं हितेसिहि॥१९॥**
**एसाहं अज्जेव उपारमामि**
**न चापहं किञ्चि करेय्य पापं**
**न चापि मे किञ्चि-म-अदेय्यं अत्थि**
**न चापि दत्वा उदकं पहं पिये॥२०॥**
**एवं च मे ददतो सब्बकालं**
**भोगा इमे वासव खीयिस्सन्ति,**
**ततो अहं पब्बजिस्सामि सक्क**
**हित्वान कामानि यथोधिकानि॥२१॥**

[आप निश्चय से मेरे हित-चिन्तक है, जो मेरा अनुशासन करते है। जैसा मेरे सभी हितैषी कहते है, मै वैसा ही करूँगा॥ १९॥ मै आज से ही विरत होता हूँ। मै कोई पाप-कर्म नही करूँगा। मेरे लिये कुछ भी अदेय नही है। मै बिना दिये पानी भी नही पीऊँगा॥ २०॥ हे इन्द्र! इस प्रकार निरन्तर देते रहने से मेरी भोग-सामग्री कम हो जायगी। हे शक्र। तब मै इन काम-भोगों को छोड प्रव्रजित होऊँगा॥ २१॥]

शक्र मात्सर्य-कोष का दमन कर, नम्र बना, दान-फल प्रकट कर, धर्म-देशना द्वारा पाच शीलो मे प्रतिष्ठित कर उनके साथ देव-नगर ही चला गया। मात्सर्य-कोष भी नगर मे प्रविष्ट हुआ। उसने राजा से अनुज्ञा ले, याचको को धन दिया, "जो बरतन जिसके पास हो, भर भर कर ले जाय।" फिर निकल कर हिमालय के दक्षिण ओर गगा तथा एक तालाब के बीच पर्णशाला बना, प्रव्रजित हो, जगल के फल मूल खाता हुआ वहीं रहने लगा। वह चिरकाल तक वही रहता रहता बूढ़ा हो

गया। उस समय शक्र की चार-कन्यायें थीं—आशा, श्रद्धा, श्री तथा ह्री। वे बहुत दिव्य गन्ध-माला ले जल-क्रीडा के लिये अनोतप्त सरोवर जा, वहाँ क्रीडा कर, मनोशिलातल पर बैठी।

उस समय नारद नामका ब्राह्मण तपस्वी त्रयोत्रिंश भवन मे दिन बिताने के लिये गया। उसने नन्दवन, चित्रकूट तथा लतावन मे दिन बिताया और छाया के लिये पारिच्छत्तक पुष्प को छाते की तरह धारण कर, मनोशिलातल के ऊपर अपने निवास-स्थान कञ्चन-गुहा की ओर चला। उन्होंने उसके हाथ मे वह फूल देख याचना की।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

**नगुत्तमे गिरिवरे गन्धमादने**
**मोदन्ति ता देववराभिपालिता,**
**अथागमा इसिवरो सब्बलोकगू**
**सुपुप्फितं दुमवरसाखं आदिय॥२२॥**
**सुचिं सुगन्ध तिदसेहि सक्कतं**
**पुप्फुत्तमं अमरवरेहि सेवितं**
**अलद्ध मच्चेहि वा दानवेहि वा**
**अञ्ञत्रदेवेहि तदारहं हिदं॥२३॥**
**ततो चतस्सो कनकत्तचूपमा**
**उट्ठाय नरियो पमदाधिपा मुनिं**
**आसा च सद्धा च ततो सिरि हिरी**
**इच्चब्रवुं नारददेवब्राह्मणं॥२४॥**
**सचे अनुद्दिट्ठं तया महामुनि**
**पुप्फं इमं पारिच्छत्तस्स ब्रह्मे**
**ददाहि नो, सब्बगती ते इज्झन्तु**
**त्वं पि नो होहि यथेव वासवो॥२५॥**
**तं याचमानाभि समेक्ख नारदो**
**इच्च-ब्रवी संकलहं उदीरयि**

**न मय्हं अत्थत्थि इमेहि कोचि नं,**
**या येव वो सेय्यसि सा पिळग्हथ ॥२६॥**

[शक्र द्वारा पालित वे कन्याये उस उत्तम, श्रेष्ठ गन्धमादन पर्वत पर आनन्द मना रही थी। वहाँ सब लोगो मे पहुँच रखने वाला श्रेष्ठ-ऋषि श्रेष्ठ-वृक्ष की पुष्पित शाखा (का फूल) लेकर वहाँ आ पहुँचा ॥ २२ ॥ पवित्र, सुगन्धित देवताओ द्वारा सत्कृत, शक्र द्वारा सेवित, देवताओ के अतिरिक्त अन्य मनुष्यो अथवा दानवो को अप्राप्य, देवताओ के ही योग्य-उत्तम-पुष्प (था) ॥ २३ ॥ तब स्त्रियो मे श्रेष्ठ उन चारो स्वर्णिम-त्वचा वाली आश, श्रद्धा, श्री तथा ह्री नारियो ने उठकर देव-ब्राह्मण नारद मुनि को इस प्रकार कहा ॥ २४ ॥ हे महामुनि ! यदि उस परिच्छित्त पुष्प के बारे मे पहले से किसी को देने का सकल्प नही है, तो यह हमे दे दे। तुम्हारी सब इच्छाये पूरी हो। तू भी हमारे लिये (हमारे पिता) इन्द्र के समान हो ॥ २५ ॥ उन्हे याचना करते हुए पा नारद मुनि ने कलह बढाने वाली बात कही मुझे इसकी कुछ आवश्यकता नही। तुम मे जो ज्येष्ठ-श्रेष्ठ है, वह इसे धारण करे ॥ २६ ॥]

उसकी बात सुन उन चारो न गाथा कही—

**त्वं नो' त्तमो वाभिसमेक्ख नारद**
**यस्स इच्छसि तस्सं अनुप्पवेच्छसु,**
**यस्सा हि नो नारद त्वं पदस्ससि**
**सा येव नो होहिति सेट्ठसम्मता ॥२७॥**

[हे नारद ! तू ही हम मे से जिस किसी को श्रेष्ठ समझे, उसी को दे दे। हे नारद ! जिस किसी को तू देगा, वह ही हममे श्रेष्ठ हो जायगी ॥ २७ ॥)

उनकी बात सुन नारद ने उन्हे सम्बोधित किया—

**अकल्लं एतं वचनं सुगत्ते**
**को ब्राह्मणो को कलहं उदीरये**
**गन्त्वान भूताधिपं एव पुच्छथ**
**सचे न जानाथ इध उत्तमाधमं ॥२८॥**

[हे सुगात्रे ! यह तुम्हारा कहना ठीक नही है। कौन ब्राह्मण कलह बढाने जाये। यदि तुम अपना ऊँच-नीच नही जानती तो जाकर (अपने पिता) सुरेन्द्र को ही पूछो॥ २८॥]

तब शास्ता ने—

**ता नारदेन परमप्पकोपिता**
**उदीरिता वण्णमदेन मत्ता**
**सकासे गन्त्वान सहस्सचक्खुनो**
**पुच्छिंसु भूताधिपं का नु सेय्यसि॥२९॥**

[नारद द्वारा अत्यन्त उत्तेजित की हुई, (पिता को ही जाकर पूछो, यह) कही गई, वर्ण-मद से मत्त वे कन्याये सहस्र-नेत्र के पास पहुँची और जाकर पूछा—हम मे कौन श्रेष्ट है? ॥ २९ ॥]

वे ऐसा पूछ कर खडी हुई:

**ता दिस्वा आयतमना पुरिंददो**
**इच्च-अब्रवी देववरो कतञ्जलि**
**सब्बा व वो होथ सुगत्ते सादिसी,**
**को नेव भद्दे कलहं उदीरयि॥३०॥**

[उन्हे (आया) देख उदार-मन कृताञ्जलि देवेन्द्र शत्रु बोला हे सुगात्रे – तुम सभी समान हो। भद्रे ! कौन है जो तुम्हारे बीच मे कलह बढाना चाहता है? ॥ ३० ॥]

उन्होने उसे उत्तर देते हुए गाथा कही.

**यो सब्बलोकं चरको महामुनि**
**धम्मे ठितो नारदो सच्चनिक्कमो**
**सो नो ब्रवी गिरिवरे गन्धमादने**
**गन्त्वान भूताधिपं एव पुच्छथ**
**सचे न जानाथ इध उत्तमाधमं॥३१॥**

[जो सब लोगो मे घूमने वाला नारद मुनि है, जो धर्म म स्थित है, जो सत्य-

वादी है, उसने हमे गन्धमादन पर्वत पर कहा कि यदि यह नही जानती कि कौन उत्तम है और कौन निकृष्ट है तो जाकर सुरेन्द्र से पूछो ॥ ३१ ॥]

यह सुन शक्र ने "यह चारो मेरी कन्याये है, यदि मै इनमे से किसी एक को गुणवान्, उत्तम कहूँगा, तो शेष क्रुद्ध हो जायेगी। मै इस विवाद का निर्णय नही कर सकता। मै इन्हे हिमालय मे कोसिय तपस्वी के पास भेजूंगा। वह इनके विवाद का फैसला करेगा" सोच, उन्हे कहा : "मै तुम्हारे विवाद का फैसला नही करूँगा। हिमालय मे कोसिय तपस्वी है। उसके पास मै अपना अमृत भोजन भेजूगा। वह बिना किसी को दिये नही खाता और देता है तो गुणवान् का विचार करके देता है। तुम मे से जिस किसी को उसके हाथ से भोजन मिलेगा, वह उत्तम होगी।"

यह कहते हुए गाथा कही—

**असु ब्रहारञ्ञचरो महामुनि**
**नादत्वा भत्तं वरगत्ते भुञ्जति,**
**विचेय्य दानानि ददाति कोसियो,**
**यससा हि सो दस्सति सा व सेय्यसि ॥३२॥**

[हे वर गात्रे ! महारण्य वासी महामुनि है। वह बिना दिय नही खाता है। कोसिय विचार करके दान देता है। जिसे वह देगा, वही श्रेष्ठ होगी ॥ ३२ ॥]

इस प्रकार उन्हे तपस्वी के पास भेज, मातलि को बुला, उसके पास भेजते हुए दूसरी गाथा कही—

**असू हि यो सम्मति दक्खिणं दिसं**
**गंगाय तीरे हिमवन्तपस्मनि**
**स कोसियो दुल्लभपानभोजनो**
**तस्स सुधं पापय देवसारथि ॥३३॥**

[वह दक्षिण दिशा मे गगा के तट पर हिमालय के पार्श्व मे रहता है। उस कोसिय को खाना पीना कठिनाई से मिलता है। हे सारथी ! उसके पास अमृत (= सुधा) ले जा ॥ ३३ ॥]

तब शास्ता ने कहा—

**स मातलि देववरेन पेसितो**
**सहस्सयुत्तं अभिरुय्ह सन्दनं**
**स खिप्पं एव उपगम्म अस्समं**
**अदिस्समानो मुनिनो सुधं अदा ॥३४॥**

[देवेन्द्र द्वारा भेजा गया वह मातली सहस्र (घोडो के) रथ पर चढकर शीघ्र ही आश्रम पहुँचा। उसने अदृश्य कहकर ही मुनि को अमृत दिया ॥ ३४ ॥]

कोसिय ने वह ले खडे ही खडे दो गाथाये कहीं—

**उदग्गिहुत्तं उपतिय्ठतो हि मे**
**पभंकरं लोकतमोनुद' उत्तमं**
**सब्बानि भूतानि अतिच्च वासवो**
**कोनेव मे पाणिसु किं सुधोदहि ॥३५॥**
**संखूपमं सेतं अतुल्यदस्सनं**
**सुचिं सुगन्धं पियरूपं अब्भुतं**
**अदिट्ठपुब्बं मम जातचक्खुहि**
**का देवता पाणिसु किं सुधोदहि ॥३६॥**

[अग्नि-होत्र करने क अनन्तर जब मै लोक-तम नाशक, उत्तम सूर्य्य की उपासना कर रहा था, तो क्या सभी प्राणियो का अति क्रमण कर मेरे हाथो मे इन्द्र ने कुछ रखा है ? ॥ ३५ ॥ शख के समान श्वेत, अतुल्य-दर्शन, पवित्र, सुगन्धित, प्रियरूप, अद्‌भुत, जन्म लेने के बाद से इनआखो से अदृश-पूर्व, यह किस देवता ने मेरे हाथो मे क्या रखा है ॥३६॥]

तब मातलि बोला—

**अहं महिन्देन महेसि पेसितो**
**सुधाभिहारिं तुरितो महामुनि,**
**जानासि मं मातलि देवसारथि,**
**भुञ्जस्सु भत्तुत्तमं, मा विचारयि ॥३७॥**

**भुत्ता च सा द्वादस हन्ति पापके**
**खुदं पिपासं अरतिं दुरक्खमं**
**को धूपनाहञ्च विवादपेसुणं**
**सीतुण्हतन्दिञ्च रसुत्तमं इदं ॥३८॥**

[हे महर्षि ! मैं महेन्द्र द्वारा भेजा गया हूँ। हे महामुनि ! मैं तुम्हारे लिये शीघ्रता से अमृत लाया हूँ। मुझे आप देव सारथि मातलि जाने और निश्चिन्त होकर उत्तम भोज ग्रहण कर ॥ ३७ ॥ यह श्रेष्ठ रस ग्रहण करने पर बारह बुराइयों को, दूर करता है—क्षुधा को, प्यास को, उत्कण्ठा को, थकावट को, क्रोध को, डाह को, विवाद को, चुगलखोरी को, शीत को, उष्णता को तथा तन्द्रा को ॥ ३८ ॥]

यह सुन कोसिय ने अपने व्रत की बात प्रकट की—

**न कप्पति मातलि मय्ह भुञ्जितुं**
**पुब्बे अदत्वा इति मे वतुत्तमं**
**न चापि एकासनं अरियपूजितं**
**असंविभागी च सुखं न विन्दति ॥३९॥**

[हे मातलि ! मेरा उत्तम व्रत है कि मैं बिना पहले दिये नहीं खा सकता। अकेले भोजन करना आर्य-प्रशंसित नहीं है। दान न देने वाला सुख लाभ नहीं करता ॥ ३९ ॥]

"भन्ते ! बिना दूसरे को दिये खाने में तुमने क्या दोष देख कर यह व्रत ग्रहण किया ?" मातलि के पूछने पर कहा—

**थीघातका ये चिमे पारदारिका**
**मित्तद्दुनो ये च सपन्ति सुब्बते**
**सब्बे च ते मच्छरिपञ्चमाधमा**
**तस्मा अदत्वा उदकं पि नास्मिये ॥४०॥**
**सो हित्थिया वा पुरिसस्स वा पन**
**दस्सामि दानं विदुसं पवण्णितं,**

**सब्बा वदञ्ञू इध वीतमच्छरा**
**भवन्ति हेते सुचि सच्चसम्मता ॥४१॥**

[स्त्री का घात करने वाले, परस्त्री गमन करने वाले, मित्र द्रोही, सुव्रतियों को भला-बुरा कहने वाले तथा पाचवें कजूस—ये सभी अधम है। इसलिये मै बिना दिये पानी भी नही पीता॥ ४० ॥ मै स्त्री अथवा पुरुष किसी को भी जो विद्वानों द्वारा प्रशंसित दान देता हूँ, वे सब वाणी के ज्ञाता होते है, मात्सर्य्य-रहित होते है तथा पवित्रता और सत्य से युक्त होते है॥ ४१ ॥]

यह सुन मातलि प्रकट रूप मे उपस्थित हुआ। उस समय वे चारो देव कन्याये चारो दिशाओं मे खडी हुई—श्री पूर्व दिशा मे खडी हुई, आशा दक्षिण दिशा मे श्रद्धा पश्चिम दिशा मे और ह्री उत्तर दिशा मे।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

**अतो मुता देववरेन पेसिता**
**कञ्ञा चतस्सो कनकत्तचूपमा**
**आसा च सद्धा च सिरि हिरी ततो**
**तं अस्समं आगमुं यत्थ कोसियो ॥४२॥**
**ता दिस्वा सब्बो परमप्पमोदितो**
**सुभेन वण्णेन सिखारिव अग्गिनो**
**कञ्ञा चतस्सो चतुरो चतुद्दिसा**
**इच्च ब्रवी मातलिनो च सम्मुखा ॥४३॥**
**पुरिमं दिसं का त्वं पभासि देवते**
**अलंकता तारवरा व ओसधी,**
**पुच्छामि तं कञ्चनवेल्लिविग्गहे**
**आचिक्ख मे त्वं कतमासि देवता ॥४४॥**
**सिराहं देवी मनुजेसु पूजिता**
**अपापसत्तूपनिसेविनी सदा**
**सुधाविवादेन तवन्तिमागता,**
**तं मं सुधाय वरपञ्ञ भाजय ॥४५॥**

**यस्साहं इच्छामि सुखं महामुनि**
**स सब्बकामोहि नरो पमोदति,**
**सिरीति यं जानहि जूहतुत्तम**
**तं मं सुधाय वर पञ्ज भाजय ॥४६॥**

[देवेन्द्र द्वारा अनुज्ञात तथा प्रेषित, स्वर्ण-त्वचा जैसी, आशा, श्रद्धा, श्री तथा ह्री—चारो कन्याये जहा कोसिय का आश्रम था, वहाँ पहुँची ॥ ४२ ॥ उन सब चारो दिशाओ मे खडी, चारों कन्याओ को अग्निशिखा के समान शुभ-वर्ण-सम्पन्न देख कर, पर प्रसन्न हो वह मातलि की उपस्थिति मे बोला ॥ ४३ ॥ हे देवी ! पूर्व दिशा को प्रकाशित करने वाली, ओषधी तारे की तरह चमकने वाली हे कञ्चन शरीरे ! मुझे बता कि तू कौन देवी है ? ॥ ४४ ॥ मै मनुष्यो द्वारा पूजित 'श्री' हूँ, मै सदा निष्पाप प्राणियो की संगति मे रहती हूँ। सुधा-विवाद के कारण तेरे पास आई हूं। हे श्रेष्ठ प्रज्ञ ! तू मुझे सुधा दे ॥ ४५ ॥ हे महा मुनि ! मै जिसका सुख चाहूँ, वह नर सभी कामनाओ से आनन्दित होता है। हे याज्ञिक-श्रेष्ठ ! यह जान कि मै 'श्री' हूँ। हे श्रेष्ठ-प्रज्ञ ! मुझे सुधा दे ॥ ४६ ॥]

यह सुन कोसिय बोला—

**सिप्पेन विज्जाचरणेन बुद्धिया**
**नरा उपेता पगुणा सकम्मना**
**तया विहीना न लभन्ति किञ्चनं,**
**तदिदं न साधु यदिदं तया कतं ॥४७॥**

**पस्सामि पोसं अलसं महाघसं**
**सुदुक्कुलीनं पि अरूपिमं नरं**
**तयानुगुत्तो सिरि जातिमं अपि**
**पेसेति दासं विय भोगवा सुखी ॥४८॥**

**तं तं असच्चं अविभज्ज सेविनिं**
**जानामि मूळहं विदुरानुपातिनिं**

**न तादिसी अरहति आसनूदकं**
**कुतो सुधा, गच्छ न मय्ह रुच्चसि ॥४९॥**

[शिल्प, विद्या, आचरण, बुद्धि से युक्त तथा अपने कार्य्य मे दक्ष आदमी भी तेरे बिना कुछ प्राप्त नही कर सकते। यह जो तूने किया है, यह अच्छा नही है ॥ ४७ ॥ मै देखता हूँ कि आलसी, बहुत खानेवाला, खराब कुल का कुरूप भोग-सम्पन्न, मुर्ख, आदमी तेरा कृपा पात्र होकर जाति-सम्पन्न व्यक्ति को भी 'दास' की तरह भेजता है ॥ ४८ ॥ हे अविवेक-रहित सेवा करने वाली ! यह सब असत्य है। हे पण्डितो को गिराने वाली यह सब मूढता है। तुझे आसन तथा उदक भी देना योग्य नही। अमृत तो कहां से। जा, तू मुझे अच्छी नही लगती ॥ ४९ ॥]

वह वही अन्तर्धान हो गई। तब उसने आशा के साथ बात की। पूछा—

**का सुक्कदाठा पटिमुत्तकुण्डला**
**चित्तंगदा कम्बुविमट्ठधारिनी**
**ओसित्त वण्णं परिदय्ह सोभसि**
**कुसग्गिरत्तं अपिळय्ह मञ्जरिं ॥५०॥**
**मिगीव भन्ता सरचापधारिना**
**विराधिता मंदं इव उदिक्खसि,**
**को ते दुतियो इध मन्दलोचने,**
**न भायसि एकिका कानने वने ॥५१॥**

[हे शुक्ल-दन्ते ! हे कुण्डल-धारिणी ! हे चित्रागदे। हे स्वर्णालंकार - धारिनी ! हे उदक धारा के समान वस्त्र धारण कर सुशोभिते ! हे कुशाग्नि के समान रक्त-वर्ण मञ्जरी को धारण करने वाली ! हे शर-चाप धारी शिकारी द्वारा आहत मृगी की तरह देखने वाली ! हे मन्द लोचने ! यहां तेरा द्वितीय कौन है ? तुझे इस वन मे डर नही लगता ? ॥ ५१ ॥]

उसने उत्तर दिया—

**न मे दुतियो इध-म-अत्थि कोसिय,**
**मसक्कसारप्पभवम्हि देवता**

**आसा सुधासाय तवन्तिमा आगता,**
**तं मं सुधाय वरपञ्ञ भाजय ॥५२॥**

[हे कोसिय ! यहाँ मेरा कोई द्वितीय नही है। मैं त्रयोत्रिंश भवन मे उत्पन्न देवी हूँ। मेरा नाम आशा है। मैं सुधा की आशा से तेरे पास आई हूँ। हे श्रेष्ठ-प्रज्ञ ! मुझे सुधा दे ॥ ५२ ॥]

यह सुन कोसिय ने 'जो तुझे अच्छा लगता है उसे तू फल मिलने की आशा देती है, जो तुझे अच्छा नही लगता उसे नही देती है। तेरा साथ विनाशकारी नही है' प्रकट करते हुए कहा—

**आसाय यन्ति वाणिजा धनेसिनो,**
**नावं समारुय्ह परेन्ति अण्णवे,**
**ते तत्थ सीदन्ति अथो पि एकदा**
**जीनाधना एन्ति विनट्ठ पाभता ॥५३॥**
**आसाय खेत्तानि कसन्ति कस्सका,**
**वपन्ति बीजानि, करोन्ति पायसो,**
**इतीनिपातेन अवुट्ठिकाय वा**
**न किञ्चि विन्दन्ति ततो फलागमं ॥५४॥**
**अथ अत्तकारानि करोन्ति भत्तुसु**
**आसं पुरक्खत्वा नरा सुखेसिनो,**
**ते भत्तुरत्था अति गाळिहता पुन**
**विसा पनस्सन्ति अलद्ध किञ्चनं ॥५५॥**
**जहित्व धञ्ञं च धनं च ञातके**
**आसाय सग्गाधिमना सुखेसिनो**
**तपन्ति लूखं पि तपं चिरंतरं,**
**कुम्मग्गं आरुय्ह परेन्ति दुग्गतिं ॥५६॥**
**आसाविसंवादिकसम्मता इमे,**
**आसे सुधाय विनयस्सु अत्तनि,**

**न तादिसो अरहति आसनूदकं**
**कुतो सुधा, गच्छ न मय्ह रुच्चसि ॥५७॥**

[ आशा से प्रेरित होकर व्योपारी धनकी खोज मे जाते है। वे नौका पर चढ कर समुद्र मे जाते है। वे कभी कभी वहाँ डूब भी जाते है। वे धनविहीन होकर विनाश को प्राप्त होते है ॥ ५३ ॥ कृषक आशा से खेत करते है। वे बीज बोते है और अनेक उपाय करते है। किसी उपद्रव के कारण अथवा वर्षा न होने के कारण उन्हे कुछ फल नही मिलता है ॥ ५४ ॥ सुख-कामी मनुष्य आशा लगा कर युद्ध मे स्वामी की बहुत सेवा करते है। वे स्वामी के निमित्त शत्रुओं से अत्यन्त पीडित होकर किसी दिशा मे भागने के लिये मजबूर हो जाते है। उन्हें कुछ नही मिलता ॥५५॥ धन, धान्य तथा रिश्तेदारों को छोड़कर सुखकामी नर स्वर्ग की आशा से चिरकाल तक कठोर तप भी करते है। वे कुमार्गगामी होकर दुर्गति को प्राप्त होते है ॥ ५६ ॥ हे आशा ! तू ठगिनी है। इसलिए तू अमृत की आशा छोड़ दे। तेरे सदृश को आसन और जल भी देना योग्य नही। अमृत तो कहाँ पायेगी ! जा, तू मुझे अच्छी नही लगती ॥ ५७ ॥ ]

उसके मना करने पर वह भी वही अन्तर्ध्यान हो गई। तब श्रद्धा के साथ बात चीत करते हुए गाथा कही—

**वद्दल्लमाना यससा यसस्सिनी**
**दिघञ्ञनामव्हयनं दिसं पति,**
**पुच्छामि तं कञ्चनवेल्लिविग्गहे**
**आचिक्ख मे त्वं कतमासि देवता ॥५८॥**

[ हे यश से यशस्विनी ! हे निकृष्ठ नाम से सम्बोधित की जाने वाली दिशा मे खडी हुई जाज्वल्यमान देवी ! हे स्वर्ण-गात्रे ! मै तुझसे पूछता हूँ कि तू कौन देवी है ? ॥ ५८ ॥ ]

तब उसने गाथा कही—

**सद्धाहं देवी मनुजेसु पूजिता**
**अपापसत्तूपनिसेविनी सदा**

**सुधा विवादेन तवन्तिमागता,**
**तं मं सुधाय वरपञ्ञ भाजय ॥५९॥**

[मैं मनुष्यो द्वारा पूजित श्रद्धा नाम की देवी हूँ। मैं सदा निष्पाप पुरुषो की सगति मे रहती हूँ। अमृत के सम्बन्ध मे विवाद होने के कारण तेरे पास आई हूँ। हे श्रेष्ठ-प्रज्ञ ! तू मुझे अमृत दे ।। ५९ ।।]

तब कोसिय ने "यहाँ प्राणी जिस तिस के कहने का विश्वास करके, तदनुसार आचरण करते हुए प्राय कर्त्तव्य की अपेक्षा अकर्तव्य ही अधिक करते है। यह सब तेरे ही कारण होता है" कह, गाथाये कही—

**दानं दमं चागं अथो पि संयमं**
**आदाय सद्धाय करोन्ति हेकदा,**
**थेय्यं मुसाकूटं अथो पिपेसुणं**
**करोन्ति हेके पुन विच्चुता तया ॥६०॥**
**भरियासु पोसो सदिसीसु पेखवा**
**सीलूपपन्नासु पतिब्बतासु पि**
**विनेत्वा छन्दं कुलधीतियासु पि**
**करोति सद्धं पन कुम्भदासिया ॥६१॥**
**त्वं एव सद्धे परदारसेविनी**
**पापं करोसि कुसलं पि रिञ्चसि,**
**न तादिसो अरहसि आसनूदकं**
**कुतो सुधा, गच्छ न मय्ह रुच्चसि ॥६२॥**

[ दान, [इन्द्रिय-] दमन, त्याग तथा सयम भी लोग श्रद्धा प्रेरित होकर करते है ? चोरी, झूट, ठगी तथा चुगलखोरी भी तेरे द्वारा पतित होकर करते है ।।६०।। आत्म-सदृशी भार्य्याओ के प्रति अपेक्षावान होते हुए भी, उनके सदाचारिणी तथा पतिव्रता होने पर भी, कुल-कन्याओ का प्रेम छोड कुम्भ-दासी की बात पर विश्वास कर लेते है ।। ६१ ।। हे श्रद्धे ! तू ही पर स्त्री-गामिनी है। तू ही पापाचारिणी है। तू ही कुशलकर्मो को छुडाने वाली है। तेरे सदृश को आसन तथा जल

मिलना योग्य नही । अमृत तो कहाँ मिलेगा ? जा, तू मुझे अच्छी नही लगती ॥६२॥]

वह वही अन्तर्ध्यान हो गई। कोसिय ने भी उत्तर-दिशा मे स्थित ह्री के साथ बात चीत करते हुए दो गाथाये कही——

**दीघऊरत्ति अरुणस्मि ऊहते**
**या दिस्सति उत्तमरूपवण्णिनी**
**तथूपमा मं पटिभासि देवते**
**आचिक्ख मे त्वं कतमासि अच्छरा ॥६३॥**
**काला निदाघे रिव अग्गिजातिव**
**अनिलेरिता लोहितपत्तमालिनी**
**का तिट्ठसि मंदं इवावलोकयं**
**भासेसमाना व गिरं न मुञ्चसि ॥६४॥**

[रात्रि के अन्त मे अरुणोदय होने पर जो उत्तम रूप धारिणी 'उषा' दिखाई देती है, हे देवी ! तू मुझे उसके समान प्रतीत होती है। तू बता कि तू कौन अप्सरा है ? ।। ६३ ।। वायु से प्रकम्पित रक्त-वर्ण पत्रो वाली ग्रीष्म-कालीन काल-लता अथवा अग्नि-जात लता की तरह तू कौन है जो खडी मन्द मन्द देख रही है। ऐसा लगता है कि कुछ बोलना चाहती है, किन्तु बोल नही रही है ॥ ६४ ॥ ]

तब उसने गाथा कही——

**हिराह देवी मनुजेसु पूजिता**
**अपापसत्तूपनिसेविनी सदा**
**सुधाविवादेन तवन्तिममागता**
**सा तं न सक्कोमि सुधं पि याचितुं,**
**कोपीनरूपा विय याचनित्थिया ॥६५॥**

[मैं मनुष्य द्वारा पूजित 'ह्री' नाम की देवी हूँ। मै सदा निष्पाप प्राणियो की सगति मे रहती हूँ। अमृत-सम्बन्धी विवाद के कारण तेरे पास आई हूँ। किन्तु तो भी मै अमृत भी नही माग सकती हूं। स्त्रियो का (कुछ) माँगना निर्लज्ज होने जैसा है ।। ६५ ॥ ]

यह सुन तपस्वी ने गाथायें कही :—

**धम्मेन जायेन सुगत्ते लच्छसि,**
**एसो हि धम्मो न हि याचना सुधा,**
**तं तं अयाचन्तिं अहं निमंतय,**
**सुधाय यं पिच्छसि तं पि दम्मि ॥६६॥**
**सा त्वं मया सकम्हि अस्समे**
**निमंतिता कञ्चनवेल्लिविग्गहे,**
**त्वं हि मे सब्बरसेहि पूजिया**
**तं पूजयित्वान सुधं पि अस्सिय ॥६७॥**

[धर्म से तथा ज्ञान से हे सुगात्रे तू ही पायेगी। अमृत का न मागना ही धर्म है। तुझ न मागने वाली को ही मैं निमन्त्रित करता हूँ। न केवल 'अमृत' और भी जो इच्छा करेगी, वह भी दूगा ॥ ६६ ॥ हे कच्चन गात्रे ! तू आज मेरे आश्रम मे निमत्रित है। तू ही सभी रसो द्वारा पूज्य है। तेरी पूजा करके ही, मै शेष अमृत ग्रहण करुगा ॥ ६७ ॥]

इससे आगे अभिसम्बुद्ध-गाथायें हैं —

**सा सोसियेनानुमता जुतीमता**
**अद्धा हिरी रम्मं पाविसि-य-अस्समं**
**उदञ्जवन्तं फलं अरियपूजितं**
**अपापसत्तूपनिसेवितं सदा ॥६८॥**
**रुक्खग्गहाणा बहुकेत्थ पुप्फिता**
**अम्बा पियाला पनसा च किंसुका**
**सोभञ्जना लोद्द-म-थो पि पद्मका**
**केका च भगा तिलका च पुप्फिता ॥६९॥**
**साला करेरि बहुकेत्थ जम्बुयो**
**अस्सत्थनिग्रोधमधुका च वेदिसा**
**उद्दालका पाटलि सिन्धुवारिता**
**सुपुप्फगन्धा मुचलिन्दकेतका ॥७०॥**

हरेणुका वेळुका वेणुतिन्दुका
सामाकनीवार-म-अथोपि चीनका
मोचा कदली बहुकेत्थ सालियो
पवीहयो आभुजिनोपि तण्डुला ॥७१॥
तस्स च उत्तरे पस्से जाता पोक्खरणी सिवा
अकक्कसा अपब्भरा सादु अप्पटिगन्धिका ॥७२॥
तत्थ मच्छा सन्निरता खेमिनो बहुभोजना
सिंगुसवंका सकुला सतवङ्का च रोहिता
अलिगग्गरकाकिण्णा पाथीना काकमच्छका ॥७३॥
तत्थ पक्खी सन्निरता खेमिनो बहुभोजना
हंसा कोञ्चा मयूरा च चक्कवाका च कुक्कुहा
कुणालका बहूचित्रा सिखण्डिजीव जीवका ॥७४॥
तत्थ पानायमार्यन्ति नानामिगगणा बहू
सीहा व्यग्घा वराहा च अच्छकोकतरच्छयो ॥७५॥
पलासादा च गवजा महिसा रोहिता रुरु
एणेय्या वराहा चेव गणिनो नीकसूकरा
कदलिमिगा बहू चेत्थ बिळारा ससकाणिका ॥७६॥
छमागिरी पुप्फविचित्रसन्थता
दिजाभिघुट्ठा दिजसंघसेविता ॥७७॥

[कोसिय मे अनुजात प्रभासम्पन्न वह' ह्री', जलज फलो मे युक्त, आर्य-पूजित, निष्पाप प्राणियो से सेवित सुरम्य आश्रम मे प्रविष्ट हुई ।। ६८ ।। यहाँ (इस आश्रम मे) बहुत से घने पेड पुष्पित है-आम है, प्रियाल है, कटहल है, किंसुक ह, सोभञ्जन है, लोद्र है, पद्म है, केक है, भृग है, और तिलक है ।। ६९ ।। यहाँ (इस आश्रम मे) बहुत से पेड है—शाल है, करेरी है, जम्बु है, अश्वत्थ है, निग्रोध है, मधुक है, वेदिस है, उद्दाल है, पाटली है, सिन्धुवारित है, सुपुण्यगन्ध है, मुचलिन्द है तथा केतक ।। ७० ।। (इस आश्रम मे) हरेणुक है, वेळुक है, वेणु-तिन्दुक है, सामाक है, नीवार है, चीनक है, मोच है, केले है, धान है, नाना प्रकार के चावल

है, खाद्य (?) चावल है ।। ७१ ।। उसकी उत्तर दिशा मे कल्याणकारी पुष्करिणी है, सुन्दर, सुतीर्थ तथा सुगन्धी-युक्त ।। ७२ ।। उस पुष्करिणी मे अभय-प्राप्त तथा बहु-भोजन-प्राप्त मछलिया है—सिगु है, सवक है, सकुल है, सतवंक है, रोहित है, अलिगग्गरक है, पाठी है तथा काकमच्छ है ।। ७३ ।। वहाँ अभय प्राप्त तथा बहु-भोजन प्राप्त पक्षी है—हस है, कौञ्च है, मयूर है, चक्रवाक ह, कुक्कुट है, कोयल है, विशेषरुप मे सुन्दर मयूर है, जीव-जीवक है ।। ७४ ।। वहाँ नाना प्रकार के मृग पानी पीने के लिये आते है—सिह, व्याघ्र, सूअर रीछ कतररीछ (?) ।। ७५ ।। (और) गेण्डा, गवज, महिष, मृग, रुरु-मृग, एणि-मृग, सूअर, गो-कर्ण, नीक-सूअर, कदली-मृग, बिल्ले तथा शशकर्णित ।। ७६ ।। वहाँ का पार्वत्य-प्रदेश नानाप्रकार के पुष्पो मे ढका था, वहाँ पक्षियो कम मधुर कल-रव था तथा पक्षियो के झुण्ड के झुण्ड रहते थे ।। ७७ ।।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने कोसिय के आश्रम का वर्णन किया। अब 'ह्री' देवी के वहाँ प्रवेश करने की बात को प्रकट करते हुए कहा—

**सा सुत्तचा नीलदुमाभिलम्बिता**
**विज्जुमहामेघरिवानुपज्जथ**
**तस्सा सुसम्बन्धसिरं कुसामयं**
**सुचि सुगन्धं अजिनूपसेवितं**
**अभिच्छकोच्छं, हिरि एतद अब्रवि**
**निसीद कल्याणि सुखयिदं आसनं ॥७८॥**

[वह सुन्दर छवि-वाली, हरित-वर्ण वृक्ष-शाखा को पकडे हुए, महामेघ द्वारा आमन्त्रित बिजली की तरह वहाँ पहुची। उसके लिये सुसम्बद्ध सिरो वाला, कश-निर्मित, पवित्र, सुगन्धित, अजिनचर्म के आस्तरण वाला आसन बिछाकर उसने 'ह्री' को कहा—कल्याणी ! बैठ। यह आसन सुख के लिये है ।। ७८ ।।]

**तस्सा तदा कोच्छगताय कोसियो**
**यद् इच्छमानाय जटाजिनंधरो**
**नवेहि पत्तेहि सयं सहूदकं**
**सुधाभिहासि तुरितो महामुनि ॥७९॥**

[उस समय उस इच्छामति तथा आसन पर बैठी हुई 'ह्री' के लिये, जटाजिनधारी कोसिय महामुनि दक्षिणोदक तथा नवीन-पत्तों के साथ स्वय शीघ्रता से सुधा ले आया ।। ७९ ।।]

**सा तं पटिग्गय्ह उभोहि पाणिहि**
**इच्च-अब्रवि अत्तमना जटाधरं**
**हन्दाहं एतर्हि पूजिता तया**
**गच्छेय्य ब्रह्मे तिदिवं जिताविनी ॥८०॥**

[उसने उसे दोनों हाथों से स्वीकार किया और तब वह सन्तुष्ट हो उस जटाधारी से बोली—"हन्त ! मैं अब तेरे द्वारा पूजित हुई हूँ। हे ब्रह्मे ! अब मैं विजयी होकर स्वर्ग लोक जाती हूँ ।। ८० ।।]

**सा कोसियेनानुमता जुतीमता**
**उदीरिता वण्णमदेन मत्ता**
**सकासे गन्त्वान सहस्सचक्खुनो**
**अयं सुधा वासव, देहिमे जयं ॥८१॥**

[कोसिय द्वारा अनुज्ञात, उसके द्वारा कही गई, वह प्रकाशवति सहस्रचक्षु (इन्द्र) के पास जाकर बोली; "हे वासव ! यह सुधा है। अब मुझे जय दे" ।। ८१ ।।]

**तं एनं सक्कोपि तदा अपूजयि**
**सहिन्दा च देवा सुरकञ्ञं उत्तमं**
**सा पञ्जली देवमनुस्सपूजिता**
**नवम्हि कोच्छम्हि यदा उपाविसि ॥८२॥**

[तब शक्र ने भी सभी देवताओं के साथ उस सुरकन्या की पूजा की। जिस समय वह नवीन आसन पर विराजमान हुई, उस समय सभी देव-मनुष्यों ने हाथ जोडकर उसकी पूजा की ।। ८२ ।।]

इस प्रकार शक्र ने उसकी पूजा करके सोचा, "कोसिय ने औरों को अमृत न दे इसी को क्यों दिया ?" इस बात को जानने के लिये उसने दुबारा मातलि को भेजा ।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने—

**तं एव संसी पुनरेव मातलिं**
**सहस्सनेत्तो तिदसानं इन्दो**
**गन्त्वान वाक्यं मम ब्रूहि कोसियं**
**आसाय सद्धा-सिरिया च कोसियं**
**हिरी सुधं केन-म-अलत्थ हेतुना ॥८३॥**

[देवेन्द्र सहस्रचक्षु ने फिर मातलि को कहा, जाकर कोसिय से मेरा वाक्य कहो—हे कोसिय ! श्री, आशा और श्रद्धा को सुधा नही मिली। 'ह्री' को किस कारण से मिली ? ॥ ८३ ॥]

उसका कहना स्वीकार कर वह वैजयन्त रथ पर चढ कर गया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

**तं सुप्लवत्थं उदतारयी रथं**
**दट्ठल्लमानं उपकिरिय सादिसं**
**जम्बोनदीसं तपनेय्य सन्निभं**
**अलंकतं कञ्चनचित्तसंतिकं ॥८४॥**
**सुवण्णचन्देत्थ बहूनिपातिता**
**हत्थिगवस्सा किकिव्यग्घदीपिपो**
**एणेय्यका लंघमयेत्थ पक्खियो**
**मिगेत्थ वेळुरियमया युधायुता ॥८५॥**
**तत्थ अस्सराज हरयो अयोजयुं**
**दससतानि सुसुनागसादिसे**
**अलंकते कञ्चनजालुरच्छदे**
**आवेळिने सदृगमे असंगिते ॥८६॥**
**तं यानसेट्ठं अभिरुय्ह मातलि**
**दस दिसा इमा अभिनादयित्थ**
**नभं च सेलं च वनस्पतीनि च**
**ससागरं पव्यथयित्थ मेदिनिं ॥८७॥**

**स खिप्पं एव उपगम्म अस्समं**
**पावारमेकंसकतो कतञ्जलि**
**बन्हुस्सुतं वद्धं विनीतवन्तं**
**इच्च-अब्रवी मातलि देवब्राह्मणं ॥८८॥**
**इन्दस्स वाक्यं निसामेहि कोसिय**
**दूतो अहं, पुच्छति तं पुरिंददो**
**आसाय, सद्धा सिरिया च कोसिय**
**हिरी सुधं केन-म-अलत्थ हेतुना ॥८९॥**

[उसने सुखपूर्वक जाने के लिए उस जाज्वल्यमान, आवश्यक सामग्री सहित, स्वर्ण-ईषावाले, स्वर्णमय, अलकृत, स्वर्णिभ-चित्रो से युक्त रथ को चालू किया॥८४। इस रथ मे बहुत से स्वर्णिभ-चन्द्रमा बने हुए थे, हाथी थे, बैल थे, घोडे थे. मुर्गियाँ थी, व्याघ्र थे, चीते थे, एणि-मृग थे, नानारत्नमय पक्षी थे तथा अपने अपने जूथ के साथ बिल्लौरमय मृग थे ।। ८५।। उस रथ मे एक हजार, तरुण हाथियो के समान वलशाली, अलकृत, सुनहरी झील तथा आवेळिन नामक कर्मालकार वाले, आवाज लगाने मात्र से ही चलने वाले, शीघ्रगामी घोडो को जोता ।। ८६ ।। मातली ने उस श्रेष्ठ यान पर चढ कर चारो दिशाओं को गुजा दिया—आकाश को, पर्वतों को, जगलो को, सागर को तथा पृथ्वी को ।। ८७ ।। वह शीघ्र ही आश्रम पहुच गया। उसने अपना दिव्य वस्त्र एक कधे पर कर लिया और हाथ जोडकर उस बहुश्रुत गुण-वृद्ध, व्रती, देव-ब्राह्मण से बोला ।। ८८ ।। "कोसिय! इन्द्र का वाक्य सुने। मै उसका दूत हूँ। इन्द्र पूछता है कि आशा श्रद्धा और श्री के रहते 'ह्री' ने ही 'अमृत' क्यो प्राप्त किया ? ।। ८९ ।।]

उसने उसकी बात सुन, उत्तर दिया—

**अद्धासिरी मं पटिभाति मातलि**
**सद्धा अनिच्चा पन देवसारथि**
**आसा विसंवादिकसम्मता हि मे**
**हिरी च अरियम्हि गुणे पतिट्ठिता ॥९०॥**

[हे मातली ! श्री तो 'धनी' प्रतीत हुई, श्रद्धा 'अनित्य' प्रतीत हुई, आशा 'संदिग्ध' प्रतीत हुई और ह्री आर्य-गुण मे स्थित प्रतीत हुई ।। ९० ।।]

अब उसका गुण वर्णन करता हुआ बोला—

**कुमारियो या च इमा गोत्तरक्खिता**
**जिण्णा च या या च सभत्तुइत्थियो**
**ता छन्द रागं पुरिसेसु उग्गतं**
**हिरिया निवारेन्ति सचित्तं अत्तनो ॥९१॥**
**संगामसीसे सरसत्तिसंयुत्ते**
**पराजितानं पततं पलायिनं**
**हिरिया निवत्तन्ति जहित्व जीवितं**
**ते सम्पटिच्छन्ति पुना हिरीमना ॥९२॥**
**वेला यथा सागरवेगवारिनि**
**हिरायं हि पापजनं निवारणी**
**तं सब्बलोके हिरि अरियपूजितं**
**इन्दस्स तं वेदय देवसारथि ॥९३॥**

[ये जो गोत्र-रक्षिता कुमारियाँ अथवा सस्वामी स्त्रियाँ है अथवा बूढियाँ है, जब उनके मन मे पुरुष के प्रति राग जागता है, तो वे ह्री ही से अपने चित्तको रोक लेती है ।। ९१ ।। शर तथा शक्ति (आयुधो) के बीच सग्राम मे जब लोग पराजित होकर गिरने लगते है अथवा भागने लगते है, तो (लोग) ह्री के कारण ही अपने प्राणो का मोह छोड कर रुक जाते है और वे लाज वाले फिर (अपने स्वामी को शत्रु के हाथ से छुडा लेते है) ।। ९२ ।। जिस प्रकार समुद्र-तट सागर की लहर को रोकता है, उसी प्रकार 'ह्री' आदमी को पाप करने मे रोकती है । हे सारथी ! इन्द्र को इसी आर्य-पूजित 'ह्री' का परिचय दे ॥ ९३ ॥]

यह सुन मातलि बोला—

**को ते इमं कोसिय दिट्ठिं ओदहि**
**ब्रह्मा महिन्दो अथ वा पजापति,**

**हिरायं देवेसु हि सेट्ठसम्मता**
**धीता महिन्दस्स महेसि जायथ ॥९४॥**

[हे कोसिय ! यह विचार किसने तेरे मन मे डाला ! ब्रह्मा ने, महेन्द्र ने अथवा प्रजापति ने ? महेन्द्र-कन्या 'ह्री' हे महर्षी ! देवताओ मे श्रेष्ठ हो गई ॥ ९४ ॥]

उसके ऐसा कहते ही कोसिय का अन्तिम क्षण आ पहुँचा। तब मातलि ने उसे साथ ही ले चलने की इच्छा से कहा, "कोसिय ! तेरा आयुसस्कार समाप्त हो गया। दान-धर्म भी पूरा हो गया। अब मनुष्य लोक मे रह कर क्या करेगा ? देव-लोक चले।" उसने यह गाथा कही—

**हन्देत्थ दानि तिदिवं समक्कम**
**रथं समारुय्ह ममायितं इमं**
**इन्दो च तं इन्द-सगोत्त कंखति,**
**अज्जेव त्वं इन्दसहब्यतं वज ॥९५॥**

[हन्त ! हम इस सुन्दर रथ पर चढकर स्वर्ग-लोक चले। तेरा (पूर्व-जन्मका) सगोत्र इन्द्र तेरी आकाक्षा करता है। आज ही तू इन्द्र के सहवास को प्राप्त हो ॥९५॥]

इस प्रकार जब कोसिय के साथ बातचीत हो रही थी, उसी समय कोसिय मर कर ओपपातिक देव पुत्र होकर दिव्य-रथ पर विराजमान हुआ। उसे मातलि शक्र के पास ले गया। शक्र उसे देख कर प्रसन्न हुआ और अपनी लडकी 'ह्री' को उसकी पटरानी बना दिया। उसका ऐश्वर्य्य असीम था।

इस अर्थ को जानकर 'श्रेष्ठ जनो के कर्म इसी प्रकार शुद्ध होते है' प्रकट करने के लिये शास्ता ने अन्तिम गाथा कही—

**एवं समिज्झन्ति अपापकम्मिनो**
**अथो सुचिण्णस्स फलं न नस्सति**
**ये केचि-म-अद्दक्खु सुधाय भोजनं**
**सब्बेव ते इन्दसहब्यतं गता ॥९६॥**

[इसी प्रकार निष्पाप लोक शुद्ध होते है। शुभ-कर्म का फल नष्ट नही होता। जिसने सुधा-भोजन का अनुमोदन किया, वह वह इन्द्र-लोक को प्राप्त हुआ ॥ ९६ ॥]

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला 'भिक्षुओ, न केवल अभी मैंने इस अदान-शील कंजूस-मक्खीचूस का पहले भी दमन किया है' कह जातक का मेल बैठाया। उस समय ह्री-देवी उत्पल-वर्णा थी, कोसिय दानी भिक्षु, पञ्चशिख अनुरुद्ध, मातलि आनन्द, सूर्य्य काश्यप, चन्द्र मौद्गल्यायन, नारद सारिपुत्र, शक्र तो मैं ही था।

# ५३६. कुणाल जातक

"एवमक्खायति ."यह शास्ता ने कुणाल-सरोवर पर विहार करते समय मनके उचाटपन से पीडित पाच सौ भिक्षुओ के बारे मे कही।

## क. वर्तमान कथा

(दान-कथा आदि क्रम से कही जाने वाली) अनुपर्वी-कथा इस प्रकार है.—

शाक्य तथा कोलिय कपिल वस्तु और कोलिय-नगर के बीच रोहिनी नदी पर एक ही बाँध बाँध कर खेती करते थे। जेठ महीने के अन्त मे खेती के कुम्हला जाने पर दोनो नगर-वासियो के कमकर लोग इकट्ठे हुए। कोलिय-वासी बोले- "इस पानी को यदि दोनो लेगे तो यह न तुम्हारे लिये ही पर्य्याप्त होगा और न हमारे लिये ही। हमारी खेती को एक ही पानी और चाहिये। यह पानी हमे दे।" कपिलवस्तु-वासी बोले· "जब तुमने अपने कोठे भर रखे होगे तो हम रक्त-वर्ण स्वर्ण, नील-वर्ण मनि तथा काले कार्षापणो के साथ हाथ मे टोकरी और थैली आदि लेकर तुम्हारे घर-द्वारो पर घर घर न घूम सकेगे। हमारी भी खेती एक ही पानी से हो जायगी। यह पानी हमे ही दे दे!"

"हम नही देगे।"

"हम भी नही देगे!"

इस प्रकार बात बढते बढते बढ गई। एक उठा और उसने दूसरे को एक लगा दी। उसने भी उसे एक। इस प्रकार उन्होने परस्पर मार पीट की और राज-कुल को बीच मे घसीट कर झगडा बढा लिया। कोलिय कमकर बोले—"तुम कपिल-वस्तु वासी लेकर जाओ। जो कुत्ते गीदड आदि की तरह अपनी बहन के साथ रहते हैं, ऐसो के हाथी घोडे, अथवा इनके ढाल आदि हथियार हमारा क्या करेंगे!" शाक्य कमकर बोले "तुम अब कोढी के बच्चे लोट जाओ। जो अनाथ अशरण होकर तिरश्चीन-प्राणियो की तरह कोल-वृक्ष मे रहते रहे है, उनके हाथी घोडे अथवा ढाल आदि हथियार हमारा क्या करेंगे?" उन्होने जाकर उस काम के अधिकारी अमात्यो को यह बात कही। आमात्यो ने राज-कुल मे कही। तब शाक्य युद्ध के लिये निकल पडे, "बहन के साथ रहने वालो की शक्ति और बल दिखायेंगे। कोलिय भी युद्ध के लिये तय्यार हुए, "कोल-वृक्ष मे रहने वालो की शक्ति और बल दिखायेंगे।"

दूसरे आचार्य्यो का मत है कि शाक्य और कोलियो की दासियाँ नदी पर पानी लेने गई। वहाँ चाटिया जमीन पर रख बैठकर गप मारने लगी। किसी एक की चाटी दूसरी ने अपनी समझ कर ले ली। उस चाटी के लिये "मेरी चाटी तेरी चाटी" झगडा हो गया। यह झगडा बढकर दो नगरो के दास-कमकरो तक और वहाँ से भोजक-अमात्यो तथा उपराजाओ तक जा पहुचा। सभी युद्ध के लिये तैयार होकर निकल पडे। इस वर्णन की अपेक्षा पहला वर्णन ही अधिकाश अट्ठकथाओ मे आया है। वही समीचीन प्रतीत होता है। इस लिये उसी को ग्रहण करना चाहिये। वे सन्ध्या समय युद्ध के लिये तैयार होकर निकलने वाले थे।

उस समय भगवान ने श्रावस्ती मे विहार करते समय, प्रात काल लोक का विचार करते हुए, उन्हे इस प्रकार युद्ध के लिये सज्जित हो निकलते देखा। उन्होने विचार किया "मेरे जाने पर यह कलह शान्त हो जायगा अथवा नही?" उन्होने देखा, "मै वहाँ पहुँच कर कलह-शान्ति के लिये तीन जातक-कथाये सुनाऊगा।" उससे कलह शान्त हो जायगा। फिर एकता-माहात्म्य प्रकट करने के लिये दो जातक-कथाये सुनाऊगा और अत्त-दण्ड सूत्र का उपदेश दूगा। उपदेश सुन दोनो नगरो के निवासी ढाई ढाई सौ कुमार देंगे। मै उन्हें प्रव्रजित करूगा। बडा

समूह एकत्र होगा।" इस प्राकार का निश्चय कर, शारीरिक कृत्य समाप्त कर, श्रावस्ती में भिक्षाटन कर, पिण्डपात से लौट, शाम को बिना किसी को सूचित किये, अपना पात्र चीवर स्वय ही लिये, गन्धकुटी से निकल, दोनों सेनाओं के बीच, आकाश में पालथी मार कर बैठे और उन्हे धमकाने के हेतु, अन्धकार फैलाने के लिये काली-किरणें छोडी। फिर उन भयभीत हृदयों पर अपना आप प्रकट करने के लिये छ वर्ण की बुद्धरश्मियाँ छोडी। कपिलवस्तु-वासियों ने भगवान को देखा तो सोचा, "हमारे श्रेष्ठ सम्बन्धी शास्ता आ गये है। शायद उन्होने हमारी कलह करने की तैयारी देखली है। शास्ता के आ पहुँचने पर हम किसीके शरीर में शस्त्र नही घोंप सकते। चाहे कोलिय-वासी हम मारे चाहे कष्ट दे।" उन्होने शस्त्र रख दिये। कोलिय-वासियो ने भी वैसा ही किया।

तब भगवान (आकाश से) उतर कर रमणीय-प्रदेश में बालुका तट पर बिछे बुद्धासन पर बैठे। उस समय उनके शरीर से अनूपम बुद्ध-रश्मि निकल रही थी। वे राजागण भी भगवान को नमस्कार कर बैठे। शास्ता ने जानते हुए भी उनसे पूछा, "महाराज! यहाँ कैसे आये?"

"भन्ते! न नदी-दर्शन के लिये और न खेलने के लिये, हम लोग यहाँ सग्राम उपस्थित होने के कारण आये।"

"महाराजाओ! तुम्हारे कलह का क्या कारण है!"

"भन्ते! पानी के लिये।"

"महाराजाओ! पानी का मूल्य कितना होता है?"

"भन्ते! थोडा सा।"

"महाराजाओ! भूमि का मूल्य कितना होता है!"

"भन्ते! भूमि अमूल्य होती है।",

"महाराजाओ! क्षत्रियो का कितना मूल्य होता है।"

"भन्ते! क्षत्रिय अमूल्य होते है।"

"महाराजओ, थोडे मूल्य के पानी के लिये अमूल्य क्षत्रियो का नाश क्यो करते हो! कलह मे आनन्द नही है। एक वृक्ष-देवता और काल-सिह का बद्ध-वैर

इस सारे कल्प जारी रहा।"यह कह शास्ता ने कन्दन-जातक[1] कही। फिर "महाराज! दूसरो का अन्धा-विश्वासी नहीं होना चाहिये। दूसरो का अन्धा-विश्वासी होने से एक खरगोश की बात पर विश्वास कर तीन हजार योजन विस्तार के हिमालय के सारे चतुष्पाद महासमुद्र मे गिरने वाले हुए। इस लिये दूसरे का अन्धा विश्वासी नही होना चाहिये।" इतना कह दद्दभ जातक[2] कही। फिर "महाराज! कभी दुर्बल भी महाबलवान् को कमजोरी देख लेता है, कभी महाबलवान् भी दुर्बल की, चिरैय्या ने भी हाथी को मार डाला" कह लटुकिक जातक[3] कही। इस प्रकार कलह का शमन करने के उद्देश्य से तीन जातके कह,[4] एकता का महत्व प्रकट करने के लिये दो जातके कही। 'एकीभूतो को कोई परास्त नही कर सकता" कह रुक्ख-धम्म जातक[4] कही। फिर "महाराज जब तक एक होकर रहे, कोई भेद पैदा नही कर सका, किन्तु जब परस्पर झगडने लगे तो एक शिकारी उन्हे मार कर ले गया, झगडने मे सुख नही है," कह वट्टक जातक[5] कही। इस प्रकार यह पाच जातके कह अन्त मे अत्त-दण्ड सूत्र कहा।

राजागण श्रद्धाभिभूत हो सोचने लगे, "यदि शास्ता न आते हम परस्पर एक दूसरे को मारकर रक्त की नदी बहा देते। शास्ता के कारण हमारी जान बची। यदि शास्ता गृहस्थ रहते तो दो हजार द्वीपों से घिरे हुए चारो महाद्वीपो का राज्य हस्तगत कर लेते, सहस्राधिक पुत्र होते, उससे क्षत्रिय-परिवार होता। उस सम्पत्ति का त्याग कर, इन्होने अभिनिष्क्रमण कर बोधि लाभ किया। अब भी ये क्षत्रियो से घिरे ही विचरे।" यह सोच दोनो नगर के निवासियो ने ढाई ढाई सौ कुमार दिये। भगवान् उन्हे प्रव्रजित कर महावन चले गये। अगले दिन से उन्हे साथ ले एक दिन कपिलवस्तु पुर मे और एक दिन कोलिय नगर मे, इस प्रकार

---

१. कदंन जातक (४७५)।
२ दद्दभ जातक (३२२)।
३. लटुकिक जातक (३५७)।
४. रुक्खधम्म जातक (७४)।
५. वट्टक जातक (३५)।

दोनों नगरों में भिक्षाटन करने लगे। दोनो नगर वासियो ने महान सत्कार किया।

क्योकि वे दूसरो के प्रति गौरव-भावना से प्रव्रजित हुए थे, अपनी रुचि से नही इसलिये उसके मन मे प्रव्रज्या से अरुचि उत्पन्न हुई। पूर्व भार्य्याओ ने भी उनमे अरुचि जगाने के लिये जो-कुछ कह कह कर सदेश भेजे। वे और भी उद्विग्न हो गये। भगवान ने जब ध्यान लगाकर देखा तो उनकी 'अरुचि' का पता लगने पर सोचा, "ये भिक्षु मेरे जैसे बुद्ध के साथ रहते समय उद्विग्न होते है, इन के लिये किस प्रकार की धर्म-कथा अनुकूल होगी ?" उन्हे कुणाल धर्म-देशना का ख्याल आया। तब उनके मन मे आया, "मै इन भिक्षुओं को हिमलय ले जा, कुणाल-कथा से इन्हे स्त्रियो के दोष से परिचित कर, इनकी अभिरुचि दूर कर, इन्हे सोतापति-मार्ग पर प्रतिष्ठित करूगा" उन्होने पूर्वाह्न-समय पहन, पात्र-चीवर ले, कपिलवस्तु मे भिक्षाटन कर, भोजन के पश्चात, भिक्षाटन से लौटकर, भोजन के समय ही उन पाँच सौ भिक्षुओ को बुलवा कर पूछा—"भिक्षुओ, क्या तुमने रमणीय हिमालय-प्रदेश देखा है ?"

"भन्ते ! नही।"

"हिमालय की चारिका करने चलोगे ?"

"भन्ते ! हम ऋद्धि-बल-रहित है, कैसे जायेगे ?"

"यदि कोई ले चले तो चलोगे ?"

"भन्ते ! हाँ।"

शास्ता ने उन सबको अपने ऋद्धि-बल से ले आकाश मे ऊपर जा, हिमालय पहुच गगन-तल मे स्थित हो, रमणीय हिमालय प्रदेश मे कञ्चन पर्वत, मणि पर्वत, हिगुल पर्वत, अञ्जन-पर्वत, सानु पर्वत तथा फलिक पर्वत, इस प्रकार नाना-विध पर्वत, पाँच महानदियाँ; कण्णमुण्डक, रथकार,सिह प्रपात, छद्दन्त, तियग्गल, अनोतप्त तथा कुणाल-दह, ये सात सरोवर दिखाये। हिमालय तो पाच सौ योजन ऊचा है और तीन हजार योजन चौडा है, उसका यह रमणीय-प्रदेश अपने प्रताप से दिखाया। वहाँ रहने वाले सिंह, व्याघ्र, हाथी आदि चतुष्पदो मे से भी कुछ दिखाये। वहाँ मनोहर बाग-बगीचे, फूल-फलदार वृक्ष, नाना प्रकार के पक्षी-

समूह, जल तथा स्थल पर पैदा होने वाले पुष्प और हिमालय के पूर्व ओर स्वर्ण-तल तथा पच्छिम की ओर हिंगुल-तल दिखाया। इन मनोहर बाग-बगीचो आदि के देख लेने के बाद से उन भिक्षुओं का पूर्व भार्य्याओ सम्बन्धी राग जाता रहा। तब शास्ता उन भिक्षुओ को ले, आकाश से उतरे और हिमालय के पच्छिम की ओर साठ योजन के शिला-तल पर, सात योजन के कल्पस्थायी शालवृक्ष के नीचे, तीन योजन की मनो-शिला पर, उन भिक्षुओं के बीच, छवर्ग बुद्ध-रश्मियो को फैलाते हुए तथा समुद्र की कोख मे से निकले ज्वलन्त सूर्य की तरह बैठकर, मधुर-स्वर मे उन भिक्षुओ को सम्बोधित कर बोले, "भिक्षुओ, इस हिमालय मे जो कुछ तुमने नई बात देखी हो, उसके बारे मे पूछो।"

उस समय दो सुन्दर कोयल एक लडकी के दोनो सिरो को मुह से पकडे और बीच मे अपने स्वामी को बिठाये आकाश से लिये जा रही थी। उनके आगे आगे आठ सुन्दर कोयल थी, आठ पीछे, आठ दक्षिण की ओर, आठ बाई ओर, आठ नीचे, तथा आठ ऊपर छाया किये हुए। उन भिक्षुओ ने उस पक्षी-समूह को देखकर शास्ता से पूछा—

"भन्ते! ये कोन पक्षी है!"

"भिक्षुओ! ये मेरी वश-परम्परा है। ये पहले के मेरे अनुचर है। उस समय यह पक्षि-समूह भारी था। साढे तीन हजार पक्षि-कन्याये मेरे चारो ओर रहती थी। क्रमश कम होकर अब इतनी रह गई।"

"भन्ते! किस प्रकार के वन-खण्ड मे ये पक्षि-कन्याये तुम्हारे चारो ओर रहती थी?"

"तो भिक्षुओ, सुनो," कह उनका ध्यान केन्द्रित कर पूर्व-जन्म की बात प्रकट करते हुए कहा—

## ख. अतीत कथा

ऐसा कहा जाता है, ऐसा सुना जाता है कि कुणाल नामका पक्षी ऐसे वन-खण्ड मे रहता था, जहाँ सभी औषधियाँ प्राप्त थी, जहाँ अनेक प्रकार के फूल तथा फूल मालाएँ थी, जहाँ हाथी, बैल, भैंस, स्वर्ण-वर्ण मृग, चँवरी-मृग, चितकवरा-मृग

गेण्डा, गो-कर्ण, सिह, व्याघ्र, चीता, भालु, रीछ (?) उपद्र-मृग, कदली-मृग बिल्ले, खरगोश, तथा कण्णिक (?) विचरते थे, जहाँ तरुण हथियो से घिरे हुए बड़े बड़े हाथी, नाग, हस्तिपोतको के संघ रहते थे, जहाँ काले सिह, बदन, शरभ-मृग, एणि मृग, वात-मृग, चितकबरे-मृग, घोड़ी-मुख यक्षिणियाँ, किन्नर दक्ष तथा राक्षस निवास करते थे, जहाँ कली, मजरी और बड़े पुष्पो से युक्त अनेक समूह थे, जहाँ चील, चकोर वारण, मोर, पराभृत (?) जीव-जीवक, चेलावक, भिकार, कोयल, आदि (?) सैकड़ो प्रकार के पक्षी थे, और जो प्रदेश अञ्जन, मनोशिला, हरिताल, हिगूलक, सोना, चान्दी, स्वर्ण आदि सैकड़ो प्रकार की धातुओ से मण्डित था। वह अत्यन्त सुन्दर था। उसके पख अतीव मनोहर थे। उसी कुणाल-पक्षी स्वामी की साढे तीन हजार स्त्रियाँ पक्षि-कन्याये परिचारिका थी। दो कन्याये काठ को मुह मे लेकर उस कुणाल स्वामी को बीच मे बिठाकर उडती थी "इस कुणाल स्वामी को रास्ते मे कष्ट न हो।" पाँच सौ पक्षि-कन्याये नीचे नीचे उडती थी, "यदि यह कुणाल स्वामी आसन से गिरेगा तो हम इसे परो पर सभाल लगी।" पाच सौ पक्षि-कन्याये ऊपर ऊपर उडती थी, "कुणाल स्वामी को धूप से कष्ट न हो।" पाच सौ पक्षि-कन्याये दोनो ओर उडती थी, "इस कुणाल स्वामी को शीत, गरमी, तृण, धूल, हवा अथवा ओस से कष्ट न हो।" पाच सो पक्षि-कन्याये आगे आगे जाती थी "कुणाल स्वामी को ग्वाले, पशु-पालक, घसियारे लकड़हारे अथवा जगल मे काम करने वाले काष्ट से वा ठीकरे से वा हाथ से वा ढेल से वा डन्ड से वा शस्त्र से अथवा ककरो से चोट न करे। यह कुणाल स्वामी वृक्षो से लताओ से, पेड़ों से, स्तम्भो से, पत्थरो से अथवा बलवान पक्षियो से न टकराये।" पाच सौ पक्षि-कन्याये पीछे पीछे उडती थी, चिकनी चुपड़ी, सुन्दर मधुर वाणी बोलती हुई, "यह कुणाल स्वामी बैठा बैठा घबरा न जाये।" पांच सौ पक्षि-कान्याये दिशा-विदिशा मे उडती थी, अनेक वृक्षो से नाना प्रकार के फल लाती हुई, "यह कुणाल स्वामी भूख से कष्ट न पाये।"

वे पक्षि-कन्याये उस कुणाल-स्वामी का आराम से आराम मे, उद्यान से उद्यान मे, नदी-तट से नदी-तट मे, पर्वत शिखर से पर्वत-शिखर मे, आम्रवन से आम्रवन मे, जामुन-वृक्ष से जामुन वन मे, कटहल-वन से कटहल वन मे, तथा

नारियलों के समूह से नारियलो के समूह मे शीघ्र ही रति-क्रीडा के लिये प्राप्त होती।

'भिक्षुओ इस प्रकार उन पक्षि-कन्याओं मे रोज-रोज घिरा रहने पर भी कुणाल-स्वामी उन्हे इस प्रकार डाँटता था, "चण्डालिनो तुम्हारा नाश हो, चाण्डालिनो तुम्हारा विनाश हो, चोर हो, धूर्त हो, असति हो, चंचल हो, अकृतज्ञ हो, हवा की तरह जहाँ चाहे वहाँ पहुच जाने वाली हो।"

इतना कह, "भिक्षुओ, मैं तिरश्चीन योनि मे रहते समय भी स्त्रियो की अकृतज्ञता, बहुमायावीपन, अनाचार, दुश्शीलता जानता था। उस समय मैं उनके वश मे न हो कर उन्हे ही अपने वश मे रखता था।" इस कथा द्वारा शास्ता ने उन भिक्षुओ की अरुचि दूर कर दी और चुप हो गये। उसी समय दो काली कोयले स्वामी को डण्डे पर लिये, नीचे-ऊपर आदि चार चार होकर वहाँ आ पहुची। उन्हे भी देख कर भिक्षुओ ने शास्ता से पूछा। शास्ता ने "भिक्षुओ, यह पहले मेरा पूर्णमुख नाम मित्र पुण्य-कोकिल था। यह उसकी वश परम्परा है" कह उपरोक्त प्रकार ही भिक्षुओ के पूछने पर कहा—

उसी हिमालय पर्वत-राज के पूर्व सुसूक्षम-सुनिपुण पर्वत से बहने वाली नदियाँ जिस हरित-कुणाल सरोवर मे गिरती है,

जहाँ नीले-उत्पल, कुमुद, पद्म, श्वेतपद्म, शतपत्र, सोगन्धिक, मन्दालक (आदि) नवीन-जात, सुगन्धित, मनोज्ञ पुष्प है,

जहाँ करवक, मुचलिन्द, केतक, चेतस, वजुळ, पुन्नाग, वकुल, तिलक, पिपक, असन, साल, सलक, चम्पक, असोक, नाग-वृक्ष, तिरीट, भुज-पत्र, लोद्र तथा चन्दन का वन है,

जहाँ काल-गलु (?) पद्मक, पियगु, देवदारूक तथा कदली का समूह है, जहाँ ककुध, कुजट, अकोल, कच्चिकार, कण्णिकार, कणवेर, कोरण्ड, कोविलार, किसकु, योधिय, वनमल्लिक, अनङ्ग, अनवध, भण्डी, रुचिर, भगिनी अदि पुष्पों की मालाये थी,

जहाँ जाति-सुमन, मधु-गन्धिक, धनकारिक, तालीस, तगर, उसीर, कोट्ठ तथा कच्छ फैले हुए थे,

जहाँ अति-मुक्तक, संकुसुमित लताये थी,

जहाँ हंस, बत्तख, कादम्ब तथा कारण्डव निनाद करते थ, जहाँ विद्याधर, सिद्ध, श्रमण तथा तपस्वी-गण रहते थे, तथा जहाँ वरदेव, यक्ष, राक्षस, दानव, गन्धर्व, किन्नर, महोरग थे—ऐसे रमणीक वनखण्ड मे पूर्ण.मुख नाम का पुष्य-कोकिल रहता था, अत्यन्त मधुर-भाषी, विलासपूर्ण-अनुरक्त आँखो वाला। उसी पूर्ण-मुख पुष्य-कोकिल की साढे तीन सौ स्त्रियाँ पक्षि-कन्याये परिचारिका थी। दो पक्षि-कन्याये मूँह मे काष्ठ ले कर उस पूर्ण-मुख पुष्य-कोकिल को बीच मे बिठा कर उडती थी, "इस पूर्ण-मुँख पुष्प-कोकिल को मार्ग मे कष्ट न हो।" पचास पक्षि-कन्याये नीचे नीचे उडती थी, "यदि पूर्ण-मुख पुष्य-कोकिल नीचे गिरेगा तो हम इसे परो पर सभाल लेगी।" पचास पक्षि-कन्याये ऊपर ऊपर उडती थी, "पूर्ण-मुख पुष्य-कोकिल को धूप से कष्ट न हो।" पचास पक्षि-कन्याये दोनो ओर उडती थी, "पूर्ण-मुख पुष्य-कोकिल को शीत, गरमी, तृण, धूल, हवा अथवा ओस मे कष्ट न हो।" पचास पक्षि-कन्याये आगे आगे जाती थी, "पूर्ण-मुख पुष्प-कोकिल को ग्वाले, पशु पालक, घसियारे, लकडहारे, अथवा जगल मे काम करने वाले काष्ठ से वा ठीकरे से वा हाथ से वा ढेले से वा डण्ड से वा शस्त्र से अथवा ककरो से चोट न करे, यह पूर्ण-मुख पुष्प-कोकिल वृक्षो से, लताओ से, पेडो से, स्तम्भो से, पत्थरो से, अथवा बलवान पक्षियो से न टकराये।" पचास पक्षि-कन्याये पीछे पीछे उडती थी, चिकनी-चुपडी, सुन्दर, मधुर-वाणी बोलती हुई, "यह पूर्ण-मुख पुष्य-कोकिल बैठा बैठा घबरा न जाय।" पचास पक्षि-कन्याये दिशा-विदिशा मे उडती थी, अनेक वृक्षो से नाना प्रकार के फल लाती हुई, "यह पूर्ण-मुख पुष्य-कोकिल भूख से कष्ट न पाये।"

वे पक्षि-कन्याये उस पूर्ण-मुख पुष्य-कोकिल को आराम से आराम मे, उद्यान से उद्यान मे, नदी तट से नदी-तट मे, पर्वत-शिखर से पर्वत-शिखर मे, आम्रवन से आम्रवन मे, जामुन-वन से जामुन-वन मे, कटहल-वन से बरहल-वन मे तथा नारियलो के समूह से नारियलो के समूह मे शीघ्र ही रति-क्रीडा के लिए प्राप्त होती।

'भिक्षुओ! वह पूर्ण-मुख पुष्य-कोकिल उन पक्षि-कन्याओ से घिरा होने पर इस प्रकार उनकी प्रशसा करता, "बहुत अच्छा बहनो, यह तुम कुलवन्तियो के

योग्य ही है कि तुम इस प्रकार स्वामी की सेवा करो।" तब पूर्ण-मुख पुष्य-कोकिल जहाँ कुणाल स्वामी था वहाँ पहुंचा। कुणाल स्वामी की परिचारिका पक्षि-कन्याओंने उस पूर्ण-मुख पुष्य-कोकिल को दूर से आते देखा। देख कर जहाँ पूर्ण-मुख पुष्य-कोकिल था वहाँ पहुची। पहुच कर उस पूर्ण-मुख पुष्प-कोकिल को इस प्रकार बोली—"सौम्य पूर्ण-मुख! यह कुणाल स्वामी अति कठोर, अत्यन्त कठोर-भाषी है। अब तुझसे भी हमे प्रिय-वाणी सुनने को मिले।" "हाँ, बहनो," कह वह जहाँ कुणाल स्वामी था वहाँ पहुंचा। जाकर कुणाल स्वामी का कुशल-समाचार पूछ, उसके साथ एक ओर बैठ वह पूर्ण-मुख पुष्प-कोकिल उस कुणाल स्वामी को इस प्रकार बोला—"सौम्य कुणाल! तू किस कारण से सुजात, कुलवन्ती, सम्यक आचरण करन वाली स्त्रियो के साथ दुर्व्यवहार करता है, अप्रिय बोलने वाली स्त्रियो के साथ भी मधुर-भाषी होना चाहिए। प्रिय बोलने वालियो के साथ तो कहना ही क्या!" यह कहने पर कुणाल स्वामी ने उसे इस प्रकार धिक्कारा—"दुष्ट बृषल तेरा नाश हो। दुष्ट बृषल तेरा विनाश हो। तेरे समान स्त्रियो के वश मे और कौन पण्डित है?"

इस प्रकार अनादृत हो कर पूर्ण-मुख पुष्य-कोकिल वही से लौट गया।

फिर थोडे ही समय बाद एकबार पूर्ण-मुख पुष्य-कोकिल को भयानक बीमारी हो गई, मह से रक्त जाने लगा, बडी वेदना हुई, मरणान्तक। तब पुष्य-कोकिल की परिचारिकाओ पक्षि-कन्याओ के मन मे हुआ "यह पूर्ण-मुख पुष्य-कोकिल रोगी हो गया है। अच्छा हो, इस रोग से मुक्त हो जाय।" वे उसे अकेला छोड जहाँ कुणाल स्वामी था, वहाँ पहुची। कुणाल स्वामी ने उन पक्षि-कन्याओ को दूर से ही आते देखा। देख कर पूछा—"चण्डालिनियो! तुम्हारा स्वामी कहाँ है?"

"मित्र कुणाल! पूर्ण-मुख पुष्य-कोकिल रोगी है। अच्छा है, उस रोग से मुक्त हो जाय।"

ऐसा कहने पर उस कुणाल स्वामी ने उन पक्षि-कन्याओ को इस प्रकार फट-कारा "चण्डालिनियो! तुम्हारा नाश हो। चण्डालिनियो! तुम्हारा विनाश हो। चोर हो। धूर्त हो, असति हो, चचल हो, अकृतज्ञ हो, हवा की तरह जहाँ चाहे वहाँ पहुँच जाने वाली हो।" यह कह वह जहाँ पूर्ण-मुख पुष्य-कोकिल था, वहाँ

पहुँचा और पहुंच कर उस पूर्ण-मुख पुष्प-कोकिल को इस प्रकार बोला—"मित्र पूर्ण-मुख पुष्य-कोकिल! मैं हूँ।"

"मित्र कुणाल स्वामी! मैं हूँ।"

तब कुणाल स्वामी ने उस पूर्ण-मुख पुष्य-कोकिल को पखो और चोच मे ले, उठा कर, नाना प्रकार की औषधियाँ पिलाई। उस पूर्ण-मुख पुष्य-कोकिल का वह रोग शान्त हो गया।

उसके निरोग होने पर वे पक्षि-कन्याये भी लौट आई। कुणाल स्वामी ने भी कुछ दिन पूर्ण-मुख को फलाफल खिला, जब उसका शरीर सशक्त हो गया, कहा "मित्र! अब तू अपनी सेविकाओ के साथ रह। मै भी अपने निवास-स्थान जाता हूँ।" वह बोला—"य मुझे रुग्णावस्था मे छोड भाग गई। मुझे इन धूर्तिनियो की अपेक्षा नही है।" "तो सोम्य! तुझे स्त्रियो के पाप के बारे मे कहूगा" कह पूर्ण-मुख को ले, वह हिमालय के पार्श्व पर मनोशिलातल पहुचा और सात योजन के शाल के नीचे मनोशिलासन पर बैठा। सपरिवार पूर्ण-मुख एक ओर बैठा। सारे हिमालय मे घोषणा हो गई : "आज कुणाल पक्षि-राज हिमालय मे मनोशिलासन पर बैठ कर बुद्ध-लीला से धर्मोपदेश देगा, उसे सुने।" परम्परा से यह घोषणा छ कामावचर देवताओ तक फैल गई और वे बडी सख्या मे इकट्ठ हुए। बहुत सारे नाग, सुपर्ण, गिज्झ और वन के देवताओ ने उस बात की घोषणा की। उस समय आनन्द नाम का गृद्ध-राज दस हजार गीधो के साथ गृद्ध-पर्वत पर रहता था। वह भी उस हल्ले को सुन कर धर्म सुनने के लिए, अनुयाइयो सहित आकर एक ओर बैठा। पाच अभिज्ञाओ से युक्त नारद तपस्वी भी, दस हजार अनुयाइयो सहित हिमालय मे घूम रहा था। उसने देव-घोषणा सुनी तो सोचा, "मेरा मित्र स्त्रियो के दोष कहेगा। मुझे भी वह देशना सुननी चाहिए।" वह हजार तपस्वियो सहित ऋद्धि-बल से वहाँ पहुच एक ओर बैठ गया। बुद्धो की देशना मे जैसी भीड हो जाती है, वैसा ही समूह इकट्ठा हो गया।

तब बोधिसत्व ने पूर्व-जन्म-स्मरण ज्ञान के बल पर स्त्रियो के दोष प्रगट करने वाली पूर्व-जन्म की बाते पूर्ण-मुख को साक्षी कर के कही।

इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिए शास्ता ने कहा—

"भिक्षुओ, पूर्ण-मुख पुण्य-कोकिल को रोग मुक्त हुए अधिक समय नही हुआ था, तभी कुणाल स्वामी ने कहा—

"देखी है मैंने पूर्ण-मुख कृष्णा, जिसके दो पिता थे, पाच पति थे और तब भी वह छठे पुरुष मे आसक्त थी, उसकी गरदन मे छिन्न-शिरा की तरह लिपटी हुई। आगे यह वाक्य (=गाथा) है—

**अथ अञ्जुनो नकुलो भीमसेनो**
**युधिट्ठिलो सहदेवो च राजा**
**एते पती पञ्चमतिच्च नारी**
**अकासि खुज्ज वामनेन पापं॥१॥**

[अर्जुन, नकुल, भीमसेन, युधिष्ठिर और सहदेव—इन पाच पति राजाओ को लाघ कर नारी ने कुबडे-बौने के साथ पाप कर्म किया॥१॥]

"देखी है मैंने सच्च तपावी नामक श्रमणी जो स्मशान मे रहती थी, तीन-भात छोड कर चौथा भात खाती थी, उसने सुनार के साथ पाप किया।

"देखी है मैंने पूर्ण मुख! काकाति नाम की दवी, समुद्र मे रहने वाली, वेनतेय्य की भार्य्या; उसने नर कुबर के साथ पाप किया।

"देखी है मैंने पूर्ण मुख! कुगवी लोम-सुन्दरी, एलक-कुमार की कामना करने वाली; उसने धनन्तेवासी षडग-कुमार के साथ पाप किया।

"ऐसा ही मैंने जाना है ब्रह्मदत्त की माता ने कोशल राज को छोड पचाल-चण्ड के साथ पाप किया। इन्होने तथा अन्यो ने पाप-कर्म किया। इसलिए न मै स्त्रीयो का विश्वास करता हूँ और न उनकी प्रशसा करता हूँ। जिस प्रकार मही. पृथ्वी समान भाव से अनुरक्त है, जैसे वसुन्धरा उत्तम अधम सभी का आधार है, सभी को सहन करती है, किसी पर कोप नही करती है, उसी प्रकार ये स्त्रियाँ हैं, आदमी को चाहिये इन का विश्वास न करे।

**सीहो यथा लोहितमंसभोजनो**
**वाळामिगो पञ्चहत्थो सुरुद्धो**
**पसय्हखादी परिहंसनेरतो**
**तथ' इत्थियो, तायो न विस्ससे नरो॥२॥**

[जैसे रक्त-मास भोजी, कठोर-हृदय, चारो पैरो तथा पाँचवे मुह वाला दुष्ट-मृग, सिह , दूसरो की हिसा मे रत रहता है और जबर्दस्ती पकड कर अपना ग्रास बना लेता है, उसी प्रकार ये स्त्रियाँ है । आदमी को चाहिए इन का विश्वास न करे ॥२॥]

"निश्चय से न इनका यथार्थ नाम वेश्या है, न नारी है, न गणिका है, और न वन्धकी है, इनका यथार्थ नाम वधिका है । ये चोरो के समान वेणी-शृगार किये रहती है । शराबी की तरह प्रलाप करने वाली है । बनिये की तरह बात बनाने वाली है । ईर्षा-मृग के सीगो की तरह उलटी होती है । साँप की तरह द्वि-जिह्वा होती है । प्रपात की तरह ढकी रहती है । पाताल की तरह कठिनाई से भरी जा सकने वाली होती है । राक्षसी की तरह कठिनाई से सतुष्ट होने वाली होती है । यम की तरह ले जाने वाली होती है । दीप-शिखा की तरह सभी कुछ भक्षण करने वाली होती है । नदी की तरह सभी को बहा ले जाने वाली होती है । हवा की तरह जहा चाहे वहाँ जाने वाली होती है । सुमेरु- पर्वत की तरह सभी को अपने समान बना लेने वाली होती है । विष-वृक्ष के समान नित्य फल-दातृ होती है । आगे यह वाक्य ( = गाथा ) है—

**यथा चोरो यथा दिद्धो वाणिजो व विकत्थनी**
**इस्सासिंग इवावत्ता दुज्जिह्व उरगो यथा ॥३॥**
**सोब्भं इव पटिच्छन्ना पातालं इव दुप्पुरा**
**रक्खसी विय दुत्तोसा यमो व एकन्त हारियो ॥४॥**
**यथा सिखी नदी वातो नेरु नावसमाकता**
**विसरुक्खो विय पञ्चधा नासयन्ति घरे भोगं**
**रतनानन्तकरित्थियो ॥५॥**

[अर्थ ऊपर आ ही गया है ॥ ३—५॥]

इस से आगे नाना प्रकार से अपना वाणी का सौदर्य्य प्रकट करते हुए कहा. "मित्र पूर्ण-मुख! ये चार समय पर अनर्थकारी होते है । इन्हे दूसरे के यहाँ नही रहने देना चाहिए ।(१) बैल, (२) गऊ, (३) गाडी, (४) स्त्री । इन चारो को पण्डितजन को चाहिए कि घर से बाहर न रखे—

**गोणं धेनुं च यानञ्च**
**भरियं जातिकुले न वासये,**
**भजन्ति रथं अजानका**
**अतिवाहेन हनन्ति पुंगवं ॥६॥**
**दोहेन हनन्ति वच्छकं**
**भरिया जातिकुले पदुस्सति ॥७॥**

[बैल, गऊ, गाडी और स्त्री को रिश्तेदारो के यहाँ न रखे। अजानकार लोग रथ चलाते है और अति-हाँकने मे बैल को मार डालते है। अति-दोहन मे बछडा मारा जाता है और स्त्री जाति-कुल मे दूषित हो जाती है ॥६-७॥]

'मित्र! पूर्ण-मुख! ये छः काम पडने पर अनर्थकारी होते है—(१) बिना डोरी का धनुष, (२) सम्बन्धियो के यहाँ भार्या, (३) उस पार गई हुई नौका, (४) भग्न-धुरी रथ, (५) दूर का मित्र, तथा (६) बुरा साथी। मित्र पूर्ण-मुख! आठ बाते होन से स्त्री पति से घृणा करने लगती है— (१) दरिद्र होने से, (२) रोगी होने से, (३) बूढा होने से, (४) शराबी होने से, (५) मूढ होने से, (६) प्रमादी होने से, (७) सभी बातो मे (स्त्री का) अनुगामी होने से, (८) सब धन देने से। यहाँ यह वाक्य (=गाथा है)।—

**दलिद्दं आतुरं चापि जिण्णकं सुरसोण्डकं**
**पमत्तं मुद्धपत्तं च रत्तं किच्चेसु हापनं**
**सब्बकामपदानेन अवजानन्ति सामिकं ॥८॥**

"मित्र! पूर्ण मुख! नौ बातो से स्त्री दोषी मानी जाती है—(१) आरामो मे जाने वाली होती है, (२) उद्यानो मे जाने वाली होती है, (३) नदी तट पर जाने वाली होती है, (४) रिश्तेदारो मे जाने वाली होती है, (५) दूसरे कुलो मे जाने वाली होती है, (६) शीशे तथा दुशालो से अपनी सजावट करने वाली होती है, (७) शराब पीने वाली होती है, (८) बाहर देखने वाली होती है, तथा दरवाजे पर खडी होने वाली होती है। यहाँ यह वाक्य (=गाथा) है—

**आरामसीला उय्यानं ञ्जातिपरकुलं**
**दुस्समण्डनं अनुयुत्ता या च इत्थि मज्जपायिनी ॥९॥**
**या च निल्लोकनसीला या च पद्वारठायिनी**
**नवहि एतेहि ठानेहि पदोसं आहरतित्थियो ॥१०॥**

"मित्र पूर्ण-मुख! स्त्री चालीस तरह से पुरुष को फसाती है—(१) अगड़ाई लेती है, (२) विनम्र बनती है, (३)क्रीड़ा करती है, (६) शर्मीली बनती है, (५) नाखून से नाखून लड़ाती है, (६) पाँव पर पाँव रखती है, (७) काठ से जमीन पर लकीरें खींचती है, (८) बच्चे को ऊपर उछालती है, (९) बच्चे को नीचे उछालती है, (१०) खेलती है (११) खिलाती है (१२) चूमती है, (१३) चुमवाती है, (१४) खाती है, (१५) खिलवाती है, (१६) बच्चे को देती है, (१७) बच्चे से मागती है, (१८) नकल करती है, (१९)ऊचा बोलती है, (२०) नीचा बोलती है, (२१) प्रकट रूप से बोलती है, (२२) छिपाकर बोलती है, (२३) नाच, गा, बजा, रो, विलाप कर के तथा विभूषित होकर हँसती है, (२४) देखती है, (२५) हिलाती-डुलाती है, (२६) छिपी चीज को हिलाती है, (२७) जाघो को उघाड़ती है, (२८) जाघो को नगा करती है, (२९) स्तनो को दिखाती है, (३०) काछ दिखाती है,(३१)नाभी दिखाती है,(३२) आखो को तानती है, (३३) भौहो को ऊपर उठाती है, (३४) होठो को काटती है, (३५) जिह्वा को काटती है, (३६) जिह्वा को हिलाती है, (३७) वस्त्र को खोलती है, (३८) वस्त्र को बाधती है, (३९) बालो को खोलती है, (४०) बालो को बाधती है। पच्चीस बातो से पूर्ण-मुख दुष्टा स्त्री की पहचान होती है— (१) स्वामी के प्रवास मे रहने की प्रशसा करती है, (२) प्रवास से जाने पर स्मरण नही करती है, (३) आने पर अभिनन्दन नही करती है, (४) उसका दोष कहती है, (५) उसका गुण नही कहती, (६) उसका बुरा कहती है, (७) उसका भला नही करती, (८) उसे हानि पहुचाती है, (९) उसे लाभ नही पहुँचाती, (१०) मुह ढक कर सोती है, (११) मुह फेरकर सोती है, (१२) अस्थिर होती है, (१३) शोर मचाती है, (१४) लम्बा साँस लेती है, (१५) दुखी (की तरह) रहती है, (१६) बार बार पेशाब-खाने जाती है, (१७) उल्टा आचरण

करती है, (१८) पर-पुरुष की आवाज सुनकर कान खोलती है, (१९) उधर ध्यान देती है, (२०) भोग्य-पदार्थों का विनाश करने वाली होती है, (२१) पड़ौसियों में यारी लगाती है, (२२) उसके पैर बाहर होते है, (२३) गलियों में अति घूमने वाली होती है, (२४) स्वामी के प्रति गौरव रहित होती है, तथा (२५) प्रदुष्ट-मना होती है। यहाँ यह वाक्य (=गाथा) है—

पवासं अस्स [वण्णेति] गतं नानुसोचति
दिस्वा पतिं आगतं नाभिनन्दति
भत्तारवण्णं न कदाचि भासति
एते पदुट्ठाय भवन्ति लक्खणा॥११॥
अनत्थं तस्स चरति असञ्ञता
अत्थं च हापेति अकिच्चकारिनी,
परिदहित्वा सयति परंमुखी
एते पदुट्ठाय भवन्ति लक्खणा॥१२॥
परिवत्तकजाता च भवति कुंकुमी
दीघं च अस्ससति दुक्ख वेदिति
उच्चारपस्सावं अभिण्ह गच्छति....॥१३॥
विलोमं आचरति अकिच्चकारिनी
सद्दं निसामेति परस्स भासतो
निहतभोगा च करोति सन्थवं.....॥१४॥
किच्छेन लद्धं कसिराभतं धनं
वित्तं विनासेति दुक्खेन सम्भतं
पटिविस्सकेहि च करोति सन्थवं....॥१५॥
निक्खन्तपादा विसिखानुचारिनी
निच्चं ससामिम्हि पदुट्ठमानसा
अतिचारिनी होति तथेव अगारवा.....॥१६॥
अभिक्खणं तिट्ठति द्वारमूले

**यनानि कच्छानि च दस्सयन्ति**
**दिसोदिसं पेक्खति भन्तचित्ता.....॥१७॥**
**सब्बा नदी वंकगती सब्बे कट्ठमया वना**
**सब्बित्थियो करे पापं लभमाने निवातके ॥१८॥**
**सचे लभेथ खणं वा रहो वा**
**निवातकं वापि लभेथ तादिसं**
**सब्बा च इत्थी करेय्युं नो पापं**
**अञ्ञं अलद्धा पीठसप्पिनापि (सद्धिं) ॥१९॥**
**नरानं आरामकरासु नारिसु**
**अनेकचित्तासु अनिग्गहासु च,**
**सब्बअत्तना पीतिकरापि वेसिया**
**न विस्ससे, तित्थसमा ही नारियो॥२०॥**

[अर्थ ऊपर आ गया है ॥११—१७॥ सभी नादियाँ टेढी होती है। सभी वनो मे लकडी है। एकान्त मिलने पर सभी स्त्रियाँ पाप करती है ॥१८॥ यदि उसे अवसर मिले, छिपा स्थान मिले अथवा वैसा एकान्त स्थान मिले, तो सभी स्त्रियाँ पाप करती है। कोई और न मिले तो लगडे-लूले के साथ भी ॥१९॥ आदमियो मे अनुरक्त, चचल तथा काबू से बाहर की स्त्रियो का विश्वास न करे। अपने से सर्वथा प्रसन्न स्त्रियो का भी विश्वास न करे। स्त्रियाँ पानी के घाट के समान होती है ॥२०॥]

इसी प्रकार: पूर्व समय मे वाराणसी मे कण्डरी नाम का राजा था, बहुत ही सुन्दर। अमात्य उसके लिये प्रति दिन हजार सुगन्धित भार लाते थे। उन से उसके भवन का परिभण्ड(?) बनाकर सुगन्धित भारो को फाड, सुगन्धित ईंधन बना भोजन पकाते थे। उसकी भार्य्या भी सुन्दर थी। नाम था किन्नरा। पुरोहित भी उसका पंचाल-चण्ड नामी था, समान-आयु वाला, बुद्धिमान। राजा के महल के आश्रम से भवन की चार-दीवारी के अन्दर एक जामुन का पेड उग आया। उसकी शाखाये चार-दीवारी के ऊपर लटकती थी। उसकी छाया के नीचे एक घृणित, बदशक्ल लूला रहता था।

एक दिन किन्नरा ने झरोखे से उसे देखा। वह उस पर आसक्त हो गई। रात को राजा के साथ रति-क्रीडा कर उसे नीद आ जाने पर वह आहिस्ता से उठी और नाना प्रकार का श्रेष्ठ भोजन स्वर्ण-निर्मित सकोरे में रख, उसे पल्ले मे बाध, कपड़े की रस्सी से झरोखे से उतर, जम्बु-वृक्ष पर चढ, शाखा से उतर, लूले को खिलाया और उसके साथ पाप-कर्म किया। फिर जिस मार्ग से आई थी, उसी मार्ग से प्रासाद पर चढ, शरीर मे सुगन्धी ला, राजा के साथ लेटी। इसी प्रकार वह उसके साथ निरन्तर पाप-कर्म करती। राजा भी नही जानता था।

एक दिन जब वह नगर घूमकर राजभवन मे प्रवेश करने जा रहा था, उसने जम्बु वृक्ष की छाया मे पड़े हुए, अत्यन्त दयनीय-दशा को प्राप्त एक कुबडे को देखा। उसे देख, वह पुरोहित से बोला, "इस मनुष्य-प्रेत को देखते हो!"

"देव! हाँ।"

"क्या कोई स्त्री इस प्रकार के घृणित पुरुष पर भी आसक्त हो सकती है?"

यह बात सुनी तो कुबडे के मन मे अभिमान पैदा हुआ, 'यह राजा क्या बात करता है! मालूम होता है अपनी देवी के मेरे पास आने की बात नही जानता है।' उसने जम्बुवृक्ष की ओर हाथ जोड कर कहा, "हे जम्बुवृक्षवासी देवता! हे स्वामी! सुन। एक मात्र तू ही इस बात को जानता है।" पुरोहित ने उसे ऐसा करते देख, सोचा, "निश्चय से पटरानी जम्बुवृक्ष से आकर इसके साथ पाप-कर्म करती है।" उसने राजा से पूछा, "देव! रात को आपकी देवी का शरीर-स्पर्श कैसा रहता है?"

"मित्र! और तो कुछ नही जानता। हाँ, आधी रात को उसका शरीर-स्पर्श ठडा रहता है।"

"तो देव! किसी दूसरी स्त्री की बात रहने दे। आपकी पटरानी किन्नरा देवी ही इसके साथ पाप-कर्म करती है।"

"मित्र! क्या कहता है! क्या इस प्रकार की विलास-प्रिया इस घृणित के साथ रमण करती है?"

"देव! तो परीक्षा कर देखे।"

उसने 'अच्छा' कहा और सन्ध्याकालीन भोजन के अनन्तर रात को उसके साथ लेटकर उसकी जाँच करने के लिये, स्वाभाविक निद्रा आने के समय निद्रा-गत सा

होकर पड रहा। देवी भी उठी और उसने वैसा ही किया। राजा उसके पीछे पीछे जा जम्बु की छाया मे खडा हुआ। कुबडे ने देवी पर क्रोध कर 'तू बहुत देर करके आई है' कह, हाथ से ककर फेक कर मारी। वह 'स्वामी! क्रोध न करें। राजा के सो जाने की प्रतीक्षा कर रही थी' कह उसकी चरण-दासी की तरह व्यवहार करने लगी। उसके कंकर मारने से उसका बाला कान से निकलकर राजा के पांव मे जा पडा। 'यह पर्य्याप्त है' सोच, राजा उसे ले चला आया। वह भी उसके साथ उसी प्रकार रमण कर पहले ही की तरह जा कर राजा के पास लेटने लगी। राजा ने रोक दिया। अगले दिन उसने आज्ञा दी कि 'किन्नर देवी मेरे दिये हुए सभी अलकार पहन कर आवे।' वह 'मेरा सिह-कुण्डल स्वर्णकार के पास है' कह कर नही गई। दुबारा बुलाई जाने पर एक ही कुण्डल धारण किये पहुची। राजा ने पूछा—

"तेरा (दूसरा) कुण्डल कहाँ है?"

"सुनार के पास।"

उसने सुनार को बुलाकर पूछा—"इसका कुण्डल क्यो नही देता?"

"देव! मेरे पास नही है।"

राजा क्रोधित हुआ। 'चण्डालनी! मेरे जैसे को तेरा स्वर्ण-कार बनना होगा' कह, वह कुण्डल आगे डाल पुरोहित को कहा—"मित्र! तू ने सत्य कहा था। जा इसका सिर कटवा डाल।"

उसने उसे राज-भवन मे ही एक ओर बिठा दिया और राजा से जाकर बोला—"देव! किन्नर देवी के प्रति क्रुद्ध न हो। सभी स्त्रियाँ ऐसी ही होती है। यदि स्त्रियो की दुश्चरित्रता देखनी हो तो मै इनका पाप तथा मायावीपन दिखाऊँगा। आये भेस बदलकर जनपद मे घूमे।" राजा ने 'अच्छा' कहा और मा को राज्य सौप उसके साथ चारिका के लिये निकल पड़ा। वे योजन भर मार्ग जाकर महामार्ग पर बैठे थे। उन्होने देखा कि एक गृहस्थ पुत्र के लिये "मगल" कर एक कुमारी को डोली मे बिठा बहुत से लोगो के साथ चला जा रहा है। उसे देख, पुरोहित बोला, "यदि इच्छा हो तो मै तुम्हारे साथ इस कुमारी का रमण करा सकता हूँ।"

"क्या कहते हो! इतने आदमी है! ऐसा नही हो सकता।"

"देव। तो देखे।"

उसने आगे आगे जा, सड़क से हटकर एक कनात गाडी और राजा को उसमें बिठा, स्वयं सड़क के किनारे बैठ रोने लगा। गृहस्थ ने उसे देख, पूछा--

"तात! क्यो रोता है?"

"मेरी भार्य्या के पैर भारी हो गये है। उसे मै उसके मायके पहुचाने जा रहा था। रास्ते मे ही गर्भ परिषाक हो गया। इस कनात मे वह कष्ट पा रही है। कोई औरत उसके पास नही है। मै भी वहाँ नही जा सकता। कह नही सकता क्या होगा?"

"एक स्त्री चाहिये। रो मत। बहुत स्त्रियाँ है। एक चली जायगी।"

"तो यह कुमारी ही चली जाय। इसका भी मगल होगा।"

उसने सोचा, "ठीक तो कहता है। इस निमित्त से पुत्र-वधु का भी मगल होगा। वह भी बेटा-बेटी वाली होगी।" उसने उसे ही भेज दिया। वह कनात के अन्दर गई। वहाँ राजा को देख उस पर मुग्ध हो गई और उसके साथ रमण किया। राजा ने भी उसे अगूठी दी। जब वह काम समाप्त कर बाहर आई तो उसे पूछा--"क्या हुआ?"

"स्वर्ण-वर्ण पुत्र।"

गृहस्थ उसे ले चल दिया। पुरोहित ने भी राजा के पास पहुच कहा, "देव! देखा। कुमारियाँ भी ऐसी पापिन होती है। अन्य स्त्रियों का तो कहना ही क्या! लेकिन, क्या तुमने उसे कुछ दिया?"

"हाँ, अंगूठी दी है।"

"यह उसे नही देगे।"

उसने शीघ्रता से आगे बढ रथ को रोक लिया और "क्या है?" पूछने पर बोला: "यह मेरी ब्राह्मणी के जूड़े में रक्खी अंगूठी ले आई है" और उसे कहा "अम्म! अंगूठी दे।"

उसने वह देते हुए ब्राह्मण के हाथ नाखून से नोच डाले और बोली, "चोर! यह ले।"

इस प्रकार ब्राह्मण ने राजा को नाना उपायों से अनेक अतिचारिनियों का

दर्शन करा कर कहा, "देव ! इधर ऐसा ही है। आये अन्यत्र चले।" राजा सारे जम्बुद्वीप मे घूमा। फिर 'वे सभी स्त्रियाँ ऐसी ही होगी, इनसे हमे क्या, आओ रुकें' कह वाराणसी लौट पुरोहित ने राजा से निवेदन किया, "महाराज स्त्रियाँ ऐसी ही होती है। यह प्रकृति से ही पापिन है। देव ! किन्नर देवी को क्षमा करे।" पुरोहित के कहने से राजा ने उसे क्षमा कर दिया, किन्तु उस जगह से निकलवा दिया। उसे उसके स्थान से च्युत कर एक दूसरी देवी को पटरानी बनाया। उस कुबडे को भी वहाँ से निकलवा, जम्बु शाखा भी कटवा डाली। उस समय कण्डरी पञ्चाल-चण्ड था। उसने अपने अनुभव की बात सुनाते हुए ही गाथा कही—

**यं वे दिस्वा कण्डरी-किन्नरानं**
**सब्बित्थियो न रमन्ती अगारे**
**तं तादिसं मच्चं चजित्वा भरिया**
**अञ्ञं दिस्वा पुरिसं पीठसप्पिं ॥२१॥**

[कण्डरी तथा किन्नरी की बात देखकर जानना चाहिए कि सभी स्त्रियाँ घर मे रमण नही करती है। उस देवी ने उस राजा सदृश पुरुष को छोडकर दूसरे कुबडे के साथ रमण किया ॥२१॥]

और भी पूर्व समय मे बक नामका राजा धर्मानुसार राज्य करता था। उस समय वाराणसी के पूर्व–द्वार पर रहने वाले एक दरिद्र पुरुष की पञ्चपापा नामक कन्या थी। पूर्व जन्म मे भी वह एक दरिद्र-कन्या ही थी। वह मिट्टी गूधकर घर की दीवार लीप रही थी। एक प्रत्येक-बुद्ध को अपनी सहारा लेने की जगह को थोडा और झुकाने के लिये मिट्टी की अपेक्षा थी। उसने सोचा, "मिट्टी कहाँ मिलेगी ?" उसे ध्यान आया, "वाराणसी मे मिल सकेगी।" उसने वस्त्र धारण किया और पात्र हाथ मे ले, नगर मे प्रविष्ट हो उसके पास जा खडा हुआ। उसने क्रोधभरी नजर से देखते हुए कहा, "श्रमण ! मिट्टी भी नही मिली," और बडा सा मिट्टी का डला लाकर पात्र मे डाल दिया। उसने उस मिट्टी से अपने सहारे की जगह को ठीक कर लिया। मिट्टी का ढेला देने के फल-स्वरूप उसका शरीर कोमल होगया। किन्तु क्रोध से देखने के कारण उसके हाथ, पाँव, मुख, आँखे और नाक बद-शक्ल हो गई। इसी से उसका नाम 'पञ्चपापा' पड गया।

एक दिन वाराणसी-नरेश रात को भेष बदल कर नगर का हाल जानने के लिये उधर जा निकला। उसने भी गाँव की बालिकाओं के साथ खेलते खेलते बिना जाने राजा का हाथ पकड लिया। वह उसके हाथ के स्पर्श के प्रभाव से होश ठिकाने न रख सका। उसे ऐसा लगा, मानो दिव्य-स्पर्श छू गया हो। स्पर्श-रागाभिभूत हो उसने उस अवस्था मे भी उसे हाथो से पकड पूछा, "तू किसकी लडकी है!"

"द्वार पर रहने वाली की।"

फिर यह जान कि उसका कोई स्वामी नही है, उसने कहा, "मै तेरा स्वामी होऊगा। जा माता-पिता से अनुमति ले आ।" वह माता पिता के पास पहुची और बोली, "एक पुरुष मुझे चाहता है।" "वह भी कोई दरिद्र ही होगा, यदि तुझे चाहता है, अच्छा" कह उन्होने आज्ञा दे दी। उसने जाकर माता-पिता से आज्ञा मिलने की बात कही। वह उसके साथ उसी घर मे रहा और प्रात. काल होते होते राज- भवन चला गया। तब से राजा भेस बदल कर नियमित रूप से वहाँ जाता, और अन्य किसी स्त्री की ओर देखना न चाहता।

एक बार उस लडकी के पिता को रक्तातिसार हो गया। बिना पानी के दूध-घी-मधु तथा शक्कर से बनी हुई खीर उसकी दवाई थी। दरिद्रता के कारण वे उसे प्राप्त न कर सकते थे। तब पञ्चपापा की मा ने उसे कहा—"अम्म! क्या तेरा स्वामी खीर प्राप्त कर सकेगा?"

"मा! मेरा स्वामी हमसे भी दरिद्र होगा। तो भी मै उससे पूछूगी। चिन्ता न करे।

उसके आने के समय वह चिन्ताकुल हो बैठ रही। राजा ने आकर पूछा, "चिन्तित। क्यो है!"

जब उसे कारण मालूम हुआ, तो "भद्रे! ऐसी महगी औषधी कहाँ से ला सकूगा, "कह, सोचने लगा," मै सदैव ऐसे ही नही चला सकता। रास्ते मे खतरा भी हो सकता है। यदि इसे रनिवास मे ले जाऊ तो लोग इसके दिव्य-स्पर्श की बात न जानने के कारण मजाक करेगे कि हमारा राजा यक्षिणी को ले आया है। मै सारे नगरवासियो को इसके स्पर्श से परिचित करा निन्दा से मुक्त होऊगा।"

तब बोला, "भद्रे ! चिन्ता न कर। मैं तेरे पिता के लिये खीर लाऊगा।" फिर उसके साथ रमण कर राज-भवन गया ओर अगले दिन वैसी खीर पकवा, पत्ते लेकर दोदोने बनवाये और उनमे से एक मे खीर डाली ओर दूसरे में चूळ-मणि। उन्हे बाध, रात को ले जाकर दिया और बोला, "भद्रे ! हम दरिद्र है। बडी कठिनाई से व्यवस्था की। अपने पिता से कहना कि आज इस दोने मे से खीर खाये। कल इसमे से।" उसने वैसा ही किया। उसका पिता ओज की अधिकता से थोडी ही खीर खाकर तृप्त हो गया। शेष मा को दे उसने स्वय भी खाई। तीनो सुखी हुए। चूळमणि वाला दोना अगले दिन के लिये रख दिया। राजा ने अपने घर पहुच, मुह धोकर कहा, 'मेरी चूळमणि लाओ।" "देव ! दिखाई नही देती।"

"सारे नगर मे खोजो।"

"खोजने पर भी नही मिली।"

"तो नगर के बाहर दरिद्र गृहो मे भात रखने के पत्तो के दोनो तक मे खोजो।"

खोजने पर जब उसके घर मे मणि मिल गई तो उसके माता–पिता को चोर मान, बाध कर ले गये। उसका पिता बोला––

"स्वामी ! हम चोर नही है। इस मणि को कोई दूसरा लाया है।"

"कौन लाया है ?"

"हमारा दामाद।"

"वह कहा है ?"

"हमारी लडकी जानती है।"

तब पिता ने उससे बात-चीत की––

"अम्म ! अपने स्वामी को पहचानती है !"

"नही पहचानती हू।"

"यदि ऐसा है तो हमारे प्राण नही बच सकते।"

"तात ! वह अन्धेरे मे आकर अन्धेरे मे ही चला जाता है। इसलिये उसकी शक्ल नही पहचानती हू। हां हाथ के स्पर्श से उसे पहचान सकती हूँ।"

उसने राज-पुरुषो से कहा। उन्होंने राजा से कहा। राजा ने अजानकार की तरह कहा, "तो उस स्त्री को राजाङ्गन मे कनात में रखकर, हाथ भर का छेद कर

नगरवासियो को इकट्ठा कर, हाथ के स्पर्श से चोर को पकडवाओ।" राज-पुरुष वैसा करने के लिये उसके पास पहुचे, तो उसकी शक्ल ही देखकर उन्हे घृणा हो गई। वे बोले, "यह पिशाची है।" घृणा के मारे वे उसे छू नही सके। किन्तु वे उसे ले आये और राजाङ्गन मे कनात के अन्दर रख सारे नगर वासियो को इकट्ठा किया। जो जो आता और छेद मे से हाथ आगे बढाता, वह उस उसके हाथ का स्पर्श करके कहती, "यह नही।" आदमी उसके दिव्य-स्पर्श सदृश स्पर्श मे आसक्त हो उसे छोड कर न जा सकते। वे सोचते, "यदि यह दण्डनीय है, तो इसका दण्ड चुका कर भी, इसे दासी, काम करने वाली बनाकर भी घर ले चलेंगे।" राजपुरुषो ने उन्हे डण्डे से पीट कर हटाया। उपराज से लेकर सभी पागल से हो गये। तब राजा ने "शायद मै होऊ" कह हाथ बढाया। उसका हाथ पकड़ते ही वह चिल्लाई, "मैने चोर पकड लिया।" राजा ने उन आदमियो से पूछा, "जब इसने तुम्हारे हाथ को पकडा तो तुम क्या सोचने लगे!" उन्होने यथार्थ बात कह दी! तब राजा बोला, "मैने अपने घर लाने के लिये ही ऐसा किया। अन्यथा इसके स्पर्श से अपरिचित तुम मेरी निन्दा करते। इस लिये मैने तुम सबको स्पर्श करा दिया। अब बताओ, यह किसके घर रहने योग्य है?"

उसका अभिषेक कर उसे पटरानी बनाया गया। उसके माता पिता को भी ऐश्वर्य्य दिलाया गया। तब से वह उसमे इतना आसक्त हुआ कि न इजलास लगाता और न किसी दूसरी स्त्री की ओर देखता। वे भेद डालने का अवसर देखने लगी।

उसे एक दिन स्वप्न मे दो की पटरानी होने का लक्षण दिखाई दिया। उसने राजा से कहा। राजा ने स्वप्न की व्याख्या करने वालो को बुला कर पूछा, "इस प्रकार का स्वप्न दिखाई देने पर क्या होता है?" उन्होने दूसरी स्त्रियो से रिश्वत लेकर उत्तर दिया, "महाराज! देवी का सर्वश्वेत हाथी पर बैठे दिखाई देना तुम्हारे मरण का पूर्व लक्षण है, और हाथी के कन्धे पर बैठे बैठे चन्द्र का स्पर्श करना तुम्हारे शत्रु-राजा के आगमन का पूर्व लक्षण है।" राजा ने पूछा, "अब क्या करना चाहिये!" "देव? उसे मार नही सकते। इसे नौका पर चढा नदी मे बहा देना योग्य है।" राजा ने आहार, वस्त्र और अलकारो सहित उसे रात को नौका

मे बिठा नदी मे छोड दिया। वह नदी मे बहती हुई, नीचे जहाँ पावारिय राजा नौका मे बैठा जल–क्रीडा कर रहा था, उसके सामने जा लगी। उसके सेनापति ने नौका देखते ही कहा, "यह नौका मेरी है।" राजा बोला, "नौका के भीतर का सामान मेरा है।" नौका के पास आने पर उसे देख पूछा, "पिशाचिन् सी तू कौन है ?" उसने मुस्करा कर बक राजा की पटरानी होने की बात कह सारी कथा कह सुनाई। वह पञ्चपापा सारे जम्बुद्वीप मे प्रसिद्ध थी। राजाने उसे हाथ से ऊपर उठाया। हाथ मे लेते ही स्पर्श-राग के वशीभूत हो दूसरी स्त्रियो को स्त्री तक न मान, उसे पटरानी बना दिया। वह उसे प्राणवत् प्यारी हो गई।

बक को जब यह समाचार मिला तो बोला "मै उसे अपनी पटरानी नही बनाने दूंगा।" उसने सेना तैयार की और नदी के दूसरे तट पर उसके मुकाबिले पडाव डाल सदेश भिजवाया "या तो मेरी भार्य्या दे दे अथवा युद्ध के लिये तैयार हो जाये।" वह युद्ध के लिये तैयार हो गया। दोनो राजाओ के अमात्यो ने सोचा, "स्त्री के लिये मरना योग्य नही है। पूर्व-स्वामी होने से यह बक की है और नौका मे मिलने से पावारिय की। इस लिये एक एक सप्ताह एक एक के घर मे रहे।" आपस मे मत्रणाकर उन्होने दोनो राजाओ को समझाया। वे दोनो प्रसन्न हुए और उन्होने नदी के दोनो तटो पर आमने सामने नगर बसा लिये। वह दोनो की पटरानी हो गई। दोनो उसपर मस्त हो गये। वह एक के घर मे सप्ताह भर रहकर नौका से दूसरे के घर जाती। नौका खेकर लेजाने वाले बूढे लगडे–लूले मल्लाह के साथ नदी के बीच मे पाप–कर्म करती। उस समय कुणाल पक्षी-राज बक था। इस लिये इस अपनी देखी बात को लाते हुए उसने कहा—

**बकस्स च पावारिकस्स रञ्ञो**
**अच्चन्तका मानुगतस्स भरिया**
**अवाचरी बद्धवसानुगस्स**
**कं वा इत्थी नातिचरे तदञ्ञं ॥२२॥**

[अत्यन्त कामुक राजा बक तथा पावारिक की रानी ने जब अपने वश मे आये भेजने वाले के साथ अनाचार किया तो स्त्री और किसके साथ अनाचार नही करेगी ? ॥२२॥]

और भी। पूर्व समयमे ब्रह्मदत्त की भार्य्या का नाम था पियङ्गानि। झरोखा खोलने पर उसने मगल–घोडे के साईस को देखा। राजा के सो जाने पर वह झरोखे से उतरी और उसके साथ रमण कर फिर महल पर चढ, शरीर पर सुगन्धित–चूर्ण मल, राजा के साथ जा लेटी। एक दिन राजा ने सोचा, "क्या बात है कि देवी का शरीर रोज रोज आधी रात के समय ठण्डा होता है? मै इसका पता लगाऊगा"। एक दिन वह निद्रित की तरह पड रहा और जब वह उठ कर जाने लगी तो उसके पीछे पीछे हो लिया। जब उसने देखा कि वह साईस के साथ रमण करती है, तो वह वापिस आ कर शैय्या पर लेट रहा। वह भी रमण कर आकर छोटी चारपाई पर लेट रही। अगले दिन राजा ने उसे अमात्यो के बीच ही बुला उसका कर्म प्रकट किया। 'फिर सभी स्त्रियाँ पापिन होती है' सोच उसका वध करने योग्य, बेडी डालने योग्य, अगहीन कर देने योग्य दोष को क्षमा कर उसे पदच्युत कर, दूसरी स्त्री को पटरानी बनाया। उस समय कुणाल राजा ही ब्रह्मदत्त था। इस लिये अपनी देखी बात ही लाकर उसने कहा—

**पिंगियानि सब्बलोकिस्सास्स**
**रञ्ञो पिया ब्रह्मदत्तस्स भरिया**
**अवाचरी बद्धवसानुगस्स**
**तं वापि सा नाज्झग कामकामिनि॥२३॥**

[सर्व लोकेश्वर ब्रह्मदत्त राजा की प्रिया भार्य्या ने वशीभूत के साथ अनाचार किया। उस कामुका ने उसे भी नही छोडा॥२३॥]

पूर्व(-जन्म) की कथाओ द्वारा स्त्रियो के दोष कह और भी तरह उनके दोष प्रकट करते हुए कहा—

**खुद्दानं लहुचित्तानं अकतञ्ञूनं दूभिनं**
**नादेवसत्तो पुरिसो थीनं सद्धातुं अरहति॥२४॥**
**न ता पजानन्ति कतं न किच्चं**
**न मातरं पितरं भातरं वा**
**अनरिया समतिक्कन्तधम्मा**
**सस्सेव चित्तस्स वसं वजन्ति॥२५॥**

चिरानुवुत्थं पि पियं मनापं
अनुकम्पकं पाणसमं पि सन्तं
आवासु किच्चेसु च नं जहन्ति
तस्माहं इत्थीनं न विस्ससामि ॥२६॥

थीनं हि चित्तं यथा वानरस्स
कप्पकप्पं यथा रुक्खछाया
चलाचलं हृदयं इत्थियानं
चक्कस्स नेमि विय परिवत्तति ॥२७॥

यदा ता पस्सन्ति समेक्खमाना
आदेय्यरूपं पुरिसस्स वित्तं
सण्हाहि वाचाहि नयन्ति-मेतं
कम्बोजका जलजेनेव अस्सं ॥२८॥

यदा न पस्सन्ति समेक्खमाना
आदेय्यरूपं पुरिसस्स वित्तं
समन्ततो नं परिवज्जयन्ति
तिण्णो नदीपारगतो व कुल्लं ॥२९॥

सिलेसूपमा सिखिरिव सब्बभक्खा
तिक्खा भया नदी-रिव सीघसोता
सेवन्ति हेता पियं अप्पियं च
नावा यथा ओरकूलं परं च ॥३०॥

न ता एकस्स वा द्विन्नं आपणो व पसारितो,
यो ता मय्हं ति मञ्ञेय्य वातं जालेन बाधये ॥३१॥

यथा नदी च पन्थो च पानागारं सभा पपा
एवं लोकित्थियो नाम, वेला तासं न विज्जति ॥३२॥

घतासन समा हेता कण्हसप्पसिरूपमा
गावो बहितिण्णस्सेव ओमसन्ति वरं वरं ॥३३॥

**घतासनं कुञ्जरं कण्हसप्पं**
**मुद्धाभिसित्तं पमदा च सब्बा**
**एते न सो निच्चयत्तो भजेथ**
**तेसं भवे दुब्बिदु सब्बभावो ॥३४॥**
**नाच्चन्तवण्णा न बहून कन्ता**
**न दक्खिणा पमदा सेवितब्बा**
**न परस्स भीत्या न धनस्स हेतु**
**एतित्थियो पञ्च न सेवितब्बा ॥३५॥**

[जिस आदमी के सिर भूत न आया हो ऐसे किसी भी आदमी के लिये यह उचित नही है कि वह क्षुद्र, शीघ्र परिवर्तन-शील, अकृतज्ञ तथा (मित्र-) द्रोही स्त्रियों का विश्वास करे।। २४।। ये न उपकार को पहचानती है और न कर्तव्य को, न माता को, न पिता को और न भाई को। ये निर्लज्ज, धर्म की सीमा को लाघने वाली, अपने चित्त के ही वश मे हो जाती है।। २५।। जो चिर काल तक साथ रहा हो, जो प्रिय हो, जो मन को अच्छा लगने वाला हो, जो अनुकम्पा करने वाला हो तथा जो प्राण के समान हो, ऐसे पुरुष को भी ये आपत्ति आ पडने पर, काम आ पडने पर छोड़ देती है। इस लिये मै स्त्रियो का विश्वास नही करता।। २६।। स्त्रियो का चित्त वानर के चित्त के समान होता है, वह वृक्ष की छाया की तरह ऊचा-नीचा होता है। स्त्रियो का चित्त चचल होता है। वह चक्र की नेमी की तरह ऊपर नीचे आता जाता रहता है।। २७।। जब इन्हे खोजते खोजते कही किसी पुरुष के पास ऐसा धन दिखाई देता है जो उससे लिया जा सकता है तो वह उसे चिकनी-चुपडी बातो से ऐसे ही फसा लेती है जैसे कम्बोज-वासी शैवाल से घोडो को।। २८।। जब इन्हे खोजते खोजते कही किसी पुरुष के पास ऐसा धन नही दिखाई देता जो उससे लिया जा सकता हो, तो वह उसे वैसे ही छोड देती है जैसे नदी पार हो जाने पर आदमी नौका को।। २९।। श्लेष्मोपम, अग्नि-शिखा के समान सर्व-भक्षी, तीक्ष्ण, नदी की तरह वेगवती स्त्रियाँ प्रिय-अप्रिय सभी का उसी प्रकार सेवन करती है जैसे नौका इस पार तथा उस पार का भी।। ३०।। जिस प्रकार खुली हुई दुकान किसी एक या दो आदमियो की नही होती उसी प्रकार स्त्रियाँ भी

किसी एक या दो की नही होती। जो पुरुष उन्हे अपनी समझे वह जाल से हवा को भी बाध सकता है ।। ३१ ।। जैसे नदी, रास्ता, पानागार, सभा तथा प्याउ, वैसे ही स्त्रियाँ। इनका कोई खास समय नही है ।। ३२ ।। ये अग्नि के समान हैं, ये कृष्ण-सर्प के फन के समान है, ये नई नई घास की इच्छा करने वाली गौओं के समान है ।। ३३ ।। अग्नि, हाथी, काले सर्प, राजा तथा सभी स्त्रियों का कभी भी पूर्ण विश्वास न करे। उनका स्वभाव दुर्ज्ञेय ही रहता है ।। ३४ ।। न अत्यन्त रुपवती, न अनेको की प्रिया, न अति दक्ष स्त्री का सेवन करे और न पराई स्त्री का तथा न धन के लिये सगति करने वाली का। इन पाच प्रकार की स्त्रियां की संगति न करे ।। ३५ ।।]

ऐसा कहने पर जनता ने बोधिसत्व को साधुवाद दिया—"ओह! सुकथित है।" वह इस प्रकार स्त्रियो के अवगुण कह कर चुप हो गया।

यह सुन आनन्द गृध्र-राज ने 'मित्र कुणाल-राज! मै भी अपने ज्ञान-बल से स्त्रियो के दुर्गुण कहता हूँ' कह उनके अवगुण आरम्भ किये।

इस बात को प्रकट करते हुए भगवान् ने कहा—तब आनन्द गृध्र-राज ने कुणाल पक्षी की कथा का आदि, मध्य तथा अवसान जानकर उस समय ये गाथायें कहीं—

**पुण्णं पि चे मं पठविं धनेन**
**दज्ज इत्थिया पुरिसो सम्मताय**
**लद्धा खणं अति मञ्ञेय तं पि**
**तासं वसं असतीनं न गच्छे ॥३६॥**
**उट्ठाहकञ्च पि अलीनवुत्तिं**
**कोमारभत्तारं पियं मनापं**
**आवासु किच्चेसु न नं जहन्ति**
**तस्मा हि इत्थीनं न विस्ससामि ॥३७॥**
**न विस्ससे इच्छति मं ति पोसो**
**न विस्ससे रोदति मे सकासे**
**सेवन्ति हेता पियं अप्पियं च**
**नावा यथा ओर कुलं परं च ॥३८॥**

न विस्ससे साखपुराणसन्थतं
न विस्ससे मित्तपुराणचोरं
न विस्ससे राजा सखा ममं ति
न विस्ससे इत्थि दसन्नं मातरं ॥३९॥

न विस्ससे रामकटासु नारिसु
अच्चन्त सीलासु असञ्ञतासु
अच्चन्तपेमानुगतस्स भरिया
न विस्ससे तित्थसमा हि नारियो ॥४०॥

हनेय्यु छिन्देय्युं पि छेदयेय्युं
कण्ठं पि छेत्वा रुधिरं पिपेय्युं
मा दीनकामासु असञ्ञतासु
भावं करे गङ्गतित्थूपमासु ॥४१॥

मुसा तासं यथा सच्चं सच्चं तासं यथा मुसा
गावो बहितिणस्सेव ओमसन्ति वरं वरं ॥४२॥

गतेन एता पलोभेन्ति पेक्खितेन मिहितेन च
अथो पि दुन्निवत्थेन मञ्जुना भणितेन च ॥४३॥

चोरियो कठिना हेता वाळा च लपसक्खरा
न ता किञ्चि न जानन्ति यं मनुस्सेसु वञ्चनं ॥४४॥

असा लोकित्थियो नाम वेला तासं न विज्जति,
सारत्ता च पगब्भा च सिखी सब्बघमो यथा ॥४५॥

नत्थ इत्थीनं पियो नाम अप्पियो पि न विज्जति
सेवन्ति हेता पियं अप्पियं च
नावा यथा ओरकुलं परं च ॥४६॥

नत्थ इत्थीनं पियो नाम अप्पियो पि न विज्जति,
धनत्ता पतिवेल्लन्ति लता व दुमनिस्सिता ॥४७॥

**हत्थिबन्धं अस्सबन्धं गोपुरिसं च चण्डालं**
**छवडाहकं [ पुप्फछड्डकं ]**
**सधनं अनुपतन्ति नारियो ॥४८॥**
**कुलपुत्तं पि जहन्ति अकिञ्चनं छवकसमं**
**सदिसं अपि गच्छन्ति [ अनुपतन्ति ] धनहेतु नारियो ॥४९॥**

[यदि यह सारी पृथ्वी धन से पूर्ण हो और पुरुष अनुरक्त होने के कारण उसे स्त्री को दे दे। समय आने पर वह उस पुरुष की भी अवहेलना करेगी। इस लिए असतियो के वश न हो ॥३६॥ उत्साही, आलस्य-रहित, प्रिय, मनोरम कुमार-पति को भी वे आपत्ति आने पर, मौका पड़ने पर छोड़ देती है। इसलिए मै स्त्रियो का विश्वास नही करता ॥३७॥ 'मुझे चाहती है' समझ कर पुरुष स्त्री का विश्वास न करे, 'मेरे पास रोती है' समझ कर पुरुष स्त्री का विश्वास न करे। ये प्रिय तथा अप्रिय सभी का उसी प्रकार सेवन करती है जैसे नौका इस पार और उस पार का ॥३८॥ पुराने पत्तो वाली शाखा का विश्वास न करे, पुराने मित्र चोर का विश्वास न करे, 'मेरा साथी है' समझकर राजा का विश्वास न करे और 'दस सन्तानो की माता है' समझ कर स्त्री का विश्वास न करे ॥३९॥ मूर्खो की रति-भाजन, शील-अतिक्रान्त, असयत नारियो का विश्वास न करे। 'अत्यन्त प्रेमानुगत भार्य्या है' समझ कर भी विश्वास न करे। नारियाँ तीर्थो के समान सर्व-साधारणा होती है ॥४०॥ ये मार भी डाल सकती है, काट डाल सकती है, कटवा डाल सकती है, और गला काट कर खून भी पी सकती है, इन हीन विचार वाली असयत नारियो का कभी विश्वास न करे। क्योकि ये गगा (नदी) के तीर्थ के समान सर्व साधारणा है ॥४१॥ उनका झूठ भी सत्य जैसा है और सत्य भी झूठ जैसा है। वे गऊो के नित्य नया घास खोजने की तरह अच्छा अच्छा खोजती है ॥४२॥ वे चाल से, नजर से, मुस्कराहट से, वस्त्र से और मधुर वाणी से लुभाती है ॥४३॥ चौरिणी, कठोर हृदया, दुष्टा तथा मधुर भाषिणी—ये मनुष्यो के ठगने को कुछ समझती ही नही ॥४४॥ लोक मे स्त्रियाँ असति होती है, उनका कोई समय नही। वे सभी पर अनुरक्त होने वाली तथा प्रगल्भा होती है, अग्नि शिखा के समान सभी को ग्रहण करने वाली ॥४५॥ स्त्रियो का कोई प्रिय नही, अप्रिय भी नही। जिस प्रकार नौका

इस तीर तथा उस तीर दोनो का स्पर्श करती है, उसी प्रकार ये प्रिय तथा अप्रिय दोनो का सेवन करती हैं ॥४६॥ स्त्रियो का प्रिय अप्रिय कोई नहा, धन के लिए वे किसी के भी साथ वैसे ही लिपट जाती हैं जैसे लता पेड के साथ ॥४७॥ धन के लिए नारियाँ हथवान, साइस, ग्वाले, चाण्डाल, मुर्दा जलाने वाले तथा भगी (तक) के पास चली जाती हैं ॥४८॥ अकिचन होने से, स्त्रियाँ कुलपुत्र का भी त्याग कर देती हैं और धन के लिए चाण्डाल-समान पुरुष के पास भी चली जाती है ॥४९॥]

इस प्रकार अपने ज्ञान के अनुसार आनन्द गृध्र-राज ने स्त्रियो के दुर्गुण कहे और चुप हो गया। उसकी बात सुन नारद ने भी अपने ज्ञान के अनुसार उनके अवगुण कहे।

उन्हे प्रकट करते हुए शास्ता ने कहा—तब उस समय नारद देव-ब्राह्मण ने आनन्द गृध्रराज की कथा का आदि, मध्य तथा अवसान जान कर ये गाथाये कही—

**चत्तारो मे न पूरेन्ति, ते मे सुणाथ भासतो**
**समुद्दो ब्राह्मणो राजा इत्थि चापि दिजम्पति ॥५०॥**
**सरिता सागरं यन्ति या काचि पथविं सिता**
**ता समुद्दं न पूरेन्ति, ऊनत्ता हि न पूरति ॥५१॥**
**ब्राह्मणो च अधियानं वेदं अक्खानपञ्चमं**
**भिय्यो पि सुतं इच्छेय्य, ऊनत्ता हि न पूरति ॥५२॥**
**राजा च पठविं सब्बं ससमुद्दं सपब्बतं**
**अज्झावसे विजिनित्वा अनन्तरतनोचितं**
**पारं समुद्दं पत्थेति, ऊनत्ता हि न पूरति ॥५३॥**
**एकमेकाय इत्थिया अट्ठअट्ठ पतिनो सिया**
**सूरा च बलवन्ता च सब्बकामरसाहरा,**
**करेय्य नवमे छन्दं, ऊनत्ता हि न पूरति ॥५४॥**
**सब्बित्थियो सिखिरिव सब्बभक्खा**
**सब्बित्थियो नदिरिव सब्बवाहो**
**सब्बित्थियो कण्टकानं पसाखा**
**सब्बित्थियो धनहेतु वजन्ति ॥५५॥**

**वातं जलेन परो परामसे**
**ओसिञ्चिया सागरं एकपाणिना**
**सकेन तालेन हनेय्य घोसनं**
**यो सब्ब भावं पमदासु ओस्सजेय्य ॥५६॥**
**चोरीनं बहुबुद्धीनं यासु सच्चं सुदुल्लभं**
**थीनं भावो दुराजानो मच्छस्सेवोदके गतं ॥५७॥**
**अनला मुदुसम्भासा दुप्पूरा ता नदीसमा**
**सीदन्ति, नं विदित्वान आरका परिवज्जये ॥५८॥**
**आवट्टनी महामाया ब्रह्मचरियविकोपना**
**सीदन्ति, नं विदित्वान आरका परिवज्जये ॥५९॥**
**यं एता उपसेवन्ति छन्दसा वा धनेन वा**
**जातवेदो व संठानं खिप्पं अनुडहन्ति नं ॥६०॥**

[हे द्विजपति ! मेरा कहना सुन। समुद्र, ब्राह्मण, राजा तथा स्त्री—इनकी कभी तृप्ति नही होती ॥५०॥ पृथ्वी पर जितनी नदियाँ है वे सभी सागर मे जा कर गिरती है, किन्तु वे समुद्र को नही भरती, न्यूनता के कारण पूर्ति नही होती ॥५१॥ ब्राह्मण (चार) वेद, पाचवे इतिहास के अतिरिक्त और भी श्रुति-ज्ञान की इच्छा करता है, न्यूनता के कारण तृप्ति नही होती ॥५२॥ ससमुद्र तथा सपर्वत अनन्त रतनो की राशी सारी पृथ्वी को जीत कर भी राजा समुद्र पार जीतने की भी इच्छा करता है, न्यूनता के कारण पूर्ति नही होती ॥५३॥ यदि एक एक स्त्री के शूर, बलवान् तथा सभी कामनाये पूरी करने वाले आठ आठ भी पति हो तो भी वह नौवे की इच्छा करती है, न्यूनता के कारण पूर्ति नही होती ॥५४॥ सभी स्त्रियाँ नदी की तरह सर्वभक्षिणी होती है; सभी स्त्रियाँ नदी की तरह सभी को बहा ले जाने वाली होती है; सभी स्त्रियाँ काटो की झाडी होती है; और सभी स्त्रियाँ धन के लिए निकल कर चली जाती है ॥५५॥ जो स्त्रियों का एकान्त विश्वास करे वह जाल से हवा को रोके, एक हाथ से सागर को उलीचे तथा एक हाथ से ताली बजाये ॥५६॥ जिस प्रकार पानी मे गई मछली का पता नही लगता उसी प्रकार चौरिणी, बहु

बुद्धिमान स्त्रियों का भी भाव दुर्ज्ञेय है, क्योंकि उनमे सत्य दुर्लभ है॥५७॥ झूठ बोलने वाली, मधुर बोलने वाली, नदी के समान भरी ही न जा सकने वाली स्त्रियाँ डूबती हैं—ऐसा जान कर उनसे दूर ही दूर रहे॥५८॥ जादूगरनी, महामायाविनी, ब्रह्मचर्य्य को कुपित करने वाली स्त्रियाँ डूबती हैं—ऐसा जान कर उनसे दूर ही दूर रहे॥५९॥ जो जो राग से अथवा धन से इनका सेवन करते हैं, उन्हे ये अग्नि की तरह शीघ्र ही जला डालती हैं॥६०॥]

इस प्रकार नारद के स्त्रियो के दोष कहने पर बोधिसत्व ने विशेष प्रकार से उनके दोष कहे।

यह प्रकट करने के लिए शास्ता ने कहा—तब उस समय कुणाल शकुन ने नारद देव-ब्राह्मण के कथन का आदि, मध्य तथा अन्त जान कर ये गाथायें कही—

**सल्लपे निसितखग्गपाणिना**
**पण्डितो अपि पिसाचदोसिना**
**उग्गतेजउरगं पि आसिदे**
**एको एकपमदं हि नालपे॥६१॥**

**लोकचित्तमथना हि नारियो**
**नच्चगीतभणितमिहितावुधा**
**बाधयन्ति अनुपट्ठितासति**
**दीपे रक्खसिगणो व वाणिजे॥६२॥**

**नत्थि तासं विनयो न संवरो**
**मज्जमंसनिरता असञ्ञता**
**ता गिलन्ति पुरिसस्स पाभतं**
**सागरे व मकरं तिमिङ्गिलो॥६३॥**

**पञ्चकामगुणसातगोचरा**
**उद्धता अनियता असञ्ञता**
**ओसरन्ति पमदा पमादिनं**
**लोणतोय वतियं व आपका॥६४॥**

यं नरं उपरमन्ति नारियो
छन्दसा च रतिया धनेन वा
जातवेद सदिसं पि तादिसं
रागदोसवतियो डहन्ति नं ॥६५॥

अड्ढं जत्वा पुरिसं महद्धनं
ओसरन्ति सधनं सह अत्तना
रत्तचित्तं अतिवेठयन्ति नं
साल मालुवलता कानने ॥६६॥

ता उपेन्ति विविधेन छन्दसा
चित्रबिम्बमुखियो अलंकता
ऊहसन्ति पहसन्ति नारियो
संवरो व सति मायकोविदा ॥६७॥

जातरूपमणिमुत्तभूसिता
सक्कता पतिकुलेसु नारियो
रक्खिता अतिचरन्ति सामिकं
दानवं व हृदयन्तरस्सिता ॥६८॥

तेजवापि हि नरो विचक्खणो
सक्कतो बहुजनस्स पूजितो
नारिनं वसगतो न भासति
राहुना उपगतो व चन्दिमा ॥६९॥

यं करेय्य कुपितो दिसो दिसं
दुट्ठचित्तो वसं आगतं अरि
तेन भिय्यो व्यसनं निगच्छति
नारिनं वसगतो अपेक्खवा ॥७०॥

केसलूननखछिन्नतज्जिता
पादपाणिकसदण्डताळिता

होनं एव उपगता हि नारियो
ता रमन्ति कुणपे व मक्खिका ॥७१॥

ता कुलेसु विसिखन्तरेसु वा
राजधानिनिगमेसु वा पुन
ओड्डितं नमुचि पासवाकरं
चक्खुना परिवज्जे सुखत्थियो ॥७२॥

ओसजित्व कुसलं तपो गुणं
यो अनरिय चरितानि-म-आचरि
देवताहि निरयं निमिस्सति
छेदगामि मणियं व वाणिजो ॥७३॥

सो इध गरहितो परत्थ च
दुम्मती उपगतो सकम्मुना
गच्छति अनियतो गळागळं
दुट्ठगद्रभरथो व उप्पथे ॥७४॥

सो उपेति निरयं पतापनं
सत्तिसिम्बलिवनञ्च-म-आयसं
आवसित्वा [न] तिरच्छान योनियं
पेतराजविसयं म मुञ्चति ॥७५॥

दिब्बखिड्डरतियो च नन्दने
चक्कवत्ति चरितं च मानुसे
नासयन्ति पमदा पमादिनं
दुग्गतिं च पटिपादयन्ति नं ॥७६॥

दिब्बखिड्डरतियो न दुल्लभा
चक्कवत्तिचरितं च मानुसे
सोवण्णव्यम्हनिलया व अच्छरा
ये चरन्ति पमदाहं अनत्थिका ॥७७॥

**कामधातुसमतिक्कमा गति**
**रूपधातुया भावो न दुल्लभो**
**वीतराग विसयुपपत्तिया**
**ये चरन्ति पमदाहं अनत्थिका ॥७८॥**
**सब्बदुक्खसमतिक्कमं सिवं**
**अच्चन्तं अचलितं असंखतं**
**निब्बुतेहि सुचि ही न दुल्लभं**
**ये चरन्ति पमदाह अनत्थिका ॥७९॥**

[पण्डित को चाहिए कि वह भले ही सिर पर तलवार लिए आदमी से बात कर ले, भले ही क्रोधित पिशाच से बात कर ले, भले ही भयानक सर्प के पास चला जाय; किन्तु अकेला अकेली स्त्री से कभी बात न करे ॥६१॥ नृत्य, गीत, वाणी तथा मुस्कराहट रूपी आयुध से लोक के चित्त को मथ डालने मे समर्थ नारियाँ अनुपस्थित स्मृति-जन को उसी प्रकार पीडित करती है जैसे द्वीप की राक्षसियो ने व्योपारियो को ॥६२॥ उनमे न विनय होती है और न सयम होता है। वे असंयमी (नारियाँ) मद्य मास भक्षण मे रत रहती है। जिस प्रकार सागर मे (सब से बडी) तिमिगल मछली मगर को निगल जाती है, उसी प्रकार ये पुरुष के धन को निगल जाती है ॥६३॥ पञ्च काम भोगो के मजे को खोजने वाली उद्धत, अनियत, असयत नारियाँ प्रमादी पुरुष के पास वैसे ही जाती है जैसे नदिया समुद्र के पास ॥६३॥ प्रेम, रति अथवा धन के हेतु से जिस पुरुष के साथ नारिया रमण करती है, उस अग्नि समान पुरुष को भी वे रागद्वेष के वशीभूत हो जला डालती है ॥६४॥ यह जान लेने पर कि पुरुष बहुत धनी है वे अपने धन के साथ उसके पास पहुचती है और तब वे उस अनुरक्त चित्त को ऐसे लिपटती है जैसे कानन मे पालुव लता शाल वृक्ष को ॥६६॥ वे चित्र-विचित्र शरीर वाली, अलकृत, मायाविनी, संयम-रहित नारियाँ नाना ढँग के द्वन्द से समीप आती है। वे हसती है और मुस्कराती है ॥६७॥ सोने, माणिक्य-मोती से विभूषित, पति-कुलो मे आदृत नारिया स्वामी के साथ अतिचार करती है जैसे दानव द्वारा हृदय मे छिपा कर रखी हुई नारी ने किया ॥६८॥ तेजस्वी, बुद्धिमान्, सत्कृत, बहुत जनों द्वारा पूजित आदमी भी नारियो के

वशीभूत होने पर मन्द-प्रभा हो जाता है जैसे राहु से ग्रसा हुआ चन्द्रमा ॥६९॥ क्रोधी, दुष्ट-चित्त शत्रु अपने वश मे आये शत्रु की जितनी हानि करता है उससे भी कही अधिक उस आदमी की हानि होती है जो तृष्णा के कारण स्त्रियों के वश में हो जाता है ॥७०॥ खीच कर बाल उखाड दिए गए, नखो से शरीर छील दिया गया, तर्जित; पाव, हाथ, चाबुक तथा डण्डे से ताडित होने पर भी नारियां हीन-पुरुष के पास जाती है जैसे मक्खियां लाश मे रमण करती है ॥७१॥ वे स्त्रिया (वास्तव में) कुलों मे, गलियो मे, राजधानियो मे अथवा निगमो में मार द्वारा फैलाये गये जाल है। सुखार्थी बुद्धिमान को उनसे बचना चाहिए ॥७२॥ जो तप का त्याग कर अनार्याचरण करता है वह देवताओ द्वारा नरक मे भेज दिया जाता है जैसे महार्घ वस्तु दे कर छिद्र-युक्त मणि को प्राप्त करने वाला बनिया ॥७३॥ वह मूर्ख अपने कर्म के कारण यहा और वहा दोनो लोक मे निन्दित होता है तथा देव-लोक और मनुष्य-लोक से च्युत होकर अनिश्चित काल के लिए नरक में जाता है जैसे दुष्ट गर्दभ वाली गाडी ऊबड-खाबड रास्ते पर ॥७४॥ वह तपनशील नरक को प्राप्त होता है, शक्ति सदृश अयस-निर्मित काटो वाले सिम्बलिवन को। वह पशु योनि को प्राप्त हो, प्रेत-योनि तथा असुर-योनि से मुक्त नही होता ॥७५॥ स्त्रियाँ प्रमादियों की नन्दन वन की दिव्य-क्रीडा-युक्त रति तथा मनुष्य-लोक के चक्रवर्ती चरित का नाश कर देती है और उनकी दुर्गति का कारण होती है ॥७६॥ जो स्त्रियों के प्रति अनासक्त रहते है उन्हें दिव्य-क्रीडा-रति भी दुर्लभ नही और मनुष्य लोक में चक्रवर्ती राज्य भी दुर्लभ नही तथा स्वर्णमय-विमानों में रहने वाली अप्सरायें भी दुर्लभ नही ॥७७॥ जो स्त्रियो के प्रति अनासक्त रहते है उन्हे काम-धातु के अतिक्रमण से प्राप्त होने वाली गति तथा रूप-धातु का भाव भी दुर्लभ नही और वीतरागो का उत्पत्ति स्थान शुद्धावास लोक भी दुर्लभ नही ॥७८॥ जो स्त्रियो के प्रति अनासक्त रहते है उन पवित्र वैरागियो को सब दुःखो का अन्त-स्वरूप, शिव-स्वरूप, अविनाश-स्वरूप, स्थिर-स्वरूप, असस्कृत निर्वाण भी दुर्लभ नहीं ॥७९॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने अमृत महानिर्वाण तक धर्मोपदेश ले जा कर समाप्त किया। हिमालय मे किन्नर-महासर्प आदि ने तथा आकाश-स्थित देवताओं ने 'ओह ! बुद्ध लीला का कथन' कह साधुकार दिया। गृद्धराज आनन्द, देव-ब्राह्मण

नारद, पूर्ण-मुख तथा पुष्प-कोकिल अपनी अपनी परिषद् ले यथा स्थान गये। बोधिसत्व भी अपनी जगह चला गया। अन्य (जन) बीच बीच मे आकर बोधिसत्व के पास उपदेश ग्रहण कर, तदनुसार चल, स्वर्ग-परायण हुए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाते हुए अन्तिम गाथा कही—

**कुणालोहं तदा आसिं, उदायी फुस्सकोकिलो**
**आनन्दो गिज्झराजासि, सारिपुत्तो च नारदो,**
**एवं धारेथ जातकं ॥८०॥**

[उस समय मैं कुणाल था, उदायी पुष्य-कोकिल था, आनन्द गृध्रराजा था तथा सारिपुत्र नारद था—उसी प्रकार जातक को ग्रहण करना चाहिए ॥८०॥]

वे भिक्षु जाते समय शास्ता के प्रताप से गये, आतेसमय अपने अपने प्रताप से ही आये। शास्ता ने महावन मे उन्ह योग-विधि बताई। वे उसी दिन अर्हत्व को प्राप्त हुए। देवताओ का बडा जोड़-मेला हुआ। तब बोधिसत्व ने महासमय सुत्त का उपदेश दिया।

# ५३७. महासुतसोम जातक

"कस्मा तुवं....." यह शास्ता ने जेतवन मे विहार करते समय अंगुलिमाल स्थविर के बारे मे कही।

## क. वर्तमान कथा

उसका जन्म तथा प्रव्रज्या अगुलिमाल सूत्र के वर्णन-क्रम के अनुसार जाननी चाहिये। उसने सत्य-क्रिया-बल से मूढ-गर्भा स्त्री को चगा किया। उसके बाद से

उसे भिक्षा अत्यन्त सुलभ हो गई। वह एकान्तवास करने लगा और आगे चलकर अर्हत्व लाभ कर अस्सी महास्थविरो मे से एक प्रसिद्ध स्थविर हुआ। उस समय धर्मसभा में बातचीत चली, 'आयुष्मानो ! ओह ! भगवान् ने वैसे रौद्र, रक्त-पाणी, महान् चोर अंगुलिमाल का बिना डण्ड से, बिना शस्त्र से दमन कर, उसे निर्विष बना, बडा दुष्कर कर्म किया। ओह ! बुद्धो की दुष्कर-कारिता !" शास्ता ने गन्धकुटी मे बैठे ही बैठे दिव्य-श्रोत से बात चीत सुनी तो सोचा, "आज मेरा जाना बहुत उपकारी होगा। महान् धर्म-देशना होगी।" यह समझ वे अनूपम बुद्ध-लीला से धर्म सभा मे पहुचे और बिछे आसन पर विराजमान हो बोले, "भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बात चीत कर रहे थे ?" "अमुक बात चीत।" "भिक्षुओ, इस समय यदि मैने परमाभिसम्बोधि-प्राप्त अवस्था होने पर इसका दमन किया तो इसमे कुछ आश्चर्य नही। मैने पूर्व-चर्य्या के समय प्रदेश-ज्ञान प्राप्त रहने पर भी इसका दमन किया" कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

## ख. अतीत कथा

पूर्व समय मे कुरु राष्ट्र मे इन्द्र-प्रस्थ नगर मे कोरव्य नामक राजा धर्मानुसार राज्य करता था। बोधिसत्व उसकी पटरानी की कोख से पैदा हुआ। श्रुत-धन होने से वह सुतसोम नाम से प्रसिद्ध हुआ। बडे होने पर राजा ने उसे प्रसिद्ध आचार्य्य के पास शिल्प सीखने के लिये तक्षशिला भेजा। वह आचार्य्य-भाग लेकर, निकलकर मार्गारूढ हुआ।

वाराणसी मे काशी नरेश का पुत्र ब्रह्मदत्त कुमार भी उसी प्रकार कहा जाकर पिता द्वारा भेजा गया। वह भी निकल कर उसी मार्ग पर चला। सुतसोम मार्ग चलकर नगर-द्वार की शाला मे फट्टे पर विश्राम करने के लिये बैठा। ब्रह्मदत्त कुमार भी जाकर उसके साथ उसी फट्टे पर बैठा। सुतसोम ने उसका स्वागत करते हुए पूछा, "मित्र ! रास्ते मे थक गये हो, कहाँ से आये हो ?"

"वाराणसी से।"

"किसका पुत्र है ?"

"ब्रह्मदत्त का।"

"क्या नाम है?"

"ब्रह्मदत्त कुमार।"

"किस उद्देश्य से आया है?"

उसने उत्तर दिया 'शिल्प सीखने के लिये', और फिर उस दूसरे मार्ग चलने से थके हुए को भी उसने उसी प्रकार पूछा। उसने भी सभी कुछ बता दिया। वे परस्पर मित्र बन गये। उन्होने तै किया कि हम क्षत्रिय है। एक ही आचार्य्य के पास शिल्प सीखने चलें। नगर मे प्रविष्ट हो, आचार्य्य-कुल पहुच, आचार्य्य को अभिवादन कर, अपनी जाति प्रकट कर उन्होने शिल्प सीखने के लिये आने की बात कही। उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। उन्होने 'आचार्य्य-भाग' देकर शिल्प सीखना आरम्भ किया। न केवल वे ही, जम्बुद्वीप के और भी एक सौ राजपुत्र उसके पास शिल्प सीखते थे। सुतसोम उनमे ज्येष्ठ-शिष्य हो गया। शिल्प का प्रदर्शन करते हुए वह अचिरकाल मे ही पारगत हो गया। वह कही अन्यत्र नही गया। 'मेरा मित्र है' सोच उसने ब्रह्मत्त-कुमार का ही शिष्याचार्य्य बन उसे शिल्प सिखाया। शेष लोगों का भी क्रमश. विद्याध्ययन समाप्त हुआ। उन्होने (आचार्य्य को अपने अपने प्रदेश मे आने का) निमत्रण दिया और प्रणाम करके, सुतसोम के साथ बिदा हुए। सुतसोम ने रास्ते पर खड़े हो उन्हे बिदा देते समय कहा, "तुम अपने अपने पिता को शिल्प दिखा, राज्य पर प्रतिष्ठित होओगे। प्रतिष्ठित होने पर मेरा कहना करना।"

"आचार्य्य! क्या?"

"पक्ष के दिनो मे उपोसथ-व्रती होकर हिसा न करना।"

बोधिसत्व अग-विद्या से परिचित था। उसने 'भविष्य मे वाराणसी-कुमार के कारण महान विपत्ति आयेगी' जान उन्हे इस प्रकार उपदेश दे बिदा किया। उन सबने अपने अपने जनपद मे पहुच, पिताओ को शिल्प दिखा, राज्य पर प्रतिष्ठित होने तथा उसके उपदेशानुसार चलने की बात सूचित करने के लिये भेट सहित पत्र भेजे। बोधिसत्व ने यह समाचार जान "अप्रमाद पूर्वक रहो" कह पत्र भेजे।

उनमे से वाराणसी-नरेश मास के बिना भोजन न करता था। उसके निमित्त उपोसथ दिन के लिये भी मास लेकर रखा जाता था। एक दिन इस प्रकार रखा हुआ मांस रसोइये की असावधानी से राज-भवन के बढिया जाति के कुत्ते खा गये।

रसोइये को जब मास न दिखाई दिया तो वह कार्षापणो की मुट्ठी लिये मांस खोजता फिरा। तब भी उसे मांस न मिला। वह सोचने लगा, 'यदि बिना मांस का भोजन ले जाता हूँ तो मेरा प्राण नही बचेगा, क्या करूं?' उसने सोचा, 'एक उपाय है।' वह सन्ध्या समय कच्चे-स्मशान मे गया और उसी क्षण मरे पुरुष की जाघ का मांस लाकर, उसे अच्छी तरह पकाकर राजा को दिया। जैसे ही राजा ने उसे जीभ के सिरे पर रखा उसकी जिहवा ने हजार चटखारे लिये, उसका सारा शरीर चैतन्य हो गया। क्यो? पहले भी सेवन किया रहने से। उसने ठीक पिछले जन्म में यक्ष होकर बहुत मनुष्य मास खाया था। इसलिये वह उसका प्रिय था। उसने सोचा, 'यदि मै इसे चुपचाप खा लूगा, तो यह मुझे इस मास का नाम नही बतायेगा।" यह सोच उसने थूक के साथ उसे जमीन पर गिरा दिया। "देव! निर्दोष है, खाये" रसोइया बोला।

"मै इसके निर्दोष होने की बात जानता हूँ, यह किसका मास है?" पूछते हुए उसने और आदमियो को बिदा कर दिया।

"देव! और दिनो जैसा ही मास है।"

"और दिन यह रस नही होता था?"

"देव! आज अच्छी तरह पका है।"

"क्या पहले भी ऐसे ही नही पकाता था?"

उसे चुप देख राजा बोला—"यथार्थ बात कह, नही तो तेरी जान नही बचेगी।" उसने 'अभय' की याचना कर यथार्थ बात कह दी। तब राजा बोला, "हल्ला मत कर, आज से स्वाभाविक पका हुआ मांस तू स्वयं खाकर, मेरे लिये मनुष्य-मास ही पकाया कर।"

"देव! क्या यह दुष्कर कृत्य नही है?"

"डर मत। दुष्कर नही है।"

"रोज रोज कहां पाऊगा।"

"क्या कारागार मे बहुत मनुष्य नही है?"

उस दिन से वह वैसा ही करने लग गया। आगे चलकर कारागार के मनष्य समाप्त हो जाने पर उसने पूछा—"अब क्या करू?"

"रास्ते में हज़ार की थैली फेंको, जो उसे उठाये, उसे 'चोर' बना कर मार डालना।"

उसने वैसा ही किया। आगे चलकर जब हज़ार की थैली उठाने वाला भी कोई न दिखाई दिया तो उसने पूछा—

"अब क्या करूं?"

"समय-सूचक (?) भेरी वादन के समय नगर मे गड़बड़ी होती है। तू घरों के बीच मे अथवा चौरास्ते मे खड़ा होकर मनुष्य को मार कर मास ला।"

उसके बाद से वह स्थूल मास ले जाता। जहाँ तहाँ लाशे दिखाई देने लगी। मनुष्यों का रोने-पीटने का शब्द सुनाई देने लगा, "मेरी माता नही दिखाई देती, पिता नही दिखाई देता, बहन नही दिखाई देती।" भयभीत नागरिक खोज करने लगे, "इन मनुष्यो को सिंह खाता है, व्याघ्र खाता है अथवा कोई यक्ष खाता है"? फिर जख्मो को देखकर उन्होंने अनुमान लगाया कि मालूम होता है कि कोई मनुष्य खाता है। जनता ने राजाङ्गण मे खड़े होकर हल्ला मचाया। राजा बोला—

"तात। क्या बात है?"

"देव! इस नगर मे मनुष्यो को खाने वाला चोर है, उसे पकड़वायें।"

"मैं कैसे जानूगा? क्या मैं नगर की रखवाली करता घूमता हूँ?"

नागरिको ने सोचा, 'राजा को नगर की परवाह नही, कालहत्थी सेनापति से कहेंगे।' उन्होंने जाकर उसे सब हाल कहा और चोर के खोजने की प्रार्थना की। 'सप्ताह भर प्रतीक्षा करो, खोज करके चोर को दिखाऊगा' कह लोगो को विदा किया और आदमियो को आज्ञा दी, "तात! नगर मे आदम-खोर चोर है। तुम जहाँ-तहाँ छिप कर उसे पकड़ो।" उन्होने 'अच्छा' कहा और उसके बाद से नगर की खोज रखने लगे। रसोइये ने भी एक घर की दरार मे छिपे रहकर एक स्त्री को मार और उसका घना घना मास ले एक टोकरी भरनी आरम्भ की। तब उन आदमियो ने उसे पकड़ा, पीटा और उसके हाथ पीछे बाँधकर चिल्लाना शुरू किया, "आदम-खोर चोर को पकड़ लिया।" जनता ने घेर लिया। उसकी अच्छी तरह मरम्मत कर, मास की टोकरी गर्दन से बाध उसे ले जाकर सेनापति के सामने पेश किया। सेनापति सोचने लगा, "क्या यह स्वय यह मास खाता है, अथवा दूसरे

मांस के साथ मिलाकर बेचता है, अथवा किसी दूसरे के कहने से मारता है ?" उसने यह बात पूछते हुए पहली गाथा कही—

**कस्मा तुवं रसका एदिसानि**
**करोसि कम्मानि सुदारुणानि,**
**हनासि इत्थी पुरिसे च मूळहो**
**मंसस्स हेतु अदु धनस्स कारणा ॥१॥**

[हे रसोइये ! तू इस प्रकार के क्रूर कर्म क्यो करता है ? हे मूढ पुरुष ! तू जो स्त्री तथा पुरुषो की हत्या करता है वह मास के लिये अथवा धन के लिये ॥१॥]

**न अत्तहेतु न धनस्स कारणा**
**न पुत्तदारस्स सहायञातिनं**
**भत्ता च मे भगवा भूमिपालो**
**सो खादति मंसं भदन्ते एदिसं ॥२॥**

[न अपने लिये, न धन के लिये, न पुत्र-दारा के लिये और न अन्य सम्बन्धियो के लिये। भगवान् भूमिपाल मेरे मालिक है। भदन्तो ! वह इस प्रकार का मास खाते है ॥२॥]

सेनापति— **सचे तुवं भत्तुरत्थे-पयुत्तो**
**करोसि कम्मानि सुदारुणानि**
**पातो व अन्तेपुरं पापुणित्वा**
**लपेय्यासि मे राजिनो सम्मुखे तं ॥३॥**

[यदि तू स्वामी के लिये यह दारुण कर्म करता है तो क्या कल प्रात काल रनिवास मे राजा के सम्मुख यह बात कह सकेगा ? ॥३॥]

रसोइया— **तथा करिस्सामि अहं भदन्ते**
**यथा तुवं भाससि कालहत्थी**
**पातो व अन्तेपुरं पापुणित्वा**
**वक्खामि ते राजिनो सम्मुखे तं ॥४॥**

[भदन्त ! मै वैसा ही करूगा, जैसा हे कालहत्थी ! तू मुझे कहता है। मै

प्रातःकाल रनिवास मे जाकर राजा के सामने तुझे यह बात कह दूगा ॥४॥]

सेनापति ने उसे दृढ-बन्धन मे ही सुला, रात के बीतने पर प्रातःकाल मात्रियों के साथ मन्त्रणा की। उन सबके एक मत हो जाने पर, सभी जगह पहरा रख, नागरिको को अपने हाथ मे कर और रसोइये की गर्दन मे भी मास की टोकरी बांध, वह राज-भवन की ओर बढा। सारे नगर मे हल्ला मच गया। रात में कल भोजन किया था। शाम को उसे भोजन नही मिला। 'अब आता होगा, अब आता होगा' करके उसने रसोइये की प्रतीक्षा करते हुए बैठे बैठे ही सारी रात बिता दी। 'आज भी रसोइया नही आया, नागरिको का बडा शोर सुनाई देता है, यह क्या है ?' सोचते हुए उसने झरोखे मे उसे उस प्रकार लाये जाते हुए देखा। राजा समझ गया कि बात खुल गई। वह धैर्य धारण कर पलग पर बैठा। कालहत्थी ने भी उसके पास पहुच निवेदन किया। उसने भी उसे उत्तर दिया।

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

**ततो रत्या विवसने सुरियस्स उग्गमनं पति**
**कालो रसकं आदाय राजानं उपसंकमि ॥५॥**

[तब रात के बीतने पर और सूर्य्य के उदय होने पर काल (हत्थी) रसोइये को लेकर राजा के पास पहुचा ॥५॥]

कालहत्थी— **सच्चं किर महाराज रसको पेसितो तया**
**हनाति इत्थी पुरिसे तुवं मंसानि खादसि ॥६॥**

[महाराज ! क्या सचमुच तुम रसोइये को भेज कर स्त्री पुरुषों को मरवाते हो और उनका मास खाते हो ? ॥६॥]

राजा— **एवमेवं तथा काळ रसको पेसितो मया**
**मम अत्थं करोन्तस्स किमेतं परिभाससि ॥७॥**

[हे कालहत्थी ! हाँ मैने ही रसोइये को भेजा। मेरा काम करने पर उसे ऐसे क्यो दोष देता है ? ॥७॥]

यह सुन सेनापति ने सोचा, "यह अपने ही मुंह से स्वीकार करता है। ओह ! इसका दुस्साहस ! इतने समय तक यह मनुष्यों को खाता रहा। इसे रोकता हूँ।" वह बोला—

"महाराज ! ऐसा न करे। मनुष्य-मास न खाये।"

"काल हत्थी ! क्या कहता है ? मै इससे विरत नही रह सकता।"

"महाराज ! यदि विरत नही होगे तो अपना और राष्ट्र का नाश करेगे।"

"इस प्रकार नष्ट होने पर भी मै विरत नही ही रह सकता।" तब सेनापति ने उसे समझाने के लिये कथा कही—

पूर्वकाल मे महा समुद्र मे छः बडे मच्छ थे। उनमे से आनन्द, तिमन्द तथा अज्झोहार ये पाँच पाँच सौ योजन के। तीतिमति, मिगल और तिमिल पिङ्गल हजार हजार योजन के। वे सभी पत्थर की काई खाने वाले थे। उनमे से आनन्द समुद्र के एक तरफ रहता था, बहुत से मच्छ उसके दर्शन के लिये जाते थे। एक दिन उन सबका विचार हुआ कि "सारे द्विपद चतुष्पदो का राजा दिखाई देता है। हमारा राजा नही है। हम भी इसे राजा बनायेगे।" सभी ने एकमत हो आनन्द को राजा बनाया। इसके बाद से मच्छ साय प्रात.काल आनन्द की सेवा मे जाने लगे। एक दिन एक पर्वत की काई खाते हुए बिना जाने काई ही समझ कर आनन्द ने एक मछली खा ली। उसे वह मास रुचिकर लगा। उसने बाहर निकलकर देखा, यह अत्यन्त मधुर क्या है ?' पता लगा—मास-खण्ड। यह सोच कि इतने समय तक अपरिचित रहने के कारण नही खाया वह विचारने लगा, "शाम और सुबह को जब मच्छ सेवा मे आकर वापिस लौटेगे तो एक या दो मच्छ खाया करूगा। प्रकट रूप से खाने से कोई एक भी मेरे पास न आयेगा। सभी भाग जायेगे।" इसलिये वह छिपकर जो जो पीछे रहता उसे उसे मार कर खाने लगा। मच्छ कम होने लगे तो सोचने लगे, 'जाति के लिये भय कहाँ से पैदा हुआ है ?" तब एक पण्डित मच्छ के मन मे हुआ कि 'मुझे आनन्द की क्रिया अच्छी नही लगती। परीक्षा करूगा।' जिस समय मच्छ आनन्द की सेवा मे गये वह आनन्द के कान के पीछे छिप कर खडा हो गया। आनन्द ने मच्छो को बिदा कर पीछे रहने वालो को खाया। उस मच्छ ने उन्हे देख दूसरो को कह दिया। वे सभी डर के मारे भाग गये। उसके बाद से मच्छ-रस की चाट लग जाने के कारण आनन्द और कुछ न खाता। वह भूख से कष्ट पाता हुआ सोचने लगा, "वे सब कहां गये ?" उन मच्छो को खोजते हुए उसने एक पर्वत देख कर सोचा, "मालूम होता है मेरे भय के कारण वे इस पर्वत

के आश्रय रहते है। मै पर्वत की खोज करके पता लगाऊंगा।" उसने सिर और पूछ के सिरो को दोनो ओर से मिलाकर पर्वत को घेर लिया। उसने सोचा, "यदि यहा होगे तो भाग जायेगे।" पर्वत को घेरने पर उसने अपनी ही पूछ को देखकर सोचा, "यह मच्छ मुझे ठग कर पर्वत की ओट मे रहता है।" उसने क्रुद्ध हो पचास योजन पूछ को धर दबाया और उसे कोई दूसरा मच्छ समझ मुर मुर करके खा डाला। बडी तीव्र वेदना हुई। रक्त की गन्ध से आकर्षित हुए मच्छो ने उसे नोच नोच कर खाना आरम्भ किया और खाते खाते सिर तक आ पहुचे। महाशरीरी होने से कही रुक नही सके। वही उसका प्राणान्त हो गया। पर्वताकार सा हाड्डयो का ढेर हो गया। आकाश चारिनी तपोम्बनी परिव्राजिकाओ ने मनुष्यो को कहा। जम्बुद्वीप भर के मनुष्य जान गये। इस कथा को लाकर प्रकट करते हुए कालहत्थी ने कहा—

**आनन्दो सब्बमच्छानं खादित्वा रसगिद्धिमा**
**परिक्खीणाय परिसाय अत्तानं खादिया मतो ॥८॥**

**एवं पमत्तो रसगारवे रतो**
**बालो यदी आयतिं नावबुज्झति**
**विधम्मपुत्ते चजि ञातके च**
**परिवत्तिय अत्तानं एव खादति ॥९॥**

**इदं ते सुत्वान विहेतु छन्दो**
**मा भक्खसी राज मनुस्स मंसं**
**मा त्वं इमं केवलं वारिजो व**
**दिपदाधिप सुञ्ञं अकासि रट्ठं ॥१०॥**

[रस-तृष्णा के वशीभूत हो आनन्द ने सभी मच्छो को खाने के बाद अपने को खाना आरम्भ किया और इस प्रकार मरण को प्राप्त हुआ ॥८॥ इस प्रकार रस-तृष्णा के वशीभूत हुआ मूर्ख आदमी यदि भावी भय को नही देखता तो वह अपने पुत्रो, पुत्रियो तथा रिश्तेदारो का नाशकर बाद मे अपने को ही खाता है ॥९॥ हे राजन! यह बात सुन कर (मनुष्य-मास की) इच्छा को छोडे। मनुष्य-मास

न खायें। हे राजन! आप उस आनन्द मच्छ की तरह सारे राष्ट्र को शून्य न बनायें ॥१०॥]

यह सुन राजा 'कालहत्थी! तू ही उपमा देना नही जानता है, मैं भी जानता हूँ" कह, मनुष्य-मास के लोभ के कारण पुरानी-कथा लाकर दिखाता हुआ बोला—

**सुजातो नाम नामेन तस्स अत्रजोरसो**
**जम्बुपेसिं अलद्धान मतो सो तस्स संखये ॥११॥**
**एवमेव अहं काळ भुत्ता भक्खं रसुत्तमं**
**अलद्धा मानुसं मंसं मञ्ञे हस्सामि जीवितं ॥१२॥**

[सुजात नाम का कुटुम्बी था। उसका पुत्र जम्बु-पेशी न पाकर उसकी लालसा मे ही मर गया ॥११॥ उसी प्रकार हे काल-हत्थी! मैंने भी उत्तम-रस खाया है। मुझे लगता है कि यदि मुझे मनुष्य-मास नही मिलेगा तो मै प्राण छोड दूगा ॥१२॥]

तब कालहत्थी ने 'यह राजा अत्यन्त रस-लोलुप है, दूसरे उदाहरण दूगा', सोच, कहा, "महाराज, रुके।"

"नही रुक सकता हूँ।"

"यदि नही रुकेगा तो रिश्तेदारो तथा राज्य श्री० से विहीन हो जायगा",—

पूर्व समय मे भी यही वाराणसी मे पंचशीलो की रक्षा करने वाला श्रोत्रीय-कुल था। उसके कुल मे एक पुत्र था। वह माता-पिता का प्रिय, मन को अच्छा लगने वाला, पण्डित तथा तीनों वेदो मे पारगत था। वह सम-व्यसक तरुणो के साथ मण्डली बना घूमता था। शेष मण्डली मत्स्य-मास खाकर सुरा पीने वाली थी। वह माणवक न मास आदि खाता था और न शराब ही पीता था। उन्होने सोचा, "यह सुरा न पीने के कारण हमे 'पैसा' नही देता है। इसे चतुराई से सुरा पिलायेगे।" उन्होने इकट्ठे होकर "मित्र! उत्सव मनायेगे।"

"तुम सुरा पीते हो, मैं नही पीयूगा। तुम ही जाओ।"

"मित्र! तेरे पीने के लिये दूध ले चलेगे।"

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। धूर्तों ने उद्यान पहुंच पद्मनी के पत्तो मे तेज सुरा बाँध कर रखी। तब सुरा-पान के समय माणवक के लिये दूध लाया गया।

एक धूर्त बोला, 'पुष्कर मधु ले आओ।" लाये जाने पर उसने पद्मनी-पत्र के दोने मे नीचे छेद करके उसे मुँह पर रख खीच कर पिया। इस प्रकार दूसरों ने भी मगवाकर पी। तरुण ने पूछा, "यह क्या है ?" और उसने "पुष्कर मधु" समझ सुरा पान किया। उसे अगारों पर पका हुआ मास दिया गया। वह भी खाया। इस प्रकार उसके बार बार पीकर मत्त हो जाने के समय, वे बोले, "यह पुष्कर-मधु नही है, यह सुरा है।" वह बोला, "इतने समय तक इस मधुर रस से अपरिचित रहा। 'सुरा' लाओ।" उसे फिर दी गई। उसकी प्यास और बढ़ गई। जब उसने फिर मागी तो, तो वे बोले, "समाप्त हो गई।" "तो मगाओ", कह कर उसने हाथ की अगूठी निकाल कर दे दी। इस प्रकार सारे दिन उनके साथ पीते रहकर वह मत्त हुआ हुआ, लाल लाल आँखे लिये, काँपता हुआ, बकवास करता हुआ घर पहुचा और जाकर पड रहा। पिता ने जब यह जाना कि उसने सुरा पी थी, तो सुरा का नशा उतरने पर कहा, "तात ! श्रोत्रीय कुल मे जन्म लेकर तूने सुरा पी, ठीक नही किया। फिर ऐसा न करना।"

"तात ! मेरा अपराध क्या है ?"

"तूने सुरा पी।"

"तात ! क्या कहते है। मैंने इससे पूर्व ऐसे मधुर-रस का पान ही नही किया।"

ब्राह्मण ने बार बार समझाया। वह भी बोला, "नही छोड सकता।" ब्राह्मण ने 'ऐसा होने पर तो वश उजड जायगा और धन का नाश हो जायगा' सोच गाथा कही—

**माणवो अभिरूपोसि, कुले जातोसि सोत्थिये,**
**न त्वं अरहसि तात अभक्खं भक्खयेतवे ॥१३॥**

[हे माणवक ! तेरा सुन्दर वर्ण है। तू श्रोत्रीय कुल मे पैदा हुआ है। हे तात ! तेरे लिये अभक्षय का ग्रहण करना उचित नही है ॥१३॥]

इतना कह कर उसने और भी कहा—"तात ! रुक। यदि नही रुकेगा तो या तो मै घर से निकल जाऊगा, नही तो तुझे देश से निकलवा दूंगा।" तरुण ने "ऐसा होने पर भी मै सुरा छोड नही सकता" कह दो गाथाये कही —

**रसानं अञ्ञतरं एतं यस्मा मं त्वं निवारये,**
**सोहं तत्थ गमिस्सामि यत्थ लच्छामि एदिसं ॥१४॥**
**सो वाहं निप्पतिस्सामि, न ते वच्छामि सन्तिके**
**यस्स मे दस्सनेन त्वं नाभिनन्दसि ब्राह्मण ॥१५॥**

[जिससे तू मुझे वंचित रखना चाहता है, वह रस-विशेष है। मैं वहीं जाऊंगा जहाँ वैसा रस मिलेगा। हे ब्राह्मण। तुझे मेरा दर्शन अच्छा नहीं लगता। मैं चला जाऊंगा, तेरे पास नहीं बसूंगा ॥१४-१५॥]

यह कह उसने और भी कहा, "जो तुझे अच्छा लगे कर, मैं सुरा-पान नहीं छोड़ूंगा।" तब ब्राह्मण ने "यदि तू हमें छोड़ता है, तो हम भी तुझे छोड़ते हैं" कह गाथा कही—

**अद्धा अञ्ञे पि दायादे पुत्ते लच्छाम माणव,**
**त्वञ्च जम्म विनस्ससु यत्थ पत्तं न [तं] सुणोम ॥१६॥**

[हे तरुण! हम किसी अन्य को गोद लेकर पुत्र बना लेंगे। हे दुष्ट तू वहाँ जाकर रह, जहाँ से हमें फिर तेरा नाम भी सुनने को न मिले ॥१६॥]

वह उसे न्यायालय में ले गया और उसके "अपुत्र" होने की घोषणा कर उसे (देश से) निकलवा दिया। वह आगे चलकर निराधार हो, दरिद्र हो, चीथड़े पहन, हाथ में ठूठा ले भीख मांगता हुआ, एक दीवार के पास पड़ा पड़ा मर गया। यह बात लाकर कालहत्थी ने राजा को दिखाते हुए, "महाराज! यदि तू हमारा कहना नहीं मानेगा तो तुझे देश-निकाला दे देंगे" कह गाथा कही—

**एवमेव तुवं राज दिपदिन्द सुणोहि मे**
**पब्बाजेस्सन्ति तं रट्ठा सोण्डमाणवकं यथा ॥१७॥**

[हे मनुजेन्द्र! हे राजन! मेरी बात सुन। जिस प्रकार सुरापान करने वाले तरुण को देश-निकाला दे दिया उसी प्रकार तुझे भी राष्ट्र से निकाल देंगे ॥१७॥]

इस प्रकार कालहत्थी के उपमा देने पर भी राजा ने अपनी असमर्थता प्रकट करने के लिये और भी उदाहरण दिया—

**सुजातो नाम नामेन भवितत्तान सावको**
**अच्छरं कामयन्तो व न सो भुञ्जि न सो पिवि ॥१८॥**
**कुसग्गे उदकं आदाय समुद्दे उदकं मिने**
**एवं मानुसका कामा दिब्बकामान सन्तिके ॥१९॥**
**एवमेव अहं काळ भुत्वा भक्खं रसुत्तमं**
**अलद्धा मानुसं मंसं मञ्ञे हेस्सामि जीवितं ॥२०॥**

[योगियो के शिष्य सुजात ने जब अप्सरा की इच्छा की तो न उसने खाया और न पिया ॥१८॥ कुशाग्र पर पानी की बूद ले लेकर जैसे कोई समुद्र को मापे, उसी प्रकार दिव्य काम भोगो की तुलना मे मानुषी काम-भोग है ॥१९॥ हे काळ-हत्थी ! इस प्रकार मैंने उत्तम रस का अनुभव किया है। यदि मुझे मनुष्य-मास नही मिलता तो मैं प्राण छोड दूगा ॥२०॥ ]

यह सुन काल-हत्थी ने 'यह राजा अत्यन्त रस-लोलुप है, इसे समझा दूगा' सोच 'अपनी सन्तान का मास खा आकाशचारी स्वर्ण हस भी नष्ट हो गये' प्रगट करने के लिये दो गाथाये कही—

**यथापि ते धतरट्ठा हंसा वेहासयंगमा**
**अवुत्ति परिभोगेन सब्बे अब्भत्थतं गता ॥२१॥**
**एवमेव तुवं राज दिपदिन्द सुणोहि मे**
**अभक्खं राज भक्खेसि तस्मा पब्बाजयन्ति तं ॥२२॥**

[जिस प्रकार वे आकाशगामी धृतराष्ट्र हस अपनी सतति को खा जाने के कारण सारे के सारे विनाश को प्राप्त हुए, इसी प्रकार हे मनुजेन्द्र ! हे राजन ! तू मेरी बात सुन। तू अभक्ष्य खाता है। इसलिये तुझे देश से निकाल देगे ॥२१॥]

राजा और भी उपमा देना चाहता था। लेकिन नागरिक उठ खड़े हुए। उन्होने उसे मुह खोलने ही नही दिया। बोले—"स्वामी सेनापति ! क्या करते है ? क्या मनुष्य-भक्षक चोर को लिये फिरते है ? यदि नही बाज आता तो इसे देश-निकाला दे।" राजा बहुतो की आवाज सुनकर डर के मारे कुछ न बोल सका। सेनापति ने उसे फिर भी पूछा—"क्या रुक सकेगे ?"

"नही सकता।"

फिर उसने सारे रनिवास तथा बेटा-बेटी को सभी अलंकारों से सजा-धजाकर पास खडा किया और कहा—"महाराज! इन सम्बन्धियों की ओर, मन्त्रियों की ओर और राज्यश्री की ओर देखे। विनाश को प्राप्त न हों। मनुष्य-मांस से विरत हो।"

"ये सब मुझे मनुष्य-मास से वढकर प्रिय नही है।"

"तो महाराज! इस नगर और राष्ट्र से निकले।"

"कालहत्थी! मुझे राज्य की अपेक्षा नही है। निकलता हूँ। हाँ, एक खड्ग और एक रसोइया दे दो।"

उसे तलवार, मनुष्य-मास पकाने का बरतन और टोकरी लिये रसोइया देकर, राष्ट्र से निकाल बाहर किया। वह रसोइये को ले, नगर से निकला और आरण्य मे प्रविष्ट हो निग्रोध के एक पेड के नीचे निवास-स्थान बना रहने लगा। वहाँ रहते समय जगल के रास्ते पर खडा हो, मनुष्यो को मार, लाकर रसोइये को देता। वह उसे मास पकाकर देता। इस प्रकार दोनो दिन काटते। "मै मनुष्य-भक्षक चोर हूँ" कह कर जब वह पीछा करता तो कोई भी होश सभाले खडा न रह सकता। सभी जमीन पर गिर पडते। उनमे से वह जिसे चाहता उसे सीधा अथवा उल्टा लटकाये लाकर रसोइये को देता। एक दिन उसे आरण्य मे कोई आदमी नही मिला। लोट आने पर उसने पूछा—'देव। क्या हुआ?"

"चूल्हे पर बरतन रख।"

"देव! मास कहा है?"

"मै मास लाऊगा।"

रसोइया समझ गया, आज जान नही बचेगी। उसने कापते हुए, चूल्हे में आग जलाकर उस पर बरतन रखा। तब उस मनुष्य-भक्षक ने तलवार के प्रहार से उसे मार, उसका मास पकाकर खाया। उसके बाद से वह अकेला रह गया और स्वयं ही पकाकर खाने लगा। 'मनुष्य-भक्षक रास्ता चलतों को मारता है' यह बात सारे जम्बुद्वीप मे फैल गई।

उस समय एक धनी ब्राह्मण पाँच सौ गाड़ियाँ लाद व्योपार करता हुआ पूर्वान्त

से अपरान्त जाता था। उसने सोचा, "मनुष्य-भक्षक चोर राह चलते आदमियो को मारता है। मै धन देकर जंगल को पार करूगा।" उसने अटवी के द्वार पर रहने वाले मनुष्यों को हजार देकर कहा "मुझे जगल पार करा दो।" वे उनके साथ रास्ते पर हो लिया। उसने जाते समय अपने सारे काफले को आगे किया फिर स्वयं नहा-धोकर, लेप कर, सभी अलकारो से अलकृत हो, श्वेत-वृषभ जुते रथ मे बैठ, उन मार्ग-सहायक पुरुषो से घिरा हुआ होकर पीछे पीछे चला। मनुष्य-भक्षक पेड पर चढ कर मनुष्यो को देखने लगा। "इन मनुष्यो को खाने मे क्या रखा है?" सोच उसकी तृष्णा जाती रही। लेकिन जब ब्राह्मण को देखा तो उसे खाने की इच्छा से उसके मुह मे से लार टपकने लगी। जब वह उसके समीप आया तो 'मै मनुष्य-भक्षक चोर हूँ" कह कर, तलवार घुमाते हुए वह इतनी जोर से झपटा, मानो बालू से आँखे भर दी हो। एक भी खडा नही रह सका। सभी पृथ्वी पर पेट के बल लेट गये। उसने रथ मे बैठे हुए ब्राह्मण को पैर से पकडा और सिर नीचा कर पीठ पर लटका लिया और ले चला। ब्राह्मण का सिर उसके टखनो से टकराता जाता था। आदमियो ने "अरे! हमने ब्राह्मण से हजार लिये है। हमारे पुरुषत्व को धिक्कार है। हम उसे पकड सके या न पकड सके, थोडा पीछा तो करें' सोच उसका पीछा किया। मनुष्य-भक्षक ने भी रुककर जब किसी को पीछे आता न देखा तो वह धीरे हो लिया। उस समय एक वीर पुरुष शीघ्रता से उसके पास पहुच गया। उसे देख, उसने एक बाड लाघते समय, खेर के एक ठूठ पर से जाते हुए उसे एडी से उखाड दिया। उसके पैर से खून बहने लगा। उस पुरुष ने उसे देख कहा 'अरे! मैंने इसे बीध दिया। तुम केवल पीछे पीछे चले आओ। मै इसे पकडूगा।' वे उसे दुर्बल जान पीछे लगे। जब उसने जाना कि वे पीछे लगे है, उसने ब्राह्मण को छोड दिया और अपने आप को सुखी किया। मार्ग-सहायको को ब्राह्मण मिल गया, तो वे रुक गये। बोले, "हमे चोर से क्या?" मनुष्य-भक्षक भी अपने न्यग्रोध-वृक्ष के नीचे पहुचा और शाखाओ की ओट मे पड़ रहा। उसने प्रार्थना की, "आर्ये वृक्ष देवते! यदि सप्ताह के भीतर मेरा जख्म ठीक कर सकेगी तो सारे जम्बुद्वीप के एक सौ क्षत्रियों की गरदन के खून से तेरा तना धोकर, (उनकी) आते चारो ओर लिपेट कर, पाँच प्रकार के मधुर-मास से बलि-कर्म करूगा।' खाना पीना न

मिलने से उसका शरीर सूख गया। सप्ताह के भीतर उसका ज़ख्म भी अच्छा हो गया। उसने समझा देव-कृपा से ही वह स्वस्थ हुआ। कुछ दिन मनुष्य-मांस खाने से जब उसके शरीर में बल आ गया तो वह सोचने लगा। "देवता ने मुझ पर बहुत उपकार किया है। मैं अपने आपको उसकी मिन्नत से मुक्त करूं।" वह तलवार लेकर राजाओं को लाने के उद्देश्य से पेड़ के नीचे से चल दिया।

पूर्व जन्म में जब वह यक्ष था, उस समय साथ साथ मनुष्य-मांस खाने वाले एक साथी यक्ष ने उसे देख, पहचान लिया, "यह मेरा पूर्व जन्म का साथी है।" उसने पूछा—

"मित्र! मुझे पहचानता है!"

"नहीं पहचानता हूँ।"

उसने उसे पूर्व-जन्म की बातें बताईं। उसने पहचान कर कुशल-क्षेम पूछा। "कहाँ उत्पन्न हुआ है?" पूछने पर उसने जन्म ग्रहण करने का स्थान, राष्ट्र से निकाले जाने की कथा, वर्तमान निवास स्थान, ठूंठ से ज़ख्मी हो जाने की बात, और देवता की मिन्नत से मुक्त होने के लिये जाने की सब बात कहकर आग्रह किया—"मित्र! तुझे भी इस कार्य्य को पूरा कराना होगा। आ दोनों चलें।"

"मित्र! मैं चलता। किन्तु, मुझे एक कार्य्य है। हाँ, मैं अर्धपदलक्षण मन्त्र जानता हूँ। उससे बल, गति तथा तेज (?) की प्राप्ति होती है। वह मन्त्र ले।" "उसने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। यक्ष भी उसे वह मन्त्र दे चला गया। मनुष्य-भक्षक उस मन्त्र को धारण करने वाला होने से वायु के सदृश वेग वाला तथा अत्यन्त बलशाली हो गया। उसने सप्ताह के अन्दर ही उद्यान आदि जाने वाले एक सौ राजाओं को देख, वायु-वेग से झपटकर, नाम सुना, चिल्लाते-दहाड़ते उन्हें भयभीत कर, पैरों से पकड़, सिर नीचा कर, एड़ी से सिर टकराते हुए, वायु-वेग से ला, हाथ की हथेलियों में छेद कर, रस्सी से न्यग्रोध वृक्ष पर लटका दिया। पाँव की अगली उंगलियां पृथ्वी को छूती थीं। वे हवा के लगने से कुम्हलाई हुई करण्ड माला के समान लटकने लगीं। वह 'मुत-सोम' को 'सहायक-आचार्य्य' मान और 'सारा जम्बुद्वीप शून्य न हो जाय' सोच नहीं लाया। "बलि-कर्म करूंगा" सोच, आग जला वह बैठ कर लकड़ी छीलने लगा। वृक्ष-देवता ने देखकर सोचा, यह मुझे बलि

देने जा रहा है। मैंने इसका जख्म भी अच्छा नही किया है। अब महाविनाश करेगा। क्या करना चाहिए?" फिर यह सोच कि 'मैं इसे नही रोक सकता,' वह चतुर्महाराजिक देवताओ के पास गया और कहा, "इस रोकें।" उनके हम असमर्थ है, कहने पर वह शक्र के पास पहुँचा ओर वह बात बता कर कहा, 'इसे रोके।' शक्र बोला, मैं नही रोक सकता। किन्तु रोक सकने वाले का पता बता सकता हूँ।"

"कोन है!"

"देवताओ सहित लोक मे और कोई नही है। कुरु राष्ट्र मे इन्द्रप्रस्थ नगर मे सुतसोम नामका कोख्य राजपुत्र है। वह इसका घमड चूर करके दमन करेगा। और राजाओ को प्राण दान देगा। इसे मनुष्य-मास से रोकेगा। सारे जम्बुद्वीप मे अमृत का अभिसिञ्चन करेगा। यदि राजाओ को प्राण दान देना चाहता है, तो उसे कह कि सुतसोम को लाकर बलि-कर्म करे।"

उसने 'अच्छा' कहा और जल्दी से आकर प्रव्रजित-वेष मे उसके थोडी दूर चला। पैरो की आहट से उसने समझा कि कोई राजा भागा होगा। उसे देख सोचा, 'प्रव्रजित भी क्षत्रिय ही होते है। इसे लेकर पूरे एक सौ एक करके बलि-कर्म करूगा।' उसने हाथ मे तलवार लेकर उसका पीछा किया। तीन योजन तक पीछा करते रहने पर भी उसे नही पा सका। शरीर से पसीना छूट गया। वह सोचने लगा, 'पहले मै हाथी को भी, घोडे को भी, रथ को भी, दौडते हुओं को भी पकड लेता था। आज इस प्रव्रजित को स्वाभाविक गति से जाते हुए भी, पूरी सामार्थ्य से भी दौड कर नही पकड सकता। क्या कारण है?' फिर सोचा प्रव्रजित कहना मानने वाले होते है, मैं इसे 'ठहर' कहूगा, और ठहरने पर पकडूगा। यह सोच बोला, "श्रमण ठहर।"

उत्तर मिला—"मैं तो रुका हूं। तू रुकने का प्रयत्न कर।"

उसने 'प्रव्रजित तो प्राण-रक्षा के लिये भी झूठ नही बोलते, तू झूठ बोलता है' कह गाथा कही—

**तिट्ठाहीति मया वुत्तो सो त्वं गच्छसि यम्मुखो,**
**अठितो ठितोम्हीति लपसि**

**ब्रह्मचारि इदं ते समण अयुत्तं,**
**असिं च मञ्ञसि कंकपत्तं ॥२३॥**

[मेरे 'ठहर' कहने पर तू आगे आगे जाता है। बिना हरे ही कहता है कि मैं ठहरा हूँ। हे ब्रह्मचारी! हे श्रमण! तेरे लिये यह अनुचित है। क्या तू मेरी तलवार को सारस का पर मानता है? ।। २३ ।।]

तब देवता ने दो गाथाये कही—

**ठितोहं अस्मि सद्धम्मेसु**
**न नामगोत्तं परिवत्तयामि,**
**चोरं च लोके अठितं वदन्ति**
**अपायिकं नेरयिकं इतो चुतं ॥२४॥**

**सचे पि सहसि राज सुतं गण्हाहि खत्तिय,**
**तेन यञ्ञं यजित्वान एवं सग्गं गमिस्ससि ॥२५॥**

[हे राजन्! मैं सद्धर्म मे 'स्थित' हूँ। मैं (तेरी तरह) अपने नाम गोत्र को कलकित नही करता हूँ। लोक मे यहां से च्यूत होकर नरक मे जाने वाले चोरो को ही 'अस्थित' कहा जाता है। हे राजन्! यदि सामर्थ्य है तो सुत-सोम क्षत्रिय को पकड कर ला और उससे यज्ञ कर। ऐसा करने से स्वर्ग जायगा ।। २५ ।।]

ऐसा कहकर वह देवी प्रव्रजित वेष छोड, अपने स्वाभाविक रूप मे, आकाश मे सूर्य्य के समान ठहरी। उसने उस की बात सुन और रूप देख पूछा—

"तू कौन है?"

"इस वृक्ष पर रहने वाली देवी।"

अपनी देवी के दर्शन हो गये, सोच वह प्रसन्न हुआ और बोला—"स्वामी देवराज! सुतसोम के लिये चिन्ता न करे। अपने वृक्ष मे प्रवेश करे।"

देवी उसके सामने ही वृक्ष मे अन्तर्ध्यान हो गई। उस समय सूर्य्यास्त हो गया था। चान्द निकल आया था। मनुष्य-भक्षक वेदवेदाग मे कुशल था, नक्षत्रो की चाल जानता था। उसने आकाश की ओर देख कर सोचा, "कल पुष्य नक्षत्र होगा। सुत-सोम नहाने के लिये उद्यान जायेगा। वहाँ उसे पकडूगा। किन्तु वहाँ बहुत से पहरेदार

होगे। चारों ओर तीन तीन योजन तक सारे जम्बूद्वीप निवासी पहरा दे रहे होगे। मैं पहरा बैठने के पहले, प्रथमयाम में ही मृगाचिर उद्यान पहुच मगल-पुष्कारिणी मे उतर बैठ रहूँगा।" वह जाकर पुष्कारिणी मे उतरा और पद्मनी पत्र से सिर ढक कर बैठा रहा। उसके तेज से मच्छ-कछुवे आदि पीछे हट कर पानी के किनारे किनारे पृथक पृथक हो विचरने लगे। 'इसका ऐसा तेज कहाँ से आया?' पूर्व-कर्म के फल से। काश्यप बुद्ध के समय उसने खीर-भोजन दान दिया था। उसीसे महाबलशाली हुआ। अग्नि-शाला बनवा कर भिक्षु-संघ का शीत भगाने के लिये आग, लकडी और लकडी चीरने के लिये कुल्हाड़ी दी थी। उस से तेजस्वी हुआ। इस प्रकार जैसे ही उसने उद्यान मे प्रवेश किया था, उसी समय एक दम प्रातःकाल ही चारो ओर तीन योजन तक पहरा बैठ गया। राजा भी प्रातःकाल ही, जल-पान करके, अलकृत हाथी के कन्धे पर सवार हो, चतुरगिनी-सेना के साथ नगर से निकला। उसी समय तक्षशिला से नन्द नामका एक ब्राह्मण आया। उसके पास सौ के मूल्य की चार गाथाये थी। वह उन्हे लिये एक सौ बीस योजन मार्ग तैकर वहाँ पहुचा था। रात को नगर-द्वार पर रह, सूर्य्योदय होने पर नगर मे दाखिल हो राजा को पूर्व-द्वार से निकलते देख उसने हाथ उठा कर 'जय' बुलाई। राजा ने उधर देखा तो ऊचे स्थान पर खडे ब्राह्मण के फैलाये हाथ को देख, वह जाते जाते हाथी से उसके समीप पहुचा और बोला—

**कस्मिं नु रट्ठे तव जातिभूमि,**
**अथ केन अत्थेन इधानुपत्तो**
**अक्खाहि मे ब्राह्मण एतमत्थं,**
**किं इच्छसी देमि तयज्ज पत्थितं ॥२६॥**

[तेरा जन्म किस राष्ट्र का है? यहा तू किस उद्देश्य से आया है? हे ब्राह्मण! तू मुझे यह बात कह। वह कौन सी चीज है, जो तू चाहता है और मैं तुझे दूं?॥२६॥]

उसने उत्तर दिया—

**गाथा चतस्सो धरणीमहेस्सर**
**सुगम्भीरत्था वरसागरूपमा,**

**तवेव अत्थाय इधागतोस्मि,**
**सुणोहि गाथा परमत्थसंहिता ॥२७॥**

[हे पृथ्वी-पति ! मेरे पास चार गाथायें हैं, जिनका अर्थ गम्भीर है, जो श्रेष्ठ सागर के समान है। मैं तेरे ही लिये यहाँ आया हूँ। मेरी परम अर्थवान् गाथायें सुने ।। २७ ।।]

फिर बोला, "महाराज ! ये काश्यप बुद्ध द्वारा उपदिष्ट सौ के मूल्य की चार गाथायें हैं। यह सुने कि आप सुनी बात पर विचार करने वाले हो, तुम्हें उनका उपदेश देने के लिये आया हूँ।" राजा सन्तुष्ट हो कर बोला, "आचार्य्य ! तूने बहुत अच्छा किया। मैं (इस समय) रुक नहीं सकता। आज पुष्य-नक्षत्र के कारण सिर से नहान करने का दिन है। आकर सुनूगा। तुम मत घबराना।" उसने आमात्यो को आज्ञा दी, "जाओ ब्राह्मण के लिये अमुक घर में रहने की व्यवस्था कर, खाने-बिछाने की व्यवस्था करो" और स्वय उद्यान मे प्रवेश किया। उसकी अठारह हाथ ऊची चार-दीवारी थी। परस्पर एक दूसरे से सटकर खडे हुए हाथियों ने उसे चारो ओर से घेर रखा था। उसके बाद घोडे। उसके बाद रथ। उसके बाद धनुर्धारी पैदल। क्षुब्ध महासमुद्र की तरह सेना उबली पडी थी। राजा ने बडे बडे आभरण उतारे, हजामत बनवाई, उबटन मलवाया और फिर पुष्करिणी मे राजकीय ठाट-बाट से स्नान कर बाहर आया। वह गीले वस्त्र पहने खडा था। उस समय उसके पास सुगन्धित मालायें तथा अलकार लाये गये। मनुष्य-भक्षक ने सोचा, "अलंकार पहन लेने पर राजा भारी हो जायगा। अभी जब हलका है, तभी इसे ले चलूगा।" वह चिल्लाता हुआ, दहाडता हुआ सिर पर तलवार घुमाता 'मैं मनुष्य-भक्षक चोर हूँ' सुनाता हुआ माथे पर, अगली रखे, पानी से निकला। उसकी आवाज सुनते ही, हाथी-सवार हाथियो से, घुड-सवार घोडो से, रथ वाले रथो पर से गिर पडे। सेना हथियार छोड पेट के बल लेट गई। मनुष्य-भक्षक ने सुतसोम को ऊपर उठा लिया। अन्य राजाओ को तो वह पैर से पकड, सिर नीचे कर, उनके सिर को एडी से ठुकराता हुआ ले गया। किन्तु बोधिसत्व के पास पहुच उसने झुक कर, उसे उठाकर कन्धे पर बिठा लिया। फिर द्वार से जाने मे प्रपञ्च होगा, सोच, सामने की अठारह हाथ ऊँची दीवार लाघ, गालतमद हाथियों

के सिरों पर से जा, पर्वत-शिखरो को गिराते हुए की तरह वायु-वेग वाले घोडों की पीठ को पार कर, श्रेष्ठ रथो के ऊपर से जा, लट्टू को घुमाते हुए की तरह, नील-वर्ण (?) निग्रोध-पत्रों को मलते हुए की तरह वह एक झपाटे मे ही तीन योजन चला गया। तब उसने पीछे देखा कि सुतसोम के लिये कोई पीछे आ तो नही रहा है। जब उसे कोई न आता दिखाई दिया तो धीरे हो लिया। सुतसोम के बालों से पानी की बूंदे उसके बदन पर गिरने लगी। उसने सोचा, 'ऐसा कोई नही जिसे मरने से डर न लगता हो, यह कदाचित मत्यु-भय के ही कारण रो रहा है।' वह बोला—

**न वे रुदन्ति मतिमन्तो सपञ्ञा**
**बहुस्सुता ये बहुठानचिन्तिनो,**
**दीपं हि एतं परमं नरानं**
**यं पण्डिता सोकनुदा भवन्ति ॥२८॥**

[बुद्धिमान, प्रज्ञावान, बहुत श्रुत तथा बहुत बातो का विचार करने वाले रोते नही है। आदमियो का यही पर द्वीप—शरणस्थान है कि पण्डित शोक को जीत लेते है ।। २८ ।।]

**अत्तानं ञाति उद पुत्तदारं**
**धञ्ञं धनं रजतं जातरूपं**
**किं नु त्वं सुतसोमानुतप्पे**
**कोरव्यसेट्ठ वचनं सुणोम ॥२९॥**

[हे सुतसोम ! हे कोरव्य श्रेष्ठ ! मै तुझसे यह बात सुनना चाहता हूँ कि तुझे अपना-आप रिश्तेदार, पुत्र, दारा, धान्य, धन, चान्दी और सोना—इनमें से कौन सी चीज, अनुतप्त कर रही है ? ।। २९ ।।]

सुतसोम ने उत्तर दिया—

**न वाहं अत्तानं अनुत्थुनामि**
**न पुत्तदारं न धनं न रट्ठं**
**सतञ्च धम्मो चरितो पुराणो**
**तं संगरं ब्राह्मणस्सानुतप्पे ॥३०॥**

**कतो मया संगरो ब्राह्मणेन**
**रट्ठे सके इस्सरिये ठितेन**
**तं संगरं ब्राह्मण्स्सप्पदाय**
**सच्चानुरक्खी पुनरावजिस्सं ॥३१॥**

[न मैं अपने आप को सोचता हूँ। न पुत्र-दाराको, न धन को, न और राष्ट्र को। मैंने सत्पुरुषो के पुराने-धर्म के अनुसार आचारण किया है। वह ब्राह्मण को दिया हुआ वचन अनुतप्त करता है ।। ३० ।। अपने राष्ट्र मे ऐश्वर्य्य-शाली रहने की स्थिति मे मैंने ब्राह्मण को वचन दिया है। वह वचन पूरा करके, सत्य की रक्षा करके फिर आ जाऊगा ।। ३१ ।।]

तब मनुष्य-भक्षक बोला—

**न वाहं एतं अभिसद्दहामि**
**सुखी नरो मच्चुमुखा पमुत्तो**
**अमित्तहत्थं पुनरावजेय्य**
**कोरव्यसेट्ठ न हि मं उपेहि ॥३२॥**
**मुत्तो तुवं पोरिसादस्स हत्था**
**गन्त्वा सकं मन्दिरं कामकामि**
**मधुरं पियं जीवितं लद्ध राज**
**कुतो तुवं एहिसि मे सकासं ॥३३॥**

[मुझे इस बात मे विश्वास नही है कि मृत्युमुख से मुक्त हुआ सुखी नर फिर दुबारा शत्रु के हाथ आयेगा। कोख्य-श्रेष्ठ (दुवारा) मेरे पास नही आयेगा ।।३२॥ मनुष्य-भक्षक के हाथ से मुक्त हो कर, अपने भवन जाकर हे कामना करने वाले राजन्! आप मधुर प्रिय जीवनलाभ करे। हे कामना वाले ! फिर आना कहाँ होगा ।। ३३ ।।]

यह सुन बोधिसत्व ने सिंह के समान निर्भय गर्जना की—

**मतं वरेय्य पोरसद्धसीलो**
**न जीवितं गरहितो पापधम्मो**

**न हि तं नरं तायते दुग्गतीहि**
**यस्सापि हेतु अलिकं भणेय्य ॥३४॥**

**सचे पि वातो गिरिं आवहेय्य**
**चन्दो च सुरियो च छमा पतेय्युं**
**सब्बा व नज्जो पीटसोतं वजेय्युं**
**न त्वेव अहं राज मुसा भणेय्यं ॥३५॥**

[सदाचारी मृत्यु को अच्छा समझता है। वह निन्दित पापकर्म करता हुआ जीने की इच्छा नही करता। जिसके लिये आदमी झूठ बोलता है, वह आदमी का दुर्गति से त्राण नही कर सकता ।। ३४ ।। चाहे वायु पर्वत को उडा ले जाय, चाहे चन्द्रमा तथा सूर्य पृथ्वी पर आ पडे और चाहे सभी नदियाँ उलटी बहने लग जायँ, तो भी हे राजन्! मै झूठ नही बोलूंगा ।। ३५ ।।]

ऐसा कहने पर भी उसने विश्वास नही ही किया। तब बोधिसत्व ने, 'यह मेरा विश्वास नही करता, इसे शपथ करके भी विश्वास कराऊगा' सोच कहा, "मित्र नरभक्षक ! मुझे कन्धे पर से उतार। शपथ करके भी मै तुझे विश्वास कराऊगा।" ऐसा कहने पर जब उसने उतार कर पृथ्वी पर खडा किया तो उसने शपथ करते हुए कहा—

**असिञ्च सत्तिञ्च परामसामि**
**सपथं पि ते सम्म अहं करोमि,**
**तया पमुत्तो अनणो भवित्वा**
**सच्चानुरक्खी पुनरावजिस्सं ॥३६॥**

[मित्र ! मैं तलवार और शक्ति को छूकर शपथ करता हूं कि तुझ से छूट कर, उऋण होकर सत्य-रक्षी मैं फिर चला आऊगा ।।३६।।]

तब मनुष्य-भक्षक ने "यह सुतसोम क्षत्रिय के लिये अकरणीय शपथ करता है। मुझे इससे क्या? मै भी क्षत्रिय राजा हूँ। अपनी ही बाँह से रक्त लेकर देवता के लिये बलि-कर्म करूँगा। यह बहुत दुखी होता है" सोच कहा—

**यो ते कतो संगरो ब्राह्मणेन**
**रट्ठे सके इस्सरिये ठितेन**
**तं संगरं ब्राह्मणस्स प्पदाय**
**सच्चानुरक्खी पुनरावजस्सु ॥३७॥**

[अपने राष्ट्रमे ऐश्वर्य्यशाली रहने की स्थिति मे तूने ब्राह्मण को जो वचन दिया है, वह वचन पूरा करके, सत्य की रक्षा करके, फिर चला आ ।। ३७ ।।]

तब बोधिसत्वने, "मित्र ! चिन्ता न कर ! सत्पुरुषों के योग्य चार गाथाये सुन, धर्मोपदेशक की पूजा कर, प्रातःकाल ही चला आऊगा," कह, गाथा कही—

**यो मे कतो संगरो ब्राह्मणेन**
**रट्ठे सके इस्सरिये ठितेन**
**तं संगरं ब्राह्मणस्सप्पदाय**
**सच्चानुरक्खी पुनरावजिस्सं ॥३८॥**

[अपने राष्ट्र मे ऐश्वर्य्यशाली रहने की स्थिति मे मैंने ब्राह्मण को जो वचन दिया है, वह वचन पूरा करके, सत्य की रक्षा करके फिर चला आऊंगा ।। ३८ ।।]

तब मनुष्य-भक्षक बोला, "तुमने क्षत्रिय के लिये अकरणीय शपथ ग्रहण की है। इसे याद रखना।" राजा ने उत्तर दिया, 'मित्र मनुष्य-भक्षक ! तू मुझे बचपन से जानता है। मैंने हँसी मे भी कभी झूठ नही बोला है। अब मै राज्याभिषिक्त हो, धर्माधर्म का जानकार हो क्या झूठ बोलूगा ? मेरा विश्वास कर। मैं तेरा बलि-कर्म पूरा कराऊगा।" तब मनुष्य-भक्षक ने उसे विदा किया— "तो महाराज जायँ, तुम्हारे न आने से बलि-कर्म न होगा। देवता को भी तुम्हारे बिना स्वीकार न होगा। मेरे बलि-कर्म मे बाधा न डालना।"

हाथी के समान बल वाला वह राहु मुख से मुक्त चन्द्रमा की तरह शीघ्र ही नगर आ पहुंचा। उसकी सेना भी अभी तक नगर के बाहर ही खडी थी। उसका विश्वास था, "सुतसोम राजा पण्डित है, मधुर धर्म कथिक है। एक दो बात करके ही मनुष्य-भक्षक का दमन कर सिहमुख से मुक्त श्रेष्ठ हाथी की तरह चला आयेगा।" उसे यह भी चिन्ता थी कि लोग हमारी निन्दा करेगे कि "राजा को मनुष्य-भक्षक को

सौंप चले आये।" जब सेना ने राजा को दूर से ही आते देखा तो अगवानी करके प्रणाम किया और कुशल-क्षेम पूछा, "महाराज ! मनुष्य-भक्षक ने कुछ कष्ट तो नहीं दिया?" राजा बोला, "मनुष्य-भक्षक ने ऐसा काम किया जो मेरे माता पिता भी आसानी से नहीं कर सकते थे। वैसे प्रचण्ड, दुस्साहसी ने मेरी धर्म-कथा सुनकर मुझे छोड़ दिया।" तब उन्होंने राजा को अलंकृत कर हाथी के कंधे पर बिठाया और घेर कर नगर में ले गये। उसे देख सभी नगर-निवासी प्रसन्न हुए। वह भी धर्म-पिपासा के मारे माता पिता से मिलने भी नहीं गया। उनसे पीछे भी भेंट कर लूंगा सोच उसने राजभवन में प्रवेश कर, राज्यासन पर बैठ ब्राह्मण को बुलवा भेजा। फिर आज्ञा दी, "इसकी हजामत आदि कराओ।" जब लोग उसकी हजामत करा, नहला, (चन्दनादिका) लेप करा, वस्त्रालंकार पहना कर ले आये तो राजा ने स्वयं उसके बाद स्नान किया और अपना भोजन उसे दिला उसके खा चुकने पर स्वयं भोजन किया। फिर उसे महामूल्यवान आसन पर बिठा, धर्म-गौरव से उसकी सुगन्धी तथा मालादि से पूजा कर, स्वयं नीचे आसन पर बैठ निवेदन किया, "आचार्य्य ! मेरे लिये जो गाथायें लाये, उन्हें सुनायें।"

इस अर्थ को प्रकाशित करते हुए शास्ता ने कहा—

**मुत्तो च सो पोरिसादस्स हत्था**
**गन्त्वान तं ब्राह्मणं एतदवोचः**
**सुणोम गाथायो सतारहायो**
**या मे सुता अस्सु हिताय ब्रह्मे॥३९॥**

[उस मनुष्य-भक्षक के हाथ से मुक्त होने पर उसने जाकर उस ब्राह्मण को ऐसा कहा. हे ब्राह्मण ! जिन गाथाओं को सुनने से मेरा कल्याण हो मैं उन सौ के मूल्य की गाथाओं को सुनूं।। ३९।।]

बोधिसत्व के प्रार्थना करने पर ब्राह्मण ने हाथों में सुगन्धी मल, थैली में से सुन्दर पुस्तक निकाल, दोनों हाथों में ले, 'तो महाराज ! काश्यप बुद्ध द्वारा उपदिष्ट, राग मदादि का मर्दन करने वाली, आसक्ति का नाश (संसार) चक्र का उपच्छेद तथा तृष्णा का क्षय करने वाली, और विराग-स्वरूप, निरोध-स्वरूप अमृत महा-

निर्वाण के समीप ले जाने वाली, सौ के मूल्य की चार गाथायें सुने' कह, पुस्तक देख कर पढना आरम्भ किया—

**सकिदेव सुतसोम सब्भि होतु समागमो,**
**सा नं संगति पालेति नासभि बहुसंगमो ॥४०॥**
**सब्भिरेव समासेथ**
**सब्भि कुब्बेथ सन्थवं,**
**सतं सद्धम्मं अञ्ञाय सेय्यो होति न पापियो ॥४१॥**
**जीरन्ति वे राजरथा सुचित्ता**
**अथो सरीरं पि जरं उपेति**
**सतंच धम्मो न जरं उपेति**
**सन्तो हवे सब्भि पवेदयन्ति ॥४२॥**
**नभा च दूरे पठवी च दूरे**
**पारं समुद्दस्स तदाहु दूरे,**
**ततो हवे दूरतरं वदन्ति**
**सतञ्च धम्मं असतञ्च राज ॥४३॥**

[सत्पुरुषो के साथ एक बार का समागम भी रक्षा करता है, असत्पुरुषो के साथ दीर्घकालीन सगति भी नही ॥४०॥ सत्पुरुषो के ही साथ रहे, सत्पुरुषों की ही संगति करे, सत्पुरुषो का सद्धर्म जानने से भला ही होता है, बुरा नही ॥४१॥ सुचित्रित राज-रथ पुराने पड जाते है, शरीर जरा को प्राप्त हो जाता है, किन्तु सत्पुरुषो ( = बुद्धो) का धर्म जरा को प्राप्त नही होता। सन्त जन सत्पुरुषो से ऐसा कहते है ॥४२॥ आकाश दूर है, पृथ्वी दूर है, समुद्र का वह पार और भी दूर है। हे राजन्! सत्पुरुषो तथा असत्पुरुषो का धर्म इससे भी अधिक दूर दूर है ॥४३॥]

इस प्रकार काश्यप बुद्ध द्वारा उपदिष्ट ढग से ही ब्राह्मण ने सौ सौ के मूल्य की चारो गाथाओ का उपदेश दिया और चुप रहा। बोधिसत्व ने उन्हे सुना तो प्रसन्न हो सोचा, "मेरा आना सफल हुआ।" फिर सोचा, "ये गाथाये न तो श्रावक-भाषित है, न ऋषि-भाषित और न कवि-रचित। ये सर्वज्ञ द्वारा ही भाषित है। इनका कितना मूल्य होना चाहिए? ब्रह्म-लोक तक इस सारे चक्रवाल को सात रत्नों से

भर कर देने पर भी यथार्थ मूल्याकन नही होता। मै इसे तीन सौ योजन के कुरुराष्ट्र मे सात योजन के इन्द्रप्रस्थ नगर का राज्य दे सकता हूं। लेकिन क्या इसका राज्य करने का भाग्य है ?" उसने अग-विद्या के विचार से देखा तो उसे दिखाई नही दिया। तब सेनापति-पद आदि के बारे मे विचार किया। एक ग्राम-भोजक होना भी उसके भाग्य मे नही दिखाई दिया। फिर धन-लाभ के बारे मे विचार करते हुए करोड से विचार करना आरम्भ किया। उसे उसके भाग्य मे चार हजार कार्षापण से अधिक न दिखाई दिया। उसने निश्चय किया, "इतनी ही पूजा करूगा।" तब उसने हज़ार हज़ार की चार थैलियां दिला कर, प्रश्न किया, "आचार्य्य ! अन्य क्षत्रियो को इन गाथाओ का उपदेश करने से तुम्हे क्या मिलता है ?" उसने उत्तर दिया, "महाराज ! एक एक गाथा के सौ सौ, इसीलिए इनका नाम सौ के मूल्य की हो गया।" बोधिसत्व 'आचार्य्य ! तुम जिस वस्तु को लिए घूमते हो, उसके यथार्थ मूल्य को नही जानते। अब से ये हजार हजार के मूल्य की हुई' कह, गाथा कही—

**सहस्सियो इमा गाथा न इमा गाथा सतारहा**
**चत्तारि त्वं सहस्सानि खिप्पं गण्हाहि ब्राह्मण ॥४४॥**

[ये गाथाये सौ सौ के मूल्य की नही है। ये गाथाये हजार हजार के मूल्य की है। हे ब्राह्मण ! तू ये चार हजार शीघ्र ले॥४४॥]

फिर उसे एक सुखपूर्वक जाने लायक रथ दे, आदमियो को आज्ञा दी, "ब्राह्मण को सकुशल घर पहुंचाओ", और उसे विदा किया। उस समय 'सौ के मूल्य की गाथाओ को हज़ार के मल्य की कर के उनकी पूजा की' सुन कर लोग राजा सुतसोम को 'साधु' , 'साधु' कहने लगे। उसके माता पिता ने वह आवाज सुनी, तो पूछा 'यह क्या आवाज है ?' उन्हे यथार्थ बात पता लगी तो धन का लोभ होने से वे बोधिसत्व के प्रति क्रुद्ध हुए। वह भी ब्राह्मण को विदा कर, उनके पास जा, प्रणाम कर खडा हुआ। उसके पिता ने यह भी कुशल-क्षेम न पूछा कि इस प्रकार के मनुष्य-भक्षक दुस्साहसी चोर से मुक्त हो कर चला आया, धन का लोभ होने से यही प्रश्न किया कि "तात ! क्या तूने सचमुच चार गाथाये सुन कर चार हजार दिये ?" जब सुना "सचमुच" तो बोला—

**असीतिया नौतिया च गाथा**
**सतारहा चापि भवेय्यु गाथा**
**पच्चत्तं एव सुतसोम जानाहि**
**सहस्सियो नाम कुथत्थि गाथा ॥४५॥**

[अस्सी की, नौवे की और सौ की भी गाथा हो सकती है। (किन्तु) हे सुतसोम ! तुम प्रत्यक्ष ही इसको जान कि गाथा कही हजार की भी हुई है ?॥४५॥]

तब बोधिसत्व ने, "तात ! मे धन की वृद्धि का नही, किन्तु ज्ञान की वृद्धि का इच्छुक हूँ" प्रकट करते हुए गाथाये कही—

**इच्छामि वोहं सुतबुद्धि अत्तनो,**
**सन्तो च मं सप्पुरिसा भजेय्युं**
**अहं सवन्तोहि महोदधीव**
**न हि तात तप्पामि सुभासितेन ॥४६॥**
**अग्गि यथा तिणकट्ठं डहन्तो**
**न तप्पति सागरो वा नदीहि**
**एवं पि ते पण्डिता राजसेट्ठ**
**सुत्वा न तप्पन्ति सुभासितेन ॥४७॥**
**एकस्स दासस्स यदा सुणोमि**
**गाथा अहं अत्थवती जनिन्द**
**तं एव सक्कच्च निसामयामि**
**न हि तात धम्मेसु मं अत्थि तित्ति ॥४८॥**

[मैं अपने ज्ञान मे वृद्धि चाहता हूँ और यह चाहता हूँ कि मुझे सत्पुरुषो का आश्रय करना मिले। जिस प्रकार नदियो से समुद्र की तृप्ति नही होती, उसी प्रकार हे तात ! सुभाषितो से मेरी तृप्ति नही होती ॥४६॥ जिस प्रकार अग्नि तृण-काष्ठ को जलाती हुई तृप्त नही होती और सागर नदियो को पा कर तृप्त नही होता, इसी प्रकार हे राजश्रेष्ठ ! पण्डितजन सुभाषित से तृप्त नही होते ॥४७॥ हे जनेन्द्र ! यदि मैं अपने दास के मूँह से भी सार्थक गाथा सुनूँ, तो उसे भी मैं आदरपूर्वक सुनता हूँ। हे तात ! धर्म से मेरी तृप्ति नही होती ॥४८॥]

यह कह, "आप धन के लिए मेरा तिरस्कार न करें, 'मैं धर्म सुन कर आता हूँ' शपथ कर के आया हूँ। अब मैं मनुष्य-भक्षक के पास जाता हूँ। यह राज्य सभाले" कह (राज्य) सौंपते हुए गाथा कही—

**इदं ते रट्ठं सधनं सयोग्गं**
**सकायुरं सब्बकामूपपन्नं,**
**किं कामहेतु परिमाससे मं**
**गच्छाम अहं पोरिसादस्स कन्ते ॥४९॥**

[यह है तेरा राष्ट्र धन-सहित, योग्ग (?) सहित, अलकारो-सहित और सभी काम-भोगो सहित। काम-भोग के साधनो के लिए मेरा क्या तिरस्कार करता है! मैं मनुष्य-भक्षक के पास जाता हूँ ॥४९॥]

उस समय राजा के पिता का दिल उबल पडा। बोला, "तात सुतसोम! यह क्या कहता है चतुरगिनी सेना ले चोर को पकडेगे।" उसने गाथा कही—

**अत्तानुरक्खाय भवन्ति हेते**
**हत्थारोहा रथिका पत्तिका च**
**अस्सारोहा येव धनुग्गहासे**
**सेनं पयुञ्जाम हनाम सत्तुं ॥५०॥**

[ये हाथी-सवार, ये रथ-वाले, ये पैदल, ये अश्वारोही तथा ये धनुर्धर आत्म-रक्षा के लिए ही होते है। हम सेना को ले कर शत्रु का नाश करेगे ॥५०॥]

उसके माता-पिता की आँखो से अश्रु बहने लगे। उन्होने प्रार्थना की, "तात! मत जा।" सोलह हजार नर्तकियाँ तथा शेष परिजन भी रोने पीटने लगे, "देव! हमे अनाथ कर के कहाँ जाते है?" सारे नगर मे कोई भी होश सँभाले न रख सका। सभी चिल्लाने लगे, "मनुष्य-भक्षक को वचन दे कर आया है। अब सौ सौ के मूल्य की चार गाथाये सुन कर, धर्म कथिक का सत्कार कर, माता-पिता को प्रणाम कर फिर चोर के पास जा रहा है।" उसने माता-पिता का कहना सुन, गाथा कही—

**सुदुक्करं पोरिसादो अकासि**
**जीवं गहेत्वान अवस्सजी मं**

**तं तादिसं पुब्बकिच्चं सरन्तो**
**दुब्भे अहं तस्स कथं जनिन्द ॥५१॥**

[मनुष्य-भक्षक ने बड़ी दुष्कर बात की। उसने मुझे जीते जी पकड कर छोड़ दिया। मैं उसके उस पूर्व-उपकार को स्मरण कर अब हे जनेन्द्र ! उससे कैसे द्रोह करूँ ?॥५१॥]

उसने माता पिता को आश्वासन दिया, 'हे माँ ! हे तात ! आप मेरी चिन्ता न करें। मैं पुण्य-कर्मा हूँ। मुझे काम-भोग तथा ऐश्वर्य्य (?) दुर्लभ नही है।" इस प्रकार माता-पिता को प्रणाम कर और शेष जनो को आश्वस्त कर चला गया।

इस अर्थ को प्रकाशित करने के लिए शास्ता ने कहा—

**वन्दित्वा सो पितरं मातरं च**
**अनुसासेत्वा नेगमञ्च बलञ्च**
**सच्चवादी सच्चानुरक्खमानो**
**अगमासि सो येन सो पोरिसादो ॥५२॥**

[माता-पिता को प्रणाम कर तथा निगम के लोगो और सेना को आश्वस्त कर वह सत्यवादी सत्य की रक्षा के हेतु जहाँ वह नर-भक्षक था वहाँ गया ॥५२॥]

उधर नर-भक्षक ने सोचा, "मेरा मित्र सुतसोम यदि आता हो आये और न आता हो तो न आये। वृक्ष-देवता को मेरा जो करना हो करे। इन राजाओ को मार कर पाच प्रकार के मधुर मास से बलि-कर्म करूगा।" यह निश्चय कर उसने चिता बनाई, आग जलाई और उसके प्रज्वलित होने की प्रतीक्षा करने लगा। जिस समय वह बैठा लकडी को छील कर तेज बना रहा था, उसी समय सुतसोम आ पहुचा। नर-भक्षक उसे देख सन्तुष्ट हुआ। उसने प्रश्न किया—

"मित्र ! जा कर कर्तव्य पूरा कर आया ?"

"हाँ महाराज ! काश्यप-बुद्ध द्वारा उपदिष्ट गाथाये मैंने सुनी। धर्म-कथिक का सत्कार किया। इस प्रकार जाने से कर्तव्य पूरा हुआ।"

इसी बात को स्पष्ट करने के लिए गाथा कही—

**कतो मया संगरो ब्राह्मणेन**
**रट्ठे सके इस्सरिये ठितेन**

**तं संगरं ब्राह्मणस्सप्पदाय**
**सच्चानुरक्खी पुनरागतोस्मि**
**यजस्सु यञ्ञं हन्त्वान मम मंसं**
**खादाहि वा मं सम्म पोरिसाद ॥५३॥**

[मैंने अपने राष्ट्र मे ऐश्वर्य्यशाली रहते समय ब्राह्मण को वचन दिया था। ब्राह्मण को दिये उस वचन को पूरा कर के सत्य की रक्षा करने के लिए मै फिर चला आया। मुझे मार कर यज्ञ कर अथवा हे नर-भक्षक ! मेरा मास खा ॥५३॥]

तब नर-भक्षक ने सोचा, "इस राजा को भय नही है। यह किसके प्रभाव से मृत्यु-भय से मुक्त हो कर बोल रहा है ? और कुछ नही, यह कहता है 'काश्यप बुद्ध द्वारा उपदिष्ट गाथाये सुनी।' उन्ही का प्रताप होगा। म भी इससे कहलवा कर उन गाथाओं को सुनूँगा। इस प्रकार मै भी भय-रहित हो जाऊँगा।" यह निश्चय कर उसने गाथा कही—

**न हायते खादितुं मय्हं पच्छा**
**चितका अयं ताव साधूमिळाव**
**निद्धूमके पचितं साधु पक्कं**
**सुणाम गाथायो सतारहायो ॥५४॥**

[पीछे खाने से भी मेरा खाना चला नही जायगा। अभी चिता मे से धुआं निकल रहा है। बिना धुएँ की आग पर पकाने से अच्छा पकता है। (तब तक) सौ सौ के मूल्य की गाथाये सुनूँ ॥५४॥]

यह सुन बोधिसत्व ने, "यह नर-भक्षक पापी है, इसका थोडा निग्रह कर, इसे थोडा लज्जित कर कहूगा" सोच, कहा—

**अधम्मिको त्वं पोरिसादकासि**
**रट्ठातो भट्ठो उदरस्स हेतु,**
**धम्मञ्च इमा अभिवदन्ति गाथा,**
**धम्मो अधम्मो च कुहिं समेति ॥५५॥**
**अधम्मिकस्स लुद्दस्स निच्चं लोहितपाणिनो**
**नत्थि सच्चं कुतो धम्मं, किं सुतेन करिस्ससि ॥५६॥**

[हे नर-भक्षक ! तू अधार्मिक है। तू पेट के लिए राष्ट्र से भ्रष्ट हुआ है। इन गाथाओ मे धर्म कहा गया है। धर्म तथा अधर्म दोनों बराबर कैसे होगे ?॥५५॥ रक्त-हस्त अधार्मिक शिकारी के पास सत्य ही नही है तो धर्म कहाँ से होगा; धर्म सुन कर क्या करेगा ?॥५६॥]

ऐसा कहने पर भी उसने क्रोध नही किया। क्यों? बोधिसत्व की मैत्री की महानता के कारण। उसने 'मित्र सुतसोम ! क्या मै अधार्मिक हूँ ?' पूछते हुए गाथा कही—

**यो मंसहेतु मिगवं चरेय्य**
**यो चाहने पुरिसं अत्तहेतु**
**उभो पि ते पेच्च समा भवन्ति**
**कस्मा नो अधम्मिकं ब्रूसि मं त्वं॥५७॥**

[जो मास के लिए शिकार करता है, और जो अपने लिए नर-हत्या करता है, दोनो ही परलोक मे बराबर होते है। तू मुझे ही अधार्मिक क्यों कहता है ?॥५७॥]

यह सुन बोधिसत्व ने उसके मत का खण्डन करते हुए गाथा कही—

**पञ्च पञ्च नखा भक्खा खत्तियेन पजानता,**
**अभक्खं राज भक्खेसि, तस्मा अधम्मिको तुवं॥५८॥**

[पाँच और पाँच अर्थात् दस प्राणी ज्ञानी क्षत्रिय द्वारा भक्ष्य नही है, अथवा पाँच नखो वाले प्राणियो मे से पाँच ज्ञानी क्षत्रिय द्वारा भक्ष्य है। हे राजन् ! तू अभक्ष्य मास खाता है, इसलिए तू अधार्मिक है॥५८॥]

जब इस प्रकार उसका निग्रह हुआ,तो अन्य गति न देख अपने पाप को छिपाते हुए उसने गाथा कही—

**मुत्तो तुवं पोरिसादस्स हत्था**
**गन्त्वा सकं मन्दिरं कामकामी**
**अमित्तहत्थं पुनरागतोसि,**
**नक्खत्तधम्मे कुसलोसि राज॥५९॥**

[हे पूर्णेच्छ ! तू नर-भक्षक के हाथ से मुक्त हो, अपने घर जा कर फिर शत्रु के हाथ में चला आया ! हे राजन् ! तू नीति-शास्त्र मे कुशल नही है॥५९॥]

तब बोधिसत्व ने, "मित्र ! मेरे जैसा ही नीति का जानकार होना चाहिए। मैं उससे परिचित हूँ, किन्तु उसके अनुसार आचरण नहीं करता" कह, गाथा कही—

**ये खत्तधम्मे कुसला भवन्ति**
**पायेन ते नेरयिका भवन्ति,**
**तस्मा अहं खत्तधम्मं पहाय**
**सच्चानुरक्खी पुनरागतोस्मि,**
**यजस्सु यञ्ञं खाद मं पोरिसाद। ।६०।।**

[जो 'नीति' मे कुशल होते है, वे प्राय नरकगामी होते है। इसलिए मै 'नीति' छोड सत्य की रक्षा के लिए पुनः चला आया। यज्ञ कर और हे नर-भक्षक ! मुझे खा ।।६०।।]

नर-भक्षक बोला—

**पासादवासा पठवीगवास्सं**
**कामित्थियो कासिकचन्दनञ्च**
**सब्बं तंहि लब्भति सामिताय**
**सच्चेन किं पस्ससि आनिसंसं ।।६१।।**

[प्रासाद, पृथ्वी, गौ, अश्व, स्त्रियाँ, काशी का वस्त्र तथा चन्दन, सभी कुछ तुझे प्राप्य है। तू सत्य मे और क्या लाभ देखता है ।।६१।।]

बोधिसत्व ने उत्तर दिया—

**ये केचिमे अत्थि रसा पथव्या**
**सच्चं तेसं साधुतरं रसानं,**
**सच्चे ठिता समनब्राह्मणा च**
**तरन्ति जातिमरणस्सपारं ।।६२।।**

[पृथ्वी मे जितने भी रस है, सत्य का रस उन सब मे श्रेष्ठ है । सत्य पर जो श्रमण-ब्राह्मण स्थित रहते है, वे जन्म-मरण के बन्धन को पार कर जाते है ।।६२।।]

इस प्रकार बोधिसत्व ने 'सत्य' का माहात्म्य कहा। तब नर-भक्षक ने विकसित पद्म तथा पूर्ण चन्द्रमा की शोभा वाला उसका चेहरा देख सोचा—"यह सुतसोम

देखता है कि मैंने अगारों की चिता बनाई है और मैं शूल छील रहा हूं। किन्तु इसके मन में जरा त्रास तक नहीं है। क्या यह सौ सौ के मूल्य की गाथाओं का प्रताप है अथवा सत्य का, और अथवा अन्य ही किसी चीज का?" उसने उससे पूछने का सकल्प कर, पूछने के लिए गाथा कही--

**मुत्तो तुवं पोरिसादस्स हत्था**
**गन्त्वा सकं मन्दिरं कामकामी**
**अमित्तहत्थं पुनरागतोसि,**
**न ह नून ते मरणभयं जनिन्द,**
**अलीनचित्तो चसि सच्चवादी ॥६३॥**

[तू नर-भक्षक के हाथ से मुक्त हुआ और हे पूर्णेच्छ! तू अपने भवन जा कर फिर शत्रु के हाथ में आया। हे जनिन्द! तुझे मृत्यु भय नहीं है। हे सत्यवादी! तू आसक्ति-रहित है॥६३॥]

बोधिसत्व का उत्तर था—

**कता मे कल्याणा अनेकरूपा**
**यञ्ञा यिट्ठा ये विपुला पसत्था**
**विसोधितो परलोकस्स मग्गो**
**धम्मे ठितो को मरणस्स भाये ॥६४॥**

**कता मे कल्याणा अनेकरूपा**
**यञ्ञा यिट्ठा ये विपुला पसत्था**
**अनानुतप्पं परलोकं गमिस्सं,**
**यजस्सु यञ्ञं खाद मं पोरिसाद ॥६५॥**

**पिता च माता च उपट्ठिता मे**
**धम्मेन मे इस्सरियं पसत्थं**
**विसोधितो परलोकस्स मग्गो,**
**धम्मे ठितो को मरणस्स भाये ॥६६॥**

पिता च माता च उपाट्ठिता मे
धम्मेन मे इस्सरियं पसत्थं
अनानुतप्पं परलोकं गमिस्सं
यजस्सु यञ्ञं खाद मं पोरिसादो ॥६७॥

ञातीसु मित्तेसु कता मे कारा
धम्मेन मे इस्सरियं पसत्थं.....॥६८॥

ञातीसु मित्तेसु कता मे कारा
धम्मेन मे इस्सरियं पसत्थं
अनानुतप्पं..... ॥६९॥

दिन्नं मे दानं बहुधा बहुन्नं
सन्तप्पिता समणाब्राह्मणाच
विसोधितो परलोकस्स मग्गो.....॥७०॥

दिन्नं मे दानं बहुधा बहुन्नं
सन्तप्पिता समणाब्राह्मणा च
अनानुतप्पं परलोकं गमिस्सं,
यजस्सु यञ्ञं खाद मं पोरिसाद ॥७१॥

[मैंने अनेक प्रकार के शुभ-कर्म किए है तथा बहुत और प्रशसित (दानादि) यज्ञ किए है। मैंने परलोक का मार्ग शुद्ध कर लिया है। धर्म-स्थित होने पर मृत्यु से कौन डरता है ?॥६४॥ मैंने अनेक प्रकार के शुभ-कर्म किए है तथा बहुत और प्रशंसित (दानादि) यज्ञ किये है। मै अनुताप-रहित हो कर परलोक जाऊगा। हे नर-भक्षक ! तू अपना यज्ञ कर और मुझे खा ॥६५॥ मैंने माता-पिता की सेवा की है और धर्मानुसार ऐश्वर्य प्राप्त किया है। मैंने परलोक का मार्ग साफ कर लिया है। धर्म-स्थित होने पर मृत्यु से कौन डरता है ?॥६६॥ मैंने माता-पिता की सेवा की है और धर्मानुसार ऐश्वर्य प्राप्त किया है। मै अनुताप-रहित होकर परलोक जाउंगा। हे नर भक्षक ! तू अपना यज्ञ कर और मुझे खा ॥६॥ मैंने अपने रिश्ते-दारो तथा मित्रो के प्रति अपना कर्तव्य किया है और धर्मानुसार ऐश्वर्य्य प्राप्त

किया है.....॥६८॥ मैंने अपने रिश्तेदारो तथा मित्रों के प्रति अपना कर्तव्य किया है और धर्मानुसार ऐश्वर्य्य प्राप्त किया है। मै अनुताप रहित.....॥६९॥ मैंने बहुतों को बहुत दान दिया है। मैंने श्रमण ब्राह्मणो को सतर्पित किया है। मैंने अपना परलोक.....॥७०॥ मैंने बहुतो को बहुत दान दिया है। मैंने श्रमण-ब्राह्मणों को सतर्पित किया है। मै अनुताप-रहित.....॥७१॥]

यह सुना तो नर-भक्षक ने सोचा, "यह सुतसोम राजा सत्पुरुष है, ज्ञान-युक्त है। यदि मै इसे खाऊंगा तो मेरा सिर सात टुकडे हो जायगा अथवा मुझे पृथ्वी ही विवर देगी।" इससे वह भयभीत हो गया और 'मित्र ! तुझे मै नही खा सकता' कह गाथा कही—

**विसं पजानं पुरिसो अदेय्य**
**आसीविसं जलितं उग्गतेजं**
**मुद्धापि तस्स विपतेय्य सत्तधा**
**यो तादिसं सच्चवादिं अदेय्य ॥७२॥**

[आदमी चाहे तो विष खा ले और चाहे तो ज्वलत, उग्र तेजवान विषधर सर्प को पकड ले; किन्तु जो तेरे जैसे सत्यवादी को खायेगा उसके सिर के भी सात टुकड़े हो जा सकते है ॥७२॥]

इस प्रकार उसने बोधिसत्व को 'तू मेरे लिए हलाहल विष के समान है तुझे कौन खायेगा' कह, उन गाथाओ को सुनने की इच्छा से (उससे सुनाने की) प्रार्थना की। बोधिसत्व ने उसके मन मे धर्म के लिए गौरव पैदा करने के लिए कहा, "तू इस प्रकार का निर्दोष धर्म सुनने का अधिकारी नही है।" उसके इस प्रकार मना करने पर भी नर-भक्षक ने सोचा, "सारे जम्बुद्वीप मे इसके समान पण्डित नही है। यह मेरे हाथ से छूट कर, जाकर, उन गाथाओ को सुन कर, धर्म-कथिक का सत्कार कर, फिर सिर पर मृत्यु लिए चला आया। वे गाथाएं अत्यन्त साधु होगी।" उसने अत्यन्त आदरपूर्वक सुनने की इच्छा से प्रार्थना करते हुए गाथा कही—

**सुत्वा धम्मं विजानन्ति नरा कल्याण पापकं**
**अपि गाथा सुनित्वान धम्मे मे रमतीमनो ॥७३॥**

[आदमी धर्म सुन कर ही भला-बुरा जानते है। हो सकता है कि गाथाये सुन कर मेरा मन भी धर्म मे रम जाये॥७३॥]

तब बोधिसत्व ने 'अब नर-भक्षक वास्तव मे सुनना चाहता है, मै 'इसे सुनाऊगा' सोच, कहा, 'तो मित्र ! अच्छी तरह सुन।' इस प्रकार उसे सावधान कर, नर-ब्राह्मण की तरह ही गाथाओ की स्तुति कर, छः कामावचर देव-लोकों के महान् घोष और देवताओ द्वारा दिए गए 'साधुकार' के बीच बोधिसत्व ने नर-भक्षक को धर्मोपदेश दिया—

**सकिदेव सुतसोम सब्मि होतु समागमो,**
**सा नं संगति पालेति नासिब्मि बहुसंगमो॥७४॥**

**सब्भिरेव समासेथ सब्भि कुब्बेथ सन्थवं,**
**सतं सद्धम्म अञ्ञाय सेय्यो होति न पापियो॥७५॥**

**जीरन्ति वे राजरथा सुचित्ता**
**अथो सरीरं पि जरं उपेति,**
**सतञ्च धम्मो न जरं उपेति,**
**सन्तो हवे सब्भि पवेदयन्ति॥७६॥**

**नभा च दूरे पठवी च दूरे**
**पारं समुद्दस्स तद आहु दूरे**
**ततो हवे दूरतरं वदन्ति**
**सतञ्च धम्मं असतञ्च राज॥७७॥**

[अर्थ ऊपर आ गया है॥७४–७७॥]

उन गाथाओ के सुकथित होने मे और उसके अपने पाण्डित्य के कारण उसे ये गाथाये सर्वज्ञ बुद्ध-कथित गाथाओ के समान प्रतीत हुई। उन पर विचार करने से उसका सारा शरीर पाच प्रकार की प्रीति से भर गया। उसके मन मे बोधिसत्व के प्रति कोमलता छा गई। उसे वह ऐसा लगा मानो श्वेत-छत्र दाता पिता ही हो। उसने "सुतसोम को देने योग्य हिरण्य-स्वर्ण नही दिखाई देता, मै एक एक गाथा के लिए एक एक 'वर' दूंगा' सोच गाथा कही—

**गाथा इमा अत्थवती सुब्यञ्जना**
**सुभासिता तुय्हं जनिन्द सुत्वा**
**आनन्दचित्तो सुमनो पतीतो,**
**चत्तारि ते सम्म वरे ददामि ॥७८॥**

[हे राजन् ! यह अर्थ तथा व्यंजनो से युक्त सुभाषित गाथाये सुन कर मेरा मन आनन्दित हुआ है और प्रीति से भर गया है। हे मित्र ! मै तुझे चार 'वर' देता हूँ ॥७८॥]

तब बोधिसत्व ने 'तू क्या वर देगा' कह, रोष प्रकट करते हुए कहा—

**यो न अत्तनो मरणं बुज्झसि त्वं**
**हिताहितं विनिपातञ्च सग्गं**
**गिद्धो रसे दुच्चरिते निविट्ठो**
**किं त्वं वरं पस्ससि पापधम्म ॥७९॥**
**अहञ्च तं देहि वरं ति वज्जं**
**त्वं चापि दत्वान अवाकरेय्य,**
**सन्दिट्ठिकं कलहं इमं विवादं**
**को पण्डितो जानं उपब्बजेय्य ॥८०॥**

[तू, जो न अपने मरने को ही जानता है, न अपना हित-अहित तथा नरक-स्वर्ग ही पहचानता है, (नर-मास के) रस मे आसक्त हो, दुराचारी बना है, हे पापी ! तू क्या वर देगा ॥७९॥ मै यदि तुझे कहूँ कि 'वर दे', और दे कर भी न दे; तो कौन बुद्धिमान जान-बूझ कर तुझसे यही यह झगडा मोल ले ॥८०॥]

तब नर-भक्षक ने 'यह मेरा विश्वास नही करता, इसे विश्वास कराऊगा' सोच गाथा कही—

**न तं वरं अरहति जन्तु दातुं**
**यं वापि दत्वान अवाकरेय्य**
**वरस्सु सम्म अविकम्पमानो**
**पाणं चजित्वान पि दस्सं एव ॥८१॥**

[हे आदमी ! वह वर देने योग्य नहीं है जो देता हूँ कह कर भी न दिया जाय। तू निश्चित हो कर वर माग। मै प्राणो का त्याग कर के भी 'वर' अवश्य दूगा ॥८१॥]

बोधिसत्व ने, 'यह अति-शूर की तरह बोलता है। मेरा कहना करेगा। मै वर ग्रहण कर लूँ। यदि पहले ही यह वर माँग लू कि 'मनुष्य-माँस नही खाऊगा' तो यह अत्यन्त कष्ट पायेगा। पहले दूसरे तीन वर ले कर पीछे यह वर लूगा' सोच कहा—

**अरियस्स अरियेन समेति सक्खि**
**पञ्ञस्स पञ्ञाणवतां समेति,**
**पस्सेय्य तं वस्ससतं अरोगं**
**एतं वरानं पठमं वरामि ॥८२॥**

[आर्य्य की आर्य्य-पुरुष के साथ और प्रज्ञावान की प्रज्ञावान के साथ सगति मेल खाती है। मै तुझे सौ वर्ष तक रोग-रहित देखूँ, यही मे पहला वर चाहता हूँ॥८२॥]

यह सुना तो उसे यह सोचकर हर्ष हुआ कि यह ऐश्वर्य से च्युत हो, अब नर-मांस भक्षण मे लगे हुए महान् अनर्थकारी मुझ चोर के ही (दीर्घ) जीवन की इच्छा करता है, ओह ! यह मेरा कितना हितचिंतक है ! उसने उससे वञ्चना कर (?) वर का लिया जाना बिना जाने ही उसे वर देते हुए गाथा कही—

**अरियस्स अरियेन समेति सक्खि**
**पञ्ञस्स पञ्ञावता समेति**
**पस्से पि मं वस्ससतं अरोगं**
**एतं वरानं पठयं ददामि ॥८३॥**

[आर्य्य की आर्य्य के साथ और प्रज्ञावान की प्रज्ञावान के साथ सगति मेल खाती है। मै तुझेयह पहला वर देता हूं कि तू मुझे सौ वर्ष तक रोग-रहित देखे ॥८३॥]

तब बोधिसत्व ने कहा—

**ये खत्तिया ये इध भूमिपाला**
**मुद्धाभिसित्ता कतनामधेय्या**
**न तादिसे भूमिपती अदेसि,**
**एतं वरानं ततियं वरामि ॥८४॥**

[जो यहा क्षत्रिय है, जो भूमिपाल है, जो राज्याभिषिक्त है, तू ऐसे भूमिपालों को मत खाना—यह वरों मे दूसरा वर माँगता हूँ ॥८४॥]

इस प्रकार उसने दूसरा वर मागते हुए सौ से अधिक राजाओ के प्राणो की रक्षा चाही। नर-भक्षक ने भी यह वर देते हुए कहा—

**ये खत्तिया ये इध भूमिपाला**
**मुद्धाभिसित्ता कतनामधेय्या**
**न तादिसे भूमिपती अदेसि**
**एतं वरानं दुतियं ददामि ॥८५॥**

[अर्थ स्पष्ट है—॥८५॥]

क्या वे राजागण उनकी बातचीत सुनते थे ? सब नही सुनते थे। नर-भक्षक ने धुअें और आग के उपद्रव के भय से वृक्ष की ओट मे आग जलाई थी। बोधिसत्व वृक्ष और अग्नि के बीच बैठ कर उससे बातचीत कर रहे थे। इसलिए सारी बात न सुन उन्होने आधी आधी बात सुनी। उन्होने आपस मे एक दूसरे को सान्त्वना दी कि 'डरो मत। अब सुतसोम नर-भक्षक का दमन करेगा।' उस समय बोधिसत्व ने यह गाथा कही—

**परोसतं खत्तिया ते गहीता**
**तलावुता अस्सुमुखा रुदन्ता**
**सके ते रट्ठे पटिपादयाहि**
**एतं वरानं ततियं वरामि ॥८६॥**

[तूने शताधिक क्षत्रिय पकड रखे है। उनके हाथ की हथेलियो मे छेद कर दिये है। वे अश्रुमुख रो रहे है। उनको उनके अपने अपने राष्ट्र पहुचा दे—मै तुझसे यह तीसरा 'वर' माँगता हूँ ॥८६॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने तीसरा वर मागते हुए उन उन क्षत्रियों को उन उनके राष्ट्र पहुंचा देने का वर मांगा। क्यो ? क्योकि वह बिना खाये भी वैर-भाव के कारण उन सब को 'दास' बना कर जगल मे ही बसा रुकता था, मार कर छोड दे सकता था, अथवा प्रत्यन्त-देश मे ले जा कर बेच दे सकता था। इसलिए उन्हे उन उनके

राष्ट्र वापिस भेजने का वर मांगा। नर-भक्षक ने भी 'वर' देते हुए यह गाथा कही—

**परोसतं खत्तिया मे गहीता**
**तलावुता अस्सुमुखा रुदन्ता**
**सके ते रट्ठे पटिपादयाहि,**
**एतं वरानं ततियं ददामि ॥८७॥**

[अर्थ स्पष्ट है ॥८७॥]

बोधिसत्व ने चौथा 'वर' मागते हुए यह गाथा कही—

**छिद्दं ते रट्ठं व्याधितं भयाहि,**
**पुथू नरा लेनं अनुप्पविट्ठा**
**मनुस्समंसं विरमेहि राज**
**एतं वरानं चतुत्थं वरामि ॥८८॥**

[तेरा राष्ट्र छितरा गया है। रोग-युक्त हो गया है। भय के कारण बहुत से आदमी जहा-तहां जा छिपे है। राजन! नर-भक्षण छोड दे। मै यह चौथा वर मांगता हूँ ॥८८॥]

यह कहे जाने पर नर-भक्षक ने ताली बजाई और हंसते हुए कहा, "मित्र सुतसोम! यह क्या कहता है, मै तुझे यह वर कहा दे सकता हूं? यदि लेना चाहे तो दूसरा 'वर' ले।" उसने यह गाथा कही—

**अद्धा हि सो भक्खो ममं मनायो,**
**एतस्स हेतुं पि वनं पविट्ठो,**
**सोहं कथं एत्तो उपारमेय्यं**
**अञ्ञं वरानं चतुत्थं वरस्सु ॥८९॥**

[निश्चय से यह मेरा प्रिय खाद्य है। इसी के लिए मैंने वन प्रवेश किया है। मै इससे कैसे विरत रह सकता हूँ। कोई अन्य चौथा वर माग ॥८९॥]

बोधिसत्व ने "तू कहता है कि मनुष्य-मास प्रिय है, उसका त्याग नही कर सकता, जो 'प्रिय' के लिए पाप करता है, वह मूर्ख होता है," कह गाथा कही—

**न वे पियं मे ति जनिन्द तादिसो**
**अत्तं निरंकत्वा पियानि सेवति,**
**अत्ता व सेय्यो परमा व सेय्यो,**
**लब्भा पिया ओचितत्थेन पच्छा ॥९०॥**

[हे राजन्! यह मुझे प्रिय नही है कि तेरे जैसा पुरुष अपनी हानि कर के 'प्रिय' का सेवन करता है। अपना आप ही सब से बढ कर श्रेष्ठ है। दूसरे उचित 'प्रिय' पीछे भी मिल जाते है ॥९०॥]

यह सुन नर-भक्षक भयभीत हुआ। वह सोचने लगा, "मै सुतसोम द्वारा मागे हुए वर को बिना दिये भी नही रह सकता और नर-भक्षण भी नही छोड सकता।" उसने आँखो मे आँसू भर कर गाथा कही--

**पियं ये मानुसं मंसं**
**सुतसोम विजानहि**
**नम्हि सक्को निवारेतुं**
**अञ्ञं तुवं सम्म वरं वरस्सु ॥९१॥**

[हे सुतसोम! यह तू जान ले कि मुझे नर-माँस प्रिय है। तू मुझे इससे नही रोक सकता। तू अन्य कोई 'वर' माँग ॥९१॥]

बोधिसत्व ने उत्तर दिया--

**यो वे पियं मे ति पियानुकंखी**
**अत्तं निरंकत्वा पियानि सेवति**
**सोण्डो व पीत्वान विसस्स थालं**
**तेनेव सो होति दुक्खी परत्थ ॥९२॥**
**योचीध संखाय पियानि हित्वा**
**किच्छेन पि सेवति आरियधम्मं**
**दुक्खितोव पीत्वान यथोसधानि**
**तेनेव सो होति सुखी परत्थ ॥९३॥**

[जो 'प्रिय' समझ कर प्रिय की कामना से, अपनी हानि कर के 'प्रिय' का

सेवन करता है, वह विष भरा पात्र भी लेने वाले शराबी की तरह पीछे दुःख को प्राप्त होता है ॥९२॥ जो विचार पूर्वक 'प्रिय' का त्याग कर कठिनाई से भी आर्य-धर्म का सेवन करता है, वह कष्ट से भी औषध पी लेने वाले रोगी की तरह आगे चल कर सुखी होता है ॥९३॥]

यह सुन विचारा नर-भक्षक रोता हुआ गाथा कहने लगा—

**ओहाय अहं पितरं मातरं च**
**मनापिके कामगुणे च पञ्च**
**एतस्स हेतुम्हि वनं पविट्ठो**
**तं ते वरं किं ति-म-अहं ददामि ॥९४॥**

[इसी के लिए मैंने माता-पिता को छोड़ा। इसी के लिए पाच मनोरम काम-भोगो को छोड़ा। इसी के लिए वन मे प्रवेश किया। अब मै तुझे यह वर कैसे दूँ? ॥९४॥]

तब बोधिसत्व ने यह गाथा कही--

**न पण्डिता दिगुणं आहु वाक्यं**
**सच्चप्पटिञ्ञा च भवन्ति सन्तो,**
**वरस्सु सम्म इति मं अवोच,**
**इच्च-अवची त्वं न हि ते समेति ॥९५॥**

[पण्डित दो बात नही करते। सन्त जन सत्य-प्रतिज्ञ होते है। तूने मुझे कहा है कि 'हे सुतसोम! वर माँग।' अब तेरी यह बात (पहली से) मेल नही खाती ॥९५॥]

नर-भक्षक फिर रोता हुआ ही बोला—

**अपुञ्ञलाभं अयसं अकित्तिं**
**पापं बहुं दुच्चरितं किलेसं**
**मनुस्स मंसस्स कते उपागा,**
**तं ते वरं किं ति-म अहं ददेय्यं ॥९६॥**

[इस मनुष्य-मांस के हेतु मैं अपुण्य, अयश, अकीर्ति, बहुत पाप तथा दुश्चरित्रता को प्राप्त हुआ। अब मैं तुझे यह 'वर' कैसे दूं? ॥९६॥]

तब बोधिसत्व ने उसे उसकी कही पहली गाथा (स० ८१) का स्मरण कराते हुए 'वर' के दान मे उत्साहित करते हुए गाथाये कही —

**पाणं चजन्ति सन्तो नापि धम्मं**
**सच्चप्पटिञ्ञा च भवन्ति सन्तो,**
**दत्वा वरं खिप्पं अवाकरोहि**
**एतेन सम्पज्ज सुराजसेट्ठ ॥९८॥**
**चजे धनं यो पन अंगहेतु**
**अंगं चजे जीवितं रक्खमानो,**
**अंगंधनं जीवितं चापि सब्बं**
**चजे नरो धम्मं अनुस्सरन्तो ॥९९॥**

[सन्त-पुरुष प्राणो का त्याग कर देते है, किन्तु धर्म का नही। सन्त-जन सत्य-प्रतिज्ञ होते है। इसलिए हे सुराज श्रेष्ठ! तू इस बात को कि 'वर दिया' शीघ्र प्रकट कर और सत्य-पालन से युक्त हो ॥९८॥ शरीर के अग-विशेष की रक्षा के लिए धन का त्याग कर; जीवन की सुरक्षा के लिए अग-विशेष का त्याग कर दे। आदमी को चाहिए कि धर्म को स्मरण कर, धन, अग तथा शरीर सभी का त्याग करे ॥९९॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने इन बातो से उसे सत्य पर आरूढ कर, अब अपना गौरव प्रकट करने के लिए गाथा कही—

**यस्सापि धम्मं पुरिसो विजञ्ञा**
**ये चस्स कंखं विनयन्ति सन्तो**
**तं हिस्स दीपञ्च परायनञ्च**
**न तेन मित्तिं जरयेथ पञ्ञो ॥१००॥**

[जिस सन्त जन से आदमी धर्म सीखे, अथवा जो उसके सन्देहो की निवृत्ति करे, यह उसके लिए द्वीप (समान) होता है, यह उसका शरण-स्थान होता है। प्रज्ञावान् को चाहिए कि उससे मैत्री न बिगाडे ॥१००॥]

इतना कह कर फिर कहा, "मित्र ! गुणी आचार्य्य के वचन का उल्लङ्घन नही करना चाहिये। मैने तरुणाई के समय भी सहायक-आचार्य्य होकर तुझे बहुत कुछ सिखाया। अब बुद्ध-लीला से सौ सौ के मूल्य की गाथाये कही। इस-लिये मेरा कहना मानना चाहिये।" यह सुना तो नर-भक्षक ने सोचा, "सुतसोम ! मेरा आचार्य्य है और पण्डित है। मैने इसे 'वर' भी दिया है। क्या कर सकता हूँ ? एक जन्म मे मरना तो निश्चित ही है। मनुष्य-मास नही खाऊगा। इसे 'वर' देता हूँ।" वह उठा। उसकी आँखो से आँसुओ की धारा बह रही थी। उसने सुतसोम नरेन्द्र के पाव मे गिर कर 'वर' देते हुए यह गाथा कही—

**अद्धा हि सो भक्खो ममं मनापो,**
**एतस्स हेतुं पि वनं पविट्ठो,**
**सचे व मं याचसि एतमत्थं**
**एतं पि ते सम्म वरं ददामि ॥१०१॥**

[निस्सन्देह यह मेरा अत्यन्त प्रिय भोजन है। इसी के लिये मैने वन-प्रवेश किया है। किन्तु यदि तू मुझ से यही बात चाहता है. तो हे मित्र ! मै तुझे यह वर भी देता हूँ ॥१०१॥]

तब बोधिसत्व ने कहा "मित्र ! ऐसा ही हो। शील मे प्रतिष्ठित होकर मरना भी सुन्दर है। महाराज ! तुम्हारे दिये 'वर' को ग्रहण करता हूँ। आज से तू आचार्य्य-पथ पर प्रतिष्ठित हुआ। ऐसा होने पर भी मेरी प्रार्थना है, यदि मुझ से स्नेह है तो पञ्चशील ग्रहण कर।"

"अच्छा मित्र ! शील दे।"

"महाराज ! ले।"

वह बोधिसत्व को पाच अगो से नमस्कार कर एक ओर बैठा। बोधिसत्व ने भी उसे शीलो मे प्रतिष्ठित किया।

उस समय वहाँ एकत्र हुए भुम्मा देवताओ ने बोधिसत्व के प्रति प्रीति प्रकट करते हुए 'अवीची से भवाग्र तक दूसरा कोई नही है जो नर-भक्षक से मनुष्य-मांस छुडा सकता। ओह ! सुतसोम ने बडी कठिन बात की' कह ऊचे स्वर से वन को

गुजाते हुए 'साधु' 'साधु' कहा। उनका स्वर सुनकर चातुम्महाराजिका (देवताओं ने) ओर इस प्रकार ब्रह्मलोक तक एक घोषणा हो गई। पेडों पर टँगे हुए राजाओं ने भी देवनाओ का वह 'साधुकार' सुना। वृक्ष-देवता ने भी अपने निवास-स्थान से ही साधुकार दिया। इस प्रकार देवताओ का स्वर तो सुनाई देता था, रूप नही दिखाई देता था। देवताओ की 'साधुकार' की आवाज सुन राजाओ ने सोचा, "सुतसोम के कारण जान बची। नर-भक्षक का दमन करके सुतसोम ने बडी कठिन बात को।" उन्होने बोधिसत्व की स्तुति की। नर-भक्षक बोधिसत्व को प्रणाम कर एक ओर खडा हुआ। तब उसे बोधिमत्व ने कहा: "मित्र! क्षत्रियो को मुक्त कर दे।" उसने सोचा, "मै इनका शत्रु हूँ। मेरे द्वारा मुक्त होने पर यह कहेगे 'पकड़ो शत्रु को', और इस प्रकार मेरी हिसा भी कर सकते है। जान चली जाय तो भी मै अब सुतसोम के हाथ से लिये शील को नही तोड़ सकता। इसे साथ ले जाकर ही उन्हे मुक्त करूँगा। इस प्रकार मै निर्भय रहूँगा।" उसने बोधिसत्व को प्रणाम कर "सुतसोम! हम दोनो जाकर क्षत्रियो को मुक्त करेंगे' कह गाथा कही—

**सत्था च मे होसि सखा च मेसि,**
**वचनं पि ते सम्म अहं अकासिं**
**तुवं पि मे सम्म करोहि वाक्यं**
**उभोपि गन्त्वान पमोचयाम ॥१०२॥**

[तू मेरा अनुशासक भी है, सखा भी है, और मैने तेरा कहना भी किया है। मित्र तू भी मेरा कहना कर। हम दोनो चलकर (क्षत्रियों को) मुक्त करें॥१०२॥]

बोधिसत्व ने उत्तर दिया--

**सत्था च ते होमि सखा च त्यम्हि,**
**वचनं पि मे सम्म तुवं अकासि,**
**अहं पि ते सम्म करोमि वाक्यं**
**उभो पि गन्त्वान पमोचयाम ॥१०३॥**

[मै तेरा अनुशासक भी हूँ, सखा भी हूँ। और मित्र! तू ने मेरा कहना भी किया है। हे मित्र! मै भी तेरा कहना करता हूँ। हम दोनों चलकर (क्षत्रियों को) मुक्त करेगे॥१०३॥]

यह कह, उनके पास पहुच, कहा—

**कम्मासपादेन विहेठितत्ता**
**तलावुता अस्सुमुखा रुदन्ता**
**न जातु दुब्बेथ इमस्स रञ्ञो,**
**सच्चप्पटिञ्ञं मे पोटस्सुणाथ ॥१०४॥**

[तुम्हे कल्माष-पाद ने कष्ट दिया है। तुम्हारे (हाथों की) हथेलियो मे छेद है। तुम अश्रु-मुख रो रहे हो। तुम इस राजा से द्वेष न करना। यह मेरी सत्य प्रतिज्ञा सुनो ॥१०४॥]

उन्होने उत्तर दिया—

**कम्मासपादेन विहेठितम्हा**
**तलावुता अस्सुमुखा रुदन्ता**
**न जातु दुब्भेम इमस्स रञ्ञो,**
**सच्चप्पटिञ्ञं ते पटिस्सुणाम ॥१०५॥**

[हमे कल्माष-पाद ने कष्ट दिया है। हमारे (हाथो की) हथेलियो मे छेद है। हम अश्रुमुख रोते है। हम निश्चय से इस राजा से द्वेष नही रखेगे—हम तेरी इस सत्य-प्रतिज्ञा को स्वीकार करते है ॥१०५॥]

तब बोधिसत्व ने 'तो अच्छा मेरे सामने प्रतिज्ञा करो' कह गाथा कही—

**यथा पिता वा अथवापि माता**
**अनुकम्पका अत्थकामा पजानं**
**एवमेव नो होतु अयञ्च राजा,**
**तुम्हे च वो होथ यथेव पुत्ता ॥१०६॥**

[जैसे माता अथवा पिता अपनी सन्तान पर दया करने वाले, उसका भला चाहने वाले होते है, उसी प्रकार यह राजा होवे और तुम पुत्रोके समान होओ ॥१०६॥]

उन्होने भी स्वीकार करते हुए यह गाथा कही—

**यथा पिता वा अथवापि माता**
**अनुकम्पका अत्थकामा पजानं**
**एवमेव नो होतु अयं च राजा,**
**मयं पि हेस्साम तत्थेव पुत्ता ॥१०७॥**

[जैसे माता अथवा पिता अपनी सन्तान पर दया करने वाले, उसका भला चाहने वाले होते है, उसी प्रकार हमारे लिये यह राजा भी होवे और हम भी पुत्रों के समान होंगे ॥१०७॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने उनसे प्रतिज्ञा करा नर-भक्षक को बुला कर कहा, "आ, क्षत्रियो को मुक्त कर।" उसने तलवार से एक राजा का बन्धन काट डाला। राजा सप्ताह भर निराहार रहने से वेदना के मारे, बन्धन कटते ही मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा। यह देख बोधिसत्व ने करुणा कर के कहा, "मित्र नर-भक्षक इस तरह (बन्धन) मत काट।" फिर एक राजा को दोनों हाथों से मजबूती से पकड़, छाती से लगाकर कहा, 'अब बन्धन काट।' तब नर-भक्षक ने तलवार से काटा। बोधिसत्व ने भी बलवान होने के कारण उसे छाती पर ले, ओरस-पुत्र के समान मृदु-चित्त के साथ उतार कर भूमि पर लिटाया। इस प्रकार उन सभी को जमीन पर लिटा उनके ज़ख्म धोये और बच्चो के कान मे से धागा निकालने की तरह, धीरे से रस्सी निकाल, पीप और रक्त को धो, जख्मों को निर्दोष किया। फिर 'मित्र नर-भक्षक ! एक वृक्ष की छाल पत्थर पर घिस कर ला' कह छाल मगवा, सत्य-क्रिया कर उनके हाथ के तलों पर मली। उसी क्षण जख्म अच्छे हो गये। तब नर-भक्षक ने चावल ले वारण (वारुणि ?) पेय पकाया। दोनो ने शताधिक क्षत्रियो को वारण पान कराया। वे सब सन्तुष्ट हुए। सूर्य्य भी अस्त हो गया। अगले दिन भी प्रात.काल, मध्यान्ह मे और शाम को भी वारण ही मिला तीसरे दिन भात सहित यवागु पिलाया। वे उसी समय निरोग हो गये। तब बोधिसत्व ने उनसे पूछा—

"जा सकोगे ?"—

"जायेगें।"

उनके ऐसा कहने पर बोधिसत्व ने नर-भक्षक को कहा, "मित्र नर-भक्षक !

आ अपने राष्ट्र चले।" वह उसके पाव मे गिर कर रोने लगा और बोला, "मित्र ! तू राजाओ को लेकर जा। मै यही फल-मूल खाता हुआ रहूगा।"

"मित्र। यहाँ क्या करेगा ? तेरा राष्ट्र रमणीय है। वाराणसी का राज्य कर।"

"मित्र ! क्या कह रहे हो ? मै वहा नही जा सकता। सारे नगर-निवासी मेरे बैरी है। वे मुझे गालिया देगे, 'इसने मेरी मा खाई, इसने मेरा पिता खाया।' वे 'इस चोर को पकडो' कह पत्थर मार मार कर ही मुझे मार डालेगे। मैने तुम से शील ग्रहण किये है। जान बचाने के लिये भी मै दूसरे को नही मार सकता। मे नही जाता हूँ। मै नर-मास छोड कर अब और कितना जीऊगा। अब मेरे भाग्य मे तुम्हारा दर्शन नही है।"

यह कहते कहते वह रो पडा ओर बोला, "आप जायँ।" तब बोधिसत्व ने उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए उसे आश्वस्त किया, "मित्र ! मेरा नाम सुतसोम है। मैंने तेरे सदृश दारुण आदमी को वशीभूत कर लिया। वाराणसी निवासियो का कहना ही क्या है ! मै तुझे वहाँ प्रतिष्ठित करूँगा। अपने राज्य के दो हिस्से करके एक तुझे दूगा।"

"तुम्हारे नगर मे भी मेरे बैरी है।"

'इसने मेरा कहना मान कर बडी बात की है। इसे जैसे तैसे इसके पुराने पद पर प्रतिष्ठित करना ही है' सोच उसे लुभाने के लिये उसने नगर की सम्पत्ति का वर्णन करते हुए कहा—

**चतुप्पदं सकुणञ्चापि मंसं**
**सूदेहि रन्धं सुकतं सुनिट्ठितं**
**सुधं व इन्दो परिभुञ्जियान**
**हित्वा कथेको रमसी अरञ्ञे ॥१०८॥**

[रसोइयों द्वारा पकाया हुआ, अच्छी तरह तैयार किया हुआ, परोसा हुआ चतुष्पदों और पक्षियो का मास वैसे ही खाना, जैसे इन्द्र अमृत का सेवन करता है। यह सब छोडकर यहा वन मे अकेला कैसे रहेगा ? ॥१०८॥]

**ता खत्तिया वेल्लि विलाकमञ्ञा**
**अलंकता सम्परिवारयित्वा**
**इन्दं व देवेसु पमोदयिंसु**
**हित्वा कथेको रमसी अरञ्ञे ॥१०९॥**

[छोटी, मध्यम तथा बडी, स्वर्णिम, अलकृत क्षत्राणिया तुझे घेर कर उसी प्रकार तेरा मनोविनोद करती थी, जैसे देवलोक म अप्सराये इन्द्र का। उन्हे छोड यहा वन मे अकेला कैसे रहेगा? ॥१०९॥]

**तम्बूपधाने बहुगोणकम्हि**
**सुचिम्हि सब्बसयनम्हि सञ्ञते**
**सयनस्स मज्झम्हि सुखं सयित्वा**
**हित्वा कथेको रमसी अरञ्ञे ॥११०॥**

[रक्त-वर्ण तकियो वाले, अनेक कम्बलो वाले, शुद्ध, अनेक बिछौनो वाले बिस्तर के बीच में सुख पूर्वक सो कर तू अब यहा वन मे अकेला कैसे रहेगा? ॥११०॥]

**पाणिस्सरं कुम्भथूनं निसीथे**
**अथो पि वे निप्पुरिसं हि तुरियं**
**बहुं सुगीतं च सुवादितं च**
**हित्वा कथेको रमसी अरञ्ञे ॥१११॥**

[रात में पाणी-स्वर, कुम्भ थून, स्त्रियो द्वारा वादित तूर्य्य, बहुत प्रकार का सगीत और सुवाद्य—ये सब छोडकर तू वन मे अकेला कैसे रमण करेगा? ॥१११॥]

**उय्यानसम्पन्नपहूतमाल्यं**
**मिगाचिरूपेतपुरं सुरम्मं**
**हयेहि नागेहि रथे हुपेतं**
**हित्वा कथेको रमसी अरञ्ञे ॥११२॥**

[अनेक प्रकार के फूलो से लदे हुए उद्यानो वाला, अजिर मृगो से युक्त, घोडो, हाथियो तथा रथों से युक्त सुरम्य नगर है, उसे छोडकर तू वन मे अकेला कैसे रमण करेगा? ॥११२॥]

इस प्रकार बोधिसत्व ने 'सम्भव है यह पूर्वानुभूत रस को याद कर जाने के लिये तैयार हो जाये' सोच पहले भोजन का प्रलोभन दिया, दूसरा काम रति-का, तीसरा शयन का, चौथा नृत्य-गीत और वाद्य का तथा पाँचवा उद्यान का तथा नगर का। इस प्रकार इतने प्रलोभन देकर कहा, "महाराज! आये। मैं आपको साथ लेकर वाराणसी जाऊगा और वहा (राज्यपर) प्रतिष्ठित कर बाद मे अपने राष्ट्र जाऊगा। यदि वाराणसी का राज्य नही मिलेगा तो अपने राज्य मे से आधा दूगा। जंगल मे रहने से क्या लाभ? मेरा कहना करे।" उसकी बात सुन वह साथ जाने के लिये इच्छुक हुआ और सोचने लगा, "सुतसोम मेरा भला चाहनेवाला है, दयालु है, पहले कल्याण-मार्ग मे प्रतिष्ठित कर अब कहता है, 'पुराने ऐश्वर्य्य पर प्रतिष्ठित करूगा।' यह प्रतिष्ठित कर सकेगा। इसके साथ ही जाना चाहिये। मुझे जगल से क्या?" उसने प्रसन्न हो उसका गुणानुवाद करने के लिये 'मित्र सुत-सोम! सत्सगति से बढकर भला और कुसगति मे बढकर बुरा कुछ नही' कह गाथाये कही—

**काळपक्खे यथा चन्दो हायतेव सुदे सुदे**
**काळपक्खूपमो राज असतं होति समागमो॥११३॥**
**यथाहं रसकं आगम्य सूदकं पुरिसाधमं**
**अकासिं पापकं कम्मं येन गच्छामि दुग्गतिं॥११४॥**
**सुक्कपक्खे यथा चन्दो वडढते एव सुदे सुदे**
**सुक्कपक्खूपमो राज सतं होति समागमो॥११५॥**
**यथाहं तवं आगम्म सुतसोम विजानहि**
**काहामि कुसलं कम्मं येन गच्छामि सुग्गतिं॥११६॥**
**थले यथा वारि जनिन्द वट्टं**
**अनद्धनेय्यं अचिरट्ठितिकं**
**एवं पि चे होति असतं समागमो**
**अनद्धनेय्यो उदकं थले व॥११७॥**
**सरे यथा वारिजनिन्दवट्टं**
**चिरट्ठितिकं नरविरियसेट्ठ**

**एवं पि चे होति सतं समागमो**
**चिरट्ठितिको उदकं सरे व ॥११८॥**
**अव्यायिको होति सतं समागमो,**
**यावं पि तिट्ठेय्य तत्थेव होति**
**खिप्पं हि वेति असतं समागमो**
**तस्मा सतं धम्मो असब्भि आरका ॥११९॥**

[जिस प्रकार कृष्ण-पक्ष का चन्द्रमा दिन दिन क्षीण होता जाता है, उसी तरह हे राजन्! असत्पुरुषो की सगति कृष्ण-पक्ष के ही समान है ॥११३॥ जैसे मैंने नीच रसोइये की संगति के कारण पाप-कर्म किया जिससे दुर्गति को प्राप्त होता हूँ ॥११४॥ जिस प्रकार शुक्ल-पक्ष का चन्द्रमा दिन दिन बढता है, उसी तरह हे राजन्! सत्पुरुषों की सगति शुक्ल-पक्ष के ही समान होती है ॥११५॥ हे सुतसोम! यह जान ले कि जिस प्रकार तेरी सगति के कारण मै कुशल कर्म करता हूँ, जिससे सद्गति को प्राप्त होता हूँ ॥११६॥ हे राजन्! जिस प्रकार स्थल पर बरसा हुआ जल चिरस्थायी नही होता है, उसी प्रकार असत्पुरुषो की सगति भी स्थल की वर्षा की तरह चिरस्थायी नही होती ॥११७॥ हे नरवीर्य्य श्रेष्ठ! जिस प्रकार तालाब मे बरसा हुआ पानी देर तक ठहरनेवाला होता है, उसी प्रकार तालाब के पानी की ही तरह सत्पुरुषो की संगति चिरस्थायी होती है ॥११८॥ सत्पुरुषो की संगति क्षीण नही होती। जब तक भी रहती है, वैसी ही रहती है। असत्पुरुषों की संगति शीघ्र ही क्षीण हो जाती है। इसलिये सत्पुरुषो का अर्थ असत्पुरुषो के धर्म से दूर दूर है ॥११९॥]

इस प्रकार उस नर-भक्षक ने सात गाथाओ द्वारा बोधिसत्व का ही गुणानुवाद किया। वह नर-भक्षक को तथा उन राजाओं को ले प्रत्यन्त-ग्राम गया। प्रत्यन्त-ग्राम वासियो ने बोधिसत्व को देख, नगर मे जाकर कहा। अमात्य सेना लेकर आये और घेर लिया। बोधिसत्व उस समूह सहित वाराणसी पहुचा। रास्ते में जन-पदवासी भेंट ले, साथ साथ हो लिये। बडी जनता इकट्ठी हो गई। सभी उसके साथ वाराणसी पहुचे।

उस समय नर-भक्षक का पुत्र राज्य करता था। सेनापति काळहत्थी ही था।

नगर-वासियो ने राजा को सूचना दी–"महाराज सुतसोम नर-भक्षक का दमन कर उसे साथ लिये चला आ रहा है। हम उसे नगर मे प्रवेश न करने देगे।" उन्होने जल्दी से नगर-द्वार बन्द कर लिये और हाथो मे शस्त्र लेकर खडे हो गये। बोधिसत्व ने जब यह जाना कि द्वार बन्द है तो नर-भक्षक को तथा सौ से अधिक राजाओं को छोड, कुछ अमात्यो को साथ ले आकर कहा, "मै सुतसोम राजा हूँ, द्वार खोलो।" द्वार खुल गया। बोधिसत्व ने नगर मे प्रवेश किया। राजा और काळहत्थी ने अगवानी कर, ले जाकर प्रासाद पर चढाया। उसने राज्य-सिहासन पर बैठ नर-भक्षक की पटरानी तथा शेष अमात्यो को बुलवाकर काळहत्थी से पूछा—"काळ-हत्थी! राजा को नगर मे क्यो नही आने देते?"

"इसने राज्य करते समय इस नगर के बहुत से आदमी खाये। क्षत्रियो द्वारा न करने योग्य कार्य किये। सारे जम्बुद्वीप को उजाड दिया। यह ऐसा पापी है। इसी लिये नही आने देते। अब फिर वैसा ही करेगा।"

"चिन्ता मत करो। मैने इसका दमन कर इसे शीलो मे प्रतिष्ठित किया है। यह अपने प्राणो की रक्षा के लिये भी किसी को कष्ट नही देगा। अब इससे भय नही है। ऐसा मत करो। पुत्रो का कर्तव्य है कि माता-पिता की सेवा करे। माता पिता की सेवा करने वाले ही स्वर्ग जाते है। दूसरे नरक जाते है।"

इस प्रकार उसने नीचे आसन पर बैठे हुए पुत्र-राज को उपदेश दे सेनापति को भी अनुशासित किया, "काळहत्थी! तू राजा का मित्र तथा सेवक दोनो है। तुझे राजा ने ही महान् ऐश्वर्य दिया। तुझे भी चाहिये कि तू राजा का उपकार करे।"

इस प्रकार सेनापति का अनुशासन कर उसने देवी को भी उपदेश दिया, "देवी! तू भी अपने घर से आई और इसकी पटरानी बनी और पुत्र-पुत्री वाली हुई। तुझे भी उसकी सेवा करनी चाहिये।" इस प्रकार इसी उपदेश की पूर्ति के लिये धर्मोपदेश करते हुए गाथाये कही—

**न सो राजा यो अजेय्यं जिनाति**
**न सो सखा यों सखारं जिनाति**

**न सा भरिया या पतिनो विभेति,**
**न ते पुत्ता ये न भरन्ति जिण्णं ॥१२०॥**

[जो माता पिता को (जीत कर राज्य प्राप्त करे) वह राजा नही, जो (छल कपट से) मित्र को जीत ले वह सखा नही, जो पति से भय खाये वह भार्य्या नहीं और जो बूढे (माता पिता) की सेवा न करे वह पुत्र नहीं ॥१२०॥ ]

**न सा सभा यत्थ न सन्ति सन्तो**
**न ते सन्तो ये न भणन्ति धम्मं**
**रागं च दोसं च पहाय मोहं**
**धम्मं भणन्ता व भवन्ति सन्तो ॥१२१॥**

[जहाँ सत्पुरुष न हो वह सभा नही, जो धर्म न कहे वे सत्पुरुष नही। राग द्वेष तथा मोह को छोडकर धर्म की बात करने वाले ही सत्पुरुष कहलाते है ॥१२१॥]

**नाभासमानं जानन्ति मिस्सं बालेहि पण्डितं**
**भासमानं च जानन्ति देसेन्तं अमतं पदं ॥१२२॥**

[बिना बोले मूर्खो मे पृथक पण्डित की पहिचान नही होती। अमृत-पद का उपदेश देने पर, बोलने पर ही पण्डित की पहचान होती है ॥१२२॥]

**भासये जोतये धम्मं पग्गण्हे इसिनं धजं,**
**सुभासितधजा इसयो, धम्मो हि इसिनं धजो ॥१२३॥**

[धर्म का व्याख्यान करे और उसे प्रकाशित करे। ऋषियो की ध्वजा को धारण करे। सुभाषित ही ऋषियो की ध्वजा है और धर्म ही ऋषियो की ध्वजा है ॥१२३॥]

बोधिसत्व की धर्म-कथा सुन राजा और सेनापति सन्तुष्ट हुए और उन्होने सोचा, "चले, महाराज को लाये।" उन्होने नगर मे मुनादी कर दी और नागरिको को एकत्र कर आश्वासन दिया, "तुम डरो मत राजा धर्म मे प्रतिष्ठित हो चुका है। आओ उसे ले आये।" जनता को साथ ले, बोधिसत्व को आगे कर, राजा के पास पहुंच उसे प्रणाम किया। फिर नाई को बुलवा, हजामत बनवा, स्नान और वस्त्र पहन चुकने के बाद, राजा को रत्नो के ढेर मे बिठा,अभिषेक कर नगर मे प्रवेश कराया।

नर-भक्षक राजा ने शताधिक राजाओ तथा बोधिसत्व का बहुत सत्कार किया। सुतसोम राजा ने नर-भक्षक का दमनकर उसे राज्य पर प्रतिष्ठित किया', यह बात सारे जम्बुद्वीप मे प्रसिद्ध हो गई। इन्द्रप्रस्थ निवासियो ने दूत भेज राजा को बुला भेजा। वह वहाँ महीना भर रहा। उसके बाद कहा—"मित्र! हम जाते है। तू प्रमाद-रहित रहना। नगर-द्वार और राज-भवन के द्वार पर पाँच पाँच दान शालाये बनवा। दस राजधर्मो के विरुद्ध न जा दुर्गति मे बचे रहना।" इस प्रकार उसने नर-भक्षक को उपदेश दिया। शताधिक राजधानियो की सेना बहुत करके इकट्ठी हो गई। उस सेना सहित वह वाराणसी से निकला। नर-भक्षक भी आधी दूर तक साथ पहुचाने गया। बोधिसत्व ने जिन राजाओ के साथ वाहन नही थे, उन्हे वाहन दे सभी को बिदा किया। वे भी उसके साथ प्रेमालाप कर तथा यथायोग्य प्रणाम, आलिगन कर अपने अपने जनपद गये।

बोधिसत्व ने भी नगर के पास पहुच, इन्द्रप्रस्थवासियो द्वारा देव-नगर की भाँति सजाये नगर म बड़े ठाट-बाट से प्रवेश किया। फिर माता पिता को प्रणाम कर, कुशल-क्षेम पूछ राज-प्रासाद के ऊपर चढा। वह धर्मानुसार राज्य करता हुआ सोचने लगा, 'वृक्ष-देवता का मुझपर बहुत उपकार है। मै इसे बलि मिलने की व्यवस्था करूगा।" उसने उस न्यग्रोध वृक्ष से थोडी ही दूर पर बडा भारी तालाब खुदवा, बहुत से परिवारो को भेज गाव बसा दिया। गाव बडा हो गया, अस्सी हजार दुकानो से युक्त। उस वृक्ष के नीचे शाखाओ के सिरे से लेकर समतल कर घेरा, वेदिका, तोरण-द्वार आदि बना दिया। देवता को प्रसन्नता हुई। कम्मास-पाद के दमन के स्थान पर बसा होने से वह गाँव कम्मासदम्भ निगम गाँव हुआ। सभी राजाओ ने बोधिसत्व के उपदेशानुसार चल, दानादि पुण्य-कर्म कर, स्वर्ग लाभ किया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, 'भिक्षुओ, न मैंने केवल अभी अङ्गुलिमाल का दमन किया है, पहले भी किया ही है" कह जातक का मेल बैठाया। उस समय नर-भक्षक राजा अङ्गुलिमाल था, काळहत्थी सारिपुत्र, नन्द ब्राह्मण आनन्द, वृक्ष देवता काश्यप, शक्र अनुरुद्ध, शेष राजागण बुद्ध-परिषद, माता-पिता महाराज-कुल और सुतसोम राजा तो मै ही था।